297

बौद्धगानः

# तान्त्रिक सिद्धान्त

डा० श्रीजयधारी सिंह

बौद्धगानमे

# तान्त्रिक सिद्धान्त

---

चर्यागीतक
शैवशाक्त-तान्त्रिक
अध्ययन

बिहार विश्वविद्यालयक पी-एच० डी०
उपाधिक हेतु स्वीकृत
शोध-प्रबन्ध

प्राक्कथन : पद्मविभूषण म० म० डा० श्री गोपीनाथ कविराज

सम्मति : डा० श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी
रेक्टर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

भूमिका : आचार्य श्री रमानाथ झा

# बौद्धगानमे

## तान्त्रिक सिद्धान्त

डा० श्री जयधारी सिंह, एम० ए० (गणित),
एम०ए० (मैथिली) (प्राप्तस्वर्णपदक), पी-एच०डी०
रामकृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी

प्रकाशक : डा० श्री जयधारी सिंह,
मधुबनी (दरभंगा)

प्र० सं० : मार्च १९६९

मूल्य : सोलह टाका मात्र

मुद्रक : श्री निर्भयराघव मिश्र, बी०एल०,
नव भारत प्रेस, लहेरियासराय (दरभङ्गा)

# FOREWORD

The following pages represent a fresh attempt at a critical study of the well known Charyā-Gītis of the Tāntric Buddhists, some of which were published long ago by the late M. M. Hara Prasad Shastri and by subsequent scholars. The Gītis or Songs were written in an old Apabhramśa language, which bears on it characteristics of the old Bengali, Maithili and Hindi. The Charyā-songs are usually very obscure, not for the language in which they are written, but for the ideas which they seem to express. Apart from the obscurity which the subject-matter inevitably involves on account of its esoteric character, the method of symbolic presentation, which the songs have adopted, has added to the obscurity of the context. The Samskrit commentary of Munidatta has, therefore, to be utilised for discovery of the true sense. Pandit Jayadhari, the author of the present study has, however, tried to show that the interpretation of the commentator is not always reliable. Being a student of Hindū Tantras Pt. Jayadhari finds sufficient light in it, which is capable of interpreting in right way most of the symbolism involved. The Inner Circles of Hindū and Buddhist Tantra, so far as the practical side is concerned, seem to be working on the same plane, so that light from the former may on points of obscurity be found helpful in revealing the hidden issues in the latter. It is certainly true that generally speaking the basic principles of the esoteric spiritual culture are the same or allied in nature. Still, however, in each system there exists some characteristic feature which marks its unique character. Without going into details we may take it as a general assumption. The principle of sublimation of the vital fluid in a human being is everywhere assumed, for without its action upward movement on the spiritual level is impossible; but as to the actual process there exist practical differences. We find it in diverse systems, Śaiva-Śākta and Vaiṣṇava, in diverse forms.

I congratulate Dr. Jayadhari on his achievement. He has initiated a new line of research in this obscure field. What is needed is a critical study of the ancient Tāntric traditions, preserved in ancient Hindū and Buddhist works, and work on a coordinated basis. Dr. Jayadhari has led the way. Young scholars, interested in the subject and equipped with requisite knowledge, should follow.

The present work is divided into two parts. The First Part consists of two chapters. In Chapter One he has tried to explain the technical terms used in the Charyā-Gīti on the basis of Hindū Tantras. He has supported his explanations with relevant quotations from the Tāntric works. In Chapter Two he rendered all the fifty songs into simple Maithili, furnishing a glossary of the technical terms used. In the Second Part he attempts a critical study of the Charyā-literature, of course from his own points of view. In the First Chapter he has criticised the authority of Munidatta's commentary and questioned its validity. Chapter Two surveys the Pāla-period of the history of Bengal as a background. Chapter Three is devoted to an appreciation of the songs. This latter portion of the work deals with certain social, political and literary points connected with the work.

So the book may be taken as an aid to an all round study of the Siddha-literature. I hope, persons interested in Indological Studies will welcome the present work, so that the author may feel encouraged to continue his study on a larger scale.

Varanasi

Sivarātri '69

GOPINATH KAVIRAJ

हजारीप्रसाद द्विवेदी
रेक्टर

फोन नं० ४४६१ : २७८/२३४
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी–५
२०–२–६९

प्रिय डा० सिंह जी,

आपने उस दिन "बौद्ध गान में तान्त्रिक सिद्धान्त" पर लिखा गया अपना शोध-प्रबन्ध दिया था। उसे मैं बहुत दूर तक पढ़ गया हूँ। मैथिली समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई। पुस्तक बहुत ही परिश्रम और सूझबूझ के साथ लिखी गई है। आपने बौद्धगान की टीका के साथ जो वैमत्य प्रकट किया है वह विशेष रूप से पठनीय है। मुझे लगता है कि बौद्ध गानों के अध्ययन को यह पुस्तक नई दृष्टि देती है। यद्यपि कई जगह आपकी आलोचनाएँ ऐसी हैं जिनपर उनसे एकदम सहमत नहीं हुआ जा सकता, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि आपने इस विषय को बहुत नई सामग्री दी है और भावी अध्येताओं के लिए महत्त्वपूर्ण संकेत दिए हैं। इस पुस्तक का हिन्दी और अंग्रेजी में अनुवाद हो जाता तो अच्छा होता।

मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

आपका,
हजारीप्रसाद द्विवेदी

# भूमिका

विगत पाँच वर्षमे हमर निरीक्षण ओ निदेशनमे जे पाँच गोट शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत भए बिहारविश्वविद्यालयक पी-एच०डी०क विशिष्ट उपाधिक हेतु स्वीकृत भेल अछि ताहिमे प्रथमे थिक जे प्रकाशमे आबि विद्वज्जनक समक्ष जाए रहल अछि। शोध-ग्रन्थ ओ थिक जे ज्ञानक परिधिक विस्तार करए। तीनि सए पृष्ठक पोथी लीखि अपन निदेशक मिलाए तीनि गोट विशिष्ट विद्वान्-सँ ओकर अनुमोदन कराए ओकरा स्वीकृत कराए लेब ओ डिगरी पाबि जाएब—एतबहिसँ हम ने ज्ञानक परिधिक विस्तार मानैत छी ने शोध-ग्रन्थक चरितार्थता। प्रकाशित भेले उत्तर ग्रन्थ अधिकारी विद्वान् द्वारा अनुमोदित भए सकैत अछि एवं जिज्ञासु व्यक्तिकेँ ज्ञानक विकासक नवीन दिशा भेटि सकैत अछि। प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशित भए गेल ओ देशक विद्वन्मूर्धन्य पद्मविभूषण सर्वतन्त्रसार्वभौम महामहोपाध्याय पण्डितराज श्री गोपीनाथ कविराज जी एकर श्लाघा कएल अछि, ज्ञानक नवीन दिशामे एकरा निर्देशक मानल अछि—एहिसँ पैघ अनुमोदन सम्प्रति दोसर नहि भए सकैत अछि। एकर प्रामाणिकता सिद्ध भए गेल ओ जिज्ञासु व्यक्ति आब ज्ञानक ओहि ओहि नवीन दिशामे अग्रसर होथु जकर एहिमे निर्देशन भेल छैक। एहिसँ एहि ग्रन्थहिक टा उत्कर्ष नहि ख्यापित होइत अछि अपितु हमरो निर्देशकत्वक मान्यता सिद्ध भेल अछि। ताही संतोष ओ विश्वाससँ हम आइ एकरा मिथिलाक संस्कृतिक अनुरागी विद्वत्समाजक ओतए अभिप्रशंसित ओ अग्रसारित करैत छी।

एहि शोधग्रन्थमे विचार अछि तन्त्रशास्त्रक, मुदा वस्तु थिक ई मैथिलीक। ओना तँ ज्ञान अखण्ड थिक ओ शास्त्रीय ज्ञानकेँ विषय-विशेषक सीमामे बान्हि राखब पण्डितक काज नहि थिक। मुदा तन्त्रक एकटा सनातन केन्द्र मिथिला रहैत आएल अछि तथा मिथिलाक सांस्कृतिक जीवनक अन्तरमे तन्त्रक रहस्य निहित छैक। एहि ग्रन्थक आधारभूत गीत मैथिलीक अमूल्य निधि थिक। तेँ मिथिलाक सांस्कृतिक जीवनसँ घनिष्ठ रूपेँ सम्बद्ध, प्राचीनतम

मैथिलीकाव्यक अवलम्बन कए, मैथिलीमे लिखल ई ग्रन्थ मैथिलीसाहित्यक वस्तु थिक, एहिमे सन्देहक अवकाश कोन ?

एहि शोधग्रन्थक कृती डाक्टर श्रीजयधारी सिंह साहेब केवल मैथिली-साहित्यकटा विशेषज्ञ नहि छथि, तन्त्रशास्त्रहुक अधिकारी विद्वान् छथि। आन शास्त्रसँ तन्त्रशास्त्रमे ई विशेष छैक जे तन्त्रमे पाण्डित्यक हेतु तन्त्रक रहस्यक ज्ञाने टा अपेक्षित नहि छैक ; ओहि हेतु ज्ञानक अनुरूप क्रियाक सम्पादन चाही। तन्त्र साधनाक एक टा सरणि थिकैक, जीवनक एक टा क्रम। तन्त्रक तँ प्रथम सिद्धान्त थिकैक जे एहिमे प्रवेश पएबाक हेतु अधिकारी चाही। साधनाक रीतिकेँ बूझि लेनहि से अधिकार नहि भए सकैत अछि ; ओहि हेतु साधना करए पड़ैत छैक, साधक होअए पड़तैक। श्रीजयधारी बाबू सएह छथि। दरभंगा-राजकुलक मधुवनी शाखाक ई एक गोट रत्न थिकाह। एमहर डेढ़ सए वर्षसँ अधिक दिनसँ मधुवनीक डेउढ़ी मिथिलाक संस्कृतिक हेतु प्रकाशक पुञ्ज जकाँ रहल अछि। जाहि महापुरुषक ई आत्मज थिकाह से स्वर्गीय बाबू क्षेमधारी सिंह साहेब केवल सरस्वतीक सेवामे, शब्दब्रह्मक साधनामे, अपन जीवन बिताओल। एखनहु हिनक पितृव्य स्वनामधन्य बाबू श्रीचन्द्रधारी सिंह साहेब तन्त्रक निर्भ्रान्त पारंगत वर्धमान विद्यमान छथि। एहन महाकुलमे सम्भूत श्रीजयधारी बाबू तन्त्रक बहुतो रहस्य, साधनाक बहुतो प्रक्रिया, उपासनाक विशिष्ट विशिष्ट पद्धति इत्यादि अनायास अवगत कएने छथि ओ संस्कार-रूपसँ अन्तःकरणमे निहित तन्त्रमार्गक अनुरागक बीजकेँ अपन पितृ-पितृव्य-चरणक सहवासमे अङ्कुरित पल्लवित करैत विशाल अध्ययन ओ अनुशीलनसँ, चिन्तन ओ मननसँ, पुष्पित कए लेने छथि जे ई एहि रहस्य किन्तु आध्यात्मिक दृष्टिसँ परम अभ्यर्हित सिद्धिक मार्गक विशेषज्ञ भए गेल छथि।

एहि शोधग्रन्थमे श्रीजयधारी बाबू आइसँ हजार वर्ष पूर्वक सिद्धलोकनिक गीतक विषय-वस्तुक विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत कएने छथि। एहि गीत-सबमे सिद्धलोकनि अपन अपन सिद्धान्त ओ साधनाक मार्गकेँ रूपक बान्हि बान्हि रहस्य तथ्यसबकेँ अभिव्यक्त कएने छथि जे लोक-विषय, साधारण-लोक विषय, ओकर प्रचार हो। एखन धरि ई सिद्धान्तसब अथवा मार्ग बौद्ध बुझल जाइत रहल अछि, वज्रयान अथवा सहजयानक सम्प्रदायक, ओ तेँ एहि गीतसंग्रहक नाम बौद्धगान, श्रीजयधारी बाबू एहि ग्रन्थमे एहि बौद्धगानक

विषयकें बौद्ध ओ शैव-शाक्त दुहू तन्त्रक सिद्धान्त ओ मान्यताक दृष्टिसँ तुलनात्मक अध्ययन कए ई प्रमाणित कएल अछि जे ई सिद्धलोकनि कोनहु सम्प्रदाय-विशेषक प्रचारक नहि छलाह, ओ लोकनि तँ सिद्धिक प्रेप्सु साधक मात्र छलाह तथा हिनका लोकनिक सिद्धान्त किंवा सरणि बहुधा शैव-शाक्त तन्त्रक अनुकूल अछि। जतए कतहु बौद्ध-तन्त्रमे वर्णित विषय-वस्तु भेटैत अछि ततहु भेद केवल नाम-मात्रमे अछि, वस्तु ओ शैव-शाक्त सम्प्रदाय ताहूमे ओहिना अछि। ओ लोकनि कोनहु मार्गमे अपनाकें बान्हि नहि रखने छलाह; ओ लोकनि तँ जगतक कल्याणक भावनासँ प्रेरित भए अपन अनुभूत सरणिक प्रचार करैत रहलाह; गुरुक प्रसादसँ रहस्य बूझि अपन साधनासँ प्रत्यक्ष कए सिद्धिक सुगम सरणिकें प्रशस्त करैत रहलाह। परन्तु जाहि रहस्यकें ओ लोकनि प्रत्यक्ष कएल, जाहि सरणिकें ओ लोकनि प्रशस्त कएल, से बौद्ध-सम्प्रदायक अपन वस्तु नहि छल; ओ छल शैव-शाक्त सम्प्रदायक वस्तु, जकरा बौद्ध आचार्यलोकनि ग्रहण कए नव नाम दए, कतहु कतहु अपन अनुभवसँ ओकर परिष्कार कए कए प्रचार कएल।

अतएव श्री जयधारी बाबू ई कथा स्पष्ट शब्दें कहलैन्हि नहि अछि—ई विषय हुनक शोधविषयसँ बहिर्भूत छल—परन्तु हुनक अध्ययन ओ अनुसन्धानक दिशा इङ्गित करैत अछि, जे कथा एहि शोधग्रन्थसे प्रमाणित सेहो भेल अछि, जे निगम जकाँ आगम सेहो हमरा लोकनिक ओहिठाम अनादिकालहिसँ साधनाक एकटा मार्ग प्रशस्त रहल अछि। वेद-विरोधी बौद्ध साधकगण वैदिक मार्गकें छोड़ि आगमक मार्गकें धएल तथा ओही आधारपर अपन साधनाक अनुभवसँ ओकरा परिष्कृत करैत पुरान वस्तुकें नव नामसँ चिन्हबैत सिद्धिक सरणि स्थिर करैत रहलाह। बौद्ध तन्त्र कोनो नव वस्तु नहि थिक, ओकर आधार-शिला रहलैक अछि प्राचीन आगम-शास्त्र। एहि सत्यकें प्रमाणित करबाक हेतु बौद्धगानसँ भिन्नो साहित्यक अध्ययन, अनुसन्धान ओ अनुशीलनक प्रयोजन छैक, ई शोधग्रन्थ ओकर भूमिका मात्र भेल। हमरा बड़ सन्तोष अछि, पूर्ण भरोस अछि जे महामनीषी श्री कविराजजीक सदृश विद्यासागर जें हिनक विचार-पद्धतिकें श्लाघित कएलथिन्ह अछि तें श्री जयधारी बाबू आब निस्सङ्कोच अपन अध्ययन ओ अनुसन्धानक क्षेत्रकें विस्तृत करैत रहताह तथा बौद्ध साधना-पद्धतिपर आगम-शास्त्रक मौलिक प्रभावकें उद्घाटित कए भारतीय संस्कृतिक इतिहासमे एक गोट नव अध्याय जोड़ि सकताह।

× × ×

हम एकरा परम गौरवक विषय मानैत छी जे एहन महत्त्वपूर्ण अथच वास्तविक शोधग्रन्थ हमरहि निदेशनमे सम्पन्न भेल। तन्त्रक मार्ग हमरा देखल अवश्य, परन्तु ओकर साधना हमरा पार नहि लागल। तेँ श्री जयधारी-बाबूकेँ हमरासँ वैषयिक निदेशन नहि भेटलैन्हि; से ओ अपन विशाल अध्ययनसँ स्वयं सम्पन्न कएलैन्हि। हम हुनका एतबे सहायता कए सकलि-ऐन्हि जे अपन शोधविषयक प्रसङ्ग जे सामग्री ओ अधिकाधिक मात्रामे संग्रह करैत गेलाह ताहिमे हम विषयक उपयुक्त मात्र सामग्री हुनका देखबैत रहलि-ऐन्हि ओ से कोना सबसँ विशेष प्रभावोत्पादक रीतिएँ उपस्थापित कएल जाए ताहि प्रसङ्ग परामर्श दैत रहलिऐन्हि। ततेक विस्तृत ओ गम्भीर हिनक अध्ययन छैन्हि, तेहन निरन्तर हिनक चिन्तन रहलैन्हि अछि, ततेक दीर्घकालसँ हिनक मनन अबैत रहलैन्हि अछि जे हम हिनका शास्त्रीय निदेशन की दितिऐन्हि ?

अन्तमे एक गोट कथा निवेदनीय। आब दश वर्षसँ ऊपर भेलैक, हिनक पूज्यपाद पिता जिबितहिँ छलथिन्ह ओ हम हुनक परम कृपापात्र। गप्पक प्रसङ्ग हम श्री जयधारी बाबूकेँ अपना पिताक समक्षमे विचार रूपेँ कहलिऐन्हि जे यावत् अपनेक पिताजी वर्त्तमान छथि अपने तन्त्रक विषयपर अनुसन्धान कएल जाओ, कारण, एहन उपयुक्त गुरु हिनक परोक्ष भेला पर अपनेकेँ केओ नहि भेटताह। अपन पितासँ ई उपदेश ग्रहण करैत रहलाह, ज्ञान सिखैत रहलाह, परन्तु हुनक जीवितावस्थामे ई शोधकार्य प्रारम्भ नहि कए सकलाह। मुदा जखन ई आरम्भ कएलैन्हि तखन हमरहि अपन गुरु मानि ओ गुरुक प्रति जे भक्ति ओ आदर तन्त्रमे वर्णित छैक तकर पालन करैत अपन कार्यकेँ सम्पन्न कएलैन्हि तथा पूर्ण सफलता प्राप्त कएलैन्हि। डी०लिट्०क हेतु दोसर शोधकार्यकेँ प्रारम्भ करबासँ पूर्व एहि ग्रन्थकेँ प्रकाशित कराए विद्वत्समाजसँ एकर अनुमोदन कराए लिअ सेहो विचार ई हमरे आनल। हमरा आशे टा नहि, पूर्ण विश्वास अछि जे एहि शोधग्रन्थक महत्त्व समस्त विद्वत्समाज मानत ओ श्रीजयधारी बाबू अक्षय यशकेँ प्राप्त करताह। इति

शिवरात्रि, १९६९

**श्रीरमानाथ झा**

# निवेदन

सिद्धसाहित्यपर अनेक प्रबन्ध वा टीका लिखल गेल। किन्तु प्रायः कोनहु प्रकाशनसँ ओहि आलोच्य साहित्यक अर्थक अस्पष्टता ( Obscurity )क समाधान नहि भए सकल। तकर मुख्य कारण अछि चर्यागीतक संस्कृत टीकाकें अत्यधिक महत्त्व देब। मुनिदत्तकृत ओहि टीकाकें ततेक आप्त मानि लेल गेल जे सभ टीका वा समीक्षामे ओसभ पूर्वग्रह आवृत्त भए गेल जे ओहि टीकामे विद्यमान अछि। जँ कोनो लेखक सिद्धसाहित्यक अनुसंधानमे नवीनतो अनबाक इच्छा कएल तँ ओहि इच्छाक पूर्त्ति एहि हेतु नहि भए सकल जे अपन दृष्टिकोणक पक्षमे समुचित रूपक प्रमाण नहि भेटि सकल अथवा ओ तकबामे समय वा स्फूर्त्तिक व्यये नहि कएल तेहने सन बुझना जाइत अछि।

एहिमे संदेह नहि जे जा'धरि उक्त मूलभूत अस्पष्टता-समस्याक समाधान नहि होएत, सिद्धसाहित्यक पाँतीक अनुसंधानमे हृदयग्राहकता नहि आबि सकत, ता' धरि समस्त शोध, समस्त समीक्षा, निराधार मानस प्रक्रिया मात्रक अभिव्यञ्जक मानल जाएत। आओर ई आशे करब व्यर्थ जे ओहि शोध वा समीक्षासँ पाठकक रुचिक परिष्कार भए सकत। तेँ पहिल काज अछि सिद्ध-साहित्यक स्वतन्त्र रूपक आ' सङ्ग सङ्ग सुसङ्गत अर्थक अनुसंधान—इएह भावना प्रस्तुत शोध-प्रबन्धक बीज थिक।

समस्त सिद्धसाहित्यपर विचार नहि कए केवल चर्यागीत वा बौद्धगानहि-पर विचार करबाक उद्देश्य एतबे अछि जे लोकमे ओहि गेय पदसभकेँ प्रसरित कए देल जाए; डाकार्णव वा दोहासभ गेय नहि अछि, तेँ लोकप्रियताक आशे व्यर्थ। दोसर, दोहहु कोशमे वा डाकार्णवहुक सिद्धान्त-पक्षमे ओएह विषयसभ भेटैत अछि जे चर्यागीतमे। तेँ चर्यागीत मात्रकेँ सत्ता देल गेल। प्रस्तुत पचास गोट गीतक अतिरिक्त गीतहुकेँ छोड़ि देल गेल, कारण, 'स्थालीपुलाकन्याय'सँ ई निश्चित रूपमे कहि सकैत छी जे आलोच्य युगक समस्त बौद्ध अपभ्रंश साहित्यमे ओएह विचारधारा ( idiom of thought ) भेटत जे प्रस्तुत पचास गोट गीतमे आ' तेँ एहि अनुसंधान वा समीक्षाकेँ समस्त सिद्धसाहित्यक अध्ययनक हेतु मूलसूत्र ( First principles ) मानल जाए सकैत अछि।

प्रस्तुत प्रबन्धक लक्ष्यक प्रसङ्ग अधिक कहब प्रयोजनीय नहि, भूमि पड़ैत अछि, आगाँ भूमिका-परिच्छेदक प्रारम्भमे उपात्त अछिए। आशा अछि समस्त ग्रन्थक अध्ययनक पश्चात् ई मूलसूत्र स्पष्ट भए जाएत जे बौद्धतन्त्र मात्रक आधार-पर चर्यागीतक अध्ययनसँ उक्त समस्याक समाधान ने भए सकल आ' ने भए सकत। प्रयोजनीय अछि आगमक वृहद् भूमिकामे विशेषतः शैव-शाक्त आगमक भूमिकामे बौद्धगानक आ' व्यापक रूपमे बढ़ला पर समस्त सिद्ध-साहित्यक अध्ययन, जाहि दिशामे प्रस्तुत प्रबन्ध किछु आलोक अवश्य देत, से विश्वास अछि।

जेना कहल अर्थानुसन्धानकेँ प्राथमिकता देल गेल, तेँ प्रथमखण्डकेँ ओहीमे लगाओल। समस्त प्रथमखण्डक अध्ययनक पश्चात् ई स्पष्ट भए जाएत जे गीतसभक प्रस्तुत शैव-शाक्त व्याख्यामे जतेक तत्त्व वा साधनाक चर्चा आएल अछि से प्रमाणसँ पुष्ट अछि, ओहि प्रमाणसभसँ जकरा एकेठाम प्रकरण बाँटि भूमिकाभागमे राखि देल गेल अछि। गीतमे प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दक स्थान-निर्देश करैत बौद्ध अर्थ आ' पुनः शैव वा शाक्त अर्थ अनुक्रमणिकामे देल अछि, जाहिसँ थोड़ समयमे मर्मक ज्ञान भए जाए।

वस्तुतः एहि योजनासँ शोध-विषय 'बौद्धगानमे तान्त्रिक (शैवशाक्त तन्त्रक) सिद्धान्त' प्रसङ्ग आकांक्षाक पूर्त्ति भए गेल। किन्तु एहि विषयसँ अन्यो विषय कम महत्त्वपूर्ण नहि, जकरा समीक्षा-प्रकरणमे सत्ता देब आवश्यक। तेँ द्वितीयखण्डक प्रयोजन प्रतीत भेल। द्वितीयखण्डमे महत्त्व रखैत अछि गीतसभक समीक्षा। किन्तु गीतसभ प्रतीकात्मक शब्दसभसँ, रहस्यमय अर्थसभसँ भरल अछि, तेँ कोनो समीक्षात्मक विचार ता'धरि सत्याश्रित नहि मानल जाएत जा'धरि आलोच्य कविवृन्दक सामाजिक-दार्शनिक-साहित्यिक पार्श्वभूमिमे ओहि विचारक सङ्गति नहि बैसत, तेँ गीत-समीक्षासँ पूर्व पीठिका-प्रकरण। आ' पुनः ताहू प्रकरणक विचारधारामे बल नहि आओत जा'धरि मुनिदत्ताक पूर्वग्रहसभक अप्रामाण्य सिद्ध नहि होएत (कारण, पद-पदपर ओहिसँ मतभेद भेटत), तेँ पीठिका-प्रकरणसँ पूर्व संस्कृत-टीकाक प्राभाणिकताक विचार प्राप्त अछि। फलतः एहि भागमे आदिसँ अन्त-धरि एक विचारधारा प्रवाहित अछि, जकर दृष्टान्तक जिज्ञासा पूर्त्ती होइत अछि अन्तिम प्रकरणसँ। ओ विचारधारा ई अछि जे सिद्धगणमे व्यापक तान्त्रिक-

दार्शनिक संस्कृति आओर साधनाक मर्म भीजल छल आ' से तत्कालीन परिस्थितिक दृष्टिएँ प्राप्त छल।

एक विषय निवेदनीय। किछु विवादास्पद प्रश्न अछि, जाहिपर स्वतन्त्रे कोनो ग्रन्थ लिखल जाए से उचित, यथा चर्यागीतक भाषाक समस्यापर। विस्तृतिभयात् एहन एहन विषयकेँ स्वतन्त्र शीर्षकमे राखल नहि गेल। किन्तु आनुषङ्गिक रूपसँ प्रायशः समस्त जिज्ञासाक पूर्त्ति कएल गेल अछि, यथा गीतक मैथिली-छायासँ भाषावैज्ञानिक सातत्यादिक। तेँ प्रस्तुत प्रबन्धकेँ चर्यागीतक सर्वाङ्गीण अध्ययन मानबामे आपत्ति नहि। प्रस्तुत प्रबन्धक प्रथमखण्ड लक्ष्यभूत विषयक अनुसंधानक हेतु आ' द्वितीयखण्ड अन्य जिज्ञास्य विषयक अनुसंधानक हेतु उपादेय मानल जाएत, से विश्वास अछि।

× × ×

आइ ई शोधप्रबन्ध मुद्रित भए विद्वत्समाजक जिज्ञासापरिशमनार्थ अर्पित भए रहल अछि, तेँ कृतज्ञताज्ञापन पुनीत कर्त्तव्य भए जाइत अछि।

सर्वप्रथम पूज्यपाद दिवङ्गत पिताक (प० क्षेमधारी सिंहक) प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करब आवश्यक बुझना जाइत अछि, कारण, हुनकहि सान्निध्यसँ भारतीय संस्कृतिमे,, विशेषतः तान्त्रिक दर्शनक ऊहापोहमे, अभिरुचि जागि सकल। जीवनक अन्तिम अवधिमे जे ओ किछु बहुमूल्य आकर ग्रन्थक सूचना देल, ताही प्रसादात् समस्त शोधमे प्रमाणक बल आएल, अन्यथा अन्तः-स्फूर्त्ति पङ्गु भए जाइत। किन्तु समस्त व्युत्पत्तिकेँ सुव्यवस्थित साहित्यक रूपमे प्रतिनिधित करब सामान्य काज नहि आओर एहि हेतु आचार्य श्रीरमानाथ बाबूक प्रति ऋणी अवश्य रहबन्हि। ओ जँ ओतेक मन लगाए निदेशन-कार्य नहि करितथि तँ समयक सङ्ग स्फूर्त्तिओ व्यर्थ भए जाइत आ' खेप-खेपा-व्याधिसँ ग्रस्त भए जैतहुँ। हुनकहि प्रेरणासँ पुनः स्वतःप्रकाशनक विचार भेल। एहि प्रसङ्ग एक विषय कथ्य। परीक्षकक रूपमे डा० श्री सुकुमारो सेन बिहारविश्वविद्यालयक अधिकारिवृन्दसँ प्रकाशनक हेतु कम अनुरोध नहि केलथिन्ह, जे हुनक एक पत्रक पाँतीसभसँ स्पष्ट भए जाएत—

The Thesis is a very good one and Sri Singh did very well in the Viva voce Examination: In our report we had recommended immediate publication of the Thesis by the University. I now iterate the same request once again.

किन्तु, अर्थाभावें वा अन्य कोनहु कारणेँ विश्वविद्यालयसँ साहाय्य नहि भेटि सकल। फलतः प्रकाशनक सभ भार अपनहिपर पड़ि गेल। ई भार सामान्य भार नहि, किन्तु जीवनक अवलम्ब पूज्यपाद अग्रज विद्वद्वर श्रीरमाकर-जीक स्निग्ध उत्साहक प्रसादात् भार भार नहि बूझि पड़ल। अभिभावकोचित उदार तत्परता देखाए ओ जे आर्थिक दायित्वक निर्वाह कएल से कहिओ विस्मृत नहि भए सकैत अछि। किन्तु, पुनः मुद्रण-कार्य सम्हरैत नहि जँ नवभारतप्रेसक समस्त व्यवस्था, विशेषतः श्री निर्भयराघव मिश्र ( लल्लू बाबू ) तथा आशीर्व्वादभाजन श्रीदुर्गानाथ झा बी० ए० ( प्रतिष्ठा ) मनसँ तत्पर नहि होइतथि।

उक्त सज्जनवृन्दक प्रति आभार प्रकट करबाक पश्चात् मिथिला-शोध-संस्थानक, च० मि० महाविद्यालयक तथा रामकृष्णमहाविद्यालयक पुस्तकालयक अधिकारिवृन्दकेँ धन्यवाद देब आवश्यक। समस्त सूचनास्रोतक उपलब्धिमे जे जे व्यक्ति सहायक भेलाह सभक प्रति श्रद्धावनत भए अन्तमे ओहि महान् विभूतिद्वयक प्रति कृतज्ञता-प्रकाशन छोड़ल नहि जाए सकैत अछि, जनिक प्राक्कथन ( Foreword ) तथा सम्मतिसँ प्रस्तुत प्रकाशनमे शोभावृद्धिए नहि, अपूर्व कान्तिक अभिनिवेश भए गेल अछि। सर्वतन्त्रसार्वभौम म० म० डाक्टर श्रीगोपीनाथ कविराज, एम० ए०, डी० लिट्, पद्मविभूषण अपन एहि वार्द्धक्यक अवस्थामे जे अत्यन्त सहानुभूतिक सङ्ग प्रस्तुत प्रबन्धकेँ नीक जकाँ पढ़ि समीचीन विचार प्रेषित कएल तथा डा० श्रीहजारीप्रसाद द्विवेदी जी जे अपन सुचिन्तित सम्मतिसँ कृतार्थ कएल से गौरवक विषय अवश्य थिक। एकर संतोष अछि जे वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालयक योग-तन्त्र-विभागक आचार्य श्रीव्रजवल्लभ द्विवेदी, प० श्रीदुर्गाधर झा, काशीविद्यापीठक सहायकपुस्तका-लयाध्यक्ष प० श्री तन्त्रेश्वर झा तथा हिन्दूविश्वविद्यालयक किछु व्यक्तिसभ प्रकाशनकेँ आह्लादसँ स्वीकार कए विविध रूपमे साहाय्य-प्रदान कएल।

समस्त पाठकवृन्दसँ अनुरोध जे मुद्रणजनित समस्त आपत्तिकेँ मनसँ हटाए सुहृद्भावसँ समुचित रूपक सम्मति वा उपदेश प्रदान कए कृतार्थ करथि।

शिवरात्रि १६६६ श्रीजयधारी सिंह

# विषय-सूची[1]

## प्रथम खण्ड

**भूमिका— पृ० १–९६**



---

१। एहि विषय-सूचीमे प्रकरण-शीर्षकसभक आगाँमे जतए पृष्ठ ( पृ० ) शब्दक उल्लेख अछि, ततए प्रस्तुत पुस्तकक पृष्ठसंख्या आओर जतए नहि अछि, ततए अनुच्छेदसंख्या बुझबाक थिक । अनुच्छेदसंख्या प्राप्त प्रकरणक आरम्भक अनुच्छेद-संख्या थिक [ जतएसँ ताहि शीर्षकक प्रकरण चलल अछि ]। दूनू खण्डमे इएह क्रम अछि ।

## द्वितीय खण्ड

—:o:—

# सङ्केत-विवरण

प्रस्तुत पुस्तकक मध्यभागमे कविक्रममे गीतिसभ सङ्कलित अछि। तइस गोट कवि छथि निम्नोक्त क्रममे अग्रपश्चात्, तनिक नामक हेतु निम्नोक्त सङ्केत प्रयुक्त भेल अछि—

| नाम | सङ्केत |
|---|---|
| १। सरहपाद | —स० |
| २। शबरपाद | —श० |
| ३। लुइपाद | —लु० |
| ४। गुण्डरीपाद | —गु० |
| ५। आर्यदेवपाद | —आ० |
| ६। दारिकपाद | —दा० |
| ७। डोम्बीपाद | —डो० |
| ८। कुक्कुरीपाद | —कु० |
| ९। भुसुकुपाद | —भु० |
| १०। काह्नुपाद | —का० |
| ११। विरुवापाद | —वि० |
| १२। महीधरपाद | —म० |
| १३। भादेपाद | —भा० |

१४ । धामपाद—धा०

१५ । वीणापाद—वी०

१६ । चाटिल्लपाद—चा०

१७ । कम्बलाम्बरपाद—कम्ब०

१८ । ढेण्ढणपाद—ढे०

१९ । ताड़कपाद—ता०

२० । कङ्कणपाद—क०

२१ । जयनन्दीपाद—ज०

२२ । तन्त्रीपाद—त०

२३ । शन्तिपाद—शा०

प्रस्तुत शोध-प्रबन्धमे स्थल-स्थलपर गीतविशेषकेँ सङ्केत द्वारा सूचित कएल गेल अछि। यथा, का० १२ सँ काह्नपादक गीतसंख्या १२ अभिप्रेत अछि, भु० ६ सँ भुसुकुपादक गीत सं० ६, कु० २ सँ कुक्कुरीपादक गीत सं० २ एवमादि बुझबाक थिक—कविक नामक सङ्केत दए तकर आगाँमे लक्ष्यगीतक संख्या देल गेल अछि, प्रत्येक कविक गीतक गणना स्वतन्त्र अछि। एकक समस्त गीत समाप्त भेला पर दोसराक गीत सं० १ सँ आरम्भ अछि, तेँ उक्त रूपक सङ्केत।

अन्य सङ्केतसभकेँ आगाँ अक्षरानुक्रमेण बाम भागमे राखि दहिन भागमे ओकर पूर्ण रूप प्रकट कएल जाइत अछि। वर्णमाला-क्रममे सङ्केतसभक पौर्वापर्य अछि। प्रयास कएल गेल अछि जे कोनो सङ्केत एहि सूचीमे छूटि नहि जाए। तथापि जँ कोनो सङ्केत छुटलो होएत तँ तेहने जे स्वतः स्फुट अछि आ' स्थलविशेषमे अनायास बोधगम्य भए जाइत अछि।

| सङ्केत | | पूर्ण रूप |
|---|---|---|
| अ० | — | अधिकारः, अध्यायः |
| अनु०[1] | — | अनुच्छेद |

---

१. भूमिका आओर समीक्षा दूनू प्रकरणमे स्वतन्त्र अनुच्छेद-संख्या देल गेल अछि। पोथीमे जतए भूमिकाक अनुच्छेद लक्षित अछि 'पाछाँ' शब्दसँ सूचित कएल गेल अछि। समीक्षाक अनुच्छेद-विशेष जतए लक्षित अछि ततए सोझे अनु० २४ एहि प्रकारेँ सङ्केतित कएल गेल अछि, किछु जोड़ल नहि अछि।

आ० — आह्निक

आ० ल० — आनन्दलहरी

ई० प्र० — ईश्वरप्रत्यभिज्ञा

ई०प्र०वि० — ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी

उ० — उल्लास

का० — कारिका

का० द० — काव्यदर्पण

का० प्र० — काव्यप्रकाश:

का० मी० — काव्यमीमांसा [ राजशेखर ]

का० वि० — कामकलाविलास:

का०शा०भू० — काव्यशास्त्र की भूमिका

कु० त० — कुलार्णवतन्त्रम्

कुब्० त० — कुब्जिकातन्त्रम्

कुलार्णव — कुलार्णवतन्त्रम्

गीत सं०, गी० सं० — गीतसंख्या

गु० स० त० — गुह्यसमाजतन्त्रम्

च० गी० — चर्यागीति

च० गी० को०, चगीको — चर्यागीतिकोष

च० वि० — चर्याचर्यविनिश्चय

टी० — टीका

डा० बा० सं० — डाक्टर-बागची-संस्करण

त० वि० — तन्त्रालोक-विवेक

ता० — तान्त्रिक

ता० बौ० सा० सा० — तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य

ता० वा० शा० दृ० — तान्त्रिक वाङ्मयमे शाक्त दृष्टि

द्र० — द्रष्टव्य

ध्व० — ध्वन्यालोक:

| | |
|---|---|
| ना० शा० | — नाट्यशास्त्रम् |
| नि० | — निःष्यन्दः |
| नि० षो० | — नित्यापोड्शिकार्णवः |
| प० | — पटलः, पण्डित |
| पा० टि० | — पाद-टिप्पणी |
| पुर० | — पुरश्चर्यार्णवः |
| पु० रसोल्लासः | — पुरश्चरणरसोल्लासः |
| पृ० | — पृष्ठ |
| प्र० | — प्रकाशः, प्रथम |
| प्रत्य० हृ० | — प्रत्यभिज्ञाहृदयम् |
| प्रा० तो० | — प्राणतोषिणी |
| बौ० गा० दो० | — बौद्धगान ओ दोहा |
| बौ० त० | — बौद्धतन्त्र |
| बौ० द० मी० | — बौद्धदर्शन-मीमांसा |
| बं० | — बङ्गाब्द |
| भा० इ० स० | — भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण |
| भा० सा० रू० रे० | — भारतीय साहित्य की रूपरेखा |
| भा० सं० सा० | — भारतीय संस्कृति और साधना |
| म० नि० त०, म० नि० तन्त्र | — महानिर्वाणतन्त्रम् |
| म० म० | — महार्थमञ्जरी, महामहोपाध्याय |
| म० मा० र० | — मन्त्र और मातृकाओं का रहस्य |
| मि० भा० को० | — मिथिलाभाषाकोष |
| मु० मा० त० | — मुण्डमालातन्त्रम् |
| मे० त० | — मेरुतन्त्रम् |
| मै० | — मैथिली |
| यजु० सं० | — यजुर्वेदसंहिता |
| र० ग० | — रसगङ्गाधरः |
| र० ग० शा० अ० | — रसगङ्गाधर का शास्त्रीय अध्ययन |
| रा० त० | — रागतरङ्गिणी |

| | |
|---|---|
| ल० स० | — ललितासहस्रनाम |
| लेखकक, लेखककृत | — प्रस्तुत शोधकर्त्ताक निर्मित |
| व० र० | — वरिवस्यारहस्यम् |
| वि० | — विश्रामः |
| वि० सं० | — विक्रमसंवत् |
| वि० सा० त० | — विश्वसारतन्त्रम् |
| श० क० | — शब्दकल्पद्रुमः |
| श० स० त० | — शक्तिसङ्गमतन्त्रम् |
| शा० ति० | — शारदातिलकम् |
| शास्त्री | — म० म० हरप्रसादशास्त्रीक संस्करण |
| शि० सू० | — शिवसूत्रम्, शिवसूत्राणि |
| श्लो० | — श्लोकः |
| ष० च० नि० | — षट्चक्रनिरूपणम् |
| ष० त्रिं० त० सं० | — षट्त्रिंशत्तत्त्वसंदोहः |
| सा० शा० पा० श० को० | — साहित्यशास्त्रका पारिभाषिक शब्दकोष |
| सू० | — सूत्र |
| सेन | — डा० सुकुमार सेनक संस्करण |
| सौ० भा० | — सौभाग्यभास्कर |
| सं० | — संस्कृत |
| सं० श० को० | — संस्कृतशब्दकोष |
| स्ट० त० | — स्टडीज इन तन्त्राज |
| स्प० का० | — स्पन्दकारिकाः |
| स्व० त० | — स्वच्छन्दतन्त्रम् |
| ह० लि० सं० | — हस्तलिपिसंस्करण [ असंशोधित पाठ ] |
| हि० | — हिन्दी |
| हि० त० | — हिन्दूतन्त्र |
| हि० सा० बृ० इ० | — हिन्दी साहित्यका बृहत् इतिहास |
| [ १ ], [ २ ] | — भाग [ १, २ ] वा खण्ड [ १, २ ] |

| | | |
|---|---|---|
| A. I. B. E. | .. | An Introductio to Buddhist Esoterism |
| A. I. T. B. | ... | An Introduction to Tāntric Budddism |
| Fig. | .... | Figure |
| f. n. | ... | foot-note |
| H. I. P. | ... | A History of Indian Philosophy |
| I. B. I. | --- | The Indian Buddhist Iconography |
| I. G. I. | ... | The Imperial Gazetteer of India |
| Intr., Intro. | — | Introduction |
| I. T. I. | ... | Idealistic Thought of India |
| J. B. O. R. S. | .. | The Journal of the Bihar & Orissa Society |
| Ms. | ... | Manuscript |
| O. R. C. | ... | Obscure Religious Cults |
| O. H. I. | ... | The Oxford History of India |
| P. | ... | Page |
| T. S. T. R. L. | .. | The Tantras : Studies on their Religion and Literature. |
| The Serp. Power | ... | The Serpent Power |
| Vol. | ... | Volume |
| Do., ऐजन | ... | जे एहिसँ पूर्व सएह |



# भूमिका

१. चिदाकाशाय कस्मैचिन्नमश्चिच्छक्तिरूपिणे ।
शिवाय च शवायापि चैतन्याश्रययुञ्जिते ॥[1]

तेँ ओहि चिदाकाशपरमशिवक, परस्पराश्लिष्ट शिवशक्तिक, प्रत्यभिज्ञा[2] तथा उपासनाप्रणालीक अवगतिमे जे कोनो भारतीय साहित्य सहायक भेल ताहिमे उल्लेखनीय अछि अपभ्रंशक सिद्धसाहित्य जकर रचयिता तान्त्रिक सिद्धलोकनि छलाह। बौद्धधर्मक महायानशाखाक वज्रयान वा सहजयान उपशाखाक अवलम्बन कए ओ सिद्धलोकनि किछु रहस्यमय साधन करैत छलाह, जाहिमे किछु तान्त्रिक उपासनातत्त्व घोँसिआएल छल। एहि साधनक अनुभूतिकेँ ओ सिद्धगण जाहि साहित्य द्वारा अभिव्यक्त कएल सएह कहबैत अछि 'सिद्ध-साहित्य'।

## सिद्धसाहित्यक भेद

२. म० म० हरप्रसाद शास्त्री सन् १९०७ ई० मे नेपालमे एक हस्तलिपि प्राप्त कएल, जकरा सुसम्पादित कए १९१६ ई०मे बङ्गीय साहित्य-परिषद्सँ प्रकाशित करबाओल[3]। पोथीक नाम राखल 'बौद्धगान ओ दोहा' जे मुखपृष्ठपर देल अछि। ई ग्रन्थ तीनि गोट पुस्तकक संकलन थिक जकर नाम अछि क्रमशः (क) चर्याचर्यविनिश्चय (ख) दोहाकोश—सरोजवज्र तथा कान्हपाद दूनू सिद्धक तथा (ग) डाकार्णव। एहि तीनू रचनाकेँ 'सिद्धसाहित्य'सँ अभिप्रेत कएल जाइत अछि।

३. आलोच्य कृति थिक 'चर्याचर्यविनिश्चय' जकरे 'बौद्धगान' शब्देँ ओहि संकलनमे सूचित कएल गेल [मुखपृष्ठपर लीखि]। किन्तु, एहि बौद्धगानसाहित्यक परिचयसँ पूर्व किछु डाकार्णव तथा दोहाकोश एहू दूनू रचनापर प्रकाश देब अनुपयुक्त नहि प्रतीत होइत अछि।

---

१। श्री 'शिवस्तुतिमाला'—दिवङ्गत क्षेमधारी सिंह—श्लो० १।

२। 'प्रत्यभिज्ञा'—द्रष्टव्य ई० प्र०—१ अ० १ आ० २ का०।

३। ब० गी० को०—डा० बा० सं०—Preface P. IX,

## १ डाकार्णव

४. एहि ग्रन्थमे [४] तइस पटलमे तान्त्रिक पद्धतिक शलीमे, प्राचीन हरगौरी-संवादक शलीमे, महासुख, भावाभाव, बोधिचित्त आदि दार्शनिक विषयक तथा योगिनी-साधनादि साधना-संबन्धी विषयक उपपादन कएल गेल अछि। सभ पटलमे, अन्तमे, 'इति श्रीडाकार्णवमहायोगिनीतन्त्रराज्ये ज्ञानार्णवावतारः प्रथमः पटलः' [५] एहि प्रकारेँ विषय तथा ग्रन्थक संकेत अछि। डाकार्णवक भाषाक प्रसंग किछु विद्वद्गणक कहब छन्हि जे आ अपरिचित भाषा अछि [६]। डा० नगेन्द्र नारायण चौधरी अपन संस्करणक भूमिकामे सूचित कएने छथि जे डाकार्णव वज्रयान आ' शून्य प्रतीक-मतक अनुगामी ग्रन्थ थिक, जाहिमे मन्त्र-यन्त्र-मुद्रा-धारिणी-योग-समाधिकेँ आनन्द आओर अभ्युदयक साधन मानल गेल अछि [७]।

## २ दोहाकोश

५. 'बौद्धगान ओ दोहा' तथा किछु अन्य संस्करणसँ ज्ञात होइत अछि जे दोहाक एक परम्परा छल। कान्हपाक दोहाकोश, तिलोपाक दोहाकोश, सरहपाक दोहाकोश, एवम्प्रकारेँ अनेक दोहाकोश प्राप्त अछि [८]।

दोहाकोशमे सिद्धवर्गक दार्शनिक तथा सामाजिक चिन्तना मुखरित भेल अछि। सिद्धसरहपादक दोहाकोशसँ हुनक व्यक्तित्व, परम्परा, धर्म, साधु-लक्षण, प्रज्ञोपायदर्शन, निर्वाण, सहज-सार्थकता, योगसमाधि, शून्य-निरंजन आदि अनेक विषयक परिचय प्राप्त होइत अछि [९]।

६. म० म० शास्त्रीजीक संकलनमे केवल दुइ गोट कविक दोहाकोश आछ, किन्तु आगाँ जाए किछु आओर अनुसन्धान भेल, जाहिमे महत्वपूर्ण अछि महापण्डित राहुलजीक सम्पादित सिद्धसरहपादक दोहाकोश जकर प्रकाशन बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्‌सँ भेल।

---

४। द्रष्टव्य डाकार्णव—बौ० गा० दो०—पृ० १२७—१५६
५। ऐजन " —पृ० १३२
६। ता० बौ० सा० सा०—पृ० २६४
७। Dākārṇava—ed. by Dr. N. N. Chaudhury —Intro. P. 9
८। सिद्धसाहित्य-पृ० १६—२३
९। ( सिद्धसरहपादकृत ) दोहाकोशक भूमिका-राहुल सांकृत्यायन-पृ० २६-३६

## ३ चर्यागीत वा बौद्धगान

७. ऊपर जे म० म० शास्त्रीक संकलनमे चर्याचर्यविनिश्चयक नाम आएल अछि तकरा बौद्धगान सेहो कहि सकैत छी हुनक अनुसरण कए [ मुखपृष्ठपर देल नामसँ हुनक मत सूचित होइत अछि ]। जे किछु हो, एहि संकलनमे शास्त्री जी बाइस गोट सिद्धक लिखल सँएतालिस गोट रागबद्ध गीत संगृहीत कएने छथि। गीत सभ कविक दृष्टिएँ नहि अरिआओल अछि, एक कविक एक वा अधिक रचनाक पश्चात् पुनः दोसर कविक रचना आबि गेल अछि, तखन पुनः ओहि पूर्व आएल कविक रचना देल गेल अछि, अर्थात् एक कविक दुइ रचनाक मध्यमे दासरहु कविक रचना, हस्तलिपिक अनसरण कए, देल गेल अछि एकसँ पचास धरि, जाहिमे गीत सं० २४, २५, ४८ छुटल अछि। ई तीनू गीत नहि भेटत अछि[१०]।

८. एहि शङ्काक समाधान डा० बागचाक संस्करणसँ भए जाइत अछि, जाहिमे कोनहु संख्याक गीतक स्थान रिक्त नहि अछि। हँ, एहि तीनू संख्या २४, २५, ४८क गीतक संस्कृत छाया देल अछि, किन्तु पादटिप्पणीसँ सचित कए देल गेल अछि जे एक समयमे मूल गीत सभ उपलब्ध छल[११]।

९. डा० बागचीक संस्करणक नाम अछि 'चर्यागीतिकोष'[१२]। ओहि संस्करण-क भूमिकामे 'चर्याचर्यविनिश्चय' नाम हाएब उचित वा 'चर्याश्चर्यविनिश्चय' नाम उचित ताहिपर विचार भेल अछि, अन्य विद्वानक मत देल गेल अछि तथा सभसँ निर्विवाद नाम 'चर्यागीतिकोष' ( तेहन गीतिक कोष, जाहिसँ चर्या अर्थात् आचार ज्ञात हो ) सएह मानि पुस्तकक नाम राखल गेल अछि[१३]। जेना ऊपर सूचित भेल अछि, एहिमे म० म० शास्त्रीक संकलित सँएतालिस गोट गीतसभक संग ओ छुटल तीनि गोट गीत सेहो अछि ( संस्कृत छायारूपमे )ष •( अर्थक दृष्टिएँ ), कहि सकैत छी जे चर्यागीतिकोषमे पचास गोट गीत संकलित अछि, सभ मिलाए तइस गोट कविक विरचित।

१०. तँ इएह पचास गोट गीत प्रस्तुत निबन्धक आलोच्य कृति थिक। व्याख्या-समालोचनाक क्रममे डा० बागची तथा म० म० शास्त्री दूनूक संस्करण मिलाए लेल गेल

१०। बौ० गा० दो० मे एहि तीनू गीतक स्थान रिक्त द्रष्टव्य

११। च० गी० को०—पृ० ८१, ८३, १५७

१२। ऐजन—मुखपृष्ठ

१३। ऐजन—Preface P.XI

अछि। दूनू संस्करणमे कोनो मौलिक अन्तर नहि अछि, तीनि गोट उपर्युक्त गीत छोड़ि डा० बागचीक संस्करणक सभ गीत शास्त्रिहुक संस्करणमे प्राप्त अछि। दूनू पोथी-मे गीत सभक क्रम एके रंग अछि, एक गीतक क्रमसंख्या जे थाहिमे अछि सएह एहूमे अछि। कतहु कतहु पाठभेद मात्र भेटैत अछि। ततबे नहि, किछु मूल पाठ म० म० शास्त्रीकाँ सेहो स्वीकार्य नहि भेल, जकर संस्करण ओ अपन संकलनक दोसर खण्डमे बंगला अनुवादक सङ्ग प्रस्तुत कएने छथि[१४]। प्रस्तुत निबन्धमे एही पाठकें प्राथमिकता देल गेल अछि। कतहु कतहु ई समस्या आएल जे दूनू पाठमे कोन समीचीन, ततए ऊह कए जकरा अधिक समीचीन बुझल तकरे स्वीकृत कए कार्य्यमे आगाँ बढ़ल।

११. प्रतिपाद्य विषयक विवेचनासँ पूर्व चर्यागीतक रचयिता सिद्धगणपर प्रकाश देब आवश्यक बुझना जाइत अछि।

## चर्यागीतक रचयिता सिद्धगण

१२. उक्त पचासगोट [ संस्कृतछायामात्र बाला गीत सं० २४, २५, ४८ मिलाए ] चर्यागीतमे तेरह गोट रचना कान्हुपादक छन्हि, आठ गोट भुसुकुपादक, चारि गोट सरहपादक, तीनि गोट कुक्कुरीपादक, दुइ दुइ गाट गीत शबरपाद, लुइपाद आ' शान्तिपादक आओर एक एक गीत रचने छथि गुण्डरीपाद, आर्यदेवपाद, डोम्बीपाद दारिकपाद, विरुवापाद, महीधरपाद, भादेपाद, धामपाद, वीणापाद, चाटिल्लपाद, कम्बलाम्बरपाद, ढेण्ढणपाद, ताड़कपाद, कङ्कणपाद, जयनन्दीपाद तथा तन्त्रीपाद। एहि सभमे तन्त्रीपादक रचना म० म० शास्त्रीक संस्करणमे अप्राप्य अछि, किन्तु ओहि गीतक स्थान [ संख्या २५ ] रिक्त अछि [ गीत सं० २३क पश्चात् सं० २६ हिक गीत भेटत ] ऊपर जे तीनि गोट स्थान रिक्त कहल अछि, ताहिमे एक तँ इएह भेल, अवशिष्ट दू गीत कान्हपादक एक गीत [ सं० २४ ] तथा कुक्कुरीपादक [ सं० ४८ ] एक गीत अछि।

१३. अस्तु, उक्त सिद्धलोकनिमे कान सिद्ध कोन संख्याक गीत रचने छथि ताहि विषयकें सूचित करबाक हेतु एक सूची देल जाइत अछि, जाहिसँ जिज्ञासु पाठककें प्रकाशित दूनू उक्त संकलनमे कविविशेषक समग्र रचना देखबामे सुविधा होन्हि।

१४.

| सिद्धक नाम | गीतक संख्या |
|---|---|
| १। सरहपाद | २२, ३२, ३८, ३९ |
| २। शबरपाद | २८, ५० |

१४। बौ० गा० दो०– चर्यापदगुलीर पाठ-संस्कार ओ व्याख्याभाग

३। लुइपाद १, २९
४। गुण्डरीपाद ४
५। आर्यदेवपाद ३१
६। दारिकपाद ३४
७। डोम्बीपाद १४
८। कुक्कुरीपाद २, २०, ४८ [ जकर छायामात्र प्राप्त ]
९। भुसुकुपाद ६, २१, २३, २७, ३०, ४१, ४३, ४९
१०। काह्न [ काह्न ] पाद ७, ९, १०, ११, १२, १३, १८, १९,
( एहि कविक नाम २४ (जकर छायामात्र प्राप्त), ३६, ४०, ४२.
कृष्णाचार्य सेहो ) ४५
११। विरुवापाद ३
१२। महीधरपाद १६
१३। भादे [ भद्र ] पाद ३५
१४। धामपाद ४७
१५। वीणापाद १७
१६। चाटिल्लपाद ५
१७। कम्बलाम्बरपाद ८
१८। ढेण्ढणपाद ३३ ( एहि कविक नाम तिब्बती अनुवादमे टेण्टणपाद भेटैत अछि— च० गी० को० टिप्पणी—पृ० १०८ )
१९। ताड़कपाद ३७
२०। कङ्कणपाद ४४
२१। जयनन्दीपाद ४६
२२। तन्त्रीपाद २५ ( जकर छायामात्र प्राप्त )
२३। शान्तिपाद १५, २६

१५. एहि सिद्धलोकनिक जीवनक प्रसङ्ग जतेक सामग्री प्राप्त अछि ताहिमे किछु अंश प्रस्तुत कएल जाइत अछि, अन्य अंशकेँ प्रतिपाद्य विषयक दृष्टिएँ सहायक नहि जानि छोड़ि देल जाइत अछि। सर्वप्रथम हुनकालोकनिक देश, जाति, पद तथा समयक संकेत कएल जाइत अछि एक संक्षिप्त विवरण द्वारा[१५] :—

१५। ता० बौ० बा० सा० —पृ० २१७-२१९ } क साहाय्यसँ।
सिद्धसाहित्य — पृ० ४६-६०

| नाम | देश वा स्थान | जाति वा पद | समकालीन राजा वा सिद्ध |
|---|---|---|---|
| १। सरहपाद | (नालन्दा) | ब्राह्मण | धर्मपाल (७६९-८०९ ई०) |
| २। शबरपाद | विक्रमशिला | क्षत्रिय | सरहक शिष्य, लुइक गुरु (७६९-८०९ ई०) |
| ३। लुइपाद | (मगध) | कायस्थ | धर्मपाल ( ,, ) |
| ४। गुण्डरीपाद | डिसुनगर | चिड़इमार | सरहक उपशिष्य ( ,, वा पश्चात्) |
| ५। आर्यदेवपाद | नालन्दा | × | ,, ( ,, ,, ) |
| ६। दारिकपाद | ओड़ीसा | राजा | लुइपादक शिष्य ( ,, ,, ) |
| ७। डाम्बीपाद | (मगध) | क्षत्रिय | ,, ( ,, ,, ) |
| ८। कुक्कुरीपाद | कपिलवस्तु | ब्राह्मण | लगभग (८०९-८४९ ई०) |
| ९। भुसुकुपाद | नालन्दा | राजकुमार | देवपाल ( ,, ) |
| १०। कान्हुपाद | सोमपुरी | कायस्थ | ,, ( ,, ) |
| ११। विरुवापाद | [मगध] | × | ,, ( ,, ) |
| १२। महीधरपाद | ,, | शूद्र | कान्हुपादक शिष्य (,, वा पश्चात्) |
| १३। भादेपाद | श्रावस्ती | × | ,, ,, ( ,, ,, ) |
| १४। धामपाद | विक्रम (शिला) | ब्राह्मण | जालन्धरशिष्यकान्हुपादक शिष्य ( ,, ,, ) |
| १५। वोणापाद | गौड़ | राजकुमार | ,, ( ,, ,, ) |
| १६। कम्बलाम्बरपाद | ओड़ीसा | × | (८०९-८४९ ई० वा पश्चात्) |
| १७। कङ्कणपाद | मगध | शूद्र | × |
| १८। जयनन्दीपाद | भागलपुर | ब्राह्मण | × |
| १९। तन्त्रीपाद | उज्जन | जोलहा | × |
| २०। शान्तिपाद | मगध | ब्राह्मण | महीपाल (९७४-१०२६ ई०) |

१६. अवशिष्ट तीनि गोट सिद्ध चाटिल्लपाद, ढेण्ढणपाद आ' ताड़कपादक प्रसङ्ग उक्त तीनू विषयक सामग्री अप्राप्त अछि।

१७ आब किछु सिद्धलोकनिक साधनक सूचना देल जाइत अछि, जे विभिन्न सामग्रीसँ प्राप्त भेल अछि तथा जकरा प्रस्तुत प्रतिपाद्य विषयक हेतु बाह्य साक्ष्य मानल जाए सकत अछि।

साधनापीठ—

१८. कौलसाधना प्रसङ्ग कामरूप, जालन्धर, उड्डीयान तथा पूर्णगिरि पीठक चर्चा भेटैत अछि । ई सभ साधनापीठ बुझल जाइत छल । तेँ साधनमालाक अनुसार एहि सिद्धहु लोकनिमे किछु व्यक्ति एहि पीठसभसँ सम्बद्ध छलाह । सरह-पादक परम्परा उड्डीयानक मानल गेल अछि[१६] । कान्हपाद अपन एक गीत [ आगाँ हुनक दशम गीत ] मे जालन्धरपादकें प्रति श्रद्धा देखओने छथि, से उड्डीयानमे साधना कएल[१७] । तन्त्रीपाद उज्जैनक वासी छलाह[१८] । विरुआपाद उड्डीयानहुमे प्रकट भेलाह[१९] । उक्त पीठ सभक अतिरिक्त श्रीपर्वतक चर्चा सेहो भेटैत अछि जकरा 'मालतीमाधव'मे ( कौलक ) कापालिकसाधनाक पीठ बुझल गेल अछि[२०] ।

शक्ति ( नारी ) साधन—

१९. कहल जाइत अछि जे सरहपाद एक शरकन्याकें शक्ति बनाओल[२१], शबरपादक दुइ शक्तिक नाम लोकी आ' गुनी छल[२२] । लुइपाद शबरीपाद ( एक स्त्री )सँ दीक्षा लेल[२३] ( जे एकँ साधिका छल होएतीह, ककरो शक्ति ) । दारिक-पाद वेश्यासँ सिद्धि पाओल[२४] । पुनः आ चिन्ता नामक युवतीकें शिष्या आ' शक्ति बनाओल[२५] । एहि चिन्ताकें गुरुआइनि बनाए डोम्बीपाद कौलसाधनामार्गक प्रचार कए सकलाह[२६] । कम्बलाम्बरपादक शक्तिक नाम मन्त्रावती छल[२७] । कुक्कुरीपाद महामायाक उपासक छलाह[२८], हुनक शक्ति पूर्वजन्ममे कुक्कुरी छलथिन्ह. एहन कथा

---

१६ । सिद्धसाहित्य—पृ ४६
१७ । ऐजन पृ० ५४
१८ । ऐजन पृ० ५५
१९ । ऐजन पृ० ५८
२० । ऐजन पृ० ६५
२१ । सिद्धसाहित्य—पृ० ४६
२२ । ऐजन पृ० ५०
२३ । ऐजन पृ० ५१
२४ । ऐजन पृ० ५१
२५ । ऐजन पृ० ५९
२६ । ऐजन पृ० ५२
२७ । ऐजन पृ० ५२
२८ । बौ० गा० दो०—पदकर्त्तादेर परिचय—पृ० २

भेटैत अछि[२९]। एहि शक्तिकेँ सहजयोगिनी वा महामुद्रा जे कहल जाओ, उक्त सिद्धलोकनि शक्ति-साधन करत छलाह अवश्य।

२०. चर्यागीतक तथा ओकर रचयिता सिद्धगणक परिचयक पश्चात् आब ताहि सम्बन्धी अभिव्यक्त धारणाक सूचक सामग्री तथा प्रस्तुत निबन्धमे विचारित समस्याक उल्लेख कएल जाइत अछि।

## सहायकसामग्री तथा समस्या

२१. ऊपर जाहि चर्यागीत वा बौद्धगानक परिचय प्रस्तुत कएल गेल अछि ताहि-पर अनेक शोधपूर्ण टीका-टिप्पणी तथा समीक्षाग्रन्थ प्राप्त अछि। किछु उल्लेखनीय कृति निम्नलिखित अछि —

### टीका

२२. 'चर्यागीतिकोष' आ 'चर्याचर्यविनिश्चय' दूनूमे गीतक नीचामे एक संस्कृत-टीका अछि। कहल जाइत अछि जे ओकर लेखक मुनिदत्त छलाह[३०]। मुनिदत्तक टीकाक तिब्बती[३१] तथा बंगला अनुवाद सेहो प्राप्त अछि। टीकाक अतिरिक्त गीत सभक संस्कृत[३२] बंगला[३३] तथा अंग्रेजी [३४] मे लिखल छाया भेटैत अछि।

२३ एहि टीका-टिप्पणीसँ अनेक समस्याक समाधान भए गेल। सर्वप्रथम जे कठिनता छल से सिद्धलोकनिक प्रयुक्त प्रतीक सभक अभिप्रेत अर्थ बुझबामे[३५]। एहि कठिनतामे पड़ि अधिकांश लेखक चर्यागीतकेँ "धूमिल तथा रहस्यमय" कहि निरसि देने छथि[३६]। टीकाकार मुनिदत्त सेहो ई स्वीकार करत स्थल-स्थलपर 'सन्ध्याभाषा'[३७] शब्दक प्रयोग कएने छथि, जाहि विषयक उल्लेख डा० बागचीक संस्करणक भूमिकामे शान्तिभिक्षुशास्त्री नीक जकाँ कएने छथि [३८]। अस्तु, एहि कठिनताक बहुतो दूर धरि समाधान भए गेल अछि संस्कृत-टीका सँ।

---

२९। सिद्धसाहित्य—पृ० ५३
३०। च० गी० को०—Preface P. XIII
३१। ऐजन — ऐजन
३२। ऐजन—द्रष्टव्य प्रत्येक गीतक छाया
३३। ऐजन — Preface P. XI
३४। ऐजन — ऐजन। विशेषतः द्र० डा० सेनक चर्चा—सिद्धसाहित्य-पृ० २५
३५। सिद्धसाहित्य — पृ० २६८
३६। A History of Maithili Literature Vol. I P. 116
३७। बौ० गा० दो० वा च० गी० को० गीत सं० ८, ६, १४, २१क टीका द्रष्टव्य
३८। च० गी० को०—Preface P. XI—XIII

## समीक्षा

२४. ओना तँ चर्यागीतपर अनेक लेख भेटत अछि[39] जे मौलिक विचारक कारणेँ सर्वप्रथम म०म० शास्त्रीक परिचयात्मक निबन्ध[40] तथा 'चर्यागीतिकोष'क भूमिका उपादेय अछि। म०म० शास्त्रीजी 'बौद्धगान ओ दोहा'क मुखबन्ध तथा 'पदकर्त्तादिर परिचय'मे नेपालक चर्यापदक हस्तलिपि, चर्यागीतक भाषा, तिब्बतक बौद्धकृति, सहजिया मत, योग, अद्वैत-भावना, मीननाथ आदिक प्रसंग अनेक विषयक उल्लेख कएने छथि; तहिना, प्रस्तुत गीतक अर्थानुसंधानक दृष्टिएँ अधिक उपयोगी अछि 'चर्यागीतिकोष'क भूमिका, जाहिमे चर्यागीतसभक प्रतीक सभकेँ एक एक कए बुझाओल गेल अछि—नाव, मूस, वीणा, गज, हरिण, विवाह, आसव, तूर आदि चित्र-विधानकेँ फरिछाए देल गेल अछि। एहिसभसँ सिद्धसभक अभिप्राय की छल? नावसँ करुणा, पाँच करुआरिसँ पाँच तथागत, खुट्टीसँ आभासदोष, रस्सीसँ बोधिचित्त, सेचनीसँ शून्य, लक्ष्यस्थानसँ महासुख एवमादि बुझबाक थिक। प्रस्तुत भूमिकासँ नाड़ीयोग, बोधिचित्त-समुत्पाद, शून्य-समाधि, नैरात्मयोगिनी आदिक स्वरूपज्ञान भेटैत अछि।

२५. उक्त दूनू भूमिकाक पश्चात् किछु आधुनिक बौद्धतन्त्रपरिचायक ग्रन्थ अछि, जाहिसँ एहि तन्त्रक सिद्धान्त तथा साधनाक परिचय भेटैत अछि। ताहि ग्रन्थसभमे उल्लेखनीय अछि डा० शशिभूषण दासगुप्तक तान्त्रिक बौद्धमतपर पोथी[41] तथा एक दोसर पोथी, जाहिमे भारतक किछु गूढ़ धार्मिक मतक, विशेषतः बौद्ध-हिन्दू तन्त्रक, प्रसंग विचार-विमर्श भेटैत अछि।[42] डा० विनयतोष भट्टाचार्यक बौद्धसाधना-परिचय-ग्रन्थ[43] तथा ग्वेन्थरसाहेबक 'युगनद्ध', दूनूसँ समीक्षकगणकेँ पर्याप्त प्रकाश भेटल अछि।

२६. सिद्धसाहित्यपर सर्वाङ्गीण विचार प्रस्तुत करबामे डा० धर्मवीर भारतीक 'सिद्धसाहित्य' बहुत दूर धरि सशक्त सिद्ध भेल अछि, जाहिसँ बौद्धतन्त्रक पृष्ठभूमि, महायानक पारमितानय-मन्त्रनय, वज्रयान तथा सहजयानक प्रसंग पर्याप्त सूचना प्राप्त

३९। मैथिलीसाहित्यक इतिहासग्रन्थमे। विशेष द्रष्टव्य 'मैथिलीक सिद्धसाहित्य'—प्रस्तुत लेखकक आकाशवाणीक मैथिलीक वार्त्ता (प्रसारित १३ अप्रील १९६६)।

४०। बौ० गा० दो० मुखबन्ध द्रष्टव्य।

४१। An Introduction to Tāntric Buddhism.

४२। Obscure Religious Cults.

४३। An Introduction to Buddhist Esoterism.

भए सकल। तान्त्रिक बौद्धसाधनाक उत्पत्ति-विकास, वज्रयानक सिद्धान्त तथा सहजसाधनाक परिपाटीपर प्रकाश देबाक हेतु श्री नागेन्द्रनाथ उपाध्यायक 'तान्त्रिक बौद्धसाधना और साहित्य' कम उपयोगी नहि सिद्ध भेल, विशेषतः स्वनामधन्य म० म० कविराजजीक प्राक्कथनक हेतु ई ग्रन्थ आओर बहुमूल्य भए गेल अछि।

## बौद्धतन्त्र

२७. किन्तु ई सभ उपकरण रहितहुँ मूलभूत कठिनताक समग्र समाधान नहि भए सकल अछि। ओ कठिनता अछि चर्यागीतक स्पष्टतम व्याख्याक। जतेक टीका-टिप्पणीसभ उपलब्ध भेल अछि, सभमे तथाकथित बौद्धतन्त्रहिक दृष्टिकोणसँ गीतसभकेँ देखल गेल अछि। ई बौद्धतन्त्र की थिक, कोना आएल, तकर संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत करब उपयुक्त बूझि पड़ैत अछि।

## इतिहास

२८. इतिहाससँ ज्ञात होइत अछि जे बुद्धक एक सए वर्षक पश्चात् हुनक वचन तथा अभिप्रायक प्रसंग मतभेद उठए लागल,[४४] आचार-सम्बन्धी प्रश्न सेहो उठए लागल। वाद-विवादक हेतु संगीति बसए लागल, प्रथम संगीति तँ पहिनहि बैसल छल, दोसर संगीति वैशालीमे ई०पू० ३८३ मे भेल,[४५] एहि संगीतिक पश्चात् स्थविरवाद तथा महासांघिक नामक दू भेद बौद्धधर्मक भए गेल, तेसर संगीति अशोकक समयमे महास्थविर मोग्गलिपुत्ततिस्सक अध्यक्षतामे पाटलिपुत्रमे भेल, बुद्धक २३६ वर्ष पश्चात्।[४६] किछु इतिहासज्ञक कथन छन्हि जे द्वितीय आओर तृतीय संगीतिक मध्य अनेक सम्प्रदाय ठाढ़ भए गेल।[४७] अस्तु, विवाद बढ़ले गेल आ' देवतावादक प्रवेश क्रमशः होअए लागल।[४८] चतुर्थ संगीति कनिष्कक समय (७८ ई०) मे भेल, ता'धरि तँ अनेक बोधिसत्त्वक कल्पना आबि गेल,[४९] 'बोधिसत्त्व' बोधिप्राप्तिक जिज्ञासुक प्रतिशब्द मानल गेल। अनेक बुद्धक कल्पना द्वारा बौद्धक पक्षपात सूचित होअए लागल आ' पारमिताक संग अवतारवाद नीक जकाँ आबि गेल।[५०] व्यक्तिगत साधनाकेँ सामाजिक उपयोगिताक दृष्टिएँ देखल जाए लागल।

---

४४। ता० बौ० सा० सा०—पृ० २७
४५। ऐजन —पृ० २९
४६। ऐजन —पृ० ,,
४७। ऐजन —पृ० ,,
४८। ऐजन —पृ० ३१
४९। ऐजन —पृ० ३२
५०। ऐजन —पृ० ३३

२९. महायानी साहित्यसँ चामत्कारिक सिद्धिसभक परिचय भेटैत अछि।[५१] आगाँ जाए भक्ति-तत्त्वक अङ्गीकार भेल; वज्रसूचीक नाम भेटैत अछि, जे वज्रयानक अंकुरक सूचक अछि।[५२] ललितविस्तर, अष्टसाहस्रिका, प्रज्ञापारमिता, सद्धर्मपुण्डरीक, सुवर्णप्रभास, गण्डव्यूह, तथागतगुह्यक, दशभूमीश्वर, अवलोकितेश्वर, गुणकरण्डव्यूह आदि ग्रन्थसभक अध्ययनसँ विद्वद्गण एहि निष्कर्षपर पहुँचलाह जे खृष्टाब्दक अनुसार ५ म शताब्दी अबैत अबैत करुणा-शून्यता, प्रज्ञा, अक्षोभ्य-अमिताभ-अवलोकितेश्वर सन सन देवता तथा हारीति, चण्डिका, श्रीमहादेवी, सरस्वती सन सन देवीक प्रवेश सेहो महायानमे भए गेल।[५३] एहिसभसँ ई कहि सकैत छी जे हीनयानक सत्ताकेँ कम करबाक हेतु आ' अपन सत्तारूपमे बुद्धक सत्ताक रक्षा करबाक हेतु महायानं अनेक हीनयानेतर सम्प्रदायकेँ आत्मसात् कए ओहि सभक संघटन बनि गेल,[५४] जाहिमे सभक किछु किछु अंश छल।

३०. महायानी दर्शनमे [ १ ] माध्यमिक मत वा शून्यवाद तथा [ २ ] योगाचार मत वा विज्ञानवाद उल्लेखनीय[५५]। [ १ ] शून्यवादक अनुसार शून्यता मोक्षोपयोगिनी थिक। शून्यता की थिक ? समस्त जगतक [ मौलिक ] अनिर्णेय तथा अनिर्वचनीय स्वभावे तँ शून्यता थिक[५६]। शून्यवाद एहि प्रकारेँ पारमार्थिक सत्तहिक निषेधात्मक [ वा ऋणात्मक ] वर्णन थिक अर्थात् 'नेति-नेति' क शैलीमे ओकरा मान्यता दैत अछि[५७]। शून्यवाद दुइगोट सत्य मानैत अछि — संवृतिसत्य अविद्याजनित व्यावहारिक सत्य थिक आ' परमार्थ-सत्य प्रज्ञाप्राप्त सत्य थिक[५८]। प्रपञ्चक निरोध शून्यता वा सर्वधर्मनैरात्म्यज्ञानहिसँ भावित अछि।

३१. विज्ञानवादमे चित्ते परमतत्त्व मानल गेल अछि; इएह चित्त मन, विज्ञप्ति, शून्य, निर्वाण, धर्मधातु आदि नामसँ अभिहित अछि[५९]। अविद्या, संस्कार,

५१। ता० बौ० सा० सा०—पृ० ३६
५२। ऐजन पृ० ३७
५३। ऐजन पृ० ४५
५४। ऐजन पृ० ३८
५५। ऐजन पृ० ५०, ५६
५६। ऐजन पृ० ५४–५५
५७। ऐजन पृ० ५४–५५ क आशय
५८। ऐजन पृ० ५५
५९। ता० बौ० सा० सा०— पृ० ५६ तथा ६२

विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति आ' जरामरणदुःख ई बारह अङ्ग भवचक्रक अङ्ग थिक [६०]। रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार आओर विज्ञान ई पाँचो तत्त्व पंचस्कंध थिक, जे शरीरमे विकसित भए कुशल-अकुशल कर्म [ शुभाशुभ ] द्वारा जन्म दिअबैत अछि [६१]। आकाश, प्रतिसंख्यानिरोध, अप्रतिसंख्यानिरोध, अचल, संज्ञावेदनानिरोध तथा तथता ई सभ असंस्कृत [ ककरहु द्वारा संस्कृत नहि भए, सस्वभावहेतुप्रत्ययसँ पर ] पदार्थ थिक। एहिसभमे तथता [ तत्स्वरूपता ] सर्वोत्कृष्ट पदार्थ थिक। 'तथता' दोसर शब्दमे सुखदुःखकल्पनासँ पूर्णतया मुक्त परमसत्ताकेँ कहल जाइत अछि [६२]।

३२. ई तँ भेल विज्ञानवाद [ योगाचार ] क दार्शनिक पक्ष। साधनाक दृष्टि-सँ एहि वादमे योगक सत्ता देल गेल अछि। तेँ तँ दोसर नाम 'योगाचार'। डा० राधाकृष्णन् स्पष्टतः कहने छथि जे योगाचार बौद्ध-सिद्धान्त तथा योगक प्रक्रियाक समन्वय थिक [६३]। किछु व्यक्तिक कहब छन्हि जे असंगक योगाचारभूमिशास्त्रहिसँ उक्त प्रकारक विज्ञानवाद वा योगाचार बहराएल अछि। एहि वर्गक धारणा रखनिहार-सभमे महापण्डित राहुलजीक नाम उल्लेखनीय अछि।

## वज्रयान

३३. जे किछु हो, डा० भट्टाचार्यक अनुसार तँ ई योगाचारो वाद पाछाँ लोककेँ मनलग्गू नहि होइक। बौद्धधर्मकेँ एहू रूपमे जीवित रखबाक हेतु किछु चिन्तकगण एक नवीन सिद्धान्त ओहि दर्शनमे जोड़ि देल, जाहि सिद्धान्तकेँ 'महासुखवाद' कहि सकैत छी। धर्मक पाटि बदलि गेल आ' नवीन सम्प्रदायक नाम पड़ि गेल 'वज्रयान' [६४], आगाँ जाए सरहपाद सन सन किछु स्वतन्त्र चिन्तक एहियानकेँ सहजयानमे परिणत कए देल, जाहिमे वज्रयानक अन्य सभ विषय रहैत एक नव वस्तु सहजसाधनापर जोर अछि। तँ मुख्यतः वज्रयानक प्रसंग आ' सहायकरूपमे सहजयानक प्रसंग अध्ययनमे जे लक्षण-शास्त्र प्रामाणिक मानल जाइत अछि सएह थिक बौद्धतन्त्र। अन्य यानक, यथा कालचक्र-यानक, विचार सेहो ओहिमे भेटैत अछि। किन्तु, विचारणीय अछि वज्रयान।

---

६०। ता० बौ० सा० सा०— पृ० ५६-५७

६१। ऐजन पृ० ५८

६२। ऐजन पृ० ६६

६३। ऐजन पृ० ६७

६४। An Introduction to Buddhist Esoterism—P. 27

३४. वज्रयानक अनुसार अन्तिम तत्त्व; शून्यतत्त्व, 'वज्र' कहल जाइत अछि, जे अच्छेद्य, अभेद्य, अदाही तथा अविनाशी अछि [६५]। वज्र परमसत्ता थिक। वज्रयान-मे वज्रक छूटि भए गेल, प्रसंगभेदसँ वज्रक अर्थ पंचहेति, वेति, अस्त्र, शून्य तथा पुंसेन्द्रिय सेहो भेटैत अछि। आगाँ जाए सहजयानमे तथा सिद्धलोकनिक साहित्यमे मैथुन-तत्त्वक विकास होएबाक कारणेँ, वज्रक इएह लिङ्ग अर्थ व्यापक रूपमे मान्य भए गेल। लिङ्गक हेतु 'वज्र' आ' भगक हेतु 'पद्म' शब्दक प्रचार भए गेल [६६]। आओर एहि अर्थमे वज्र-पद्म क्रमशः करुणा-शून्यता वा उपाय-प्रज्ञाक प्रतीक भए गेल, शब्दतः वज्र-पद्मकेँ आ' अर्थतः लिङ्ग-भगकेँ परमसत्ताद्वय करुणा-शून्यता वा उपाय-प्रज्ञाक प्रतीक बूझि साधना होअए लागल [६७]।

## सहजयान

३५. अस्तु, उक्त रूपक वज्र-पद्मसंयोगसमुद्भूत महासुखपर जोर दैत वज्रयान सहजयानक रूप धारण कएलक, जकरा किछु विद्वद्गण वज्रयानहिमे अन्तर्भूत कए आगाँ बढ़ैत छथि[६८]। सिद्धलोकनिक साहित्यमे प्रयुक्त सिद्धान्तसभक दृष्टिसँ सेहो वज्रयान आओर सहजयानमे विशेष अन्तर नहि, केवल वज्रयानक महासुखकेँ चित्तक सहज प्रवृत्तिसँ सम्बद्ध कएल गेल अछि[६९]। सहजयानक अध्ययनसँ एक दृष्टिकोणमे ईषत् नवीनता भेटैत अछि, वज्रयानमे वज्रकेँ शून्यक प्रतीक बुझल जाइत छल[७०], सहजयानमे पद्मकेँ प्रतीक आ' वज्रकेँ करुणाक प्रतीक बुझल जाए लागल, अर्थ उलटि गेल। अद्वैतक दृष्टिएँ एकरा अन्तर नहि कहि सकैत छी, स्त्री-तत्त्वपर शक्तितत्त्वपर जोर मात्र मानि सकत छी। आगाँ जाए स्पष्ट भए जाएत जे परम-तत्त्वक स्वभावे तँ शक्ति आ' परमतत्त्व तँ शून्यस्वभाव कहबैते छथि, तकर अभिप्राये भेल जे शक्ति शून्याकार छथि।

६५। दृढं सारमसौशीर्यमच्छेद्याभेद्यलक्षणम्।
अदाहि अविनाशी च शून्यता वज्रमुच्यते॥ } — च० वि०—पृ० ८ तथा ता० बौ० सा० सा०—पृ० १२७

६६। ता० बौ० सा० सा०—पृ० १११ तथा A.I.T.B.-P. 106 (प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि-सँ उद्धृत)

६७। A. I. T. B.—P. 90-95

६८। सिद्धसाहित्य—पृ० १४८

६९। A. I. T. B.—P. 69

७०। वज्रक लक्षण (पूर्वनिर्दिष्ट) द्रष्टव्य पाछाँ अनु० ३४

**ग्रन्थ**

३६. बौद्धतन्त्रमे प्रतिपादित वज्रयानी तथा सहजयानी सिद्धान्तसभक आंशिक विचारक, मूलभूत ऐतिहासिक स्वरूपक, पश्चात् आब ओहि ग्रन्थसभक नामोल्लेख कएल जाइत अछि, जाहिमे उक्त रूपक सिद्धान्तसभ भेटैत, जे बौद्धतन्त्रग्रन्थ मानल जाइत अछि तथा जकर अनुसरण कए चर्यागीतसभक व्याख्या होइत आएल अछि। एहि सूचीमे प्रचलित शैवशाक्ततन्त्रसँ भिन्नहि प्रकारक तन्त्रग्रन्थ, नव-नव नामक ( प्रतीत होइत ) तन्त्रग्रन्थ भेटत, जकरा वज्रयानक क्रियातन्त्रयान, चर्यातन्त्रयान, योगतन्त्रयान शाखाक आ' पुनः योगतन्त्रयानक उपशाखा महायोगतन्त्रयान, अतियोगतन्त्रयान तथा अनुत्तरयोगतन्त्रयानक[७१] परिचयमे प्राथमिक मानल जाइत अछि। कहल जाइत अछि जे सिद्धलोकनि अनुत्तरयोगतन्त्रक अनुसार सहजसाधन करैत छलाह[७२], तेँ सिद्धलोकनिक परिचयमे बौद्धतन्त्रकेँ प्रामाणिक मानल गेल अछि। अस्तु, आब प्रमुख बौद्धतन्त्रग्रन्थक एक सूची देखल जाए:—

१। श्रीगुह्यसमाजतन्त्र
२। साधनमाला
३। प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि
४। अद्वयवज्रसंग्रह
५। आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प
६। अचिन्त्याद्वयक्रमोपदेश
७। ज्ञानसिद्धि
८। आदिबुद्धतन्त्र
९। बुद्धकपालतन्त्र
१०। चतुर्देवीपरिपृच्छाव्याख्यातन्त्र
११। डाकिनीवज्रपञ्जर
१२। एकल्लवीरचण्डमहारोषणतन्त्र
१३। गण्डव्यूह
१४। गुह्यसिद्धि
१५। गुह्यवज्रवीरासिनीसाधना
१६। हेरुक-तन्त्र
१७। योगरत्नमाला वा हेवज्रपञ्जिका
१८। हेवज्रतन्त्र
१९। ज्वालावलीवज्रमालातन्त्र
२०। कालचक्रतन्त्र
२१। पञ्चक्रम
२२। प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र
२३। श्रीसम्पुटिका
२४। सेकनिर्णय
२५। महायोगिनीतन्त्रराज
२६। तत्त्वसिद्धि
२७। वज्रडाकतन्त्र
२८। वज्रवाराहीकल्पमहातन्त्र

७१। ता० बौ० सा० सा०—पृ० १०४
७२। ऐजन पृ० १०६

३७. इएह थिक पारमितानय तथा मन्त्रनयक रहस्यक अभिव्यञ्जक बौद्धतन्त्रक-ग्रन्थक एक मोटामोटी सूची। आइ धरि चर्यागीतसभपर विचार एही ग्रन्थसभक आधारपर होइत आएल अछि। किन्तु भारतक, विशेषतः मिथिलाक शैवशाक्ततन्त्र-भूमिमे उक्त प्रकृतिक विचारनामबाला तान्त्रिकग्रन्थावली रुचिकर लागए कोना ?[७३] जँ रुचिकर नहि लागए तँ चर्यागीतसभक अर्थ फरिछाओल कोना जाए ? इएह समस्या अछि।

# समाधानक प्रेरणा आ' क्रम

## प्रेरक सामग्री

३८. उक्त समस्यासँ उद्वेजित भए जखन चारूकात सहायक सामग्री ताकए लगलहुँ, तँ परमपूज्य पितृचरण[७४] सँ पर्याप्त प्रोत्साहन भेटल। अस्वास्थ्यक अवस्थामे ओ वार्ताक्रममे किछु बहुमूल्य शैवशाक्ततन्त्रग्रन्थक नाम लिखाँए देलन्हि, जाहिमे शून्य, सामरस्य, चित्तशोधन, मुद्रासाधन तथा शरीरयोगक प्रसंग विचार-विमर्श आएल अछि। दौर्भाग्यवशात् हुनक शीघ्रे देहान्त भए गेलन्हि; किन्तु, संस्कृत-मैथिलीक गम्भीर अनुसंधानवेत्ता श्री रमानाथबाबूक प्रेरणासँ प्रस्तुते रहलहुँ।

३९. सहायकग्रन्थसभ जखन ताकए लगलहुँ तँ सर्वप्रथम डा० दासगुप्तक कृति[७५] पर ध्यान गेल, जाहिमे ओ बौद्धेतर भारतीय तन्त्रकेँ 'हिन्दूतन्त्र' कहि, ओहि तन्त्रकेँ अवसर-अवसरपर मन पाड़ैत, बौद्धतन्त्रक सिद्धान्तपक्ष वा साधनापक्षपर विचार कएने छथि। जतए कोनो समान सिद्धान्त हिन्दूतन्त्रमे भेटलन्हि, ततए संक्षेपमे ओकर निर्देश मात्र कए देने छथि। किन्तु, कतहु समग्र तुलनात्मक अध्ययन नहि भेटल, विशेषतः प्रमाणक दृष्टिएँ; आंशिक विचार-अनुमान मात्र सूचित भेल। अस्तु, हिनक एहि ग्रन्थसँ ई बूझि पड़ल जे प्रायः ओहो मनहि मन ई धारणा रखैत छथि जे "बौद्धतन्त्र बौद्धहिन्दूतन्त्र, हिन्दूतन्त्र वा शैवतन्त्र थिक, बौद्ध बँगएमे व्यक्त"[७६]।

---

७३। ता० वा० शा० द० (पृ० ४३) सँ एहि धारणाक पुष्टि।

७४। प० क्षेमधारी सिंह, बी०ए०, वेदान्त-विनोद, अनेक संस्कृतक दार्शनिक ग्रन्थक निर्माता।

७५। An Introduction to Tantric Buddhism.

७६। 'Buddhist Tantrism' observed L. de Poussin 'is practically Buddhist Hinduism, Hinduism or Shaivism in Buddhist garb'—Lokāyat P. 325 (उद्धृत)

४०. डा० दासगुप्तक अनुयायी डा० धर्मवीर भारती[७७] तथा श्रीनागेन्द्रनाथ उपाध्याय[७८] सेहो स्थल-स्थलपर ई विषय सूचित कएने छथि। किन्तु, अद्यावधि केओ प्रौढ़ भए हिन्दूतन्त्रहिक दृष्टिएँ चर्यागीत सभकेँ नहि देखने छथि। तेँ हिनका लोकनिक कृति वा धारणाकेँ प्रेरणा मात्र मानल जाए से उचित। समग्र कार्यक भार लेबए पड़ल व्याख्याक प्रसंग।

४१. व्याख्याक प्रसंगमे अनेक तान्त्रिक सिद्धान्त सभक परिचय भेटल, जाहिसँ ई अनुभव भेल जे केओ शोधप्रेमी व्यक्ति एहि दिशामे परिश्रम करितथि जे बौद्धतन्त्र तथा हिन्दूतन्त्रक तुलनात्मक अध्ययनक सङ्ग दूनूक संबन्धक निर्णय भए जाए। किछु सामग्रीक आधारपर आशा करैत छी जे अग्रिम कृतिमे एहि व्यापक समस्याक समाधान कएल जाएत, जाहि हेतु क्लिष्ट[७९] बौद्धतन्त्र तथा भारतीयतन्त्रक विभिन्न आम्नायक साङ्गोपाङ्ग अध्ययन अपेक्षित होएत, संग संग मूर्धन्य तन्त्रमर्मज्ञ व्यक्तिसभक सहयोग प्रयोजनीय।

४२. तेँ तत्काल ओहि व्यापक समस्याकेँ छोड़ि प्राप्त समस्यहिक समाधानमे तत्पर होइत छी, एहि धारणासँ जे उक्त दूनू तन्त्रक मध्य समानता वा व्याप्य-व्यापकताभाव जे रहए से रहए, एहिमे कोनो संदेह नहि जे बौद्धतन्त्रक अनेक विषय कोनहु ने कोनहु भाषामे हिन्दूतन्त्रहुमे भेटितहिँ अछि। तखन ओही दृष्टिएँ सिद्धक प्रतीकात्मक साहित्यक लक्ष्यार्थ वा व्यङ्ग्यार्थक अनुसंधान किएक नहि हो?

## ग्रन्थविन्यास

४३. स्वतः एहि पुस्तकमे मुख्य अंश पोथीक मध्यभाग चर्यागीतक तान्त्रिक व्याख्याकेँ मानल गेल अछि। प्रत्येक गीतक नीचामे ओकर व्याख्या देल अछि। व्याख्याक क्रममे शैवशाक्ततन्त्रक प्रवाहमे बहि कोनो असंगत अर्थ नहि लगाए ली, तेँ आद्योपान्त मुनिदत्तक संस्कृतटीकाक मर्मपर ध्यान दैत तत्समाने वा तत्सूचके तान्त्रिक अर्थ ताकल अछि।

---

७७। 'सिद्धसाहित्य'मे

७८। 'तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य'मे

७९। "किन्तु आलोच्य विषय इतना जटिल एवं विशाल है, कि छोटे कलेवर में सभी आवश्यक बातों का संनिवेश करना सम्भव नहीं है।"

—'ता० बौद्धसाधना' निबन्ध

—भा० सं० सा० (१) पृ० ५४६–५४७

४४. किएक ओहन अर्थ बहराएल ? ओकर प्रमाण की ? एहि प्रश्नक समाधान युगपदे वा अभ्युतोत्तरे कएलासँ प्रामाणिकता अवश्य दृष्टिगोचर होइत, किन्तु साहित्यक रूप किछु बहबाणि सन प्रतीत होइत, युगक दृष्टिएँ। तेँ स्वतन्त्रे एहि भूमिकहिमे, प्रमाणभूत सिद्धान्तसभक विवेचना कएल गेल अछि, बौद्धलक्षणक उल्लेख करैत तत्समान हिन्दू-तन्त्रक सिद्धान्तकेँ प्रतिपादित कएल गेल अछि।

४५. तथापि गीतसभक मार्मिक तथा पारिभाषिक शब्दावलीक अवहेलना नहि भए जाए, तेँ पोथीक अन्तमे एक शब्दानुक्रमणिका जोड़ि देल गेल अछि, ताहिसँ इहो सूचित भए जाएत जे अमुक शब्द अमुक गीतमे प्रयुक्त भेल अछि, ओकर अमुक अर्थ 'बौद्ध दृष्टिएँ आ' अमुक अर्थ हिन्दू दृष्टिएँ होएत। भूमिकामे ओ शब्द कतए विचारल गेल अछि, तकरो यथास्थल सूचित कए देल गेल अछि अनुच्छेदक संकेतसँ।

४६. आब किछु गीतक प्रसङ्ग। अध्ययनक आधार रहल म० म० शास्त्री तथा डा० बागचीक चर्यागीतक संस्करण। दूनूमे कतहु कतहु उल्लेखनीय पंक्ति-पाठभेद भेटल, ततए दूनूमे जे अधिक मर्मस्पर्शी भेल, तकरे राखल गेल। जतए किछु सूचित नहि कएल गेल अछि, ततए म०म० शास्त्रीक 'चर्यापदगुलिर पाठ-संस्कार ओ व्याख्या' क [हुनक पोथीक दोसर भागक] पाठ बुझबाक थिक, जतए ओहिसँ ईषदो अन्तर भेटत, ततए पादटिप्पणी द्रष्टव्य। गीतसभकेँ कविक्रमेण ओरिआओल गेल अछि, एक कविक सभ रचनाकेँ एक लगातारे राखि आओर तकर अपन क्रमसंख्या गीतकँ ऊपरमे दए। चर्यागीतक उक्त दूनू संस्करणमे गीतक क्रमसंख्या कविक दृष्टिएँ नहि अछि, स्वतन्त्रहि ढंगक अछि, तेँ कोष्ठमे ओ संख्या दए देल गेल अछि जे ओहि दूनू पोथीमे गीतविशेषक क्रम-संख्या अछि। कोष्ठमे देल संख्या देखि उक्त संस्करणद्वयमे ओ भेटि जाएत।

४७. प्रत्येक गीतकँ नीचामे ओकर मैथिली-छाया प्राप्त होएत। ओहि मैथिलीक रूप सामान्यतः आधुनिक नहि रहि विद्यापतिक समकालीन अछि, तकर उद्देश्य अछि चर्यागीतक भाषासंबन्धी शोधमे सहायताप्रदान करब। तेँ गीतक मूल भाषाक निकटतम मैथिलीरूपसे छायानुवाद कएल गेल अछि। शब्दरूप, धातुरूप, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रियाविशेषण जेना विद्यापतिक भाषामे भेटैत अछि, ताहिसँ ईषत् प्राचीनरूपमे चर्यागीतक भाषामे भेटैत अछि, से प्रायः ओहि छायानुवादसँ स्पष्ट भए जाएत। छायानुवादक क्रममे इहो देखल गेल अछि जे मूल छन्दसँ अधिक अन्तर नहि हो, ओहि छन्दसभमे आब गीतसभ गाओल नहि जाइत अछि, से देखि

मूल गीतक छन्दक निर्देश नहि कएल गेल अछि, उक्त दूनू संस्करणमे भेटिए जाएत। गीतक व्याख्याभागमे उक्त रूपसँ बढ़ि, तकर पश्चात् एहि पुस्तकमे स्वतन्त्रे एक समीक्षाक परिच्छेद जोड़ल अछि।

## पोथीक नाम

४८. प्रस्तुत पुस्तकक नाममे 'तान्त्रिक' शब्दक प्रयोग अछि। तन्त्रक ऐतिहासिक परम्परासँ परिचित व्यक्तिकेँ एहि शब्दसँ बौद्धतन्त्रहुक संकेत भेटन्हि, से सम्भव। किन्तु, सामान्यतया 'तान्त्रिक' पदेँ पूर्वकथित हिन्दूतन्त्रे लक्षित होइत आएल अछि, प्रत्युत प्रचलित विधानसभक दृष्टिएँ शैवशाक्ततन्त्रे लक्षित होइत आएल अछि, बौद्ध, पाञ्चरात्र, सौर वा गाणपत्य नहि। आगाँ पाठककेँ एहि शैवशाक्ततन्त्रक सिद्धान्त गीतसभमे भेटि जएतन्हि, ताही विषयकेँ सूचित करबाक हेतु 'तान्त्रिक' शब्द देल अछि।

४९. 'चर्यागीत' शब्द नहि दए 'बौद्धगान' शब्द देल अछि। तकर उद्देश्य अछि पाठकक कुतूहल बढ़ाएब, जिज्ञासा बढ़ाएब। तथाकथित बौद्धहु गीतमे तान्त्रिक सिद्धान्त भरल अछि, ई विषय सामान्यतया विस्मय जगाए दिअए से सम्भव; कारण, एहिसभ प्रान्तमे बौद्धकेँ तान्त्रिक दृष्टिएँ नहि देखल जाइत अछि। दोसर, 'बौद्धगान' शब्दक प्रयोग तँ म० म० शास्त्रिओजी कएनहि छथि।

# शैवशाक्ततन्त्रक सामान्यपरिचय

५०. जेना पूर्व कहल, एहि भूमिकामे चित्त, बोधिचित्त, शून्य-करुणा वा प्रज्ञा-उपाय, महासुख वा सहज आनन्द तथा ओहि आनन्दक साधनभूत चित्तशोधन, चक्र-नाड़ीसाधन, मन्त्रसाधन आओर महामुद्रासाधन—एहि बौद्ध पारिभाषिक शब्द, तत्त्व वा सिद्धान्तक पर्यायरूप हिन्दू शब्द, तत्त्व वा सिद्धान्तक विवेचना होएत। विवेचनाक आधार समग्र तन्त्रकेँ मानलासँ ग्रन्थक परिधिक अनावश्यक विस्तार भए जाइत; उक्त सभ विषय तथाकथित शैवहि तन्त्रमे वा शाक्तहि तन्त्रमे भेटैत अछि। तेँ अन्य तन्त्र छोड़ि एही दूनूक आश्रय धएल।

५१. शैवशाक्ततन्त्रमे परस्पर अन्तरक रेखा ततेक सूक्ष्म अछि जे प्राचीनहि समयसँ दूनूकेँ अभिन्ने बुझल जाइत अछि, जे म० म० कविराजजीक उक्तिसँ समर्थित होइत अछि। ओ ई देखओने छथि जे अनेक तथाकथित शैव आगममे तथाकथित

शाक्तआगमहुक प्रसङ्ग आएल अछि तथा तहिना एहिमे ओकर [८०]। तथा ई देखओने छथि जे शाक्ततन्त्रक प्रसिद्ध सम्प्रदाय त्रिपुरासम्प्रदायमे प्रसिद्ध तान्त्रिक दर्शन प्रत्यभिज्ञामतक सङ्ग घनिष्ठता भेटैत अछि, जे दर्शन निस्सन्देह शैवागमसमुद्भूतमत अछि [८१]।

५२. तँ एहि शिवोक्त आगमसँ ख्यातनामा बौद्ध आचार्य असङ्ग, नागार्जुन आदि सेहो प्रभावित भेलाह [८२]। समस्त हिन्दूतन्त्रक तँ गप्पे कोन, जे शैवशाक्तहु तन्त्रग्रन्थक संख्या कम नहि। 'तन्त्रतत्त्व'क अंग्रेजी अनुवादक भूमिकामे स्वनामधन्य उडरफसाहेब विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता तथा अश्वक्रान्ताक भौगोलिक परिधि देखाए, तीनू क्रान्ताकें मिलाए १९२ गोट ग्रन्थक नामोल्लेख कएने छथि, प्रत्येक क्रान्तामे ६४ तन्त्रग्रन्थक नाम अछि। तकर अतिरिक्त महनिर्वाणतन्त्र, मायातन्त्र, योगिनीतन्त्र, कालीतन्त्र, मुण्डमालातन्त्र, शाक्तक्रमणतन्त्र, कुब्जिकातन्त्र, विश्वसारतन्त्र, पुरश्चरणरसोल्लास, गन्धर्वतन्त्र, कुलार्णव आदिक संस्करणपर जोर देने छथि। मूल ग्रन्थक अतिरिक्त किछु संकलनरूप ग्रन्थ प्राप्त अछि; यथा प्राणतोषिणी, तन्त्रसार, शारदातिलक, पुरश्चर्यार्णवादि [८३]।

५३. एतेक विशाल ग्रन्थसमूह उपलब्ध हौएब कठिन; दोसर, ओहिसभमे डुबब कठिन, तखन तँ जे किछु ग्रन्थ प्राप्त भए सकल, मूल, संकलन वा टीकारूपमे, ताहीमे उपर्युक्त विषयसभ ताकल। अस्तु ओहिसभ ग्रन्थक आधारपर सामान्यतया ई कहि सकैत छी जे तन्त्रक दार्शनिक विवेचनमे सहायक भेल काश्मीरीय शैवमतक प्रचारक प्रत्यभिज्ञाशास्त्रक तथा स्पन्दशास्त्रक पोथीसभ, शैवागमशास्त्रक प्रसिद्ध ग्रन्थ शिवसूत्र [८४] (वृत्ति, वार्त्तिक तथा विमर्शिनीटीकाक सङ्ग) तथा त्रिपुरासम्प्रदायक त्रिपुरारहस्य, ललितासहस्रनाम, नित्याषोड़शिकार्णव, कामकलाविलास, वरिवस्यारहस्य आदि किछु शाक्ततन्त्रग्रन्थ। शक्तिसङ्गम, मेरुतन्त्र, कुलार्णव, महानिर्वाणतन्त्र, मायातन्त्र, मुण्डमालातन्त्र, तथा पुरश्चरणरसोल्लास आदि मूल शाक्ततन्त्र-

---

८०। भा० सं० सा० (१) 'काश्मीरीय शैवदर्शन'—पृ० १६

८१। ऐंजन (ऐजन) ऐजन —पृ० १२

८२। ऐजन (ऐजन) ऐजन पृ० ३ तथा
ऐजन (ऐजन) 'तान्त्रिक बौद्धसाधना' पृ० ५२८

८३। Principles of Tantra—P. 58—60

८४। Kashmir Shaivaism Part I—P. 8

ग्रन्थमे शक्तिसाधन, षटचक्रसाधनादिक रहस्य प्राप्त भेल। उपासनाक्रमादिक सूचनामे संकलित पुस्तक प्राणतोषिणी, पुरश्चर्याणंव, तन्त्रसार, शारदातिलक आदि अनेक ग्रन्थ भेटल, जकर सूची आगाँ पोथीक अन्तमे जोड़ल जाएत। जाहि प्रकारक पोथीसभक संकेत भेल अछि, तकर गणना शैव तथा शाक्ततन्त्रहिमे होइत आएल अछि, विषयक दृष्टिएँ।

५४. आधाररूपमे संस्कृतहिक ग्रन्थकेँ सत्ता देल गेल, किन्तु अपन अपन दृष्टिकोणक हेतु सर जान उडरफमहाशय, अरविन्द, गणपतिशास्त्री, देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय, श्रीचिन्ताहरण चक्रवर्त्ती आदिक ग्रन्थ कम उपादेय प्रतीत नहि भेल।

५५. एहिसभ ग्रन्थमे तन्त्रक लक्षण, आम्नाय, षट्त्रिंशत् तत्त्व, वाक्-मातृका, नाद-बिन्दु आदिक दार्शनिक सिद्धान्त, विभिन्न उपासना-क्रम, योगक अनेक साधना तथा देवी-देवताक निरूपणक प्रसङ्ग विचार भेटल। सभ शीर्षकक स्वतन्त्र विचार प्रयोजनीय नहि बूझि, जेना कहल गेल अछि, केवल गीतसभक द्वारा आएल बौद्धतन्त्रक पारिभाषिक शब्द वा सिद्धान्तक सङ्ग बढ़ैत तदुपयुक्त आ' तत्समान विषयमात्रक उपपादन कएल जाइत अछि, जाहिमे यथासाध्य निर्दिष्ट ग्रन्थसभक प्रमाण देबाक प्रयास भेल अछि। एक विषय, जतए एके वस्तु अनेक ग्रन्थमे भेटल ततए सभ स्थलक उल्लेख नहि कए, किछु गनलगूथल ग्रन्थमात्रक प्रमाण प्रस्तुत कएल अछि।

# बौद्धगानमे तान्त्रिक सिद्धान्त

५६. उक्त शैवशाक्ततन्त्रक सिद्धान्त कोना चर्यागीत वा बौद्धगान ( गीत ) मे भेटैत अछि, ताहिसँ पूर्व प्रत्येक शीर्षकमे आगाँ बौद्धतन्त्रक सिद्धान्तविशेषक उल्लेख कएल जाएत, जे गीतसभमे, सभ मिलाए, आएल अछि। सभ गीतमे एक सिद्धान्त भेटबे करए, से आवश्यक नहि, किन्तु निम्नोक्त किछु तत्त्व एहन अछि जे वाच्य वा व्यङ्ग्यरूपमे कतहु ने कतहु भेटबे करत।

५७. ओ तत्त्वसभ अछि अनुत्तर, बोधिचित्त, शून्यकरुणाक सामरस्य, महासुख वा निर्वाण तथा एहि निर्वाणक साधनभूत अछि विकल्पक्षय द्वारा चित्तशोधन, शरीरस्थ नाड़ी-चक्र-साधन तथा महामुद्राक प्रतिरूप मानि नारी-साधन। आनुषङ्गिक रूपसँ गुरु, ज्ञान, समाधि, ध्यान, धर्म-अर्थ, तन्त्रक मार्ग, मन्त्रबल, माला तथा देव-

हुक चर्चा आएल अछि। आब ई देखल जाए जे एहिसभ तत्त्वक तथा साधनाक लक्षण कोना कएल गेल अछि तथा ओ लक्षण हिन्दूतन्त्रक कोनहु तत्त्वमे तथा साधनामे घटैत अछि वा नहि। जँ घटत अछि, तँ कोना ?

## तत्त्व

### अनुत्तरतत्त्व

५८. परिणाममे बौद्धतन्त्री अद्वैतवादी छल। काश्मीरी शैवदर्शनमे भूमिकामे म० म० कविराजजी अद्वैतवादीक प्रकारभेद देखबैत बौद्धक शून्याद्वैतक परिचय प्रस्तुत कएने छथि; ततबे नहि, हुनक अनुसार बहुतोक विश्वास अछि जे स्वयं शङ्कराचार्य अपन ब्रह्माद्वैतवादक हेतु विज्ञानाद्वैत वा शून्याद्वैतक प्रति ऋणी छलाह।[८५] आगाँ विचारविमर्शसँ स्पष्ट भए जाएत जे सम्पर्कित वज्रयान कतिपय अंशमे पूर्ववर्त्ती शून्यवादसँ वैमत्य रखितहुँ, शून्यकेँ परमतत्त्व मानितहिँ छल। अधिकसँ अधिक एतबे जे पूर्वक शून्यता-लक्षण परमसत्ताक निषेधपरक लक्षण छल, वज्रयानमे शून्यक लक्षण विधिपरक भेल[८६], शून्यक स्थानमे 'वज्र' शब्दक आविष्कार भेल[८७] आ' वज्रसत्त्वकेँ परमसत्त्व मानि लेल गेल।

५९. फलतः एकर प्रश्न नहि उठैत अछि जे बौद्धतन्त्र परिणाममे शून्यवादी नहि छल, केवल साधना-पद्धतिक दृष्टिएँ शून्यकेँ शक्तिरूपमे देखल जाए लागल वा कतहु कतहु परमशिवहुक रूपमे देखल जाए लागल, जे आगाँ बोधिचित्तक विचारसँ स्पष्ट भए जाएत। शून्यकेँ व्यापकरूपमे देखल जाए वा व्याप्यरूपमे देखल जाए, शून्यक लक्षण, सत्ताभावना पूर्ववर्त्ती शून्यवादहिसँ लेल गेल छल, जकरा शून्याद्वैत कहबामे कोनो तारतम्य नहि।

६०. अस्तु, एहि अद्वैतभावनाक परिचय चर्यागीतहुसँ भेटैत अछि। सिद्धलोकनिक गीतमे 'अनुत्तर' 'सकलानुत्तर', 'अद्वय', 'एकाकार' तथा 'अचिन्त्य' शब्द भेटैत अछि [८८]। ततबे नहि, 'मोह-विमुक्त', 'निर्वाण', 'अजरामर' एहन एहन मुक्तिक

---

८५। भा० सं० सा० [ खण्ड १ ]—पृ० २।
८६। ता० बौ० सा० सा०—पृ० ५४ तथा
सिद्धसाहित्य —पृ० १४४
८७। ऐजन ऐजन
८८। आगाँ गीत तथा अनुक्रमणिका द्रष्टव्य।

पर्यायवाचो शब्दसभ आएल अछि वा जीव-मुक्तिक उल्लेख भेल अछि, ताहिसँ ई सूचित होइत अछि जे परिणाममे सिद्धक उद्देश्य छल अनुत्तररूप भए जाएब, अद्वयरूप भए जाएब; कारण, मुक्ति द्वैतक सङ्ग सम्भव नहि, एक निराकार परमतत्त्वमे लीन भए जाएब, सएह तँ मुक्ति थोक। एवम्प्रकारेँ साक्षात् वा परम्परया अद्वैतभावना निखरि उठल अछि सिद्धक गीतावलीमे।

६१. ओहि अनुत्तरतत्त्वकेँ कोना बोधिचित्तरूपमे वा शून्य-करुणाक सामरस्यमय परमसत्यरूपजे देखैत छलाह, ताहि प्रसङ्ग विचार आगाँ बोधिचित्त, सामरस्य तथा महासुखक प्रकरणमे सविस्तर कएल जाएत। तत्काल ई देखाओल जाइत अछि जे 'अनुत्तर' शब्दक ओही अर्थमे उल्लेख हिन्दुअहु तन्त्रमे, विशेषत: शैवतान्त्रिक दर्शनमे, भेल अछि।

६२. षट्त्रिंशत्तत्त्वसंदोहक पहिले श्लोक देखल जाए जकर आशय अछि—"जखन ओ अनुत्तरमूर्त्ति अपन इच्छासँ एहि अखिलविश्वक सृष्टि करबाक हेतु स्पन्दित भेलाह, तँ ओ प्रथम स्पन्द 'शिवतत्त्व' कहल जाए लागल तत्त्वज्ञ व्यक्ति द्वारा [८९]।"

६३. इएह अनुत्तर परमधाम दोसर शब्दमे 'परमशिव'[९०] वा 'अकुल' कहल जाइत छथि [९१]। ओ अनुत्तर तत्त्व शैवशाक्ततन्त्रेँ परब्रह्मस्वरूपी निष्कल शिव, सर्वज्ञ, सर्वकर्त्ता, सर्वेश, निर्मल अद्वय, स्वयंज्योति: [ प्रकाश ], अनाद्यन्त, निर्विकार परात्पर, निर्गुण तथा सच्चिदानन्द मानल जाइत छथि तथा हुनके अंश थिक जीवसभ। [९२] ओ परम तत्त्व अचिन्त्य छथि, अवाङ्मनसगोचर छथि, स्वत: अलक्ष्य-लक्षण छथि। एहि परमतत्त्वक प्रकाशक अंशकेँ वाक्जगतमे 'शिव' कहल जाइत अछि तथा विमर्श [अहन्तापरामर्श]केँ वा चित्, इच्छा, क्रिया, ज्ञान तथा आनन्दांशकेँ क्रमश: चिच्छक्ति आदि। [ द्र० – Kashmir Shaivaism. ( P.43-45 )]

---

८९। यदयमनुत्तरमूर्त्ति—
निजेच्छयाऽखिलमिदं जगत्स्रष्टुम्।
पस्पन्दे स स्पन्दः
प्रथमः शिवतत्त्वमुच्यते तज्ज्ञैः॥ १॥ —ष० त्रिं० त० सं०

९०। Kashmir Shaivaism—P. 44

९१। अनुत्तरं परं धाम तदेवाकुलमुच्यते॥
—तन्त्रालोक तृ० आ० १४३ श्लो० सँ उद्धृत—म० मा० र०—पृ० १६०

९२। कुलार्णव—उल्लास १ श्लोक ७-८।

६४. चर्यागीतमे 'अनुत्तर धाम' शब्दे प्रयुक्त भेल अछि। आगाँ सम्पर्कित गीतक अर्थहुमे उक्त तान्त्रिक अर्थ बैसिए जाएत आ' ई स्पष्ट भए जाएत जे वेदान्तक ब्रह्म जकाँ तथा शैवदर्शनक परमशिव जकाँ ओ अनुत्तरतत्त्व वाक्पथातीत छथि।

६५. ताहि अवस्थामे वाच्यरूपताक प्रश्ने की? तथापि आगाँ जे विश्लेषण कएल जाएत, ताहिसँ ई स्पष्ट भए जाएत जे सिद्धक अनुत्तरतत्त्व परमशिवे छलाह, भने आ शून्य-करुणाक अभिन्न बोधिचित्त कहबथि।

६६. अस्तु जे किछु हो, प्रस्तुत प्रकरणमे एतबे देखाएब उद्देश्य छल जे जाहि अनुत्तरधामकेँ सिद्धलोकनि परमतत्त्व मानैत छलाह से परम तत्त्व शैवहु दर्शनमे मानल गेल अछि, अपिच तकर उल्लेख शब्दतः भेटैत अछि।

## बोधिचित्त

६७. ऊपर संकेत मात्र देल गेल अछि जे चर्यागीतमे अनुत्तरधामक जे चर्चा भेल अछि से परमशिवक अर्थमे। ई विषय स्पष्ट भए जाएत जखन बौद्धतन्त्रक अनुत्तर-तत्त्वे बोधिचित्तक लक्षण देखल जाएत तथा शैवतन्त्रक परमशिवक लक्षणक सङ्ग ओकरा मिलाओल जाएत। चर्यागीतमे 'बोधि'क चर्चा अछि। अस्तु।

६८. बोधिचित्त की थिक? श्रीगुह्यसमाजतन्त्रमे एकर संक्षिप्त लक्षण भेटैत अछि—

"अनादि, अनन्त, शान्त, भावाभावक्षय, शून्याताकरुणाभिन्न विभु बोधिचित्त मानल जाइत छथि।" ९३

६९. एहि लक्षणमे परमतत्त्व वा परमात्माक सभ लक्षण, देखैत देरी, सचित भए जाएत, केवल 'शून्यता-करुणाभिन्न' किछु, व्याख्येय प्रतीत होइत अछि। तेँ शून्यता तथा करुणाक लक्षण देखल जाए।

## शून्यता

७०. बौद्धतन्त्र तथा ताहिपर आधारित वज्रयानी वा सहजयानी साहित्यमे शून्यताके दुइ दृष्टिएँ देखल गेल अछि—(१) व्यापक दृष्टिएँ, तथा (२) प्रज्ञा

---

९३। अनादिनिधनं शान्तं भावाभावात्क्षयं विभुम्।
शून्यताकरुणाभिन्नं बोधिचित्तमिति स्मृतम्॥
—श्रीगुह्यसमाजतन्त्र पृ० १२४

(शक्ति)क दृष्टिएँ। यद्यपि चरमदशामे अद्वैतक ९४ दशामे, शून्यता दूनू दृष्टिकोणसँ एके तत्त्व भए जाइत अछि, साधनाक व्यवहारदशामे किछु अन्तर परिलक्षित होएत, तेँ दूनू दृष्टिकोणसँ क्रमशः विचार कएल जाइत अछि।

७१. (१) व्यापक दृष्टिकोण

श्री गुह्यसमाजतन्त्रमे, जाहि शून्यताकेँ मुख्यतया (साधनाक हेतु) उक्त दोसरहि दृष्टिएँ देखल गेल अछि, ताहू शन्यताकेँ धर्म-नैरात्म्यरूप मानल गेल, ९५ तकर अभिप्राय अछि तान्त्रिकहु युगमे, वज्रयानहुक समयमे, शून्यताकेँ अनिर्वचनीय तथा अनिर्णेय परम तत्त्व मानल जाइत छल।

७२. ई कहब जे अमुक वस्तु सत् अछि वा असत् अछि वा किछु नहि अछि अथवा दूनू अछि बुद्धिविरुद्ध आ' अनर्गल थिक। शून्यता एहि वस्तुसभक अनिर्णेय आओर अनिर्वचनीय स्वभावक नाम थिक। वस्तुसभ सत्तात्मक प्रतीत होइत अछि; किन्तु, जखन ओकर स्वतन्त्र रूप वा स्वभाव (वास्तविक रूप) चिन्हए लगैत छी तँ हमर बुद्धिए भ्रमित भए जाइत अछि आ' हम ने ओकरा सत् कहि पबैत छी, ने असत्, ने दूनू आ' नेँ दूनूमे कोनो नहि, से।९६

७३. एहन दृष्टिकोण किएक ? कारण अछि व्यावहारिक। जतेक व्यावहारिक सत्य अछि से अविद्याजनित अछि, संवृतिसत्य मात्र अछि। परमार्थसत्यक ज्ञान कोना हो ? एहि प्रयास दिशि गेलाउँ अनायास निषेधात्मक रीतिकेँ, 'नेति-नेति' शैलीकेँ अङेजए पड़त आ' ताहि स्थितिमें समस्त संवृतिसत्यक निषेध द्वारा शून्य जकाँ परमार्थक साक्षात्कारक आस्वाद मात्र प्राप्त होएत (संवृतिसत्यक सङ्ग संवृति-बोधिचित्त तुलनीय)।

७४ चिन्तकगणक धारणा अछि जे उक्तरूपक शून्यता-लक्षणकेँ परमतत्त्वक स्वीकारे बुझबाक थिक। परमार्थसत्यकेँ देखबाक हेतु ई शन्यवाद निषेधात्मक रीति चलओलक। अस्तु, एहि प्रकारक शून्यधारणाक उल्लेख शैवशाक्तहु तन्त्र-दर्शनमे भेटैत अछि—

क। शून्यरूपताक तात्पर्य 'न स्फुटवेद्यरूपता' ९७ थिक, 'संस्कारशेषीकृतज्ञेयरूपा

९४। द्रष्टव्य शून्याद्वैतसिद्धान्त—भा० सं० सा० (१)—पृ० २ (काश्मीरीय शैवदर्शन)
९५। A. I. T. B.—P. 89 f. n.
९६। ता० बौ० सा० सा०—पृ० ५४-५५
९७। ई० प्र० वि० ३-२ (१३-१४ का० वृत्ति) पृ० २३४ पा० टि०

अवस्था शून्य', एना कहल जाइत अछि [९८]।

ख। शून्यक आकार माया थिक [९९]।

ग। ओ स्वरूपशून्य ध्यान समाधि थिक [१००]।

घ। अ-हकार शिवशक्ति परस्पराश्लिष्ट भए [ दूनू ] शून्याकार छथि [१०१]।

७५. एहन एहन प्रमाणसँ ई सिद्ध अछि जे जतए परमपद वा परमार्थकेँ सामान्यतः शून्यरूपमे देखल गेल अछि, ततए शैवशाक्ततन्त्रक सहमति प्राप्त अछि। तेँ बौद्ध तान्त्रिक सिद्धलोकनि अपन साहित्यमे शून्यकेँ एहू व्यापक दृष्टिएँ देखलन्हि, प्रत्युत शून्य, अतिशून्य, महाशून्य तथा सर्वशून्य, एहि चतुर्विध-शून्य-परिकल्पनासँ तँ आओर एहि दृष्टिकोणक समर्थन होइत अछि, जाहिमे प्रथम शून्यकेँ प्रज्ञा [ शक्ति ] मानलन्हि अछि आ' पुनः दोसर शून्य [ अतिशून्य ] केँ उपाय [१०२], शिवक आभास, प्रकाशाभास, तेसरकेँ युगनद्ध [ शिवशक्ति ] सँ समुदित तथा चारिमकेँ अद्वैत [ आलोकाभास ] [ परमशिव ] मानलन्हि अछि, एहि प्रकारेँ चारू श्रेणीक निर्देश अछि। एकर अर्थ भेल जे स्त्री-पुरुष दूनू सत्ताकेँ चरम दशामे शून्याकार मानल गेल।

७६. (२) प्रज्ञाक दृष्टिकोण

किन्तु, आबाँ जाए सामान्यतया शक्तिवाद आबि गेल आ' 'अद्वयवज्रसंग्रह' स्पष्टतः प्रज्ञापायविचारक्रमेण घोषित करैत अछि—

"शक्ति सर्व्वारोपविनाशिनी शून्यतादृष्टि थिक" [१०३]। एकर तात्पर्य अछि जे शून्यता-ज्ञाने दोसर शब्दमे 'प्रज्ञा' कहल जाएत वा ज्ञानज्ञेयकेँ एकरूप मानि [ जेना चैतन्यक प्रयोग चैतन्यवानक हेतु होइत अछि ] शून्यते 'प्रज्ञा' कहल जाएत।

---

९८। ई० प्र० वि० ३-२७ ( १३-१४ का० वृत्ति ) पृ० २३१

९९। The Serpent Power. Intro. उद्धृत P. 24-'शून्यस्य आकार इति माया'

१००। कुलार्णव—उ० ६ श्लो० ६

१०१। वरिवस्यारहस्य - श्लोक ६६ ( द्वितीयांशमे )—

अहकारौ शिवशक्ती शून्याकारौ परस्पराश्लिष्टौ।
स्फुरणप्रकाशरूपावुपनिषदुक्तं परं ब्रह्म॥

१०२। A. I. T. B.—P 43-44

१०३। शक्तिस्तु शून्यतादृष्टिः सर्व्वारोपविनाशिनी॥

—अ० व० सं० से—ता० बौ० सा० पृ० १४० पा० टि०

७७ शून्यतादृष्टि, आलोक तथा प्रज्ञा[१०४] शब्दसभसँ काश्मीरी शैवमतक विमर्शशक्ति मन पड़ैत अछि। तान्त्रिकदर्शनक उद्देश्य अछि परमशिवक शक्त्यंश, पूर्णाहन्ता-परामर्शांश वा विमर्शांशक आविष्करण। एही दृष्टिएँ 'प्रत्यभिज्ञाशास्त्र' कहल गेल।

७८. विमर्श की थिक ? "विश्वाकार द्वारा, विश्वप्रकाशद्वारा विश्वसंहरण द्वारा 'अकृत्रिम हम छी' एहन विस्फुरण विमर्श थिक। इएह विमर्श चित्त, चैतन्य, स्वरसोदिता परा वाक्, स्वातन्त्र्य, परमात्माक मुख्य ऐश्वर्य, कर्त्तृत्व, स्फुरत्ता, सार, हृदय, स्पन्द इत्यादि शब्दसँ आगमसभमे उद्घोषित होइत अछि"[१०५]।

७९. एही चिच्छक्तिकेँ विमर्शशक्तिकेँ, 'अद्वयवज्रसंग्रह'मे 'प्रज्ञा' वा 'शक्ति' शब्दें लक्षित कएने छथि। प्रज्ञाक शब्दतः अर्थोतँ तेहने अछि, विस्फुरणे। प्रज्ञा आगाँ जाए उपायरूप पुंतत्त्वक सङ्ग संयुक्त भए महासुख दैत अछि, दोसर शब्दमे, शून्यता-करुणाक अभिन्नता[१०६] महासुख छी। महासुखपर आगाँ प्रकाश देल जाएत। निष्कर्ष एतबे जे बौद्धसाहित्यमे शून्यक दूनू स्वरूप भेटत— (१) कतहु व्यापकरूपमे चरमपद मात्रक हेतु शून्यक प्रयोग होएत वा स्फुटरूपमे (जेना चतुर्विध शून्यमे) उपायहुक हेतु (पुरुषहुक हेतु) शून्यक प्रयोग होएत आ' (२) कतहु शून्यकेँ प्रज्ञारूपमे कल्पित कएल जाएत, ततबे नहि, ओकरा शक्ति मानि, उपायभूत वा करुणाभूत शिवक अभिन्न मानि, भाव-योजना वा ओकर अभिव्यञ्जना कएल जाएत। एहि अर्थमे 'नरात्मा' शब्दक प्रयोग सेहो देखैत छी (गीतसभक पश्चात् समीक्षा द्रष्टव्य]।

८०. तँ प्रस्तुत प्रकरणमे शून्यताकेँ उक्त दोसरहि रूपमे, शक्तिरूपमे देखल गेल अछि। शक्तिकेँ विमर्शक सत्ता दए शून्यताकेँ प्रज्ञारूप (विमर्शरूप) मानि ओकर संयोग करुणा-तत्त्वक सङ्ग देखाओल गेल अछि आब दोसर तत्त्व करुणाक विचार कएल जाए। तत्काल एक विषय देखल जाए जे शाक्ततन्त्रमे उक्त दृष्टिएँ 'गगनम्मद्धृदयम्' सन सन प्रयोग भेटैत अछि [ तारोपनिषद्— शाक्तप्रमोद पृ० १३७ ] जाहिसँ गगन वा शून्यताकेँ 'शक्ति' कहि सकैत छी।

---

१०४। शून्यप्रज्ञा आलोक इति यावत्। – A. I. T. B —f. n. P. 43

१०५। पराप्रवेशिका—पृ० १-२

१०६। A. I. T. B.—P. 90. 137

### करुणा

८१. मूलतः यद्यपि करुणापर जोर देब बुद्धक अनुदान छल, किन्तु अद्वयवज्रसंग्रहहिसँ स्पष्ट भए जाएत जे पाछाँ जाए करुणाकेँ उपाय, ततबे नहि, ओहि उपायकेँ साक्षात् शिव, मानि लेल गेल। शून्यता-करुणा वा प्रज्ञा-उपायकेँ लक्षित कए कहल गेल अछि—

'शिवशक्तिसमायोगसँ सत्सुख परमाद्वय'[१०७]।

८२. एहिठाम शैवागमक शिवशक्तिक अभेद मन पड़ि जाइत अछि, जाहि प्रसङ्ग सामरस्यक क्रममे नीक जकाँ विचार कएल जाएत।

८३. तत्काल शिवशक्तिसमायोगसँ ई नीक जकाँ मानि सकैत छी जे जेना शून्यता वा प्रज्ञाकेँ पूर्व शक्ति मानैल गेल अछि, तहिना करुणा वा उपायकेँ शिव मानल गेल अछि।

### निष्कर्षमे चित्तक सत्ता

८४. शून्यता-करुणाक उक्त अर्थानुसन्धानक पश्चात् ई निर्णीत होइत अछि जे बोधिचित्त ओहि चित्तकेँ कहल जाएत[१०८] जे परस्पराश्लिष्ट शून्यता करुणाक वा शवतन्त्रक दृष्टिएँ परस्पराश्लिष्ट शिवशक्तिक अभिन्नरूप बनि जाइत अछि। दूनूक (शिवशक्तिक) परस्पराश्लिष्टताक स्थितिकेँ षट्त्रिंशत्तत्त्वविचारकेँ क्रममे अनुत्तरतत्त्वातीत परमशिवशब्देँ लक्षित कएल गेल अछि[१०९]। स्वतः उक्त लक्षणक अभिप्राय ई अछि जे परमशिवक अभिन्न वा तद्रूप चित्तकेँ 'बोधिचित्त कहल जाएत। लक्षणवाक्यमे 'शून्यता-करुणाभिन्न'क अर्थ सिद्ध भेल शिवशक्तिक अभिन्न, ई अभिन्नता सम्भवे नहि (साधनाक्रममे देखल गेल अछि), जा' धरि साधक अपन चित्तकेँ पवित्र करैत करैत ओहि प्रकाश-विमर्शक सङ्ग अन्तरङ्गता क्रमिक बढ़बैत नहि जाइत छथि। अन्तरङ्गता बढ़ल जाइत अछि आ' परिणाममे चित्त चिद्रूप भए जाइत अछि अर्थात् परमशिवरूप बनि जाइत अछि (कारण, चितक अर्थे थिक चैतन्य, परम चैतन्य, जे परमशिवक स्वरूप अछि)। एही साधानाक्रमक दृष्टिएँ 'बोधिचित्त' शब्दक आविष्कार भेल, एहन प्रतीत होइत अछि।

---

१०७। 'अद्वयवज्रसंग्रह' सँ—A. I. T. B.—P. 101 f. n.

१०८। A. I. T. B.—P. 88

१०९। Kashmir Shaivaism Part I—P. 62, 65

८५. चित्तक चिद्रूपतापर जोर काश्मीरीशैवदर्शनमे, आगम प्रत्यभिज्ञा-शास्त्र दूनूमे, भेटैत अछि।

८६. शिवोक्त[११०] आगमसूत्र शिवसूत्र भेटैत अछि—"चित्त आत्मा थिक"[१११]

८७. एहिठाम बौद्धतन्त्रक दर्शनमे चित्तक आत्मरूपताक समानता देखल जाए। अस्तु। ततबे नहि, जेना चर्यागीतसभमे चित्तकें समस्त साधनाक मूलमन्त्र मानल गेल अछि [ जे आगाँ गीतसभसँ स्पष्ट भए जाएत ], तहिना शिवसूत्रमे सिद्धान्त भेटैत अछि—"चित्त मन्त्र थिक"[११२]।

८८. 'प्रत्यभिज्ञाहृदय' मनोवैज्ञानिक दृष्टिएँ सोचि, चितिक लक्षण करैत, घोषित करैत अछि—

"चितिए चेतनपदसँ उतरि, चेत्यसंकोचिनी बनि, चित्त बनि जाइत छथि"[११३]।

—दोसर शब्दमे कहि सकैत छी जे चित्त चेत्यविकासक बनि, चेतनपदपर चढ़ि चितिरुपमे परिणत भए जाइत अछि। यद्यपि 'चिति' शब्दसँ चिन्मयीक सूचना भेटैत अछि, कारण स्त्री-प्रत्ययान्त शब्द अछि, किन्तु ओहि स्थितिमे जाए वस्तुतः चित् आ' चितिमे अन्तर नहि, ओहि दशामे शक्तिकें शुद्ध शक्तिमात्ररूपमे नहि देखल जाइत अछि, निराकार परब्रह्मस्वरूपिणीक दृष्टिएँ देखल जाइत अछि। कालिका-पुराणमे तँ कहलो गेल अछि—

"निराकार परब्रह्मस्वरूपिणी चितिशक्तिकें…"[११४]।

आ' इएह निराकार परब्रह्म तँ तान्त्रिकदर्शनक परमशिव छथि[११५]। फलतः चितिकें परमशिवरूपमे देखि सकैत छी।

८९. आब स्पष्ट भए गेल होएत जे प्रत्यभिज्ञावादी जे चित्तकें विकसित करैत करैत परमशिवरूपमे अन्तरित करए चाहैत छथि, से तर्कसम्मत अछि आ' चित्त चिति बनि जाइत अछि, 'चित्त मन्त्र थिक' तथा 'आत्मा चित्त थिक' सभ सूत्रक उद्देश्य एतबे

---

११०। Kashmir Shaivaism Part I P. 9

१११। शिवसूत्र—प्र० ३ सू० ३—'आत्मा चित्तम्।'

११२। ऐजन—प्र० २ सू० १—'चित्तं मन्त्रः'।

११३। प्रत्य० हृदय—सू० ५

११४। कालिकापुराणेऽपि—

"चितिशक्तिनिराकारां परब्रह्मस्वरूपिणीम्।"

इति।—उद्धृत षट्चक्र-विवृतिमे, द्रष्टव्य—The Serpent Power (उत्तरार्धं पृ० १२७)

११५। पाछाँ द्रष्टव्य अनुत्तरतत्व-प्रकरण—पा० टि० ६२

सिखाएब अछि जे साधक चित्तकें चिन्मय वा चिन्मयीमे रमबैत रमबैत, विशुद्ध ज्ञानमे डुबबैत डुबबैत, चित् वा चैतन्यरूपमे परिवर्त्तित कए देथि।

६०. एहि साधना-दिशाक संकेत करबाक हेतुएँ बौद्धतन्त्र परमशिवक स्थानमे 'बोधिचित्त' शब्दक प्रयोग कएने छथि। बोधिचित्तसँ साधकक प्रबुद्ध वा परमशिव-रूप चित्त लक्षित होइत अछि। 'बोधिचित्त' शब्द अपनामे शैवदर्शनक अनुत्तर चित्तत्त्व-सिद्धान्त तथा तद्वत् बनबाक साधना दूनूकेँ समेटि रखने अछि।

## सामरस्य

६१. बोधिचित्त-प्रकरणमे शून्यता-करुणा [ प्रज्ञा-उपाय ]केँ क्रमशः शक्ति-शिवरूपमे देखि दूनूक मध्य अभिन्नता-सम्बन्ध देखाओल गेल अछि।

६२. ओहि अभिन्नतापर जोर हिन्दू तथा बौद्ध दूनू तन्त्रमे भेटैत अछि। साधककेँ बारम्बार, शाक्त उपासना रहए वा शैव, परिणाममे शक्ति-शिवकेँ, विमर्श-प्रकाशकेँ, एकरूप बुझबाक आदेश देल गेल अछि।

६३. बौद्धतन्त्रमे युगनद्धकेँ प्रज्ञा-करुणाक ऐक्य-ज्ञान-प्रवर्त्तन-भूमि मानल गेल अछि[११६]। पुनः प्रज्ञा लिङ्गित हेरुककेँ अद्वय-योगज्ञानक विषय मानल गेल[११७]।

६४. साधनाक क्षेत्रमे एहि अभेदकेँ किछु कोमल दृष्टिएँ देखल गेल आ' परा-दम्पतिक मध्य समरसताभावनाक प्रवेश भेल। बौद्धतन्त्रक हेवज्रतन्त्र-ग्रन्थमे सामरस्यक लक्षण एहि प्रकारेँ अछि—

"सामरस्य ओ अवस्था थिक जाहिमे प्रज्ञा-उपायमे पार्थक्यक अनुभव नहि होइत अछि, कतहु कोनो भेद-भावना नहि रहैत अछि, सभ एकरूप प्रतीत होइत अछि"[११८]।

६५. आब शाक्ततन्त्रोक्त सामरस्यक विचार कएल जाए—

---

११६। प्रज्ञाकरुणयोरैक्यं ज्ञानं यत्र प्रवर्त्तते।
युगनद्ध इति ख्यातः क्रमोऽयं बुद्धगोचरः॥
—(पञ्चक्रमसँ उद्धृत)—A. I. T. B.—P. 115 f. n.

११७। अद्वययोगज्ञानन्तु प्रज्ञालिङ्गितहेरुकम्॥—ऐजन—P. 117 f. n.

११८। A. I. T. B.—P. 125

"ब्रह्मे शिव छथि, शक्तिओ छथि, प्रत्येक कूटार्थ छथि [ कोना ? ] सामरस्य द्वारा। इएह थिक विद्याक सामरस्यार्थ" ११९।

९६. योगिनीहृदयतन्त्रक उद्धरण उडरफ महाशयक ग्रन्थमे भेटैत अछि—

"विमर्शशक्ति परमशिवक सङ्ग सामरस्य ( -मय ) विश्वक सर्जन करैत छथि, असगरे नहि" १२०।

९७. एहि परस्पराश्रित शिवशक्तिक यामलरूप वा संघट्टकें अपन ढङ्गसँ बुझबैत अभिनवगुप्त कहैत छथि—

"ओहि दूनूक जे यामलरूप सएह 'संघट्ट' कहल जाइत अछि।—आनन्दशक्ति ओएह छथि, जनिकासँ विश्व विसृष्ट होइत अछि। शिव शक्तिरहित नहि छथि आ' शक्ति शिववर्जित नहि छथि।"१२१

९८ तँ सामरस्य-भावनाक तात्पर्य अछि समरसताक, एकरूपताक, अनुभति। १२२ तँ जखन साधककें शिव आ' शक्ति मध्य कोनो अन्तरक भावना नहि रहैत छन्हि, प्रत्युत समस्त सृष्टिमे, समस्त अष्टप्रकृतिक क्रीड़ामे, एकरूपता [ परमशिवता ] क ज्ञान होइत छन्हि तखन ई कहल जाएत जे आ सामरस्य-समाधिमे छथि।

९९. साधककें एहि दृष्टिकोणपर बड़ जोर देल गेल अछि। बौद्धतन्त्रक सामरस्यक निष्कर्षकें डा० दासगुप्त एहि प्रकारें सूचित करैत छथि—

"गम्भीर दृष्टिएँ समरस समस्त अनेकतामे एकताक अनुभति थिक, ई एक [ परम- ] तत्त्वकें एकभावरूपमे वा सर्वव्यापी आनन्दरूपमे देखब थिक" १२३।

१००. एहि उक्तिक अभिप्राय इएह अछि जे तान्त्रिक साधनाक अन्तिम लक्ष्य अछि अद्वय-भावना।

---

११९। ब्रह्मैव शिवः शक्तिश्चेति प्रत्येककूटार्थः।
शिवशक्तिसामरस्याद्विद्याया, एष सामरस्यार्थः॥ —वरिवस्यारहस्य श्लो० २२० ( द्वितीयांशः )

१२०। विमर्शशक्तिः प्रकाशात्मना परमशिवेन सामरस्यविश्वं सृजति न तु केवला—The Serpent Power—Intro. P. 128

१२१। तयोर्यद् यामलं रूपं स संघट्ट इति स्मृतः—
आनन्दशक्तिः सैवोक्ता यतो विश्वं विसृज्यते।
न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिः शिववर्जिता॥
—तन्त्रा० आह्निक ३ सँ उद्धृत-The Serp. Power. Intro.-f. n. P. 46

१२२। A. I. T. B.—P. 125.

१२३। ऐजन—P. 124

१०१. किन्तु ई भावना जागए कोना? ताहि हेतु तन्त्र अपन स्वतन्त्र पद्धति प्रस्तुत कएने अछि। ओहि पद्धतिमे सभसँ अधिक मार्मिक साधना अछि स्वशक्ति-साधना (नारी-साधना) तथा कुण्डलिनीशक्तिक साधना।

१०२. शक्ति-साधनाक प्रसङ्ग सविस्तर विचार आगाँ चर्यागीतक साधना-पक्षक्रमेण प्रस्तुत कएल जाएत, तत्काल ओकर आध्यात्मिक अंशमात्रक चर्चा कएल जाइत अछि।

१०३. शक्तिसाधनाक रहस्य अछि चित्त-शोधन करैत क्रमशः [शक्तिक आविष्करणार्थ] स्वशक्तिक सङ्ग मैथुनकेँ पराशक्यात्ममिथुनरूपमे देखब।[१२४] स्वात्मकेँ शिवरूप मानि तथा स्वशक्तिकेँ पराशक्तिक प्रतिरूप मानि मैथुन कएल जाए—पराशक्यात्ममिथुनक रहस्य सएह अछि।

१०४. वस्तुतः सामरस्य इएह शक्तिक सङ्ग आत्माक मिलन थिक, अभेदस्थापन थिक। एहि रहस्यपर ध्यान रखैत उडरफ महाशय सामरस्यक स्पष्ट लक्षण प्रस्तुत कएने छथि जकर आशय ई अछि[१२५]—

"'सामरस्य' शब्दसँ अभिप्रेत अछि स्त्री-पुरुषक संयोगसँ समुद्भूत आनन्द। ई सभसँ तीव्र शारीरिक सुख थिक आ' आध्यात्मिक स्तरपरक शिव-शक्ति-संयोग-समुद्भूत-परमानन्दकेँ सांसारिक स्तरपर उतारि प्रतिनिधित करैत अछि।"

१०५. उडरफ साहैब शाक्ततन्त्रहिक विचारक्रममे ई लक्षण प्रस्तुत कएने छथि। तेँ ई मानि सकैत छी जे सामरस्यक हिन्दूतान्त्रिक लक्षणक दृष्टिएँ एकरा मान्यता देल जाएत।

१०६. दोसर प्रमुख साधना अछि कुण्डलिनीशक्तिसाधना। कुण्डलिनी-योग-साधनाक प्रामाणिक हिन्दूग्रन्थ षट्चक्रनिरूपणमे 'सामरस्य' शब्दक प्रयोग देखल जाए—

"पूर्वोक्ततत्तद्ध्यानानन्तर शिवशक्तिक सामरस्य भावन कए, सामरस्यानन्दसँ परशिवसँ उत्पन्न परमामृतसँ कुण्डलिनीक तर्पण करी।"[१२६]

---

१२४। पराशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्दनिर्भरः।
य आस्ते मैथुनं तत् स्यादपरे स्त्रीनिषेवकाः॥
——कुलार्णव उल्लास ५ श्लोक ११२

१२५। The Serp. Power–Intro. P. 238-239

१२६। पूर्वोक्ततत्तद्ध्यानानन्तरं शिवशक्त्योः सामरस्यं विभाव्य, सामरस्यानन्देन परशिवादुत्पन्नपरमामृतेन कुण्डलिनीं तर्पयेत्।
—ष० च० नि०—(The Serp. Power उत्तरार्ध) पृ० ६३

१०७. उक्त दूनू उद्धरण ( उडरक तथा षट्चक्रनिरूपणकारक ) सँ सामरस्यक व्यापक अर्थक सङ्ग सामरस्य-योगहुक परिचय भेटि गेल होएत; पहिल उद्धरणसँ शक्ति [ नारी- ] साधना द्वारा सामरस्य-लाभ तथा दोसरसँ कुण्डलिनी-साधना द्वारा सामरस्य-लाभ देखाओल गेल अछि ।

१०८. तँ एहि दूनू साधनाक दृष्टिएँ सिद्धलोकनि सामरस्यकेँ देखने छथि। (पूर्वोक्त शिव-शक्ति सामरस्यकेँ लक्ष्य मानि ; अपन आत्माकेँ शिवरूप बनाए, शक्तिक सङ्ग सामरस्य स्थापित करबाक हेतु, महामुद्रासाधनासमुद्भूत सामरस्यसुख आ' लययोगसुख, दूनू चित्रित वा व्यञ्जित कएने छथि। आओर एहि आनन्द (वा हुनका लोकनिक शब्दमे सुख) केँ अत्यधिक सत्ता देल गेल अछि जे आगाँ स्पष्ट भए जाएत ।

## महासुख

१०९. सामरस्यक विचारक पश्चात् ओकर भावपक्षपर जोर देबाक हेतु महासुख-सिद्धान्तक विचार कएल जाए ।

११०. महासुखक लक्षण पहिने देखल जाए। हेवज्रतन्त्रक अनुसार—

"स्थिर-चल जे जे भावसभ, तृणगुल्मलतादिसभ, आत्मभावरूपमे भावित होइत अछि, ताहिसभमे कोनो भाव वा वस्तु आत्मासँ भिन्न नहि—कारण, सभ वस्तुक अन्तिम स्वभाव महत्सुखे थिक जे आत्माक अन्तरमे अनुभूत होइत अछि"[१२७]।

१११. जाहि प्रकारक भावानुभूति महत्सुख वा महासुख लक्षित वा ध्वनित होइत अछि, ताही प्रकारक अनुभूति हिन्दूतन्त्रमे आनन्दकेँ मानल गेल अछि। आनन्दक सत्ता देखल जाए—

"निश्चित, आत्माक प्रिय भेने सभ प्रिये, श्रुतिओ [ सएह ] कहैत अछि, तेँ मुक्त वा अमुक्त आत्माक स्वभाव आनन्दे थिक" [१२८]।

११२. तान्त्रिकदर्शनमे स्फुटरूपमे आनन्दकेँ ब्रह्म वा परमशिवक रूपे (स्वभावे) बुझल गेल अछि जेना ऊपर बौद्धविचारमे महासुखकेँ अन्तिम स्वभाव मानल गेल अछि—

"सएह हुनक पारमैश्वर्य मुख्य आनन्दमय रूप" [१२९]।

---

१२७। A. I. T. B.—P. 125. f n. मे उद्धृत

१२८। नन्वात्मन: प्रियार्थं सर्वस्य प्रियत्वं भणति श्रुतिः।
तस्मादानन्दस्वभाव आत्मा मुक्त अमुक्तो वा ॥
—महार्थमञ्जरी श्लो० ५४

१२९। ई० प्र० वि०—१ अ० १ आ० ३ का० क विमर्शिनी द्रष्टव्य (पृ० ३१) ( भाग १)

११३. एही प्रकारेँ अन्यो समानता भेटत। यथा, बौद्धतन्त्रमे महासुखकेँ प्रज्ञोपायक एकरूपतास्वभाववाला वज्रसत्त्व [परमसत्त्व] मानल गेल अछि[१३०]; एमहर शिवशक्ति वा प्रकाश-विमर्शक एकरूपता-स्वभाववाला परमशिवक चिन्मयतत्त्वकेँ 'निसर्गानन्दसुन्दर' कहल गेल अछि[१३१] [पाछाँ परमशिवकेँ प्रकाश-विमर्शक एकरूपमे देखि लेल गेल अछि, तेँ एहन तर्क]। ततबे नहि, आनन्द-शक्तिक लक्षण देखल जाए—

"[शिवशक्ति] दूनूक जे यामलरूप सएह 'संघट्ट' कहबैत अछि आ' ओएह 'आनन्द-शक्ति' कहबैत अछि, जाहिसँ विश्वक सृष्टि होइत अछि" [पाछाँ द्र० पा० टि० १२१]।

११४. ऊपर बौद्धमतेँ महासुखकेँ जेना प्रज्ञा-उपायक यामलरूप [युगनद्ध] सूचित कएल गेल अछि, तहिना एतए आनन्दकेँ शिवशक्तिक यामलरूप [प्रज्ञा वा शून्यताक तुलना शक्तिसँ तथा उपाय वा करुणाक तुलना शिवसँ पूर्वहि भए गेल अछि आ' समानता स्पष्ट भए गेल अछि]।

११५. एहिठाम एक शङ्का ऊठि सकैत अछि जे सामरस्य आ' महासुख दूनू तँ एकै वस्तु वा तत्त्व प्रतीत होइत अछि, तखन दूनूक पृथक् निर्देश किएक। वस्तुतः अद्वयभावना सएह सामरस्य भेल आ' तकरे संकेत महासुख वा आनन्दक लक्षणमे भेल अछि। किन्तु, सिद्धसाहित्यक भावात्मक एकताकेँ 'महासुख' शब्देँ सूचित करब अधिक उपयुक्त प्रतीत होइत अछि। अधिकांश सिद्ध 'महासुख' शब्दक प्रयोग कएने छथि। सामरस्यजनित आनन्दक मनोवैज्ञानिक अनुभूतिपर जोर देबाक हेतु, जन-पदकेँ मर्मस्पर्शी करेबाक हेतु, 'महासुख' शब्दक प्रयोग कएल गेल अछि, एहन प्रतीत होइत अछि [विद्यापतिक एक प्रसिद्ध नचारीमे गौरीक मुहसँ महासुख' शब्दक प्रयोग-पर ध्यान देल जाए]।

११६. जे किछु हो, पूर्वक निर्वाण-भावनामे संशोधन आनि ओकरा सर्वजन-मर्मस्पर्शी बनेबाक हेतु, बौद्धतन्त्र ओकर निषेधपरक व्याख्या नहि कए, विधिपरक प्रणालीक निर्देशरूपमे सामरस्य वा संघट्टक भावनाकेँ प्रचारित कए, अन्तमे ओकर आनन्दांशपर जोर देबाक हेतु 'महासुख' शब्दक प्रचार कएलक[१३२]। शब्द भने किछु

१३०। A. I. T. B —P. 137

१३१। चैतन्यमात्मनो रूपं निसर्गानन्दसुन्दरम्॥ (उद्धृत) महार्थमञ्जरी पृ० ११७ पा०टि०

१३२। A. I. T. B.—P. 134.

नवीन परिलक्षित हो, शैवशाक्ततन्त्रक क्षेत्रमे सामरस्यानन्दक अनुभूति नव नहि, समस्त उपासनाक रहस्ये थिक। ओएह आनन्द अमृत थिक; ओएह स्थिति जिनपुर थिक (च० वि० गीत ७ सं० टी० ), जेना बौद्ध प्रयोग करैत छथि। एही स्थितिपर पहुँचबाक हेतु विभिन्न साधन-संकेत।

## निर्वाण

११७. सिद्धलोकनि 'सामरस्य' तथा 'महासुख' शब्दक प्रयोग निर्वाणक अर्थमे कएने छथि, तकर अर्थ ई नहि जे 'निर्वाण' शब्द ताहि समय धरि ऊठि गेल। चर्यागीतमे 'निर्वाण' शब्दो भेटैत अछि। दोसर, 'मोहविमुक्त', 'निरासक्ति', 'अनाबाटा' [ सभबाटसँ मुक्त ], 'अजरामर', एहन एहन शब्द भेटैत अछि, जकर अभिप्रेत अर्थ मुक्ति वा निर्वाणे प्रतीत होइत अछि। जाहिसभ गीतमे एहन एहन शब्द अछि, तकर मर्मकेँ बुझबामे सहायता पहुँचए, तें संक्षेपमे निर्वाणहुक विचार प्रयोजनीय बूझि पड़ैत अछि।

११८. बौद्धक इतिहासमे निर्वाणक बड़ छूटि अछि। बुद्धक समयसँ महायानक पूर्ववर्त्ती रूप माध्यमिकमत धरि निर्वाणक व्याख्या मोटामोटी निषेधपरके रहल; किन्तु, योगाचार तथा वज्रयान-सहजयानमे निर्वाणक विधिपरक व्याख्या होअए लागल।

११९. असंग तथा वसुबन्धुक विज्ञानाचारमे निर्वाणक अर्थ आत्मा तथा बाह्य वस्तुसभक शून्यतास्वभावक ज्ञान मानल गेल अछि। एहिमे शून्यताकेँ एक अन्तिम सत्य शुद्धचैतन्यक रूपमे देखल अछि। शुद्ध चैतन्यक हेतु 'विज्ञप्तिमात्रता' शब्द आएल अछि। 'विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि'मे शुद्ध चैतन्यक स्वभाव मनब पहुँचसँ ऊपर, सत्, नित्य तथा पूर्ण आनन्द कहल गेल अछि तथा ओकरा मुक्तिक पर्याय मानल गेल अछि[133]।

१२०. एहि लक्षणक आनन्दतत्त्वकेँ वज्रयान, विशेषतः सहजयान, प्राथमिकता देल आ' निर्वाणकेँ महासुखक अभिन्न मानि सहज-साधनाकेँ प्रश्रय देल[134]।

१२१. बौद्धतन्त्रमे तँ स्पष्टतः निर्वाणकेँ 'सततसुखमय' कहल गेल अछि, दिव्य तथा भुक्तिमुक्तिपरमपद मानल गेल अछि। ई ओ महासुख थिक, जाहिमे क्षय-व्ययक

१३३। A. I. T. B.—P. 133-134.

१३४। ऐजन—पृ० १३४

प्रश्न नहि आ' जे एकरूप रहैत अछि[१३५]। निर्वाण, बौद्धतन्त्रमे, वज्रधर, वज्रसत्त्व, बोधिचित्त, सहजस्वरूप तथा शुद्धचैतन्यस्वभाव मानल गेल अछि [१३६]।

१२२. वज्रधर, वज्रसत्त्व आदि परमसत्त्वक बौद्ध पर्याय मात्र थिक। बोधिचित्तक लक्षण शून्यताकरुणाभिन्नता थिक, जेना कहल गेल अछि, आ' ई सिद्ध भए गेल अछि ओही प्रकरणमे जे बोधिचित्त परमशिवक नामान्तर मात्र। फलतः इएह सूचित होइत अछि जे बौद्धतन्त्रें निर्वाण परमशिवरूप थिक।

१२३. आ' इएह तँ शैवशाक्ततन्त्रक अन्तिम लक्ष्य थिक। शिवत्वलाभे तँ मोक्ष थिक। तें चतुर्थ पुरुषार्थवत् ओकर उल्लेख भेटैत अछि—

"हमरा द्वारा व्यक्तिक परमाकारकें जे जनैत अछि, से स्वयं शिव भए जाइत अछि" [१३७]।

"विपत्तिअहुमे जकरा भक्ति सुनिश्चला रहैत अछि, से देवतासभसँ पूजित भए शिव भए जाइत अछि" [१३८]।

१२४. तान्त्रिकदर्शनमे परमतत्त्वक पर्याय परमशिव मानि, मोक्षप्राप्तिक अर्थ परमशिवत्वलाभे मानल गेल अछि—

"आत्मसंवित्तिमें निष्कम्परूपसँ समाधिस्थ रहब जीवन्मुक्ति थिक आ' पिण्डपात भेलासँ [ मनुष्य ] शिव भए जाए वा शिवमे लीन भए जाए" [१३९]।

१२५. मुक्तिक जीवन्मुक्ति-भेदपर जोर तन्त्रहिमे नहि, उपनिषदादि-साहित्यमे सेहो कम नहि अछि। अस्तु, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाक साक्षात् फल थिक जीवन्मुक्ति, जकर चर्चा चर्यागीतमे सेहो भेटैत अछि।

१२६ जेना ऊपर शून्यता-करुणाक वा शक्ति-शिवक सामरस्यानन्दकें तथा फलतः परमशिवत्वलाभकें निर्वाण मानल गेल अछि, तहिना मानल गेल अछि शैवशाक्ततन्त्रमे। 'भावोपहारमे' भक्त कवि कहैत छथि—

---

१३५। भुक्तिमुक्तिपदं दिव्यं निर्वाणाख्यं परं पदम्।
उत्पत्तिव्ययविनिर्मुक्तम् श्रीमहासुखसंज्ञितम्॥
—( 'गुह्यसिद्धि'सँ उद्धृत )—ऐजन पृ० १३४—१३५

१३६। ऐजन—पृ० १३१

१३७। कुलार्णव—उल्लास ३ श्लोक ४६ [ उत्तरार्द्ध ]

१३८। ऐजन — उल्लास २ श्लोक ५५

१३९। ई० प्र०—२ अ० ३ आ० १७ का०क प्रसङ्ग पा० टि० पृ० १३२

"भोग्य-भोक्तृविभेदोत्थवासनाक जारनिकें अद्वैताग्निमे, शाङ्कर श्रेयसनिधिमे, हवन करैत छी" [१४०]।

१२७. विवरणकार अद्वैतकेँ शाक्तदृष्टिकोणसँ देखैत समीचीन व्याख्या प्रस्तुत करैत छथि—

"भोग्यभोक्तृविभाग, ताहिसँ उठल वासनाक काठकेँ आहुत कए, अविभागधाम शम्भुधाममे बसि सामरस्य-लाभ करैत छी" [१४१]।

१२८. एहिठाम बौद्धक सामरस्यतत्त्वक शब्दतः उपादान भेल अछि तथा मुक्तिक स्वरूपमे निर्वाणसँ समता भेटैत अछि। जेना ओहिमे निर्वाण बोधिचित्तपद थिक, तहिंना एहिमे मुक्ति [ सामरस्य ] शम्भुपद वा परमशिवपद थिक।

१२९. बौद्धतन्त्रक निर्वाणक विचारमे 'सततसुखमय'क उल्लेख भेल अछि, तँ शैवशाक्ततन्त्रमे 'चिदानन्द'क उल्लेख भेटैत अछि। जीवन्मुक्तिक लक्षण देखल जाए—

"चिदानन्दलाभ भेलापर देहादिमे, चेत्यमानहुमे, चित् केर सङ्ग तादात्म्यक प्रतिपत्ति होइत रहैत अछि, दृढ़रूपमे; सएह तँ थिक जीवन्मुक्ति" [१४२]।—'सिद्धगण एहि जीवन्मुक्तिकेँ एही दृष्टिएँ देखने छथि। आ' उक्त उद्धरणमे 'आनन्द' शब्दपर ध्यान देलासँ निर्वाणक सततसुखमयस्वरूप एहिठाम भेटैत अछि।

१३०. समस्त तन्त्र [ वा अन्यो शास्त्र ] परिणाममे विकल्पक्षयकेँ तत्त्वज्ञानक हेतु वा मुक्तिक हेतु आवश्यक बुझैत अछि। हिन्दूतन्त्रक प्रमाणसँ पूर्व बौद्धक विकल्पक्षय-प्रयोजनीयताकेँ देखल जाए—

"यावत् कोनो विकल्प मनकेँ प्रभूत [ पराभूत ] करए, सभ त्याज्यरूप थिक··· ··· निर्वाण निर्विकल्पात्मचित्त छोड़ि आओर किछु नहि" [१४३]।

१३१. आब शैवतान्त्रिक दर्शनमे विकल्प-क्षयक महत्त्व देखल जाए—

---

१४०। भावोपहार—श्लो० ४०

१४१। भोग्यभोक्तृविभागतदुद्गतवासनादारुविसरम् अविभागशम्भुधाम्नि सामरस्यं लम्भयामि ॥—भावोपहारः-पृ० ३७

१४२। चिदानन्दलाभे देहादिषु चेत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः ॥
—प्रत्य० हृ० सूत्र १६

१४३। ····निर्वाणं नान्यदस्ति क्वचिदपि विषये निर्विकल्पात्मचित्तात् ॥
—५० गी० को० पृ० ४६

"विकल्पक्षयशक्तिसङ्कोचविकासवाहच्छेदाद्यन्तकोटिनिभालनादि एतए उपायसभ थिक" [१४४]।

१३२. बौद्धतन्त्रमे जेना बोधिचित्तक अभिन्न निर्वाणकेँ मानल गेल अछि, तहिना शैवशाक्ततन्त्रमे परमशिवपदक अभिन्न मुक्तिकेँ मानल गेल अछि। ओहिमे जेना बोधिचित्तकेँ शून्यता-करुणाक अभिन्नताक दशा मानल गेल अछि, तहिना एहिमे परम-शिवकेँ शक्तिशिवतत्त्वक अभिन्नताक दशा मानल गेल अछि। आ' जेना ओहिमे प्रज्ञाशक्तिकेँ सर्व्वारोपविनाशिनी शून्यतादृष्टि मानल गेल अछि, तहिना एहिमे विमर्श-शक्तिकेँ प्रकाश-सत्तादृष्टि [अहन्तापरिचयदृष्टि]; दूनूमे शक्तिक आवि-ष्करण द्वारा परमपदलाभ देखाओल गेल अछि। प्रत्यभिज्ञादर्शनक रीतिए एहन अछि [१४५] आ' दूनू तन्त्र एकर आदर करत अछि मुक्तिक साधनक दृष्टिएँ। इएह भेल निष्कर्ष।

## सहजतत्त्व

१३३. सिद्धसाहित्यमे 'सहज' शब्दक बड़ छूटि देखबामे अबैत अछि—सहज, सहजेँ, सहजस्वरूपा, सहजमहातरु, सहजनलिनीवन, सहजसुन्दरी, एहन एहन प्रयोग भेटैत अछि। तेँ किछु एहि तथाकथित तत्त्वक परिचय देब आवश्यक प्रतीत होइत अछि।

१३४ डा० धर्मवीर भारती सहज-साधनाक ऐतिहासिक विकास तथा स्वरूप-पर नीक जकाँ विचार कएने छथि। [१४६] हुनक कहब अछि, सिद्धलोकनि 'सहज' शब्दक प्रयोग ओही अर्थमे कएने छथि जाहिमे 'शून्य'क प्रयोग। [१४७] किन्तु, 'शून्य'क प्रयोग व्याप्य तथा व्यापक दूनू रूपमे भेटैत अछि, जेना पूर्व सूचित भए गेल अछि, तेँ

१४४। विकल्पक्षयशक्तिसङ्कोचविकासवाहच्छेदाद्यन्तकोटिनिभालनादय इहोपायाः॥

—प्रत्य० हृ० सूत्र १८

१४५। (क) सा च अव्यतिरिक्ता शङ्करस्य शक्तिः; तदवगम एव च आत्मैश्वर्य-प्रत्यभिज्ञालक्षणसिद्धेर्हेतुः॥—स्पन्दकारिका १ विवृति (पृ० ५)

(ख) किंतु मोहवशादस्मिन्दृष्टेऽप्यनुपलक्षिते।

शक्त्याविष्करणेनेयं प्रत्यभिज्ञोपदर्श्यते॥

—ई० प्र० १ अ० १ आ० ३ का०

१४६। सिद्धसाहित्य—पृ० १५०-१५४

१४७। ऐजन —पृ० १७८

सहजहुक कतहु व्यापक परमसत्यक अर्थमे आ' कतहु शक्तिक अर्थमे प्रयोग भेल अछि, से कहिं सकैत छी ।

१३५. हमरा जनैत 'सहज' शब्दक पाछाँमे जे ताओमतक इतिहास अछि, तकर दार्शनिक अंशमे कोनो नवीनता नहि अछि। सामान्यतया ई गप किछु बुद्धिविरुद्ध भने प्रतीत हो, किन्तु ताओमतक उद्गमत्व[१४८] जँ प्रामाणिक थिक आ' ओहि मतक जीवन-दर्शन[१४९] जं प्रामाणिक थिक, तँ ई कहि सकैत छी जे ई मत कोनो नवीन नहि ।

१३६. एहिठाम हमर उद्देश्य ऐतिहासिक पौर्वापर्यक्रमक आधारपर कोनहु निष्कर्षपर पहुँचब नहि, केवल चिरपरिचित भारतीय तान्त्रिक-संस्कृतिक मूलभूत दर्शनमे उक्त सहजजीवनदर्शनक बीज ताकब अछि ।

१३७. समस्त शैवशाक्ततन्त्र मनुष्यक स्वाभाविक चित्त-प्रवृत्तिक दिशि साकांक्ष अछि। अधिकांश शिवोक्ततन्त्रक प्रस्तावनामे एहि विषयक स्पष्टीकरण भेल अछि जे एहि युगमे अन्य शास्त्रक अनुसार साधनामे, अस्वाभाविकताक कारणेँ, चित्तक प्रवृत्तिक विरुद्ध दिशामे जेबाक कारणेँ, मन लागब कठिन। तँ महादेव तन्त्रक जन्म देल। महानिर्वाणतन्त्रमे देल अछि— "जे व्यक्ति कलियुगमे अन्यशास्त्रसँ चलि सिद्ध बनए चाहैत छथि से गङ्गानदीक निकटमे रहितहुँ, आकर शीतल सुखद जल नहि पीबि, कष्टसँ कूप खुनैत छथि ( जल पीबाक हेतु )"।[१५०] गङ्गानिकटस्थ व्यक्ति केँ सहज-रूपमे पवित्र जल प्राप्त अछि, तखन ओ ओतेक अस्वाभाविक काज किएक करताह ? की एहिसँ ई नहि सूचित होइत अछि जे तन्त्रक प्रवर्त्तक सहजप्रवृत्तिक आदर करैत छलाह ?

१३८. ततबे नहि, स्पष्टतः कहि देल गेल अछि जे तन्त्रसँ मोक्ष आ' सुख दूनू भेटत।[१५१] कारण, तन्त्र एहि विषयमे विश्वास रखैत अछि जे भोगे योगक रूप धारण कए लैत अछि[१५२]।

---

१४८। ऐजन —पृ० १५०—१५२

१४९। ऐजन —पृ० १५०

१५०। म० नि० त०— उल्लास २ श्लो० १८

१५१। ऐजन —ऐजन श्लो० २०

१५२। भोगो योगायते साक्षात् पातकं सुकृतायते।
मोक्षायते च संसारः कुलधर्मे कुलेश्वरि ॥
—कुलार्णव-उल्लास २ श्लो० २४

१३९. एहिसभसँ सिद्ध होइत अछि जे तन्त्रक प्रवृत्ति सहजप्रवृत्ति थिक। हँ, साधनामे मानसिक अनुशासनक प्रयोजन, चित्तशोधनक प्रयोजन अछि, किन्तु ताहिपर जोर तँ बौद्धहुतन्त्रमे कम नहि भेटैत अछि आ' फलतः सिद्धहुक साहित्यमे नीक जकाँ भेटैत अछि, जकर संकेत मात्र एहिसँ पूर्व विकल्पक्षय द्वारा कए देल अछि। 'सहज' शब्दक प्रयोगमे कतहु उक्त विषयक छाप छोड़ि आओर किछु वैशिष्ट्य नहि।

१४०. तखन चर्यागीतमे 'सहजमहातरु', 'सहजस्वरूप' एहन एहन शब्द किएक भेटत अछि?

१४१. एहि प्रश्नक समाधानमे ई कहल जाए सकैत अछि जे सिद्धगण अपन दृष्टिकोणमात्रार बल देबाक हेतु, किछु विशेषता देखेबाक हेतु, पूर्वकथित महासुख-भावना, शिवशक्ति-अद्वय-सामरस्यानन्द आदि भिन्न भिन्न तत्त्वकेँ सहजक रङ्गमे रङ्गि देल। सभठाम एतबेटा सामान्य अर्थ काज करैत अछि जे उपात्त तत्त्वविशेष साधकक स्वाभाविक अनुभूतिसँ सम्बद्ध अछि, सहज'क शब्दकोष-उद्धृत अर्थ 'स्वाभाविक' सएह सभठाम घटित होइत अछि [१५३]।

१४२. सभठाम एतबे केवल बुझबाक थिक जे तान्त्रिक साधक अपन भोग-प्रवृत्तिकेँ दिशाविशेष दिशि लए जाएकेँ (आगाँ प्रतिपादित शक्तिमे केन्द्रित कए), क्रमशः चित्तक शोधन करैत करैत परिणाममे परमशिवत्व लाभ करथि अर्थात् शिव-शक्तिक अभिन्न बनि जाथि।

१४३. सहजतत्त्वकेँ एहि दृष्टिएँ देखैत सहजजीवनपर जोर देनिहारमे सभसँ अधिक उल्लेखनीय छथि सरहपाद। चर्यागीतसँ अधिक स्पष्टतया एहि जीवनक विश्लेषण भेल अछि हुनक दोहाकोशमे, जकर चर्चा महापण्डित राहुलसांकृत्यायैन कएने छथि।[१५४]

१४४. दोहा रहओ वा गीत, थिक तँ ओ काव्यात्मके रचना, तेँ किछु भावक प्रवाह भेटब स्वाभाविके। किन्तु, विचारला उत्तर तथ्य तँ एतबे भेटैत अछि, विशेषतः हुनक समस्त रचनामे प्रतिपादित अन्यविषयक दृष्टिएँ, जे सरहपाद तन्त्रक 'भोग योग बनि जाइत अछि' [१५५] ताही सिद्धान्तकेँ प्रश्रय दैत छलाह। स्मार्त-साधनामे

---

१५३। श० क०--द्रष्टव्य 'सहजमित्र' शब्द

१५४। (सिद्धसरहपादकृत) दोहाकोशक भूमिका पृ० २७

१५५। "भोगो योगायते..... "— कुलार्णव उ०२ श्लो० २४

शरीरकेँ तपाएब, त्याग आदि किछु तात्कालिक कष्ट देनिहार विषयकेँ सत्ता देल गेल अछि, जकरा कलियुगमे आदर नहि कएल जाए सकत अछि। ई धर्म-ह्रास भगवान् शङ्करक दृष्टिपर आएल, तेँ ओ तेहन धार्मिक पद्धतिकेँ चलाओल जकर अनुसरणमे अधिक कष्ट नहि, सङ्ग सङ्ग चित्तक विकास सुलभ। एहि विषयपर प्रकाश अनेकठाम भेटैत अछि [१५६]। तँ इएह थिक सहजसाधनाक मर्म। सहजजीवनक अवस्थाकेँ कौलग्रन्थ 'कुलार्णव'मे 'उत्तमा' कहल गेल अछि [१५७]। प्रायः एहीसभ दृष्टिसँ म०म० कविराजजीक कहब छन्हि जे 'सहज' कोनो बौद्धिक पारिभाषिक शब्द नहि [१५८]।

# सिद्धक साधना-मार्ग

## मार्ग

१४५. यद्यपि अद्यावधि चर्यागीतक रचयिता सिद्धगणक जीवन-चरित्र साङ्गोपाङ्गरूपमे उपलब्ध नहि भेल अछि, तथापि यथोपलब्ध सामग्रीक आधारपर एहि दिशामे किछु ऊहापोह कएल जाए सकैत अछि जे गीतकार सिद्धलोकनिमे अधिकांश व्यक्ति तन्त्रक कोन मार्ग अनुसरण कए साधना करैत छलाह।

१४६. (१) सिद्धलोकनिक सामान्य परिचयक्रममे ई सूचित कए देल गेल अछि जे सरहपाद, तन्त्रीपाद, कान्हपाद तथा विरुवापाद सम्भवतः तन्त्रक सिद्धिपीठ उड्डोयानमे जाए साधना कएने छलाह [१५९], इहो ज्ञात भेल अछि जे अधिकांश सिद्ध कामरूपसँ सम्बद्ध छलाह तथा कापालिक साधनाक केन्द्रस्थान श्रीपर्वतहुक चर्चा आएल अछि [१६०]।

१४७ (२) दोसर विषय अछि मुद्रा-साधन (नारी-साधन)। सरहपादक शक्ति (मानवी शक्ति, साधनमे सङ्ग पुरनिहारि नारी) शरकन्या रहथिन्ह, शबरपादक शक्ति लोकी आ' गुनी नामक रहथिन्ह, दारिकपादक शक्ति वेश्या रहथिन्ह तथा

१५६। दृष्टान्तस्वरूप—म० नि० तन्त्र—उ० २ श्लो० ६–१५ तथा कु० त०–उ० ६ श्लो० २१–२४

१५७। उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यान-धारणा।
जपस्तुतिः स्यादधमा होमपूजाऽधमाधमा ॥—कु० त०—उ० ६ श्लो० ३४

१५८। भा० सं० सा० (२) पृ० २७१

१५९। द्र० पाछाँ अनु० १८

१६०। ऐजन

पुनः चिन्ता नामक शिष्या शक्ति भेलथिन्ह; कम्बलाम्बरपादक शक्तिक नाम तन्त्रावती छल, महामायाक उपासकरूपे ख्यात कुक्कुरीपादक शक्ति पूर्वजन्ममे कुक्कुरी रहथिन्ह एवं लुइपाद तथा डाम्बीपाद साधिकासँ साधन सिखने छलाह।[१६१]

१४८. [३] आब प्रस्तुत गीत सभ दिशि ध्यान देल जाए। सामान्यतया सिद्धगण एतबे कहने छथि जे वाम-दक्षिण मार्गकेँ छोड़ि सोभ बाट [ उजुबाट ] पकड़ि साधना कएल जाए। एहि प्रसङ्ग द्रष्टव्य थिक सरहपाद, डोम्बीपाद, चाटिल्लपाद, कम्बलाम्बरपाद, तथा शान्तिपादक गीत [वाम-दक्षिणक हेतु][१६२] आओर सरहपाद तथा शान्तिपादक गीत पुनः [ उजुबाटक हेतु ]। वामदक्षिणमार्गकेँ कौलहु तन्त्रमे कौलसँ स्वतन्त्र मानल गेल अछि जेना ऊपर 'उजुबाट' सँ।[१६३]

१४९. [४] किन्तु मार्गक प्रसङ्ग शब्दतः उपादानक हेतु कान्हपादक गीत प्रामाणिक मानल जाए सकैत अछि, जाहिमे कापालिक [ कापालि, कपाली ]क चर्चा अछि।[१६४] कान्ह अपनाकेँ कापालिक मानैत छथि, से स्पष्ट अछि। पूर्वहि ई देखा-ओल गेल अछि जे श्रीपर्वत [ कापालिक-केन्द्रस्थल ] सँ सिद्धगण सम्बद्ध छलाह।

१५०. [५] कान्हपाद अपनाकेँ योगी [जोइ] सेहो मानैत छथि।[१६५] एकर अतिरिक्त जतए संस्कृत टीकाकारकेँ ई प्रतीत भेलन्हि जे कुविसिद्धिविशेष कोनहु शिष्यकेँ उद्दिष्ट कएल कहि रहल छथि, ताहिठाम 'बालयोगिन्' दए टीकामे आगाँ बढ़ल छथि।[१६६]

१५१. [६] कुक्कुरीपाद तथा गुण्डरीपाद 'वीरा' शब्दक प्रयोग कएने छथि।[१६७]

१५२. [७] शान्तिपाद अष्टमहासिद्धिकचर्चा कएने छथि।[१६८]

१५३. [८] कान्हपाद अस्थिमालाक धारण सूचित कएने छथि। इष्टमालाक उल्लेख सेहो अछि।[१६९]

---

१६१। पूर्व द्र० भूमिका अनु० १६

१६२। स० २, डा० १, चा० १, कम्ब० १, शा० १.

१६३। स०२, शा० १ मे वाम-दक्षिणक उल्लेख। कु० त० मे वेद, वैष्णव, शैव, दक्षिण, वाम, सिद्धान्त तथा कौलक पृथक् पृथक् निर्देश।—कु०त०उ० २ श्लो० ७–८

१६४। का० ३-४

१६५। का० ३, का० १२

१६६। यथा च० गी० को० पृ० १० मे

१६७। कु० २, गु० १

१६८। शा० १

१६९। का० ३, का० ११

१५४. [९] एवं तथा हूँ बीजक उल्लेख क्रमशः कान्हपाद आ' सरहपाद कएने छथि।[१७०]

१५५. [१०] दारिकपाद 'पारिम कुलेँ', [१७१] डोम्बीपाद 'कुले कुले', [१७२] कान्हपाद 'कुलोन', [१७३] तथा शान्तिपाद 'कुलेँ कुल' [१७४] शब्दक प्रयोग कएने छथि।

१५६. [११] सरहपाद, शबरपाद, लुइपाद, डोम्बीपाद, भुसुकुपाद तथा कान्हपाद गुरुकेँ बड़ महत्त्व देल।[१७५]

१५७. एहिसभ विषयकेँ आब कौलतन्त्रक दृष्टिएँ देखल जाए। कामरूप-उड्डीयान आदि पूर्वोक्त सिद्धपीठक नाम पुरश्चर्यार्णव तथा कुब्जक तन्त्रमे पर्यन्त भेटैत अछि।[१७६] शक्तिसाधनक प्रसङ्ग विचार प्राणतोषिणी, कुलार्णव, तथा प्रसिद्ध विश्वसार-तन्त्रमे भेटैत अछि।[१७७] दक्षिण-वामसँ भिन्न कौलमार्गकें सोझबाट कहल गेल अछि [ द्र० सहज-तत्त्व पूर्व अनु० १३७]। पशु-वीर-दिव्यभाव कौलिकागमक अपन वस्तु थिक, जाहिमे कलियुगमे वीरसाधनकेँ प्रश्रय देल गेल अछि।[१७८] अष्टमहा-सिद्धिकेँ कौलतन्त्र मान्यता दैत अछि, [१७९] बौद्धतन्त्रसँ कम नहि। अस्थिमाला-ग्रहण, तथा इष्टमालाजप कापालिक वा कौल धर्म थिक। [ आगाँक अनुच्छेदसँ प्रमाणित होएत जे ई सम्प्रदाय कौलक अन्तर्गत अछि ], कौलक आकर ग्रन्थमे एकर चर्चा नीक जकाँ भेटैत अछि।[१८०] हूँ बीजक सत्ता महाविद्यासभक साधनमे भेटैत अछि।[१८१] एवं बीजक अर्थ जे बौद्धतन्त्रमे देल गेल अछि, ताहिसँ अधिक अन्तर नहि अछि शाक्त [कौल] तन्त्रोक्त अर्थक, जाहि अनुसार एकारकेँ त्रिकोणात्मक शक्तिक आवके

१७०। का० २, स० ४
१७१। दा० १
१७२। डो० १
१७३। का० ७
१७४। शा० १
१७५। स० ४, श० १, लु० १ डो० १, भु० ६, का० ११
१७६। पुर० पृ० ४८२; कुब० त०—पृ० १०
१७७। प्रा० तो० पृ० ११३८; कु० त० उ० ७ श्लो० ३६-४४, वि० सा० त० पृ० ४०
१७८। म० नि० त० उ० ४ श्लो० ९६।
१७९। मु० मा० त० पृ० १६०
१८०। श० स० त० पृ० १५८मे अस्थिमालाक
१८१। कालीक मन्त्र-शक्ति हूँ—द्र० ऋष्यादिन्यास—शाक्तप्रमोद पृ० १०
ताराक बीज हूँ—द्र० विनियोग—पुर० पृ० ७८४ तथा ध्यान-शाक्तप्रमोद पृ० १२३
ताराक उपनिषत्—'हूँ कारंविशदाभम्मद्धृदयरूपम्'—शाक्तप्रमोद प० १३७

शिवक प्रतीक मानल गेल अछि।[१८२] गुरुक सत्ताक प्रसङ्ग सामान्य धारणा अछि जे बौद्ध तन्त्रहिक एहन धारणा अछि; से नहि, अधिकांश कौलतन्त्रग्रन्थमे गुरुमाहात्म्य, गुरु आदिक विधान अछि [१८३]। सभसँ अधिक ध्येय थिक सिद्धक गीतमे 'कुल' शब्दक प्रयोग, विशेषतः 'पारिम कुले' [ परम कुलेँ ] शब्दक प्रयोग जे शाक्त कौलतन्त्र दिशि सङ्केत करैत अछि, एहि हेतु भास्कररायक कौल-लक्षण द्रष्टव्य।[१८४] एहि लक्षणमेँ स्पष्टतः सामरस्यक सङ्केत अछि। भास्कररायक स्वारस्य इहो बूझि पड़ैत अछि। [ ओही टीकामे ] जे देहस्थिता शक्ति केँ एहि मार्गमे सत्ता देल जाइत अछि।

१५८. एहिसभसँ ई सिद्ध करब सुलभ भए जाइत अछि जे चर्यागीतकार सिद्धसभ सामान्यतया कौल छलाह। आब ऊपर देल प्रमाणमे सक्कत्तु प्रमाण अछि कापालिकक प्रसङ्ग। कौल मार्गहिक एक शाखा थिक कापालिक,[१८५] तेँ कापालिककेँ कौल कहि सकैत छी; हँ, कौल केवल कापालिके नहि, अनेकआम्नायक समन्वय थिक। ( कौल उपासनामे योगक निर्देश तं अछिए, जे आगाँ स्पष्ट भए जाएत, जकरा सिद्धगण अपनओने छलाह; तेँ 'जोइ' )

१५९. अन्तः साधनापर जोर भेटैत अछि, चक्रसाधनाक दृष्टिएँ। कौल तन्त्रग्रन्थक दार्शनिक पक्ष दिशि ध्यान देलासँ इहो स्पष्ट भए जाएत जे जे गूढ़ विषय-सभ स्वतन्त्र दर्शनरूपमे अन्यत्र विचारल अछि से प्रवाहमय संस्कृतमे शिवक मुखसँ आगममे प्राप्त अछि। चित्तशोधन तथा चक्रसाधनक प्रसङ्ग विचार कौलहु ग्रन्थमे[१८६] भेटैत अछि जे आगाँ स्पष्ट भए जाएत। तेँ ई कहब युक्तिसङ्गत नहि जे ई विषय कौलाचारक वस्तु नहि थिक [१८७]।

---

१८२। म० मा० र० पृ० ६७ पा० टि० तथा पृ० १२४—[ बौ० त० क हेतु द्र०—
A. I. T. B —P. 110 f. n.]

१८३। बौ० त० क हेतु A. I. T. B.—P. 158
हि० त० क हेतु कु० त० उ० १२ समस्त दृष्यान्तस्वरूप

१८४। "कुलं शक्तिरिति प्रोक्तमकुलं शिवउच्यते।
कुलेऽकुलस्य सम्बन्धः कौलमित्यभिधीयत॥"—इति तन्त्रोक्तम्। शिवशक्ति-सामरस्यं वा तद्वती कौलिनी॥—ल० स० पृ०५३ ( टी० )

१८५। T. S. T. R. L.—P. 54

१८६। दृष्टान्तस्वरूप कु० त०—उ० १५ श्लो० ३६ तथा
मायातन्त्र पृ० ५

१८७। समयाचारीक एहि शङ्काक उत्तरमे कु० त० उ० २ श्लो० १२ द्रष्टव्य जाहिसँ समस्त समयाचार कुलाचारहिक अङ्गभूत सिद्ध।

१६०. एहिसभक आधारपर ई मानल जाए सकैत अछि जे चर्यागीतक रचयिता-सभ कौल छलाह, कापालिक छलाह तथा चित्तशोधनपूर्वक बाह्य तथा अन्तः दूनू शक्तिक साधना, यौगिक चर्या करैत छलाह। साधन कए, परिणाममे, आध्यात्मिक दृष्टि पाबि लेने छलाह, तेँ बाह्य उपचारक प्रयोजन नहि रहि गेल छल, एहन अनुमान कएल जाए सकैत अछि। कान्हपादक 'कपाली' तथा 'जोइ' एवं भुसुकुपादक 'जोइआ' एहि अनुमानकेँ नीक जकाँ पुष्ट करैत अछि, सेहो सिद्ध भए गेल।

## चित्तशोधन वा विकल्पक्षय

१६१. तन्त्रमे वा अन्यहु दर्शनमे परिणाममे चित्तक विकार दूर करब आवश्यक बुझल जाइत अछि। एही विकारनाशकेँ पारिभाषिक शब्द 'विकल्प'सँ लक्षित कएल जाइत अछि, जकर क्षेत्र बड़ व्यापक अछि, परमसत्यक अनुभूतिसँ अतिरिक्त समस्त कायिक, मानसिक तथा वाचिक व्यापार विकल्पक परिधिमे आबि जाइत अछि। आध्यात्मिक दृष्टिएँ विचारला उत्तर ब्रह्मावगतिसँ अतिरिक्त नीक अधलाह सभ काज भ्रान्तिमूलके अछि, अविद्याजनिते अछि, 'विकल्प'क शाब्दिक अर्थ भ्रान्तिए मानल गेल अछि[१२८]। चर्यागीतक संस्कृतटाकामे उक्त दृष्टिएँ देखि अनेक स्थल-पर चित्तशोधनक अभिप्रायमे विकल्पनाश वा विकल्पक्षयक सङ्केत कएल गेल अछि[१२९]।

१६२. चर्यागीतमे भावाभाव, जन्ममरण, भव-मुक्ति, रसरसायन, माया-मोह, वासना, घृणाशङ्कादिक पाश [ अष्टपाश ], पञ्चविषय, स्वप्न, अविद्या, हरिहरब्रह्मा [-क विग्रह], शुभाशुभफलोत्पादक कर्म-चक्र तथा नाद-विन्दु पर्यन्तकेँ विकल्पक रूपमे देखल गेल अछि [ पोथीक अन्तमे शब्दानुक्रमणिका द्रष्टव्य ]।

१६३. शब्दतः विकल्पक उल्लेख कोनहु गीतमे नहि भेल अछि, किन्तु अर्थतः चित्त-शोधनक प्रकरणमे विकल्पनाशक उपदेश देल गेल अछि, वा विकल्प नष्ट भए गेल अछि, से देखाओल गेल अछि। आगाँ गीतक व्याख्यासभसँ तथा पुस्तकक अन्तमे जोड़ल शब्दानुक्रमणिकासँ ई स्पष्ट भए जाएत जे उपर्युक्त कोन विकल्प कतए लक्षित भेल अछि।

---

१२८। श० को०—'विकल्प' शब्द द्रष्टव्य

१२९। द्रष्टव्य च० गी० को० पृ० ३१, २७, ३१, ५२, ५७, ६५, ७६, ११६. १२२, १४३ तथा पृ० १४६

१६४. प्रस्तुत निबन्धांशक उद्देश्य एतबे देखाएब अछि जे सामान्यरूपमे सिद्धगण चित्तकेँ कोन रूपमे देखैत छलाह तथा ओकरा विकसित करबाक हेतु विकल्पक्षय आवश्यक कोना मानैत छलाह।

१६५. चर्यागीतसभमे कतहु चित्तकेँ 'चित्तराज' कहल गेल अछि'अ' कतहु ओकरा मूससन तुच्छ चञ्चल जीव मानल गेल अछि। से किएक? ई विरोध किएक?

१६६. एकर समाधानमे ई कहब उपयुक्त प्रतीत होइत अछि जे प्राप्तपर्णता चित्तकेँ सिद्धलोकनि परमात्मा जकाँ व्यापक माँनैत छलाह, स्वतन्त्र मानैत छलाह तथा ताहिसँ पूर्व विकल्पयुत चित्तकेँ समस्त पतनक मूल मानि सुधारब आवश्यक बुझैत छलाह। किन्तु, सुधारबाक मूलमे एहि प्रकारक विश्वास छल जे एहि चित्तमे प्रचण्ड शक्ति निहित छैक, केवल मायाक विक्षेप-आवरणात्मक आभराहटिक कारणेँ ओ अनुभूत नहि होइत अछि। स्थैर्यपूर्वक साधनासँ विकल्प-क्षय भेलाउँ चित्तक पारमार्थिक सत्ता अनुभूत होएत, चित्त सामान्य चञ्चल चित्त नहि रहि, (सामान्य चित्त नष्ट भए) प्रबुद्ध चित्त वा चिद्रूपमे अनुभूत होअए लागत, एही विश्वाससँ समस्त साधनामे ओ सभ अग्रसित होइँत छलाह।

१६७. एहिठाम बोधिचित्तक दुइगोट स्वरूप विवृत-संवृत-स्वरूप देखल जाए। जेना वेदान्ती एकहि परमसत्य ब्रह्मकेँ पारमार्थिक तथा व्यावहारिक रूपमे देखैत छथि, तहिना बौद्धतान्त्रिक एकहि बोधिचित्तकेँ पारमार्थिक [विवृत] तथा व्यावहारिक [संवृत] रूपमे देखैत छथि[१९०]। एही प्रकारक समानता शैवहु दर्शनक सङ्ग भेटैत अछि—जेना शैव दार्शनिक वा प्रत्यभिज्ञादर्शनवादी एकहि परमशिवकेँ [पारमार्थिक] चित् [वा चिति] तथा चित्तरूपमे देखैत छथि[१९१], तहिना बौद्धतान्त्रिक एकहि परमतत्त्व बोधिचित्तकेँ विकसित अवस्थामे परमार्थबोधिचित्तरूपमे तथा व्यवहारजगतपर उतरला पर संवृत-बोधिचित्तरूपमे देखैत छथि। पारमार्थिकस्वरूपबोधे समस्त दर्शनक लक्ष्य अछि, ओहि स्वरूपकेँ चित् कहल जाए वा चिति[१९२]। आगाँ शाक्तदृष्टिकोणक विचार कएल जाएत, तत्काल एतबे सूचित करब प्रयोजनीय अछि

---

१९०। A. I. T. B.—P. 163

१९१। प्रत्य० हृ० सूत्र ५

१९२। ऐजनमे 'चिति' शब्द द्रष्टव्य सूत्र ५।

जे संवृतबोधिचित्तक उत्थानकेँ वा शैवदर्शनक शब्दमे चित्तविकासकेँ, लक्ष्य कए सिद्धगण विकल्पक्षयक निर्देश कोना कएने छथि।

१६८ जन्म-मरणादि विकल्पसभक जे परिगणना पूर्व कएल गेल अछि, ताहिमे अनेक विकल्पक चर्चा तँ शब्दतः कौलदर्शन वा कौलतन्त्रमे भेटैत अछि। एहि विषयकेँ प्रमाणित करबासँ पूर्व विकल्पक्षयक सामान्य उपायदक दिग्दर्शन उपयुक्त बूझि पड़ैत अछि। प्रत्यभिज्ञाहृदयमे क्षेमेन्द्र अन्तमे सच्चिदानन्दलाभक उपाय सभक सङ्केत करैत कहैत छथि—

"विकल्पक्षय-शक्ति-सङ्कोच-विकास-वाहच्छेदाद्यन्तकोटिनिभालः आदि एतए उपायसभ थिक"[१९३]।

१६९ हमरा जनैत चर्यागीतकारक साधनाक मूलभूत क्रम इएह छल। शक्ति-सङ्कोच-विकासादि अन्य उपायमे आगाँ कुण्डलिनीयोग तथा महामुद्रा-साधन आओत। सम्प्रति प्रस्तुत अछि उक्त सूत्रमे प्रथम उपात्त विकल्पक्षयरूप उपाय। विकल्प, जेना कहल गेल अछि, समस्त जागतिक काय-वाक्-चित्त [ बौद्धक त्रिधातु ][१९४]-सम्बन्धी व्यापारकेँ अपनामे अन्तर्भूत कए लैत अछि, प्रत्यभिज्ञा-शास्त्रक आशय तँ एतेक दूर धरि परिलक्षित होइत अछि जे बन्धन-मोक्षक प्रसङ्ग तारतम्यक विचारो विकल्पहिमे परिगणित अछि। कारण, ओहो तँ साभिलापे थिक, स्वलक्षणाभास 'परं ज्ञानं' मात्र अविकल्प वा सङ्कल्प थिक[१९५]। तँ ई अनुमान कएल जाए सकैत अछि जे सिद्धगण एही प्रत्यभिज्ञावादी दृष्टिएँ देखि वा कमसँ कम ओकर मर्म जनैत, जन्म-मरण, भव-बन्धन-मोक्ष, माया जाल [ इन्द्रजाल ], पञ्चविषयानुभूति, वासना, भयघृणादि पाश, काल प्रभृति तत्त्व वा भावकेँ, अभावहुकेँ, एतेक दूर धरि जे हरिहरब्रह्मभट्टकेँ आ' परिणाममे नाद-विन्दु पर्यन्तकेँ विकल्पे मानल।

१७० यद्यपि सम्प्रति प्रयास कएल जाइत अछि जे चर्यागीतमे लक्षित अधिकसँ अधिक विकल्पकेँ तान्त्रिक ग्रन्थमे देखल जाए, तथापि ई बिनु तारतम्ये कहि सकैत

१९३। विकल्पक्षयशक्तिसङ्कोचविकासवाहच्छेदाद्यन्तकोटिनिभालनादय इहोपायाः॥

—प्रत्य० हृ० सूत्र १८

१९४। आगाँ शब्दानुक्रमणिका द्रष्टव्य।

१९५। ननु स्वलक्षणाभासं ज्ञानमेकं परं पुनः।
साभिलापं विकल्पाख्यं बहुधा नापि तद्द्वयम्॥

—ई० प्र०—१ अ० २ आ० १ का०

छी जे कोनो विकल्पविशेष जँ तन्त्रग्रन्थमे नहि भेटए वा तन्त्रोक्त कोनो विकल्पविशेष जँ चर्यागीतमे नहि भेटए तँ मुख्य सिद्धान्तक वाधा नहि होएत। कारण, अगणित विकल्प अछि; जन्म मरणक चक्रमे पड़ि मनुष्य वा कोनो प्राणी अजस्र वासना, क्रिया तथा चिन्तनमे लागल रहैत अछि, अगणित काज करैत अछि वा विचार व्यक्त करैत अछि। सभ तँ विकल्पे भेल सभक गणना सम्भव नहि, प्रयोजनीयो नहि। तखन तँ अधिकसँ अधिक एतबे संभव वा प्रयोजनीयो जे एक आचार्य वा दार्शनिक कविकेँ एक विकल्प दिशि अधिक ध्यान जान्हि, दोसरकेँ दोसर दिशि।

१७१. तँ सामान्यतया उक्त विकल्पसभकेँ अधिक हेय तथा उल्लेखनीय मानल गेल अछि चर्यागीतमे।

१७२. ओहिसभ विकल्पमे जन्म-मरण, सुखदुःख, शुभाशुभ, काल, रागद्वेष, मायाजाल, इन्द्रियक वासना, बन्धन मोक्ष तथा ब्रह्मा-विष्णु-महेश पर्यन्तक उल्लेख कुलार्णवक प्रथमहि उल्लासमे भेटैत अछि। ईश्वरशङ्कर देवीकेँ कहैत छथिन्ह— "समस्त ब्रह्माण्डमे केवल परब्रह्मरूपी निष्कल शिवेटा निर्विकल्पक छथि, अन्य सभ तत्त्व वा जीव विकल्पाश्रित अछि। नीक अधलाह कर्मसँ जीव गर्भादिक उपाधिसँ पराभूत भएकेँ जन्म-मृत्युक चक्रमे पड़ल रहैत अछि[१९६]। शुभाशुभकर्मक विराम होएब कठिन, तेँ एहि शरीरकेँ ज्ञानाश्रित करब आवश्यक। हे देवि! अहाँक मायासँ विमोहित भए जीव देखितहुँ देखैत नहि अछि, सुनितहुँ सुनैत नहि अछि[१९७]। एहि गम्भीर कालसागरमे डूबि मृत्युरागजरासँ ग्रसित भए किछु नहि बुझैत अछि[१९८]। ई भव [ संसार ] सभ पापक घर थिक, अबन्ध-बन्धन महाविष थिक[१९९]। देहस्थ इन्द्रिय तस्करक विषयाहारसँ अशेष वित्त [ तत्त्वज्ञान ]सँ वञ्चित भए लोक बिनष्ट भए जाइत अछि[२००] रहल प्रश्न मोक्षक। ओ मोक्षो तर्क-वितर्कसँ साध्य नहि, साक्षात् तत्त्वज्ञानहिसँ संभव[२०१] [ तात्पर्य ई जे ईश्वरक कृपासँ अनायास सहज-रूपमे ओ प्रकाश आबि जाइत अछि, अन्य कोनहु प्रकारेँ नहि, तेँ 'साक्षात्' शब्द ]।

१९६। कु० त०-उ० १ श्लो० ८-१०

१९७। ऐजन-ऐजन-श्लो० ३५

१९८। ऐजन-ऐजन-श्लो० ३६

१९९। ऐजन-ऐजन-श्लो० ६१-६२

२००। ऐजन-ऐजन-श्लो० ६६

२०१। ऐजन-ऐजन-श्लो० ८६

श्रेयस्मे लागल रहब आवश्यक; कारण, ब्रह्माविष्णुमहेशादि देवतासभ, भूतजाति-सभ,नाशहि दिशि दौड़ैत छथि [२०२]। एतए जेहन अहाँ शुभाशुभ कर्म करब, दोसर ठाम अहाँकेँ तेहने फल भेटत, गाछकेँ जेना सीचब, तेना फल देत" [२०३]।

१७३ एहिठाम ध्यान देल जाए जे सरह, भुसुकु प्रभृति किछु सिद्धगण जाहि जन्म-मरण, बन्धन-मोक्ष, पञ्चपत्तन ( 'रूपवेदनासंस्कारविज्ञान' पञ्चस्कन्धपर आश्रित अहङ्कार ममकारादि ), पञ्चविषयानुभूति, काल, मायामोह-समुद्र, शुभाशुभ-जलसेक [ 'पानी' ] तथा हरिहरब्रह्मभट्टकेँ विकल्परूपमे देखने छथि, सभक मर्म एकहि उल्लासमे मेटि जाइत अछि।

१७४. चर्यागीतमे भयघृणाक परित्याग सूचित कएल गेल अछि [ आर्यदेवक गीतमे], घृणाक परित्यागपर तँ आओर अधिक जोर अछि[२०४]। कौलतन्त्र भयघृणाक तँ गपे कोन जे अष्टपाशक परित्याग देखए कहैत अछि; ओ आठो पाश अछि घृणा, शङ्का भय, लज्जा, जुगुप्सा, कुल, शील तथा जाति [२०५]। ततबे नहि, सिद्धक महासुख [ सामरस्यसुख ]केँ लक्ष्य करैत श्रीशङ्करजी कहने छथि जे पाशबद्ध व्यक्ति पशु बुझल जाए आ' पाशमुक्त भेलासँ महेश्वर[२०६]। म० म० कविराजजी सेहो अपन कृतिमे एहि पाशच्छेदक सङ्केत देने छथि [२०७]।

१७५ रस-रसायनक इच्छाकेँ सरहपाद [ गी० सं० १ ] हेय बुझैत छथि तकर पृष्ठभूमिमे सिद्धलोकनिक चलाओल रसविद्या अछि जकर उल्लेख म० म० कविराजजी कएने छथि [२०८]। संभव थिक सरह सिद्धि पएबाक पश्चात् मूलतत्त्वक अवगति भए गेलापर एहन धारणा रखैत छथि जे इहो विकल्पे भेल, तेँ त्याज्य थिक। जीवन्‍न्तमे सत्य-दर्शन भए गेलापर सिद्धलोकनि एहिना सोचि अएलाह अछि। अन्य सिद्धिकेँ हेय बिनु बुझने मोक्ष दिशि प्रवृत्त होएब, सकाम उपासना छुटब, असंभव।

१७६ अविद्याक क्षेत्र बड़ व्यापक अछि, सकलशास्त्र समुत्थित विद्यो अविद्ये

२०२। ऐजन-ऐजन-श्लो० ४६
२०३। ऐजन-ऐजन-श्लो० ५३
२०४। आ० १, का० ३
२०५। कु० तं०-उ० १३ श्लो० ६०
२०६। ऐजन-ऐजन-श्लो० ६१
२०७। ता० वा० शा० द०—पृ० ५६
२०८। भा० सं० सा० [ २ ] पृ० २७१

थिक, शुद्ध अध्वन्मे आएल छत्तीस तत्त्वक प्रथम पाँच तत्त्व मात्र विद्याक अधिकारी छथि, जाहिमे शुद्ध विद्या पाँचम छथि[२०९]। अन्य विद्याकेँ तँ शैवदर्शनमे मायाक कञ्चुकी मानि लेल गेल अछि[२१०]। एही दृष्टिएँ संभवतः, सरहपाद तथा कान्हपाद अविद्याकेँ विकल्प मानने छथि [ स० ४, का० २ ]।

१७७. भुसुकु तथा कान्ह जे इन्द्रजालक चर्चा करैत छथि [ भु० ५, का० ११ ], से तँ 'पराप्रवेशिका' तन्त्र-दर्शन-ग्रन्थमे भेटितहिँ अछि—ऐन्द्रजालिकक इन्द्रजाल जकाँ परमेश्वर विश्वक सृष्टि करैत छथि[२११]।

१७८. वासनहिकेँ तँ सभ दिनसँ समस्त पतनक मूल मानल गेल अछि। तेँ तँ कौल भक्त-ज्ञानी चक्रपाणिनाथ अपन 'भावोपहार'मे अपन समस्त वासना-विकल्पकेँ अद्वैताग्निमे होम कए दैत छथि[२१२]। आ' भुसुकुपादक धारणा सेहो सएह छन्हि [ गी० सं० ८ ]।

१७९. नाद-बिन्दुकेँ शैवशाक्त दर्शन सत्ता अवश्य दैत अछि, किन्तु उष्णीषसँ निम्ने ओ दूनू बुझल जाइत अछि। बिन्दूर्ध्वकला-नादशक्तिक उपरिगत नादान्त तेजसँ व्यपदेश्य प्रकाशक धामकेँ भक्त दार्शनिक उष्णीष मानैत छथि तथा श्लोकक वृत्तिमे व्युत्पत्ति 'उषणे विकलपप्लोषणे ईशम्' करैत छथि[२१३]। एहिठाम विकलपक्षयक सङ्केत स्पष्ट अछि तथा नाद-बिन्दुक विकल्पत्व [ निर्विकल्पतासँ न्यूनता ] असंदिग्ध अछि। आ' सएह विश्वास अछि सरहपादक [ गी० सं० २ ]। उपर्युक्त सभ विकल्पसँ अकछाए सिद्धगण चित्तप्रणाशे नीक बुझैत छथि। यथा, सरहपाद एक गीत ( सं० ४ )मे शून्य-हस्तसँ मनोनाश चाहैत छथि। शैवदर्शनक हेतु 'भावोपहार'क ओ स्थल तुलनीय अछि, जतए प्रकाशाकाश-हस्तसँ वासनाक आहुति वर्णित अछि[२१४]।

१८०. चित्तशोधनक सत्ता समस्त तान्त्रिक वाङ्मयमे भेटैत अछि। स्पन्द-कारिकाक प्रसिद्ध श्लोकमे 'क्षोभप्रलय'केँ परमपदप्राप्तिक माध्यम मानल गेल

---

२०९। पराप्रवेशिका पृ० ६ तथा Kashmir Shaivaism P. 72, 74

२१०। ऐजन पृ० ८-९ तथा ऐजन P. 75

२११। ऐजन —पृ०८

२१२। भावोपहारः—श्लो० ४०

२१३। ऐजन —श्लो० २६

२१४। ऐजन —श्लो० ४१

अछि[२१५], कुलार्णवमे कुलज्ञानक अधिकारी शुद्धचित्तहि व्यक्तिकेँ मानल गेल अछि[२१६], डेगडेगमे चित्तकेँ समाहित करबाक आदेश अछि। आओर ई समाहित करब आ' विकल्पक्षय अन्योन्याश्रित अछि, बिनु ओकरे ई कठिन, बिनु एकरे ओ कठिन। जे किछु हो, ई स्मरण राखब आवश्यक जे चित्त मन्त्र [२१७] थिक, जेना मन्त्रक समुचित साधनसँ चतुर्वर्गसिद्धि, तहिना चित्तक समुचित शोधन-साधनसँ परमशिवत्वलाभ निश्चित, तेँ चित्तकेँ चित्मे परिणत कए कौलसाधना कर्त्तव्य, सिद्धक इएह धारणा छल।

## शक्ति-साधन

१८१. एहिसँ पूर्व चित्त-शोधन आओर विकल्पक्षय मुक्ति [ निर्वाण ]क हेतु आवश्यक मानल गेल अछि, किन्तु ई विकल्पक्षय सुलभ नहि। चित्तशोधनक निषेधात्मक रीति ओतेक दूर धरि सफल नहि भए सकत अछि, तेँ तँ स्मार्त्त निवृत्तिमार्गकेँ छाड़ि 'भोगा योगायते'[२१८] तान्त्रिक सिद्धान्तकेँ प्रश्रय दए कौल उपासनाक पद्धति चलाओल गेल। आहि कौल उपासनाक प्रबलतम पक्ष अछि शक्ति-साधना।

१८२. एहि शक्ति-साधना दिशि प्रवृत्ति वज्रयान वा सहजयानमे सेहो आबि गेल। प्रज्ञा तथा उपाय, जकरा क्रमशः शून्यता-करुणाक प्रतिरूप मानल गेल,[२१९] पाछाँ आबि क्रमशः भगवती आ' हेरुकक वा देवक रूपमे देखल जाए लागल।

### प्रज्ञाक विविधरूपकल्पना

१८३. बौद्धतन्त्र प्रज्ञाकेँ भगवती वा महामुद्रा, युवती, मुद्रा [ साधनामे सहचरी शक्ति ] वा वज्रकन्याक रूपमे कल्पित कएल गेल। एतेक दूर धरि जे प्रज्ञाकेँ योनिरूप मानल जाए लागल। हेवज्रतन्त्रमे प्रज्ञाभगवतीकेँ जननी, भगिनी, रजकी, नर्तकी, दुहिता, डोम्बी आदि कहि संबोधित कएल गेल अछि तथा क्रमशः ओहि रूपक अनसार कार्य्य देखाओल गेल अछि। अवाङ्मनसगोचर रहबाक कारणेँ, इन्द्रियग्राह्य नहि रहबाक कारणेँ, हुनका 'अस्पर्शा' सेहो कहल गेल [२२०]।

---

२१५। स्प० का०—१ नि० ६ का०

२१६। कु०त०—उ० २ श्लो० ३३

२१७। 'चित्तं मन्त्रः'—शि० सू०—प्र० २ सू० १

२१८। कु० त०—उ० २ श्लो० २४

२१९। A. I. T. B.—P. 90

२२०। ऐजन—P. 102-103

१८४. श्रीगुह्यसमाजतन्त्रमे षोड़शवर्षीया नारीकेँ, साधनामे उपयुक्ता बनला पर, 'प्रज्ञा' कहल गेल अछि ; 'पञ्चक्रम'मे, जाहिमे शून्य-अतिशून्य-महाशून्य-सर्वशून्य चतुर्विध शून्यक निर्देश अछि, शून्यताकेँ प्रज्ञा तथा अतिशून्यकेँ उपाय मानल गेल अछि [२२१]।

१८५. कतहु कतहु प्रज्ञाकेँ योनि मानबाक सङ्ग उपायकेँ लिङ्गरूपमे कल्पित कएल गेल। हेवज्रतन्त्रमे प्रज्ञाक-प्रतीक भगकेँ 'पद्म' तथा उपायक प्रतीक लिङ्गकेँ 'वज्र' कहल गेल[२२२]।

१८६. योगक क्षेत्रमे प्रज्ञा उपायकेँ क्रमशः ललना-रसना, वाम-दक्षिण, आलि [स्वर]-कालि [व्यञ्जन] तथा रवि-शशि मानल गेल। ललना-रसनाक मिश्रित रूपकेँ अवधूती कहल गेल[२२३], एहिठाम शक्तिवाद देखाढ़ भए गेल; कारण, मिश्रित रूप [पुरुष-स्त्रीक रूप]मे स्त्रीक प्रधानता अछि [तेँ ने अवधूती]।

१८७ मन्त्र-क्षेत्रमे प्रज्ञा-भगवतीकेँ 'ए' सँ लक्षित कए प्रज्ञोपाय-सामरस्यक प्रतीक 'एवं' बीज मानल गेल। प्रज्ञापायक मैथुनक कल्पना बढ़ि गेल आ' ए-प्रज्ञाक सङ्ग व-उपायक मैथुन भेलापँ अनुस्वार वा बिन्दुकेँ मैथुन-समुद्भूत धातुरूप कल्पना कएल गेल, जकर अर्थ भेल अखण्डज्ञान [२२४]। हेवज्रपञ्जिकामे एकेँ योनिरूप आ' व केँ लिङ्गरूप [वज्ररूप] मानल गेल,[२२५] एकेँ योनि, वह्निगेह तथा शृङ्गाट तँ शैवहु तन्त्रमे मानल गेल अछि, [२२६] ई समानता ध्येय।

१८८. उक्त सिद्धान्तसभक आधारपर साधना दू रूप धएलक—महामुद्रा-साधन तथा शरीर-योग-साधन [चक्रनाड़ी-साधन]। महामुद्रासाधनक पृष्ठभूमिमे प्रज्ञाभगवतीक युवती, डोमिनी आदि नारी-रूपक कल्पना तथा योनिरूपकल्पना एवं शरीर-योगसाधनक पृष्ठभूमिमे प्रज्ञा-उपायक ललना-रसना-नाड़ी रूपक कल्पना तथा महती शक्तिक मध्यभूता ब्रह्मनाड़ीशक्तिरूपक कल्पना सत्ता रखैत छल।

१८९. हमरा जनैत एहि दुनू साधनाकेँ एक व्यापक शब्द 'शक्ति-साधना'सँ लक्षित कएल जाए सकैत अछि। शिव-शक्ति-साधनामे शिव-साधना नहि कहाए

२२१। A. I. T. B.—P. 104-105.
२२२। ऐजन —P. 105-106
२२३। ऐजन —P. 106
२२४। ऐजन—P. 110
२२५। ऐजन—P. 111
२२६। म० मा० र० पृ० १७मे उद्धृत त० वि० सँ

शक्ति-साधना कहबाक अभिप्राय अछि ई सूचित करब जे परम-शिवक शिवांशके 'उपाय' शब्दे कहि, हुनक शक्त्यंशके, विमर्शांशके 'प्रज्ञा' शब्दे अधिक सत्ता देल गेल, जे पक्षपात उपर्युक्त 'अवधूती' शब्दसँ, 'प्रज्ञा-पारमिता' सँ [ उपाय-पारमिता नहि कहल गेल तें ] तथा एहन एहन भावनासँ सिद्ध होइत अछि जे भग समस्त क्लेश-मारादिक भञ्जन करैत अछि [227] [ लिङ्गक प्रसङ्ग एहन विषय नहि कहल गेल अछि, जे शुद्ध शैवसाधनामे कहल जाइत अछि ]।

१६०. अस्तु, आब शक्ति-साधनाक अङ्ग महामुद्रा-साधनक विचार उपस्थित कए शरीर-योग-साधनक विचार कएल जाएत। दूनूक प्रसङ्ग विचार करबाक क्रममे हिन्दूतन्त्रक प्रभाव देखाओल जाएत। एक विषय कथ्य, बौद्धतन्त्रक समस्त सिद्धान्त प्रस्तुत आलोच्य कृति बौद्धगानमे नहि भेटैत अछि, तें विचारक क्रममे अनुपयुक्त विषय-समक विचार छोड़ि देल जाइत अछि।

## महामुद्रा-साधन वा मैथुन-साधन

१६१. उपर्युक्त पृष्ठभूमिसँ ई स्पष्ट भए गेल होएत जे महामुद्रा-साधन बौद्ध-तन्त्रमे कोना चलल। सहजयानमे ई साधना नीक जकाँ विकसित भए गेल, चर्यागीतक टीकासँ सएह प्रतीत होइत अछि।

१६२. दोहाकोषमे चारि मुद्राक उल्लेख भेटैत अछि—कर्ममुद्रा, धर्ममुद्रा, ज्ञानमुद्रा आ' महामुद्रा। एहि चारिमे तीनि मुद्राक चर्चा चर्यागीतक संस्कृतटीकामे अधिक ठाम भेटैत अछि—कर्ममुद्रा, ज्ञानमुद्रा तथा महामुद्राक [228]।

१६३. किन्तु गीतसभमे मुद्राक शब्दतः उल्लेख केवल एकेठाम भेटैत अछि, से भेटैत अछि महामुद्राक महामुदेरी' शब्दे ताड़कपादक गीतमे। प्रायः एही आधार-पर डा० धर्मवीर भारती अपन कृतिमे, नैरात्माकेँ महामुद्रारूपमे परिकल्पित कए सिद्धगण रति [ गोति ] भाव सहित साधन करैत छलाह, से विषय कहने छथि [229]। अस्तु, ताड़पादक गीतकेँ प्रमाण मानि ई कहल जाए सकैत अछि जे सिद्धलोकनि व्यापकहि अर्थमे महामुद्राकेँ स्वीकार कएने छलाह। उक्त गीतक संस्कृतहु टीकामे

२२७। A. I. T. B.—P. 105 f. n.

२२८। सिद्धसाहित्य—पृ० २१६

२२९। ऐजन —पृ० २२०

कोनो महामुद्रा-वैशिष्ट्य नहि देखाओल गेल अछि, उपर्युक्त शक्तिसाधनाङ्गभूत महामुद्रा साधनहिक अर्थमे लेने छथि, से भासित मात्र अछि ।

१६४. जे किछु हो, इतिहाससँ एहन एहन विषय ज्ञात होइत अछि जे लुइपाद बङ्गालमे महामुद्रासिद्धि प्राप्त कएल,[२३०] अभिषेकक पश्चात् महामुद्रा-साधन सम्पन्न होइत छल एवमादि [२३१]। एहि महामुद्रा-साधनमे सिद्धलोकनि कोना प्रवृत्त छलाह तथा ओहि साधनपर हिन्दूतन्त्रक प्रभाव कोना पड़ल छल, से देखलासँ पूर्व मुद्राक लक्ष्यार्थपर विचार कएल जाए ।

१६५. डा० धर्मवीर भारती 'मुद्रा'क अर्थ, 'मोदप्रदा केनिहारि' 'कहि', ई सूचित कएने छथि जे बौद्धतन्त्रक ई अपन व्याख्या थिक, [२३२] किन्तु प्रायः हुनका शिवोक्त कुलार्णवतन्त्रपर दृष्टि नहि गेल, तेँ एना कहल। 'कुलार्णव'मे 'मुद्रा'क व्युत्पत्तिक प्रसङ्ग ईश्वर [ श्री शिवजी ] देवीसँ कहैत छथि—

"देवतासभकेँ आनन्द दैत अछि तथा मनकेँ द्रवित कए दैत अछि, मुद दैत अछि, तेँ मुद्रा" [२३३]।

१६६. अस्तु, ई अर्थ वस्तुतः उपयुक्त अछि आ आश्चर्य नहि जे एहो आनन्द देनिहारि स्त्रीक रूपमे कल्पित कए भगवतीक साधना करब, सएह अभिप्राय हो 'महामुद्रासाधन'क। आओर इहो स्पष्ट भए जाएत जे ओहि रूपमे भाविता शक्ति 'महामुद्रा' कहबैत छथि ।

१६७. 'महामुद्रा' शब्दक उल्लेख ( मुद्राक प्रयोग तँ देखाओले गेल अछि ) शैवशाक्तहु तन्त्रमे भेटैत अछि । महार्थमञ्जरीक प्रमाण देखल जाए—

"आनन्दोल्लास श्रीमहासिद्धिसौभाग्यकेँ क्षुल्लकीकृत केनिहारि जाहि दशामे देखल जाइत छथि, सएह दशा थिक महामुद्रा" [२३४]। तात्पर्य अछि जे ओ आनन्दोल्लास-श्री आहि उक्त दशामे महामुद्रा मानल जाथि। टीकाकारहुक अभिप्राय ओहिठाम इएह प्रतीत होइत अछि। ततबे नहि, बौद्धतन्त्रक ज्ञानमुद्राक चर्चा सेहो भेटैत अछि शाक्ततन्त्रग्रन्थ 'शारदातिलक' [ पृ० १९६ टीकाभाग ] मे ।

२३०। सिद्धसाहित्य—पृ० २२२

२३१। ऐजन —पृ० २२३

२३२। ऐजन —पृ० २२०

२३३। कु० त०—उ० १७ श्लो० ५७ –मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि द्रावयन्ति च ।
तस्मान्मुद्रा इति ख्याता दर्शितव्याः कुलेश्वरि ॥

२३४। महार्थमञ्जरी—श्लो० ५०

१९८. अति रहस्य जानि ग्रन्थसभमे महामुद्राक प्रसङ्ग समग्र विषय नग्नरूपमे नहि राखल गेल अछि, तथापि विपरीतरति आदिक सङ्केत भेटैत अछि। अस्तु, मैथुनक विचारसँ पूर्व आब चर्यागीत तथा सिद्धक प्रपङ्ग सामान्य सूचनाक उल्लेख करब आवश्यक, जे प्राप्त होइत अछि।

१९९. सिद्धलोकनिक महामुद्रासाधनक सङ्केत पूर्वहु देल गेल अछि। सरहपाद, शबरपाद, लुइपाद, दारिकपाद, डोम्बीपाद, कम्बलाम्बरपाद तथा कुक्कुरीपाद सशक्ति साधन करैत छलाह, से विषय शक्तिक नामोल्लेखक सङ्ग हुनका लोकनिक जीवन-वृत्तान्तरूपमे प्रारम्भहिमे सूचित कए देल गेल अछि, यथोपलब्ध सामग्रीक आधार-पर[२३५]।

२००. किन्तु, एहि उक्त सिद्धसभमे सभ अपन गीतमे ओहि गुप्त साधनाकेँ स्पष्टतः प्रकट नहि कएने छथि। सङ्ग सङ्ग किछु एहनो सिद्ध छथि, जनिक प्रसङ्ग बाह्य साक्ष्य उपलब्ध नहि अछि, तथापि गीतसभमे ओहि रहस्यमयी साधनाकेँ कोनहु ने कोनहु शब्दमे प्रकट कएने छथि। साधनाक गुप्त प्रक्रिया प्रकट हो वा नहि, भाव धरि प्रीतिहिक थिक से प्रकट भए गेल अछि। संभव थिक जे दोसरो अर्थ ओहि गीतसभमे लागि जाए, किन्तु ई नहि जे मैथुन-परक अर्थ नहि लगैत अछि[२३६]। चर्यागीतक चमत्कारे अछि श्लिष्ट अर्थक योजना।

२०१. भुसुकुपादक गीत [ सं० १ ] मे चित्तकेँ हारण तथा नैरात्मा भगवतीकेँ हरिणी मानल गेल अछि, एकर अर्थे भेल जे साधक भगवतीकेँ अपन चित्तक पत्नी मानैत छथि। पुनः ओ अपन आठम गीतमे वज्र-नौकाकेँ पद्म-धारमे खसबैत छथि [ भग-लिङ्ग-सम्बन्धकेँ लक्ष्य करैत एना कहैत छथि ]। काह्नपाद डोम्बीशक्तिक सङ्ग आध्यात्मिक विवाह लए चलैत छथि, अहर्निश आब सुरतप्रसङ्गे जाइत छन्हि [ द्रष्टव्य गीतसंख्या ८ ]; ततबे नहि, अपन सातम गीतमे ओ ओहि भगवती वा डोम्बीकेँ 'छिनारि' पर्यन्त कहैत छथि। कुक्कुरीपाद हुनक हेतु 'बहुड़ी' तथा 'बिआती' ( जगत्प्रसूती ) शब्दक प्रयोग करैत छथि [ गी० सं० १ ], शून्यचित्तकेँ स्पष्टतः हुनक स्वामी [ खमण भतारि ] मानैत छथि, 'बिआन' आ' 'जान जौवन'क चर्चा करैत छथि [ गी० सं० २ ] तथा कमल-कुलिश-साधनारूप समतायोगक दिग्दर्शन करबैत छथि [ गी० सं० ३ ]। शबरपाद नैरात्मा [ सून नैरामणि ] केँ कण्ठ लगाए राति

२३५। पाछाँ द्रष्टव्य च० गी० क रचयिता सिद्धगणक शक्ति [ नारी- ] साधन।
२३६। सिद्धसाहित्य—पृ० २२०

भरि महासुखसँ, प्रेमभाव [ पेह्म ] सँ, सुतैत छथि [ गी०सं० १ ], पुनः शून्य-महिला [ सुण मेहेली ]क सङ्ग विलास करैत समस्त मायामोहकेँ बिसरि जाइत छथि [गी० सं० २ ]। विरुवापाद महती शक्तिकेँ [कुण्डलिनोरूपमे देखितहुँ] 'शुण्डिनी' कहैत छथि, जकर अर्थ थिक मधुबाला। गुण्डरापाद योगिनीकेँ त्रिअड्डा चापि अङ्कपाली दिंअए कहैत छथि [ त्रिअड्डासँ योन्यग्रो सूचित होइत अछि, नाड़ी तँ सहजहिँ ] तथा हुनक बिनु क्षणो भरि जीबि नहि सकत छथि, हुनक मुख चूमि कमलरस पिबैत छथि। डोम्बीपादकेँ मातङ्गी पोइआ [ नीच जातिक स्त्री ] पार करैत छथि, लीला देखाए। ताड़कपाद महामुद्रामे लीन छथि, अन्य कोनो कामना नहि। घामपाद कमल-कुलिश-साधनाक अनुभव करैत छथि। वीणापादक देवी नचैत-गबैत छथि।

२०२. एहिसभ अर्थयोजनासँ किछु भासित भए गेल होएत जे सिद्धगण महती शक्तिकेँ अपन आत्माक पत्नी मानि साधनामे अग्रसित छलाह। ज्ञानसँ अनूभूतिक सत्ता अधिक छल। एहि अनुभूतिक रहस्यक विचार करबाक पश्चात् ई देखल जाए जे कौलतन्त्रक प्रभाव कोना पड़ल छल।

## मैथुनक रहस्य—कौलभावना

२०३. कौलतन्त्रक सभसँ प्रसिद्ध ग्रन्थ अछि कुलार्णवतन्त्र जकर उल्लेख पहिनहुँ कए ठाम भेल अछि। एहिमे, पाँचम उल्लासमे श्री शिवजी मैथुन-साधनाक वास्तविक स्वरूपक परिचय दैत छथि—

"पराशक्ति आओर आत्मा—एहि दम्पतिक संयोगक आनन्दपर निर्भर जे मैथुन सएह मैथुन मैथुन थिक, अन्य मैथुन केवल स्त्री-निषेवण थिक"[२३७]।

२०४. एहि लक्षणमे दुइ गोट विषय सूचित होइत अछि—प्रथमतः ई जे पराशक्ति शिवरूप आत्माक सङ्ग रतिपदारूढ़ा रहए चाहैत छथि, जकर प्रमाण तन्त्रमे अनेक ठाम भेटैत अछि; सभसँ प्रबल दृष्टान्त थिक विपरीतरतातुरारूपमे भगवतीक ध्यान[२३८]। दोसर विषय ई सूचित होइत अछि जे साधक कोनहु स्त्रीकेँ उक्त भावनासँ देखैत, पराशक्तिक रूपमे देखैत, ओहि स्त्रीक सङ्ग मैथुन करथि।

२०५. ई स्त्री-प्रसङ्ग-प्रश्न एहि हेतु उठैत अछि जे पराशक्ति-आत्माक मैथुनक

---

२३७। कु० त०—उ०५ श्लो० ११२—पराशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्दनिर्भरः
य आस्ते मैथुनं तत् स्यादपरे स्त्रीनिषेवकाः॥

२३८। पुर०—पृ० ७२८ [ उद्धृत ]

अनुभूति होएब बड़ कठिन। तेँ सामान्यतया ई मानल जाइत अछि जे साधक स्त्रीविशेष-केँ शक्तिक प्रतिरूप मानि जँ हुनक सङ्ग मैथुन करताह तँ अभ्यासवशात् ओहि महती शक्तिक सङ्ग अन्तरङ्गता बढ़ल जाएत आ' सामरस्यपदप्राप्ति[२३९] आपेक्षिक सुलभ भए जाएत।

२०६. अस्तु, एही मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमिमे शङ्कर जी गौरीकेँ कहैत छथि, चक्रार्चनक प्रसङ्ग—

"हे कुलेश्वरि! [ चक्रमे बैसल ] पुरुषसभ मद्रूप [ शिवरूप ] थिक आ' स्त्रीगण त्वद्रूप [ गौरीरूप ] थिक"[२४०]।

२०७ फलत नारी-साधनाकेँ कौलमार्गमे प्रमुखता देल जाए लागल। पराशक्तिक प्रतिरूपमे गृहीता नारीकेँ 'शक्ति' कहल जाए लागल। शक्तिपूजासँ उक्त रूपक मैथुन-साधना बुझल जाए लागल। प्राचीन ग्रन्थसभमे एहि शक्तिपूजा, लता-साधन, दूतीयाग आदिक विधान अछि। एहि शक्तिक जातिहुक विचार आएल अछि, कुलाष्टक तथा अकुलाष्टक शक्तिमे चाण्डाली, शौण्डी आदि जातिक स्त्रीक गणना अछि[२४१]।

२०८. एहि शक्तिपूजाक रहस्य भोगमय जीवन बिताएब नहि अछि। वस्तुतः शून्यब्रह्मस्वरूपिणी [पराशक्ति]क स्वरूप ततेक सूक्ष्म अछि जे हुनक सङ्ग साधकक रतिभाव लौकिक दृष्टिएँ वा मनोवैज्ञानिकहु दृष्टिएँ संभव नहि। सङ्ग सङ्ग, परा-शक्यात्ममैथुनक अनभूति साधककेँ होएब आवश्यक [ अर्थात् हमर आत्मा ओहि महती शक्तिमे संयुक्त अछि, एहन अनिर्वचनीय अनुभव होएब आवश्यक ], जकरा आओर स्पष्टकए देल गेल अछि 'मेरुतन्त्र'मे—

"दक्षमार्गमे मातृबुद्ध्या आ' कौलमार्गमे स्त्रीबुद्धिसँ हुनक सङ्ग पञ्चमकारसँ क्रीड़ा कएल जाए"[२४२]।

२०९. तेसर विषय ई अछि जे चित्तशोधन होएब आवश्यक, बिन्दुक ऊर्ध्वगमन,

---

२३९। (i) The Serpent Power—Intro. P. 238-239

(ii) O. R. C.—Intro P. XXXVII

२४०। कु० त०—उ० ८ श्लो० १०२

२४१। कु० त०—उ० ७ श्लो० ४२-४४

२४२। मे० त०—प्र० १० श्लो० ७६३

प्राणक ऊर्ध्वगमन आदिमे बिन्दुक अनावश्यक अधोगमनप्रवृत्ति सर्वथा बाधक। बिनु बिन्दुस्थैर्यक चित्तस्थैर्य आनब कठिन। एहि विषयक सङ्केत बौद्धतन्त्रक सिद्धान्त-साधनाक प्रसङ्ग तँ भेटितहिँ अछि,[२४३] जे अक्षब्धस्थिरमानस भए वर्ण-माला-जप आदिक आदेश कौलहु तन्त्रमे देले गेल अछि[२४४], जे चित्तशोधनक सङ्केत करैत अछि।

२१०. एहि तीनू समस्याक समाधान स्वशक्तिसाधन मात्रसँ संभव। एहि प्रकारक साधनासँ भगवती वा विमर्श वा प्रज्ञाक सङ्ग अभेदभाव बढ़ैत बढ़ैत एक स्थितिमे जाए ओ समाधि आबि जाइत अछि, जकरा बौद्धतन्त्र 'महाराग' कहैत अछि[२४५] आ' कौल-तन्त्र-दर्शन 'प्रकाशानन्दसार' वा सामरस्यानन्द वा 'महाह्लदानुसंधान'[२४६] कहैत अछि।

२११. शाक्त दृष्टिकोणक सत्ता सभसँ अधिक अछि विपरीत-रति-भावनामे। कौलतन्त्रमे स्थल-स्थलपर भगवतीकेँ [ विशेषत: महाविद्याकेँ ] शिवक सङ्ग विपरीतरतातुरारूपमे देखल गेल अछि[२४७]।

२१२. एहि रतिभावनाक मूलमे अछि शाक्त दर्शनक भावना। सृष्टि-दशासँ पूर्व निष्कल परमात्मरूप परमशिव ब्रह्म जकाँ निष्क्रिय रहैत छथि। हुनकामे स्फुरत्ता कोना आओत, स्पन्दन कोना होएत? एहि हेतु हुनक अन्तर्लीनविमर्शक साहाय्य अपेक्षित रहैत अछि। आ' विमर्श तँ पराशक्ति छथि, एहि पराशक्तिकेँ हिन्दूतन्त्र स्वतन्त्रा तथा निषेधव्यापाररूपा मानैत अछि[२४८]।

---

२४३। भा० सं० सा० [२]-पृ० २५८

२४४। [१] लिङ्ग योनौ प्रवेश्य निधुवनासक्तशिवशक्त्योरभेदं विभाव्य अक्षुब्ध-
स्थिरमानसः सन् वर्णमालया अष्टोत्तरसहस्रं शतं वा प्रजप्य ॥
—प्रा० तो० पृ० १०७७

[२] The Serpent Power—Intro. P. 224

२४५। A. I. T. B.—P. 123

२४६। शिवसूत्र—प्र० १ सू० २३

२४७। शवरूपमहादेवहृदयोपरिसंस्थितां।
स्वयोनिं शिवलिङ्गे तु निक्षिपन्तीं मुहुर्मुहुः ॥ विश्वसारतन्त्र-पटल ४ [ पृ० ४० ]

२४८। [ १ ] तस्य स्वाभिन्ना स्वतन्त्रेच्छाशक्तिरेव—ष०त्रि० त०सं०-श्लो० २ क विवरण।
[ २ ] निषेधव्यापाररूपा ॥—The Serpent Power. Intro. P. 33 मे उद्धृत
[ ३ ] सक्रियता, स्फुरत्ता हेतु द्रष्टव्य ऐजन—ऐजन P. 31

२१३. एही दार्शनिक पृष्ठभूमिमे काली-ताराक ध्यान विपरीतरतातुराक रूपमे कएल जाइत अछि, [249] सदाशिव शववत् निष्क्रिय रहैत छथि, हुनकामे स्फूर्त्ति अबैत अछि शक्तिक संयोगसँ। शक्तिए हुनका सृष्टिस्थितिसंहारानुग्रहविलयरूप पञ्च-कृत्यमे[250] प्रवृत्त करैत छथिं। एकर अर्थ ई नहि जे शक्ति मूलतः सदाशिवस भिन्न छथि—शक्तिमान् आओर शक्ति तँ वह्नि-दाहकता जकाँ, चन्द्रमा-चन्द्रिका जकाँ, अभिन्न छथि[251]—ओ केवल व्यक्त नहि भेल रहैत छथि, से एहि विमर्शरूपमे, आत्म-प्रतिविम्बनरूपमे, व्यक्त होइत छथि तथा अपन अभिन्न शिवहुकेँ व्यक्त वा भासित करैत छथि, जाहि हेतु ओ शक्ति 'शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्श' कहल जाइत छथि [252]।

२१४. तेँ एहि विपरीतरतातुरा शक्तिक ध्यानमे वा तद्बुद्ध्या स्वशक्तिक सङ्ग मैथुन-साधनक पृष्ठभूमिमे, विशेषतः शौण्डी आदि निम्नवर्गीया स्त्रीक सङ्ग मैथुनमे इएह रहस्य अछि। शौण्डीक लक्षणमे विपरीतरतिक चर्चा भेटैत अछि [253]।

## बौद्ध भावना—तुलनात्मक दृष्टि

२१५. आब बौद्धतन्त्रक प्रज्ञोपायसामरस्यक सङ्ग तुलना कएल जाए। पूर्व प्रज्ञाक विविधरूपकल्पनाक प्रसङ्गमे, विशदरूपमे, सूचित कएल गेल अछि जे जाहि दृष्टिएँ कौल शक्तिकेँ देखैत छथि, ताही रूपमे बौद्ध प्रज्ञाकेँ देखैत छथि तथा जाहि दृष्टिएँ कौल शिव तथा साधककेँ देखैत छथि ताही दृष्टिएँ बौद्ध उपाय वा हेरुक वा सिद्धकेँ देखैत छथि।

२१६. पूर्व बौद्ध सामरस्य-महासुखक विचारक्रमेँ एहि प्रज्ञोपायक अभेदक विचार भइए गेल अछि, जकरा 'अद्वयवज्रसंग्रह'सँ उद्धृत वचनानुसार शिव-शक्तिक

---

२४९। द्रष्टव्य The Serp. Power, Intro.—P. 299-300—कालीध्यानक विचार।

२५०। 'पञ्चकृत्य'—भा० सं० सा० [ १ ] पृ० ५

२५१। [ १ ] शक्तिश्चशक्तिमद्रूपाद्व्यतिरेकं न वाञ्छति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव ॥—बोधपञ्चदशिका—श्लो० ३
[ २ ] न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥ [ उद्धृत ] का० वि० पृ० ८

२५२। शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः॥—ऐजन श्लो० २

२५३। विपरीतरता पत्यौ पात्रं या परिपृच्छति।
सर्ववर्णोद्भवा रम्या सा शौण्डी परिकीर्त्तिता ॥
—प्रा० तो० पृ० १०६६ [ निरुत्तरतन्त्रसँ उद्धृत ]

अभेद[२५४] कहबामे कोनो तारतम्य नहि; कारण, उक्त ग्रन्थ बौद्धतन्त्रक प्रामाणिक ग्रन्थ थिक।

२१७. साधनाक क्षेत्रमे साधक अपन आत्मा वा चित्तक—दूनू शैवशाक्त तन्त्रैं एके थिक—[२५५]अभिन्न प्रज्ञाकैं वा विमर्शशक्तिकैं मानि आगाँ बढ़ैत छथि, से महामुद्रा-साधनासँ स्पष्ट अछि। प्रज्ञाक प्रतिरूप नारी [ शक्ति ]कैं मानि मैथुन करैत छथि, तकर दृष्टान्त अछि सिद्धलोकनिक जीवनचरित्र, जाहिसँ शक्तिलोकनिक नामहुक सङ्केत भेटैत अछि। कौलतन्त्रमे चण्डालीकैं जेना कुलशक्ति मानल गेल[२५६], तहिना बौद्ध तान्त्रिकँ ओकरा मानैत छथि; कौलतन्त्रमे जेना शौण्डीकैं देखल गेल अछि[२५७], तहिना बौद्धसाहित्यमे बौद्ध सिद्ध शुण्डिनीक सङ्ग तादात्म्य देखबैत छथि। पराशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्दनिर्भर जेना कौल रहैत छथि, तहिना प्रज्ञोपायमिथुन-सामरस्यनिर्भर बौद्ध रहैत छथि; अपन आत्माकैं शिवरूप बनाए[२५८] जेना कौल ओहि पराशक्तिक सङ्ग मैथुन-सुखक अनुभव करैत छथि, तहिना बौद्ध सिद्ध नैरात्माक सङ्ग सुरत-प्रसङ्गमे राति बितबैत छथि।

२१८. रहल प्रश्न विपरीत-रति-दर्शनक। बौद्धतन्त्र-दर्शनक मीमांसाक्रममे डॉ० दासगुप्त कहने छथि—

"शैवशाक्ततन्त्रमे परमसत्यक शिवरूपकैं निष्क्रिय मानल गेल अछि आ' शक्तिरूपकैं स्वतन्त्र मानल गेल अछि; किन्तु एतए, बौद्धतन्त्रमे, प्रज्ञाकैं अपरिवर्त्तनशीला स्त्रीरूपा आ' करुणा वा उपायकैं स्वतन्त्र पुरुषरूप" [२५९]।

२१९. किन्तु पुनः ओ अानहि कहैत छथि प्रमाण दत—"शक्ति शून्यता-

---

२५४। लक्ष्यलक्षणनिर्मुक्तं वाग्उदाहारवर्जितम्।
शिवशक्तिसमायोगात् जायते चाद्भुतं सुखम् ॥ (उद्धृत) A.I.T.B.-P.100 f. n.

२५५। द्रष्टव्य शिवसूत्र—'आत्मा चित्तम्' ।—प्र० ३ सू० १

२५६। कु० त०—उ० ७ श्लो० ४२

२५७। ऐजन—ऐजन श्लो० ४३ तथा पाछाँ पा० टि० २५३

२५८। [ १ ] द्रष्टव्य 'Shakti and Shakta'—P. 144
[ २ ] देहो देवालयो देवि जीवो देवः सदाशिवः।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहम्भावेन पूजयेत् ॥
—कु० त० उ० ९ श्लो० ४१

२५९। A. I. T. B.—P. 100 से कथित विषयक आशय।

ज्ञान-रूपा छथि तथा सर्वारोपविनाशिनी छथि" २६०।

२२०. पहिल वाक्यमे कोनो आपत्ति नहि, एम्हरहु शक्ति विमर्श [अहन्ताज्ञान]-रूपा छथि। दोसर वाक्यसँ शक्तिक परतन्त्रता वा निष्क्रियता खण्डित भए जाइत अछि। शाक्ततन्त्र हुनका निषेधव्यापाररूपा २६१ मानैत अछि, 'नेति-नेति'क शैलीमे, आ' ई निषेध-व्यापार की सक्रियतासूचक, स्फुरत्तासूचक, नहि थिक? आओर इएह व्यापार तँ 'सर्वारोपविनाशिनी' शब्दसँ सूचित होइत अछि।

२२१. ततबे नहि, एहिठाम जे आरोपक चर्चा अछि से कौलदर्शनक प्रतिबिम्बवाद वा आभासवादक स्मरण करबैत अछि२६२। सिद्धलोकनिक गीतमे [ सरहपाद, लुइँपाद, भुसुकुपाद तथा जयनन्दीपादक गीतमे ] ई प्रतिबिम्बवाद भेटितहिँ अछि। तँ शक्ति विमर्शरूपमे शिवकेँ ई परिचय दैत छथि 'सकल विश्व अहाँक प्रतिबिम्ब मात्र थिक,' आओर किछु नहि [ निर्मलादर्शहुक तात्पर्य इएह अछि ]।

२२२. अस्तु, भए सकैत अछि जे डा० दासगुप्त महाशय बौद्धतन्त्रक सुदीर्घ तथा गम्भीर अध्ययनसँ अपन निष्कर्षपर पहुँचल होथि, किन्तु एतबा धरि बिनु तारतम्यें कहल जाए सकैत अछि जे चर्यागीतमे अधिक ठाम शक्तिक स्वातन्त्र्य व्यक्त भेल अछि, कौलहि रङ्गमे रङ्गल।

२२३. दृष्टान्तमे भुसुकुपादक हरिण-हरिणीक चित्र देखल जाए। सिद्धक चित्तहरिणकेँ नैरात्मा महापद्मवन जेबाक हेतु प्रेरित करैत छथि, सएह तँ छन्हि शक्तिक काज। कान्हपाद डोम्बीकेँ 'छिनारि' कहैत छथि, जाहिसँ शक्तिक स्वातन्त्र्य-लीला अवश्य ध्वनित होइत अछि [ छिनारिक तात्पर्य अछि मैथुनमे स्वतः प्रवृत्ता, अग्रसरा ]। गुण्डरीपाद योगिनीसँ तियड्डा चापि अङ्कदानक प्रार्थना करैत छथि। की एहिमे विपरीतरतातुराक चित्र नहि अछि? कारण, डा० बागचीक संस्करणसँ 'तियड्डा'क अर्थ 'योनिक अग्रभाग' स्वीकार्य थीक२६३।

२२४. उपर्युक्त विवेचनासँ ई स्पष्ट भए गेल होएत जे पूर्वनिर्दिष्ट भुसुकुपाद, कान्हपाद, कुक्कुरीपाद, शबरपाद, विरुवापाद, गुण्डरीपाद, डोम्बीपाद, ताड़कपाद,

---

२६०। A. I. T B.—P. 100 f. n.

२६१। पूर्वोद्धृत ( पा० टि० २४८ )

२६२। म० मा० र०—पृ० १४४

२६३। च० गी० को०—गी० सं० ४ क पा० टि० ( पृ० १२ )

धामपाद तथा वीणापादक गीतमे उक्त रूपक कौल मैथुन-रहस्य निहित अछि। कौलहि दृष्टिएँ भावाह्लादित भए भुसुकुपाद नैरात्माक सङ्ग पूरि पद्मवन गेलाह, काह्नपाद विवाह कए 'सुरत प्रसङ्गे' अहर्निश जाथि, ओहि 'छिनारि' [ सभक आत्माक सङ्ग रमण केनिहारि ] क सङ्ग आनन्दविभोर रहथि। कुक्कुरीपादक नैरात्मावहुरीक 'राति भइले कामरु जाए' तथा तैं 'बिआन', 'जान जौवन'क चर्चा ; शबरपाद प्रेमसँ [पेह्म] 'सून-नैरामणि' [ शून्यस्वरूपिणी निराकारशक्ति ] केँ कण्ठ लगाए राति बितबथि।

२२५. शुण्डिनो [ शौण्डी ]क दृष्टिएँ विरुवापाद शक्तिकेँ देखैत छथि। किएक ? शौण्डी विपरीतरतिप्रिया मानल गेल अछि, सएह तँ शक्तिक मौलिक स्वरूप अछि। पुनः ओहो कौल मैथुन-साधनाक दृष्टिएँ गुण्डरीपादक 'तियड्डा'क अर्थ-योजना, डोम्बीपादक 'मातङ्गी-पोइआ' [ नीच स्त्री ]क भावना आ' ताड़कपादक 'महामुदेरी केँ जँ देखल जाए तँ असङ्गत नहि।

२२६. वज्रपद्मक छूटि जेना बौद्धतन्त्र वा साहित्यमे अछि, तहिना छूटि भग-लिङ्गक अछि कौलतन्त्रमे [२६४]। अन्तमे कुलार्णवतन्त्रक आधारपर दूनू तन्त्रक मध्य सामञ्जस्य आनल जाए सकैत अछि—

"ई जगत् ने चक्राङ्क थिक, ने पद्माङ्क थिक आ' ने वज्राङ्क थिक। लिङ्गाङ्क रहए वा भगाङ्क, अभिप्राय एतबे जे ई जगत् शक्तिशिवात्मक थिक" [२६५]।

२२७. कोनो आश्चर्य नहि जे चर्यागीतमे प्रतिनिधित कमलकुलिशसाधना तथा शुक्रनाड़ीसाधना, जकर उल्लेख विरुवापाद 'दशमि दुआरत' [२६६]सँ कएने छथि, कौलहि तन्त्रसँ आएल, उपर्युक्त कुलार्णवतन्त्रोक्त वचन देखि, सएह प्रतीत होइत अछि। गुण्डरीपादक कुन्दुरयोग [ द्वीन्द्रियसंयोगयोग ][२६७] सँ एकर पुष्टि होइत अछि [द्वीन्द्रिय-संयोगमे स्पष्टतः मैथुनक सङ्केत अछि ]। तहिना कुक्कुरीपादक 'समतायोग'सँ बुझबाक थिक। सभ ठाम सामरस्ये मर्म अछि।

---

२६४। कालीकुलसर्वस्वसहस्रनामक स्तोत्रत्रय द्रष्टव्य श्लो० १३४ सँ १४० धरि

२६५। न चक्राङ्कं न पद्माङ्कं न वज्राङ्कमिदं जगत्।
लिङ्गाङ्कञ्च भगाङ्कञ्च तस्माच्छक्तिशिवात्मकम् ॥—कु० त०—उ०८ श्लो० १०८

२६६। दशमि दुआरत—वैरोचन द्वारसँ।—द्रष्टव्य विरुवापादक गीतक सं० टीका। शुक्रवैरोचनकन्दरा (मूलाधारचक्र) मे—द्रष्टव्य सिद्धसाहित्य पृ० २११

२६७। कुंदुर—द्वीन्द्रियसंयोग—रट०त० [ पृ०३३ ] सँ उद्धृत
—ता० बौ० सा० सा०—पृ० ३२०

## अन्तरङ्ग शक्ति-साधन

२२८. एहिसँ पूर्व शक्तिसाधनाक महामुद्रा-साधन वा शक्तिसाधन अङ्गक विचार भए गेल अछि। रूढ़िक कारणेँ एहि शब्दक प्रयोग नारीविशेषनिष्ठ साधनक अर्थमे कएल गेल अछि, किन्तु वस्तुतः शक्ति-साधन मनोवृत्तिसँ सम्पर्क रखैत अछि, जकर उल्लेख पूर्वहु भएगेल अछि। शारीरिक मैथुन हो वा नहि, महती शक्तिकेँ पत्नी-बुद्धिएँ देखैत अपना केँ, आत्माकेँ, शिवरूपमे देखि, सामरस्यक अनुभूतिमे डुबब, सएह तँ थिक शक्ति-साधनक वा महामुद्रा-साधनक मर्म।

२२९. तँ एहि मर्मक बहिरङ्ग रूपक साधनाक, नारीपर आश्रित पराशक्तिसाधनाक, स्वरूपक परिचय पूर्वपृष्ठसभमे देल गेल अछि। प्रस्तुत लेखमे शक्तिसाधनाक अन्तरङ्ग प्रक्रियाक दिग्दर्शन होएत। शरीरक अन्तःस्था प्राणशक्तिकेँ पराशक्तिक प्रतिरूप मानि आत्मरूप शिवक सङ्ग मिलाएब, सएह थिक अन्तरङ्ग शक्तिसाधन; तुलनाक हेतु ई स्मरणीय जे महामुद्रासाधनमे अपनासँ भिन्न नारीविशेषकेँ पराशक्तिक प्रतिरूप मानल गेल छल। आगाँ जाए ई स्पष्ट भए जाएत जे चक्र-भेद द्वारा कुण्ड-लिनीकेँ उठाए, सहस्रारस्थ शिवक सङ्ग वा शिवमे लीन कए देल जाइत अछि तथा इहो स्पष्ट भए जाएत जे ई कुण्डलिनी-शक्ति प्राणशक्तिक अभिन्ना छथि।

२३०. किन्तु ई योग—लययोग आ' पुनः सृष्टियोग—सरल नहि। एहि साधनाक मार्मिक परिज्ञानमे किछु दार्शनिक तथा यौगिक रहस्यक परिचय आवश्यक, जे पृष्ठभूमिक काज करैत अछि आ' जाहिपर समग्र साधना आधारित अछि, तेँ आगाँ ओहि पृष्ठभूमिकेँ देखल जाए।

## दार्शनिक पृष्ठभूमि

२३१. साधनाक क्षेत्रमे एक स्वयंसिद्ध सिद्धान्त अनुसृत होइत आएल अछि। ओ थिक पिण्ड मे अण्डक अध्याहार ( देहमे ब्रह्माण्डक अध्याहार )।

२३२. महार्थमञ्जरीमे कहल गेल अछि—

"अण्डमय निजपिण्डपीठमे करणदेवीगण प्रस्फुरित होइत छथि आ' हुनका-लोकनिक मध्यमे परमशिव प्रस्फुरित होइत छथि"[२६८]।

२३३. महानयप्रकाशसँ उद्धरण राखि, लेखक देखओने छथि जे देहे महापीठ

२६८। म० म०— श्लो० ३४ [पृ० ७८]

थिक[२६९]। समस्त ब्रह्माण्डक मूलभूत परमतत्त्वकेँ चिह्नबाक हेतु आ' अपनाकेँ हुनक रूपमे चिन्हबाक हेतु नित्य शुद्ध बुद्ध सच्चिदानन्दक अन्तरङ्ग पराशक्तिक घटघटमे व्याप्त प्रतिभाक आविष्करण, शक्तिक आविष्करण, ईश्वर-प्रत्यभिज्ञाक अन्तिम सोपान थिक [२७०]। ई शक्ति आविष्करण सुलभ नहि, महामायाक स्वातन्त्र्यसँ, अपन स्वतन्त्र इच्छासँ मायाजाल ताहि रूपमे पसरल अछि, आवरण-विक्षेपक काज ततेक सर्वव्यापी आ' निरन्तर अछि, जे हुनक आविष्करण कोना हो? हुनक साधना हो कोना? आणवमलसँ परिपूर्ण ई शरीर अपन सूक्ष्मता तथा कारणताकेँ चीन्हि नहि सकैत अछि।

२३४. ई अनाद्यनन्तच्छिन्ना अनिर्वाच्या शक्ति वहिर्मुखी भए, अपनाकेँ स्थूल जगतक आविर्भूत रूपमे देखबैत छथि तथा क्रमशः विरल होइत होइत अन्तः सङ्कोचक अवस्थाकेँ प्राप्त कए, आत्मा अथवा बिन्दुपदवाच्या भए जाइत छथि[२७१]। आत्मा, देवता, भूत एकहि आद्याशक्तिक त्रिविध अवस्था थिक। सुसूक्ष्म कारणजगत्, लिङ्गात्मक सूक्ष्म-जगत् आ' इन्द्रिय-गोचर स्थूल जगत् शक्तिहिक विभिन्न विकास थिक[२७२]। ई बुझब व्यर्थ जे परमात्मा वा परमशिव एहि पराशक्तिसँ भिन्न छथि, हिनका चिन्हबाक अर्थ हुनका चिन्हब बुझबाक थिक। सङ्ग सङ्ग बिनु हिनका चिन्हने हुनका चिन्हब असंभवे, जँ कोनो ऋषिमुनिकेँ ब्रह्मसाक्षात्कार सोझे सोझ भइओ गेलन्हि, तँ ओहिठाम परमेश्वरक अनुग्रहरूपमे शक्तिपाते मानल जाएत। शक्तिक पीठमे कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर तथा उड्डीयानक प्रसङ्ग दार्शनिक लक्षण भेटैत अछि[२७३]। एहि सभकेँ देहहुमे मानल जाइत अछि।

२३५. प्रकाश-विमर्शक साम्यावस्थाक अनुभूतिए मुक्तिपद थिक। साम्यभावापन्न शिवशक्ति एक बिन्दुरूपमे परिणत भए कामरूपपीठ नामसँ प्रसिद्ध भए जाइत छथि। आगाँ जाए ज्ञानशक्ति क्रियाशक्तिक रूपमे परिणत भए शिवांश रौद्री शक्तिक सङ्ग साम्यभाव प्राप्त-करैत छथि, उड्डीयानपीठ कहबैत छथि। तहिना पूर्णगिरि, जालन्धरपीठसभक दार्शनिक लक्षण भेटैत अछि।

---

२६९। म० म०—उद्धृत पृ० ६१

२७०। ईश्वरप्रत्यभिज्ञा च शक्त्याविष्करणद्वारेण।—ई०प्र०(१) १ अ०६ आ० [पृ०२७१ पा०टि०]

२७१। ता०वा० शा०द०—शक्ति-साधना—पृ० ७२

२७२। ऐजन ऐजन ऐजन

२७३। ऐजन ऐजन पृ० ७४--७५

२३६. वागर्थरूपमे शक्ति-शिव व्यक्त होइत छथि। अ-कार शिवतत्त्वक तथा ह -कार शक्तितत्त्वक द्योतक थिक, बिन्दु दुनूक सामरस्यक, एवम्प्रकारेँ 'अहं'-तुर्यपदक दार्शनिक व्याख्या शब्दसृष्टिक आधारपर कएल जाइत अछि[२७४]। शक्तिकेँ चिन्हबाक प्रक्रियामे मातृकाशक्तिक परिज्ञान प्रसिद्ध अछि[२७५]। मातृका-शक्तिक परिज्ञान परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीरूप वाक्शक्तिक परिज्ञाने तँ भेल।

२३७. स्वतः बिन्दु-नाद-बीजक सम्बन्धक प्रश्न आबि जाइत अछि[२७६]। कामकला-रहँस्यक प्रसंगमे ई कहल जाइत अछि जे पराशक्तिकामकलाक काम, विसर्ग तथा हार्धकला तीनू अङ्गकेँ योगी लोकनि ध्यानमे उतारैत छथि।

२३८. ''शक्ति नादरूपमे कम्पित होइत छथि आ' ताहिसँ बिन्दु।''—एहन शाक्त मत अछि[२७७]।

२३९ ''अनस्तमितरूपत्वक कारणेँ एक नादात्मक वर्ण 'अनाहत' कहल जाइत अछि''[२७८]। अनाहत-नाद-साधना पराशक्तिक वाक्स्वरूपक प्रत्यभिज्ञामे सहायक होइत आएल अछि।

२४०. मनुष्यक शरीरमे ई विचित्रता अछि जे एहिमे षट्त्रिंशत् तत्त्वरूप शैवी सृष्टि, त्रिकोणात्मक कामकलाक मातृकाक शाक्त सष्टिक सङ्ग अनेक देवी देवता पीठादिओ विद्यमान छथि, तेँ तँ देह देवालय[२७९]।

२४१. तँ इएह थिक दार्शनिक पृष्ठभूमि, जाहिपर आधारित अछि वज्रयानी-सहजयानी-नाथपन्थी तथा प्रख्यातनाम्नी कौल उपासना। कहल जाइत अछि, शरीरस्थ

---

२७४। एषाहम्पदतुर्यस्वरकामकलाऽऽदिशब्दनिर्देश्या।
वागर्थसृष्टिबीजं तेनाहन्तामयं विश्वम्॥—व०र० [द्वितीयोंशः] श्लो०७२

२७५। न विद्या मातृकापरा॥—उद्धृत—म०मा०र०—पृ०८५

२७६। बिन्दुर्नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः॥ शा०ति०-प्र०प०श्लो० ८

२७७। आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भवः॥ ऐजन ऐजन श्लो० ७

२७८। एको नादात्मको वर्णः सर्ववर्णविभागवान्।
सोऽनस्तमितरूपत्वाद् अनाहत इहोदितः॥
—उद्धृत [तन्त्रालोकसँ] म० मा० र० पृ० १७७

२७९। देहो देवालयो देवि जीवो देवः सदाशिवः॥ कु० त० उ० ६ श्लो० ४१

शक्ति-साधना [ अन्तःसाधना ] समयाचारक वस्तु थिक[२८०], किन्तु कुलार्णवतन्त्र ओकरो कौलहिमे अन्तर्भूत मानैत अछि[२८१], तेँ एहन उक्ति।

२४२. तँ अन्त शक्तिसाधना उक्त रूपक दार्शनिक पृष्ठभूमिपर आधारित रहैत आएल अछि। साधनक साध्य थिक परमशिवत्वलाभ, जे अव्याख्येय थिक; जखन ओहि लाभक प्रसङ्ग अभिव्यक्तिक प्रश्न आएल वा अनुभूतिक प्रश्न आएल तँ हुनक निर्मलादर्श सदृश शक्तिक[२८२] परिचयकेँ आवश्यके नहि, अनिवार्य बुझल गेल। एहि शक्तिक सङ्ग अन्तरङ्गतासँ चिन्मयत्वप्राप्ति वा परमशिवत्वप्राप्ति स्वयंसिद्ध मानल गेल अछि।

२४३. तँ एहि मार्मिक अनुभूतिकेँ एक नारीमे घटाए, नारीकेँ महती शक्तिक प्रतिरूप मानि जे साधन भेल से बौद्ध तन्त्रमे महामुद्रा-साधन शब्देँ लक्षित भए गेल आ' हिन्दूतन्त्रमे इएह साधन शक्ति-साधन कहल गेल। पुनः ओही पराशक्तिसंवित्-केर मार्मिक अन्तरङ्गताक अनुभूतिकेँ स्वशरीरस्थ शक्तिमे घटाए, प्राणकुण्डलिनीशक्तिकेँ महतीशक्तिक प्रतिरूप मानि[२८३] जे साधन भेल से कुण्डलिनी-योग कहओलक। 'प्रतिरूप' शब्द एहि हेतु जे शक्तिक मूलरूप व्यापक अछि; कुण्डलिनीशक्तिअहुमे एक आओर भेद पराकुण्डलीक चर्चा भेटैत अछि[२८४]।

२४४. आब स्पष्ट भए गेल, परा संवित् प्राणरूपमे प्रकट होइत छथि, तेँ प्राण-कुण्डलिनीक सत्ता। तँ योगक क्षेत्रमे सामान्यतया एही प्राणकुण्डलिनीक जागरण होइत आएल अछि।

## यौगिक पृष्ठभूमि

२४५. प्राणकुण्डलिनी वा ( प्रसिद्ध ) कुण्डलिनीक जागरण जखन व्यावहारिक रूप धरैत अछि, तखन योगक प्रक्रियाक विषय बनि जाइत अछि। किन्तु ई योग-

२८०। समयाचारो नाम आन्तरपूजारतिः। कुलाचारो नाम बाह्यपूजारतिरिति रहस्यम्॥
—आनन्दलहरीक श्लो० ८क 'लक्ष्मीधरा' टीका द्रष्टव्य

२८१। प्रविशन्ति यथा नद्यः समुद्रम् ऋजुवक्रगाः।
तथैव समयाः सर्वे प्रविष्टाः कुलमेव हि ॥—कु० त० उ० २ श्लो० १२

२८२। शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः ॥ का० वि० श्लो० २

२८३। प्राक् संवित् प्राणे परिणता इति ॥ उद्धृत-प्रत्य० हृ० सू० १७क वृत्ति

२८४। भा० सं० सा० (खण्ड १ )—'शक्ति का जागरण'—पृ० ३१६

प्रक्रिया किछु शक्तिक केन्द्रभूत शारीरिक स्थानक अर्थात् चक्रक, कुण्डलिनीजागरण-पथ वा वाहक अर्थात् नाड़ीक, कुण्डलिनीक उत्थान-प्रत्यावर्त्तनक, वायुपरिस्थिति अर्थात् श्वास व्यवस्थाक तथा कुण्डलिनीयोगक नादात्मक रूप अनाहतनादक परिस्थितिविशेप-पर निर्भर वा ताहिसँ सम्बद्ध अछि। तेँ दूनू तन्त्रमे वास्तविक साधन-अंशक पूर्व एहिसभ विषयक उल्लेख भेटैत अछि। इएह सभ विषय भेल प्रतिपाद्य अन्तरङ्ग-शक्तिसाधनक यौगिक पृष्ठभूमि।

२४६. आलोच्य कृतिक दृष्टिएँ तथा अद्यावधि जे धारणा प्रचलित अछि, ताहि दृष्टिएँ, प्रथमत: बौद्धविचार प्रस्तुत कएल जाएत तखन हिन्दूविचार।

२४७. तँ बौद्धकथित नाड़ी-विचार देखल जाए जे उपलब्ध भेल।

नाड़ी–व्यवस्था

२४८ बौद्धतन्त्रमे बत्तीस गोटँ नाड़ीक उल्लेख कएल गेल अछि। चर्यागीतहुमे दुइठाम एकर उल्लेख मात्र भेल अछि, नाम निर्देश नहि[२८५]।

२४९. तीनि गोट नाड़ीक नाम प्रधान अछि—ललना, रसना आ' अवधूती[२८६]। चर्यागीतमे इएह तीनू आएल अछि। तीनूक सङ्गमकेँ बड़ सत्ता देल गेल, जे 'तियड्डा' [गु० १]सँ स्पष्ट भए जाएत।

२५०. ललना-रसनाकेँ क्रमशः इड़ा-पिङ्गला, चन्द्र-सूर्य, वाम-दक्षिण, शुक्र-रक्त, धमण-चमण, आलि-कालि, अपान-प्राण नाद-बिन्दु, प्रज्ञा-उपाय, गङ्गा-यमुना, शक्ति-शिव, ए-वं, एहि प्रकारेँ मानल गेल अछि[२८७]। तदनुसार व्युत्पत्तिओ भेटैत अछि[२८८]।

२५१. ई दूनू नाड़ी मेरुदण्डक वाम-दहिन होइत गेल अछि (कन्दसँ शिरोभाग धरि) एहि दूनूक मध्यमे अवधूतो अछि।

२५२. ई तीनू नाड़ी इड़ा, पिङ्गला तथा सुषुम्ना मात्र थिक[२८९] जकर चर्चा

---

२८५। भु० ४, वी० १ तथा नामनिर्देशक हेतु द्रष्टव्य 'श्रीसंपुटिका' P. 3 (B)— A. I. T. B.—P. 154 f. n. (उद्धृत)

२८६। A. I. T. B.—P. 154

२८७। ऐजन — ऐजन पा० टि०

२८८। ऐजन — P. 108-109; P. 154 तथा P. 157

२८९। ऐजन — P. 154

हिन्दूयोगमे भेटैत अछि तथा तन्त्रमे जकरा मान्यता देल गेल अछि। जहिना इडा-पिङ्गला मेरुदण्डक वाम-दहिन जाइत अछि[२९०], तहिना ललना-रसना। जेना हिन्दूयोगमे [ वा तन्त्रमे ] इड़ा-पिङ्गला चन्द्रसूर्य मानल गेल अछि तहिना एहूठाम[२९१]। हिन्दूयोगमे इड़ाकें यमुना तथा पिङ्गलाकें सरस्वती मानल गेल अछि आ सुषुम्नाकें गङ्गा[२९२]। ए-वं ललना-रसना, ताहिमे ए शक्ति, सेहो विषय हिन्दूतन्त्रमे भेटितहि अछि शृङ्गाटरूपमे[२९३]। सुषुम्नाकें हिन्दूयोगमे ओएह प्रतिष्ठा देल गेल अछि जे बौद्धयोगमे अवधूतीकें [ आगाँ द्रष्टव्य ]।

२५३. एहि प्रकरणमे बौद्धतन्त्रमे एक गोट नाड़ी आओर भेटैत अछि, ओ थिक ब्रह्मनाड़िका। काह्नपाद अपन गीत [सं०३]मे 'बाह्मनाड़िआ' शब्दक प्रयोग कएने छथि, टीकाकार 'ब्रह्महूँकारबीजजात चित्तबटुक' अर्थ कएने छथि तथा एक 'ब्राह्मण-नाड़िआ' एहनो पाठ भेटैत अछि। किन्तु म० म० शास्त्रीक संस्करणमे ब्राह्मनाड़िआ-पाठ-सएह भेटैत अछि, हम शास्त्रीक स्वीकृत अर्थ ब्रह्मनाड़िका अधिक उपयुक्त मानैत छी।

२५४. आब हिन्दूतन्त्रोक्त ब्रह्मनाड़ीकें देखल जाए। नाड़ी-निरूपणक प्रसङ्ग कहल जाइत अछि जे इड़ा-पिङ्गला नाड़ी मेरु [-पर्वतक] अर्थात् मेरुदण्डक वाम-दक्षिणमे कन्दसँ शिर धरि जाइत अछि, ई दूनू चन्द्रसूर्यस्वरूपिणी अछि, जेना कहल गेल अछि। मेरुक मध्यमे, एहि दूनू नाड़िअहुक मध्यमे, सुषुम्ना नाड़ी अछि। ई नाड़ी त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा अछि, एहि नाड़ीक मध्यमे वज्रा नामक सूक्ष्म नाड़ी अछि, ताहिमे पुनः चित्रिणी आ' एहि चित्रिणीक मध्यमे पुनः स्वयम्भूलिङ्गच्छिद्रसँ आदि देव धरि संस्था ब्रह्मनाड़ी छथि[२९४]।

२५५. ई सूक्ष्मतमा ब्रह्मनाड़ी ब्रह्मपदवी, शब्दब्रह्मरूपा कुण्डलिनीक परमशिव-संनिगमनपथ, चित्रिणीनाड़ीक अन्तर्गत शून्यभाग थिक तथा स्वयम्भूलिङ्गच्छिद्रसँ सहस्रदलकमलकर्णिकामध्यस्थ परबिन्दु धरि गेल अछि, सएह अभिप्राय अछि[२९५]।

---

२९०। ष०च० नि०—श्लो०१ तथा सं०टीका (The Serpent Power क उत्तरार्द्ध )पृ०३

२९१। ऐजन —ऐजन तथा A. I. T. B.—P. 154

२९२। ऐजन —ऐजनक सं० टीका (The Serpent Power क उत्तरार्द्ध) पृ० ४

२९३। A. I. T. B.—P. 154 तथा म०मा०र०—पृ० ६७ पा० टि०

२९४। ष० च० नि०—श्लो० १-२क आशय

२९५। ऐजन—श्लो० २क सं० टी०

२५६. एहि विद्युन्मालाविलासा, सुसूक्ष्मा, शुद्धज्ञानप्रबोधा, सकलसुखमयी तथा शुद्धबोधस्वभावा नाड़ीक मुखपर ब्रह्मद्वार अछि जे कन्द आ' सुषुम्नाक सन्धिस्थान अछि [२६६]।

२५७. शास्त्रमे कुण्डलिनी-पथ होएबाक कारणेँ ई नाड़ी एतेक आदृत अछि। आ' ई पथ चित्रिणीक अन्तर्गत अछि, जे पुनः सुषुम्नाक अन्तर्गत अछि, तेँ चित्रिणी वा सुषुम्नाकेँ सेहो कुण्डलिनी-पथ कहल जाए सकैत अछि आ' कहलो गेल अछि।

२५८. मुदा ई महत्ता नाड़ीकेँ तहिखन प्राप्त होएत जँ ओ यौगिक प्रक्रियासँ परिशुद्धा बनाओल जाएत। अपरिशुद्धा रहलासँ ओकर अपन स्वरूप विकृत भए जाएत आ' प्राणशक्तिक वाह ओ नहि रहि सकत [२६७]।

२५९. परिशुद्धताकेँ दृष्टिमे रखैत, बौद्धतन्त्र ब्रह्मनाड़िअहिकेँ वा सुषुम्नहिकेँ परिशुद्धावधूतिका कहैत अछि, जकरा पुनः नैरात्मा, विरमानन्दरूपा कहैत अछि। एहूठाम हिन्दूयोगहिक विचार लक्ष्य अछि। जेना टीकाकार विद्युन्मालाविलासा, शुद्धज्ञानप्रबोधा सन सन उत्कर्षाधायक शब्दक व्याख्यामे कुण्डलिनीशक्तिवाहकत्व वा प्राणशक्तिवाहकत्व मात्रकेँ उत्कर्ष-कारण कहैत छथि, तहिना बौद्धक परिशुद्धावधूतीकेँ नैरात्मा [२६८] आदि कहबाक हेतु अछि एतबे जे ओहि द्वारा डोम्बी-शक्ति वा चण्डाली-शक्ति महासुखचक्रपर पहुँचैत छथि, से मानल जाए सकैत अछि। दूनू ठाम लक्षणहिसँ, आधार-आधेय सम्बन्धसँ, नाड़ीकेँ पराशक्तिरूप मानल गेल अछि, सएह अभिप्रेत। कारण, अवधूतिकाक अभिहित गणना तँ भेल अछि नाड़िअहिमे। अस्तु, लक्षणासँ बौद्ध परिशुद्धावधूतीकेँ डोम्बी [ शक्ति ] कहने छथि। ई अद्वयमार्ग शक्तिक अद्वयावस्था वा नाड़ीशुद्धि थिक [२६९] जाहि रूपक धारणा रखैत म० म० जोक ई आशय छन्हि।

२६०. उक्त विवेचनासँ ई स्पष्ट भए गेल होएत जे जेना सुषुम्नास्थब्रह्मनाड़ी थिक नाड़िए, परिशुद्धा भए गेलासँ ओहि द्वारा प्राणवाह वा शक्तिवाह सुसिद्ध भए जाइत अछि, तहिना अवधूतिका (वा अवधूती) थिक नाड़िए, परिशुद्धा भए गेला पर ओहिमे संवृतबोधिचित्त [ चित्त वा शुक्र ] वा चण्डालीक अग्नितेजसक वाह वा उत्थान

---

२६६। ष० च० नि०—श्लो० ३

२६७। The Serpent Power. Intro. P. 110

२६८। च० गी० को०—पृ०३५ [ सं० टी० ]

२६९। भा० सं० सा० [ २ ]—पृ० २६१

सुसम्पन्न होइत अछि [300] आ' तेँ लक्षणासँ शक्तिक सङ्ग ओहि नाड़ीक अभेद। साधनदशामे कोनो आधार रहब आवश्यक, जाहिमे आराधिता महतीशक्तिक अध्यवसाय सम्भव भए सकए तेँ एहन विचार।

चक्र-विचार

२६१. एखन धरि एतबा स्पष्ट भए गेल होएत जे जहिना हिन्दूतन्त्रमे मेरुदण्डक वाम-दक्षिण तथा मध्यभागमे नाड़ीक योजना देखाओल गेल अछि, तहिना बौद्धहु तन्त्रमे। आब चक्रक स्थिति कोना अछि, से देखल जाए।

२६२. प्रथमत: ई बुझब आवश्यक जे ई चक्र की थिक। बौद्धतन्त्रमे प्रस्तुत प्रकरणमे जे चक्रक चर्चा अछि, तकरा सङ्ग तुलना कएलासँ ई कहि सकैत छी जे हिन्दूतन्त्रमे चक्रक जे लक्षण कएल गेल अछि से बौद्धकेँ मान्य छलन्हि। हिन्दूतन्त्र बराहोपनिषद्-कथित अर्थमे चक्रकेँ देखैत अछि जाहिसँ ई सिद्ध अछि जे चक्र शक्तिक केन्द्र थिक [301]। अर्थात् शारीरिक स्थानविशेषमे, साधना द्वारा देखल गेल अछि जे साधक तेजोमयी शक्तिक स्थिति वा गति अनुभव करैत छथि, ओहि स्थानविशेषकेँ 'चक्र' कहल जाइत अछि, जतेक दूर धरि योगमे उपयुक्त चक्रक प्रश्न अछि। प्राचीन तथा आधुनिक, सभ विद्वान् उक्त लक्षणकेँ मान्यता दैत छथि।

२६३. तँ बौद्धतन्त्रहुक क्षेत्रमे मनीषीगण एही लक्षणकेँ मान्यता दैत छथि। ततबे नहि, आगाँ जाए शक्तिक सर्वव्यापिनी सत्ता स्पष्ट भए जाएत। बौद्धतन्त्रमे चक्रक प्रसङ्ग किछु विवाद अछि ( दलमे )।

अस्तु, आब चक्रक नाम, सङ्ख्या तथा स्थानक विचार कएल जाए—

२६४. [ १ ] नाभिस्थित चक्र—निर्माणचक्र—एकर नाम निर्माणचक्र एहि हेतु पड़ल जे एकर तादात्म्य निर्माणकायसँ अछि। एहि चक्र वा पद्ममे ६५ दल नील रङ्गक अछि मध्यमे अं-बीज अछि [302]।

२६५. की ई चक्र मूलाधार स्थित नहि ?—हिन्दू योगमे सभसँ नीचा जे चक्र अछि से मूलाधारस्थित अछि, ओहि चक्रकेँ धराचक्र वा मूलाधारचक्र कहल जाइत अछि, ४ दलक पद्म। सामान्यतया बौद्धके मतेँ उक्तहि स्थानमे आधारचक्र अछि अर्थात् जेना ऊपर नाभिस्थानक सङ्केत भेल अछि, ततहि। किन्तु, बौद्धक प्रसिद्ध ग्रन्थ

३००। भा० सं० सा० [ २ ]—पृ० २६२
३०१। ऐजन ऐजन —पृ० २८१
३०२। A.I.T.B.-P. 148--149.

हेवज्र संग्रहमे आधारचक्रक स्थान योनि [गुदमेढ्र मध्य] मानल गेल अछि। श्रीकाल-चक्र तन्त्रो सएह मानैत अछि। एहि मतकेँ माननासँ दूनू तन्त्रक मतभेद हटि जाइत अछि, कारण मूलाधारो तँ 'गुदलिङ्गमध्यस्थाने' मानल गेल अछि। [उक्त बौद्धमतक हेतु द्रष्टव्य थिक डा० दासगुप्तक उपर्युक्त पोथीक पृ० १५२ पा०टि० आ' मूलाधारक लक्षण हेतु द्रष्टव्य ष० च० नि० श्लो० ४ मूल-टीका।]

२६६. एहिसँ किछुए नीचा कन्द अछि, जाहिसँ ललना-रसना [ प्रज्ञोपाय ] उठैत अछि आ' बीच मे ब्रह्माण्डाकार अ-प्रतिनिधिता देवी छथि।

२६७. [ २ ] हृदयस्थित चक्र—धर्मचक्र—एहिचक्र वा पद्ममे ८ दल अछि—४ परार्द्ध आ' ४ पूर्वार्द्ध। मध्यमे हूँ-बीज अछि, नीचा मुहेँ स्थित।

२६८. एहिसँ किञ्चित् ऊपर उज्जर रङ्गक एक पद्म अछि, सदशाकार ओकर मध्यमे नित्य व्यक्त विज्ञानं परमेश्वरे मानल जाएत आ' स्वयम्भूज्ञानाधार सेहो कहबैत अछि [303]।

हिन्दूयोगमे एहि स्थानमे अनाहतचक्र मानल जाइत अछि, १२ दलक।

२६९ [ ३ ] कण्ठस्थित चक्र—संभोगचक्र—एहि चक्र वा पद्ममे १६ दल अछि लाल रङ्गक, मध्यमे हूँ-बीज अछि, एहि सँ ऊपर एक सुरङ्ग द्वारा अमृत प्रवाहित अछि [304]।

२७०. हिन्दूयोगमे एहिँ स्थानमे विशुद्धचक्र मानल जाइत अछि, इहो १६ दलक अछि, जेना संभोग-चक्र।

२७१. कायक गणनामे हृदयप्रान्त अछि संभोगकाय तथा कण्ठप्रान्त धर्मकाय, किन्तु नहि जानि चक्रमे वैपरीत्य किएक।

२७२. [ ४ ] शिरःस्थ चक्र—महासुखचक्र—एहि चक्रमे एक ४ दलक कमल अछि, ओकर चारू दल चारि आर्यसत्य वा चतुष्कोटिक प्रतीक थिक, ई शुद्धबोधिमण्डल-स्वभावक अछि। बाहरमे ३२ दलक एक कमल अछि जकर अन्तरमे ह वर्ण अछि, अधोमुख। एकर स्वभाव बोधिचित्तक अछि तथा चन्द्रमाक १५ कलासँ युक्त अछि। एहि चक्रकेँ 'उष्णीषकमल' सेहो कहल जाइत अछि। संस्कृतटीकाकार तथा डा० दासगुप्त दूनू नामक प्रयोग कएने छथि।

---

३०३। A. I. T. B —P. 148-149

३०४। ऐजन — ऐजन

२७३. एहि कमलक अन्तस्तलमे १६ कलायुक्त योगिनी छथि, प्रचुरानन्द-प्रदायिनी [ आगाँ सहस्रारक षोड़शी तुलनीया ]। हिनक दूनू भाग आलि-कालि ( स्वर-व्यञ्जन ) वा स्त्री-पुरुष-स्वभावक ललना-रसना अछि आ' ओ परमेश्वरी अपने सहजानन्द-अद्वय-स्वभावक छथि। [ ई कहि सकैत छी जे ओहि कमलक बत्तीस दल एही सोलह कलाक दिन-रातिभेदें जोड़ल अछि। ] ओ परमेश्वरी अवधूतिका ( अवधूती नाड़ी ) रूपमे व्यक्त छथि [305] चक्रक क्रम इएह अछि, केवल सेकोद्देशटीकामे किछु दोसर रङ्गक कथा भेटैत अछि—कपार पर पुनः १६ दलक एक कमल अछि।

२७४. श्रीसंपुटमे चारू चक्र चारि मुद्रा, चारि शक्ति, चारि तत्त्व ( पृथ्वीसँ वायुधरिक ) तथा ए, वं, म, या, एहि चारि वर्णसँ सम्बद्ध कएल गेल अछि। 'एवं' केर व्याख्यामे व कें चारि तत्वमे अप् तत्त्वसँ उचिते सम्बद्ध कएल गेल अछि, कारण, एम्हरो ओ वरुणबीज [ पुंदेवता-बीज ] अछि, मातृकहु प्रसङ्गमे व कें आत्मादितत्त्वयुक्त पुरुषतत्त्व मानल गेल अछि, जकर उल्लेख एवं-मन्त्रक प्रसङ्ग कएल जाए सकैत अछि।

२७५. ४ सङ्ख्याक महत्त्वक हेतु चारि क्षण, चारि सत्य [ चतुष्कोटि ], चारि तत्त्व [ आत्मा, मन्त्र, देवता तथा ज्ञान ] आओर चारि आनन्दावस्था आनन्द, परमानन्द, विरमानन्द तथा सहजानन्द द्रष्टव्य थिक। चक्रविशेषसँ क्रमशः ई सभ सम्बद्ध अछि [306]।

२७६ अस्तु आब यौगिक पृष्ठभूमिमे हिन्दूयोगक चक्रविचार देखल जाए, जकरा तन्त्र मान्यता दैत अछि। हिन्दूतन्त्रग्रन्थसभमे षट्चक्रभेदसाधनक क्रममे ओही चक्र-विचारकें प्रश्रय देल जाइत अछि।

## हिन्दूयोगक किछु विचार—

### षट्चक्रभेद

२७७. हिन्दूयोगमे छओ गोट चक्र वा पद्म [ चक्रकें पद्मो कहल जाइत अछि ] आधारपद्म, स्वाधिष्ठानपद्म, मणिपूरपद्म अनाहतपद्म, विशुद्धपद्म तथा आज्ञापद्म भेटैत अछि, जे 'षट्चक्र' कहबैत अछि। एहि छबहु चक्रक [ वा पद्मक ]

---

३०५। A. I. T. B —P. 148-149

३०६। ऐजन —P. 150-151

स्थान शरीरमे क्रमशः मूलाधार, लिङ्गमूल, नाभि, हृदय, कण्ठ तथा भ्रूमध्य मानल जाइत अछि। एहि चक्रसभकेँ शक्तिकेन्द्र कहल जाइत अछि; कारण, शक्तिक सञ्चार ओहिसभ स्थानमे योगीसभकेँ अनुभूत भेल छन्हि [३०७]।

२७८. [१] आधारपद्म—[३०८] मूलाधार स्थित एहि पद्मक चारि दलमे क्रमशः अनुस्वारयुक्त व सँ स धरि क चारि वर्ण अछि। कोषमे धरामण्डल [पृथ्वी तत्त्व] वर्गाकार अछि, सात शरसँ घेरल। तदनुसार धराबीज आ' बालरूपा ब्रह्माक वास मध्यमे अछि। कर्णिकामे एक लाल कमलपर डाकिनीशक्ति छथि। [बौद्धतन्त्रक प्रसङ्ग उद्दिष्ट चारि शक्ति लोचना, मामकी, पाण्डरा तथा ताराकेँ जेना चारू चक्रमे मानल गेल अछि, तहिना एहू षट्चक्रमे, जाहिमे आधारपद्म (चक्र) मे डाकिनीकेँ, से ध्येय]। आहिमे पुनः एक चकचक त्रिकोण, जकर केन्द्रमे कामवायु तथा कामबीज [आगाँ कामचण्डालीक प्रसङ्ग ई हिन्दू-योग-सिद्धान्त स्मरणीय]। अस्तु, ओहि त्रिकोणपर आधारित अछि शिवक स्वयम्भू-लिङ्ग श्यामवर्ण, जकरा सर्पाकार कुण्डलिनी साढ़े तीन भत्तामे आवेष्ठित कएने छथि। स्वयम्भूलिङ्गक ऊपरमे चित्कला छथि [बौद्धतन्त्रक स्वयम्भू-ज्ञानाधार तुलनीय]।

२७९. [२] स्वाधिष्ठानपद्म[३०९]—लिङ्गमूलस्थित एहि पद्मक छओ दलमे क्रमशः अनुस्वारयुक्त ब सँ ल धरिक षट्वर्ण अछि। कोषमे जलमण्डल अष्टदलाकार अछि, तदनुसार वरुणबीज आ' विष्णुक वास अछि। कर्णिकामे एक लाल कमलपर राकिणीशक्ति छथि।

२८०. [३] मणिपूरपद्म[३१०]—नाभिस्थित एहि पद्मक दशदलमे क्रमशः अनुस्वारयुक्त ड सँ फ धरिक दश वर्ण अछि। कोषमे वह्नि (तेजस्)-मण्डल त्रिकोणाकार अछि। तदनुसार वह्निबीज आ' रुद्रक वास अछि। कर्णिकामे एक लाल कमलपर लाकिनीशक्ति छथि।

२८१. [४] अनाहतपद्म[३११]—हृदयस्थित एहि पद्मक बारह दलमे क्रमशः

---

३०७। The Serpent Power—Intro. P. 103

३०८। ष० च० नि०— श्लो० ४-१३ तथा पृ० २३ [सारांश]—The Serp. Power, [उत्तरार्द्ध]

३०९। ऐजन — श्लो० १४-१८ तथा पृ० २८ [सारांश]— ऐजन

३१०। ऐजन — श्लो० १९-२१ तथा पृ० ३१ [सारांश] — ऐजन

३११। ऐजन — श्लो० २२-२७ तथा पृ० ३७ [सारांश]— ऐजन

अनुस्वार युक्त क सँ ठ धरिक बारह वर्ण अछि। कोषमे वायुमण्डल षट्कोणाकार अछि। तदनुसार वायुबीज आ' हंसाभ ईशक वास अछि। कर्णिकामे एक लाल कमलपर काकिनीशक्ति छथि। ताहिपर एक त्रिकोणपुर आधारित अछि शिवक वाणलिङ्ग स्वर्णवर्ण अर्द्धचन्द्रबिन्दुरूप मस्तकबाला, कामोद्गमसँ उल्लसित। तकर नीचामे स्थिरतर दीपकलिका [ टेग ] क आकारमे हंसरूपी जीवात्मा छथि। एहि पद्मक कर्णिकाक नीचामे लालरङ्गक ऊर्द्ध्वमुख अष्टदल पद्म अछि, ओतए कल्पवृक्षरत्नवेदी, मानसपूजास्थान, अछि। [ हंसरूपी जीवात्माक सत्ता बौद्धहु तन्त्रमे अछि, चर्यागीतक 'राजहंस' द्रष्टव्य ( का० ९ ) आगाँ। ]

२८२ [५] विशुद्धपद्म[३१२]—कण्ठस्थित एहि पद्मक सोलह दलमे क्रमशः अनुस्वारयुक्त सोलह स्वरवर्ण अछि। कोषमे नभोमण्डल वृत्ताकार अछि। तदनुसार नभोबीज आ' अर्धनारीश्वररूप सदाशिव, जनिक ललाटस्थ चन्द्रसँ अमृत चुबैत अछि। कर्णिकामे चद्रमण्डलमे साकिनीशक्ति छथि।

२८३. [६] आज्ञापद्म[३१३]—भ्रूमध्यस्थित एहि पद्मक दुइ दलमे ह-क्ष दूनू वर्ण अछि। कर्णिकामे हाकिनीशक्ति छथि। ताहिपर, त्रिकोणपर शिवक शुक्लवर्ण इतरलिङ्ग आधारित अछि। ताहिसँ ऊपर त्रिकोणमे प्रणवाकार अन्तरात्मा प्रदीपाभज्योतिरूप छथि। तकर चारूकात आकाशमे ज्योतिः स्फुलिङ्ग अछि जे अपन तेजसँ मूलसँ [ मूलाधारसँ ] ब्रह्मरन्ध्र धरि प्रकाशित करैत अछि। ताहिसँ ऊपर सूक्ष्मरूप मनस्तत्त्व आ' ताहिसँ ऊपर चन्द्रमण्डलमे हंसपर परमशिव [ सशक्ति-शिव ] छथि।

२८४. षट्चक्रमे एतबे धरि आओत, एकर पश्चात् सहस्रारक वर्णन भेटैत अछि, ओहो पद्मे थिक [ तेँ संख्यामे सातम मानल जाए सकैत अछि ]।

२८५. सहस्रारपद्म[३१४]—लयस्थानस्थित एहि पद्मक हजार दलमे पचासहु वर्णक बीस आवृत्ति अछि। एकर कर्णिकामे हंस, परमशिव, गुरु, सूर्य-चन्द्रमण्डल, महावायु [ नाद ], ब्रह्मरन्ध्र तथा महाशङ्खिनीशक्ति उपर्युपरि छथि। चन्द्रमण्डलमे विद्युदाकार त्रिकोणमध्यस्था मृणालसूत्रक शतभागैकभागरूपा सूक्ष्मा [ चन्द्रक ]

---

३१२। ष०च०नि०—श्लोक २८-३१ तथा पृ० ४४ [सारांश] The Serp. Power [उत्तरार्द्ध]
३१३। ऐजन —श्लोक ३२-३८ तथा पृ० ५५ [ऐजन]— ऐजन
३१४। ऐजन —श्लोक ३६-४६ तथा पृ० ७७ [ऐजन]— ऐजन

षोड़शीकला अधोमुखा छथि, नीचासँ अव्यक्त नादात्मक निबोधिका वह्निक निबोधन होइत अछि। तकर ऊपरमे निर्वाणकलाक क्रोड़मे शिवशक्त्यात्मक परबिन्दु अछि। एकर केशाग्रकोटिभागैकभागरूप सूक्ष्म तेजोहंसरूपमे निर्वाणशक्ति छथि। हिनक प्राण हंसे छन्हि।

२८६. एहिठाम तुलनीया छथि बौद्धक उष्णीषकमलमे ( महासुखचक्रमे ) आएल षोड़शकलायुक्ता योगिनी। सहस्रारक सम्पर्कमे ओएह ऊपर षोड़शीकला कहल गेल छथि। त्रिपुरसुन्दरीक षोड़शी नामहुक इएह अभिप्राय अछि। एहि समानतासँ तथा शिरःस्थताक आधारपर उष्णीष वा महासुखचक्रके सहस्रार कहि सकैत छी।

२८७. आब प्रस्तुत विषय अन्तःशक्तिसाधनक विचार कएल जाए। पहिने हिन्दूयोगहिक विचार कएल जाए, जकरा षट्चक्रभेद कहल जाइत अछि।

२८८. एहि प्रसङ्ग 'षट्चक्रनिरूपण'क आशय देखल जाए—

"विहितासनमे बैसि योगी खेचरी मुद्रामे स्थित भए, मनकेँ स्थिर कए, देहक अन्तरमे वायु भरि कुम्भक द्वारा हृदयकेँ आकुञ्चित करथि ताहिसँ श्वास ~~उर्ध्व~~-गति रुकि जाएत आ' वायु उदरकण्ठादिमे भरि जाएत। नीचा दिशि जोर पड़त, नाड़ीछिद्रक प्रस्फोटनसँ वायुक अधोगमन अनुभव कए ओकरो रोकी, अपाननिरोध करी। तखन वायुकेँ [ शरीरहिमे ] ऊपर उठाबी, मूलाधारकमलकर्णिकान्तःस्थित कामकेँ बामा घुमाबी [ स्वयम्भूलिङ्ग अभिप्रेत ]। एहि प्रक्रियासँ मूलाधारप्रान्त उद्दीप्त भए जाएत, कुण्डलिनी उक्त कामक अग्नि [ज्वाला, तेज ] सँ स्वयं उत्तप्ता भए जेतीह, तखन हूँकारसँ हुनका जगबिअन्हि, परमशिवसामरस्याभिलाषिणी ओहि कुण्डलीकेँ स्वयम्भूलिङ्गक मुखक स्फोटन करबाक पश्चात् ओकरहि छिद्र द्वारा चित्रिणी नाड़ीमुखमे पहुँचाए दिअन्हि" ३१५।

२८९. "तखन ओ शुद्धसत्त्वा देवी तीनू लिङ्ग [ पूर्वकथित स्वयम्भू, बाण तथा इतरलिङ्गक ] भेद करैत, सभ ब्रह्मनाड़ीस्थ चक्र [ उक्त षट्चक्र ] होइत सूक्ष्मरूपमे, मृणालतन्तुरूपमे परमशिवमे लीन भए परमानन्द तथा सहसा मोक्ष घटबैत छथि" ३१६। ई परमानन्द 'मधु', 'अमृत' आदिसँ लक्षित होइत अछि।

२९०. तेँ गुरुपादावलम्बी योगीलोकनिकेँ कुण्डलिनी-योगक अनुसरण करबाक हेतु कहल गेल अछि। कुलकुण्डलिनीशक्तिमे सामर्थ्य छन्हि जे सुसंयत साधकक

---

३१५। ष० च० नि०—श्लो० ५०क संस्कृत टीका।

३१६। ऐजन —श्लो० ५१

प्राणकेँ आत्मसात् कए निजस्वामी परमशिवमे, मोक्षधाम पद्मपदनमे मिलाए दैत छथि। शुद्ध चैतन्य [ वा चित् ] रूपमे ओहि पराशक्तिकेँ देखैत देखैत साधक ओहि पराशक्तिक अभिन्न परमशिवरूप भए जाइत छथि [३१७]। सएह तँ भेल लय-योग, सएह तँ शुद्ध पराशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्दनिर्भरसामरस्यसाधनक स्वरूप थिक।

२९१. एहिठाम प्राणशक्तिकेँ कुण्डलिनीशक्तिक रूपमे परमशिवक गृहिणी कल्पित कएल गेल अछि, जे नवीना विद्वान् मानैत छथि [३१८]। किन्तु दुइ गोट शब्द भेटैत अछि 'प्राणशक्ति' आ' 'आत्मा'। एहि दूनू शब्दक मर्मपर विचार कएलासँ इएह बूझि पड़ैत अछि जे समस्त पिण्डक स्फूर्त्तिकेँ प्राणशक्ति मानल गेल अछि आ' अण्ड-पिण्डसँ उत्तर अनुत्तर अद्वितीय परमसत्यकेँ परशिव। आत्मा स्वतः परशिवे थिक। केवल मायायुक्त, अविद्यादोषयुक्त, रहबाक कारणेँ प्राणीकेँ एहन अनुभव नहि होइत छैक। लय-योग ओही अनुभूतिकेँ जगेबाक हेतु, शक्तिक आविष्करणक हेतु, शक्तिक सुसंयत साधना द्वारा 'शिवोऽहम्' भावना जगेबाक हेतु विहित कएल गेल। शक्ति शिवक अभिन्न छथि, शक्तिक स्वरूपज्ञान आपेक्षिक सुलभ। ओहि शक्तिक सङ्ग प्राणक अन्तरङ्गता उपर्युक्त श्वास-प्रक्रिया द्वारा सुलभ भए जाइत अछि आ' तखन समस्त पिण्डक मूलभूता स्फूर्त्ति शक्तिक शिवलीन होएबाक अर्थ प्राणक आत्मलीन होएब अर्थात् परमात्मप्रकाशलीन होएब कोना भेल, से सन्दिग्ध नहि रहि जाइत अछि। शरीरक समस्त तत्त्व कुण्डलिनीक सङ्ग मीलि परशिवमे लीन भए जाइत अछि आ' सएह तँ थिक मुक्ति। तेँ उक्त कुण्डलिनी-योगकेँ 'लययोग', 'सामरस्य', मुक्ति वा निर्वाणक उपयुक्त योग कहि सकैत छी।

२९२. किन्तु, दैनिक साधनामे कुण्डलिनी-योगक लयक्रम मात्र नहि अनुभूत होइत अछि। लयक पश्चात् साधक पुनः उक्त क्रमक ठीक विपरीत क्रममे कुण्डलिनीकेँ उतारैत छथि, किन्तु सामान्य दशासँ चक्रभेदक पश्चातक दशामे अधिक शुद्धता अनुभूत होएत।

२९३. लय-सृष्टिक्रमक मध्यवर्त्ती स्थितिकेँ 'सन्ध्या' कहल गेल अछि तथा ओहि स्थितिमे रहबाक पश्चात् जे प्राणक अधःप्रवर्त्तन प्रारम्भ होइत अछि तकरा 'चन्द्रोदय' कहल गेल अछि। ततबे नहि, पुनः जखन हृत्पद्मस्थो भए जाइत छथि

---

३१७। ष० च० नि०—श्लोक ५२ क आशय

३१८। Lokāyat —P. 278

प्राणशक्ति वा प्राणकुण्डलिनीशक्ति [ 'प्राक् संचित प्राणे'सँ दूनू एके थिक ], तखन 'प्रभात' समय मानल जाइत अछि [३१९]।

२६४. एहि लक्षणसभसँ ई आशय वा स्वारस्य बहराइत अछि जे सहस्रारसँ हृत्पद्म धरिक प्राणक स्थितिकेँ 'राति' तथा तकर अर्धांशकेँ 'अधराति' कहि सकैत छी। तेँ संभवतः सहस्रारसँ कण्ठ धरिक प्राणस्थितिकेँ 'अधराति'सँ सूचित कएल गेल अछि, किन्तु ई स्थिति बड़ सूक्ष्म अछि, सामरस्यस्थिति नष्ट नहि भेल रहैत अछि, प्रत्युत [ लयक पश्चात् अनुभवक प्रश्ने नहि रहबाक कारणेँ ] सामरस्यक मधुरतर अनुभव होइत अछि, तेँ 'अधराति'केँ सामरस्य-व्यङ्ग्यार्थक व्यञ्जक मानि सकैत छी, विशेषतः आलोच्य कृतिक भावात्मक अर्थयोजनाक दृष्टिएँ।

भूतशुद्धि

२६५. रहि गेल भूतशुद्धिक प्रश्न। यद्यपि वाग्धारामे लोक भूतशुद्धिसँ चक्रभेद लक्षित करैत आएल अछि, किन्तु भूतशुद्धि वस्तुतः चक्रभेदक ओ अंश थिक जाहिमे साधकक कुम्भक ( श्वास-निरोध)-प्रक्रिया-फलस्वरूप समुत्थिता कुण्डलिनीक अग्निज्वालासँ समस्त दोषपूर्ण शरीर, पापपुरुष, जरि जाइत अछि आ' पञ्चविषयानुभूति तथा इन्द्रियसँ ऊपरहुक समस्त तत्त्व कुण्डलिनी द्वारा क्रमशः अपन उत्तरतत्त्वमे विलीन होइत होइत अन्तमे सच्चिदानन्दमे लीन भए जाइत अछि। आ' पुनः सृष्टिक्रमेण शरीरपापपुरुषक ( दोषपुञ्जक ) शोधन भए जाइत अछि। एहि प्रक्रियाक निर्देश अनेक तन्त्रग्रन्थमे भेटैत अछि। अनावश्यक विस्तारमे नहि जाए, प्रक्रियाक सङ्केत मात्र कएल गेल अछि। मातृकाशक्तिक सत्ता रहबाक कारणेँ प्रत्येक प्रक्रियामे मन्त्र प्रयुक्त होइत अछि [३२०]। ( शोधनसँ पूर्व ) जे भूतनाशक अग्निज्वालाक कथा कहल गेल अछि, तकर उल्लेख एहि निबन्धांशक आरम्भमे, कुण्डलिनीक उत्तप्त होएबाक क्रममे कए देल गेल अछि।

२६६. शरीर-पापपुरुषक शोधनक पश्चात् सृष्टिक्रममे समस्त तत्त्व अपन अपन स्थानपर शुद्धरूपमे अबैत अछि, पापक्षय भए गेल रहबाक कारणेँ। तेँ कुण्डलिनीयोगकेँ 'भूतशुद्धि' कहब रूढ़ बनि गेल अछि। ई भूतशुद्धि चक्रभेदहिक

---

३१९। स० मा० र०—पृ० १७४-१७५ [ स्व० त० ७ प० सँ उद्धृत ]
३२०। प्रा० तो०—पृ० ३८१-३८८

'अंश थिक। दहनक पश्चात् जे शुद्धरूपमे सृष्टि होइत अछि से ललाटस्थ अमृतसँ, पूर्वनिर्दिष्ट चन्द्रकलामृतसँ, सएह बुझबाक थिक[३२१]। सभ अमृतहिक कार्य थिक।

२९७. आब नाद-बिन्दुक दार्शनिक तथा साधनापरक लक्षण देखल जाए।

नाद-बिन्दु

२९८. एहि सभ उक्त विषयक चर्चा तन्त्रग्रन्थसभमे भेटैत अछि। आब आवश्यक एक विषय रहि गेल, ओ थिक नाद-बिन्दु।

२९९. 'स्पन्दकारिका'क चारिम निष्पन्दक बारहम कारिकाक वृत्तिमे बिन्दुक लक्षण बड़ सरल प्रतीत होइत अछि।

"बिन्दु भ्रूमध्यादिप्रदेशमे ध्यानाभ्यासप्रकर्षसँ उत्तरोत्तर प्रवर्धमान तेजोविशेष, जे बिन्दुभेदाभ्यासवशात् धरातत्त्व-ध्यायी व्यक्तिसभकें अभिव्यक्त होइत छन्हि"[३२२]।

३००. तहिना नादक लक्षण भेटैत अछि—

"नाद वेगवतीनदीतरङ्गक निर्घोषघनोपक्रम तथा क्रमक सूक्ष्मीभावकें अभिव्यक्त केनिहार, मधुमत्तमधुकरक ध्वनिताक अनुकरण केनिहार, अपनहि उच्चरित भेल ध्वनिविशेष, जकरा व्योमतत्त्व [ खेचरीमुद्राक ] अभ्यासीसभ सुनैत छथि"[३२३]।

३०१. बिन्दु-नाद अनुभवक वस्तु अछि, बिन्दु प्रकाशरूप अछि आ' नाद ध्वनिरूप [ श्रवणग्राह्य ]।

३०२. प्रस्तुत आलोच्य कृतिमे 'नाद-बिन्दु'क प्रश्न अधिक नहि उठत अछि, उल्लेख जँ भेटितहुँ अछि तँ ताहिसँ सिद्धलोकनिक ओहि तत्त्वक प्रति अज्ञान वा अवहेलना सएह व्यक्त होइत अछि। सरहपाद नाद, बिन्दु रवि, शशि, एहि सभक ऊपर सहज चित्तकें मानि ओहिसभमे ओझराए नहि चाहैत छथि, प्रत्युत 'न' द्वारा सभक निषेधे करैत छथि। कङ्कणपाद कहैत छथि जे नाद-बिन्दु हमर हृदयमे पैसिते नहि अछि। किन्तु, एहिमे सन्देह नहि जे गगनवादी [ शून्यवादी ] विचार नाद-बिन्दु-तत्त्वसँ सम्बद्ध रहैत आएल अछि, तें नाद-बिन्दुक लक्षण दए देल गेल अछि, विशेष यौगिक क्षेत्रमे उपयुक्त।

३०३. बिन्दुक प्रसङ्ग तँ नहि, जे नादक प्रसङ्ग चारि व्यक्ति जागरूक

---

३२१। प्रा० तो०—पृ० ३८४

३२२। स्प०का०—पृ० ११८

३२३। ऐजन —ऐजम

अवश्य छलाह—कान्हपाद, वीणापाद, महीधरपाद, तन्त्रीपाद तथा कङ्कणपाद। कङ्कणपादक व्यङ्ग्यप्रवृत्ति वा विनम्रता थिक अज्ञान देखाएब [ जे ऊपर कहल गेल अछि ], हुनक गीतमे शब्दतः 'तथतानाद'क प्रयोग अछि। 'तथता'क अर्थ थिक तथा-रूपता, जकर अंगरेजी अनुवाद बड़ उपयुक्त ढङ्गसँ डा० दासगुप्त कएलन्हि अछि[३२४]। बौद्ध ज्ञानी व्याख्या जेना करथि, शब्दक मर्म 'सोऽहं'-भावनामात्र बुझबाक थिक आ' सएह तँ भेल विमर्श, उक्त ध्वनिक निगूढ़तम अनुभूति वा शक्तिक सङ्ग अनन्य अन्तरङ्गता। नादक अर्थ वस्तुतः अनुभवमात्रैकगम्य थिक, तथापि स्पन्दकारिकोक लक्षण घटैत अछि।

३०४. प्राप्त अछि 'अनाहतनाद' शब्द। अनाहतनादकेँ 'भावोपहार'क तद्सम श्लोकक प्रसङ्ग पण्डित मुकुन्दरामशास्त्री 'परधामद्वादशान्तमे अन्तरस्फुटरूपमे स्वयं उच्चरित होइत परा वाक्' कहैत छथि। 'द्वादशान्तमे'सँ अभिप्रेत अछि ( शून्यमे ) ब्रह्मरन्ध्रसँ ऊपर। बौद्धो लक्षण तेहने भेटैत अछि—"( सहजस्वभावमे प्रवेश भेलापर ) श्रव्य शून्यताघनगर्जन" (च०वि०पृ०२९)।

३०५. एक विषय विचारणीय। तन्त्रालोकमे जखन 'सहजनाद'क चर्चा अएल अछि[३२५] आ'जखन सिद्धसभ सहजवादी छलाह, तखन 'अनाहतनाद' नहि कहि 'सहजनाद'क उल्लेख किएक नहि कएल ? हमरा जनैत, अनाहतनादक उल्लेखमे भार-तीय तान्त्रिक, यौगिक संस्कृति-परम्पराक आदर निहित अछि, जे प्रस्तुत सिद्धक गीतकेँ हिन्दूतन्त्र दिशि स्पष्टतः लए जाइत अछि। "अनाहत नाद अनस्तमित [ नित्य ] आ' अन्तिम वा आदि एक वर्ण अनन्य" मानल गेल अछि[३२६]।

३०६. अनाहतनादक प्रसङ्ग म०म० कविराजजीक धारणाकेँ प्रश्रय दिअए पड़ैत अछि, जाहि अनुसार सृष्टिबीज स-कार आ' संहारबीज ह-कार अनाहतनादक मुख्य अभिव्यक्तिस्थानक बीज थिक। बिन्दुयुक्त ह-कार [हं] परमपुरुषक आ' विसर्गयुक्त स-कार [सः] परमा प्रकृतिक वाचक थिक। दूनूक युक्तावस्थे आदि 'हंस'क रूप थिक जकरा निःस्पन्द आ' स्पन्दतत्त्वक सन्धिस्थान मानल जाए सकत अछि। ई हंस आदि प्राण मात्र थिक जे संवितक प्रथम परिणाम थिक। एही हंसक ध्वन्यात्मक वा नादात्मक अनुभूति अनाहतनाद थिक[३२७]।

---

३२४। A. I. T. B —P. 18-19 ( द्र० 'Thatness' )

३२५। म० मा० र०—पृ० १६१ [ प्रा० टि० ]

३२६। एको नादात्मको वर्णः सर्ववर्णाविभागवान्।
सोऽनस्तमितरूपत्वाद् अनाहत इहोदितः॥
—ऐजन—पृ० १७७ [ उद्धृत ]

३२७। ता० वा० शा० द० [ नादतत्त्व ]—पृ० २६६-२६८

३०७. तँ योगी लोकनि अनहदनाद वा अनाहतनादमे एहि रहस्यकेँ देखत छथि, शून्यप्रमाताक किञ्चित् चलन वा स्पन्दनकेँ देखैत छथि[३२८] आ' कहल जाइत अछि जे प्रत्येक मनुष्य ज्ञात वा अज्ञातरूपमे एहि हंसबीजक जप अहोरात्रमे २१६०० बेरि करैत अछि आओर इएह जप 'अजपाजप' कहल जाइत अछि[३२९]।

३०८. तथतानाद तथा अनाहतनादमे कोनो दार्शनिक अन्तर नहि अछि, दूनू नाद विमर्शहिक सूचक थिक।

३०९. मन, प्राण आ' कुण्डलिनीक संयुक्त रूपसँ सूक्ष्म आ' सूक्ष्मतर नाड़ी-मार्गमे संचरणवश आ सम आनन्ददायक ध्वनि श्रुतिगोचर होइत अछि।

तुरीय वा तूर्य

३१०. तुरीय अवस्थाक प्रसङ्ग प्रायः कहबाक काज नहि। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त आ' तुरीय ई चारि अवस्था अछि। 'तुरीय शब्दे शब्दब्रह्म छथि[३३०]"—एहिसँ सङ्केत भेटैत अछि जे उपर्युक्त नादक निर्विकल्पज्ञान वा समाधिक अवस्था तुरीय वा तूर्यक अवस्था थिक। एकरा चतुर्थ दशा मानल जाइत अछि। एहि अवस्थामे जाग्रतावस्थाक विकल्प नहि, सुषुप्तावस्थाक अज्ञान नहि आ' स्वप्नावस्थहुक विषयज्ञान नहि, केवल प्रकाश-अहन्ताक परामर्श रहैत अछि, प्रकाशक विमर्शसहित अनुभूति, दूनूक सामरस्यक अनुभूति, होइत रहैत अछि। कुक्कुरीपादक गीत [स० ३]मे 'तूर्य' शब्दे आएल अछि। अर्थो इएह।

३११. तुरीयदशापन्न जीवोपाधिक अधिष्ठान महाकारणशरीरमे मानल जाइत अछि[३३१]। पृष्ठभूमिरूपमे एतए एतबे योगक विषय राखब प्रयोजनीय। आब चर्या-गीतक प्रधान विषय, अन्तःशक्तिक स्वरूप, प्रस्तुत कएल जाइत अछि। तत्पश्चात् प्राणायमादिक विचार सेहो कएल जाएत गीतमे प्रतिनिधित रहबाक कारणेँ, स्वतन्त्र रूपमे।

---

३२८। ता० वा० शा० इ० [नादतत्व]—पृ० २६५

३२९। ऐजन —पृ० २६७

३३०। म० मा० र० —पृ० ४६-५०

३३१। The Serpent Power —Intro, P. 81 मे उद्धृत

## अन्तरङ्गसाधनमे शक्तिक स्वरूप

३१२. एखनधरि जाहि तथ्यसभक विचार भेल अछि, ताहिसँ बौद्धतन्त्रोक्त नाड़ी-योजना, चक्रविचार तथा हिन्दूतन्त्रानुसृत नाड़ी-योजना, षट्चक्रविचार चक्रभेद [ कुण्डलिनीयोग ] तथा भूतशुद्धिक परिचय भेटि गेल होएत। जेना चक्रभेद-प्रक्रिया तथा भूतशुद्धिक प्रसङ्ग सविस्तर विचार हिन्दूतन्त्रमे भेटैत अछि, तेना बौद्धतन्त्रमे नहि भेटैत अछि; तेँ नाड़ीचक्रक नाम-स्वरूप-स्थानक विचारक सङ्गहि बौद्धक चक्रभेद-प्रक्रिया तथा भूतशुद्धिपर प्रकाश नहि देल गेल। आब एहि विषयक विचार कएल जाइत अछि; कारण, हमरा जनैत, [ चक्र-संख्या एवं दलमे जे अन्तर रहए ] मूलतः हिन्दूतन्त्र वा योगहिक चक्रभेद-प्रक्रिया तथा भूतशुद्धि बौद्धहु साधनामे अङ्गीकृत छल, एही दृष्टिकोणसँ एहि दूनू विषयपर [ यथोपलब्ध फुटकर प्रमाणक आधारपर ] हिन्दू-योगविचारक पश्चात् विचार कएल जाइत अछि, एहिसँ किछु स्पष्टतर प्रतीत हो से संभव। हिन्दूतन्त्रक चक्रभेद-भूतशुद्धिक ज्ञान तुलनामे सहायक होएत, सएह उद्देश्य। तेँ आब देखल जाए।

३१३. चक्रभेद-भूतशुद्धिमे जेना सिद्ध होइत छथि कुण्डलिनी-शक्ति, तेना बौद्धतन्त्रमे कोन तत्त्व चक्रभेद करैत महासुखचक्रपर पहुँचैत छथि? इएह प्रश्न अछि। नाड़ीशुद्धि, श्वासादिक प्रसङ्ग विचार भेटितहुँ, एहि उक्त प्रश्नक समाधान एक ठाम नहि भेटैत अछि, अंशतः जँ भेटितहुँ अछि तँ किछु भ्रमाहे प्रतीत होइत अछि।

३१४. चर्यागीत वा ओकर संस्कृतटीकामे कतहु अवधूतिका-नाड़ीकेँ शक्तिक सत्ता देल गेल अछि,[332] कतहु बोधिचित्तक उत्थान देखाओल गेल अछि,[333] एकठाम नैरात्मा [ शक्ति ]क वास महासुखचक्रमे कहल गेल अछि[334] आ' कतहु कतहु चण्डाली-ज्वालाक उत्थानक वर्णन कएल गेल अछि[335]। एहिसभक निष्कर्षपर पहुँचबाक अछि।

३१५. प्रथमतः शङ्का उठैत अछि अवधूतिकानाड़ीक प्रसङ्ग, संस्कृतटीकामे जे एकरा स्थल-स्थलपर डोम्बीशक्ति वा शुण्डिनी वा नैरात्माक अभिन्न मानल गेल

---

३३२। डोम्बीति परिशुद्धावधूती नैरात्मा।—च० गी० को० पृ० ३५

३३३। तमुपतितं बोधिचित्तं स्थैर्यं कृत्वा निस्तरङ्गरूपेण चालय।—च०गी०को० पृ० ११

३३४। च०गी०को०—पृ० ६४

३३५। भु० ८, का० ७, धा० १

अछि से तहिना लक्षणासँ जेना सुषुम्नाकेँ 'त्रितयगुणमयी चन्द्रसूर्याग्निरूपा'[३३६] वा ताहूसँ अधिक, ब्रह्मनाड़ीकेँ 'शुद्धबोधस्वरूपा' कहि देलगेल अछि[३३७]। जेना 'शुद्धबोधस्वरूपा'क व्याख्या 'शुद्धबोधक हेतु, तत्त्वज्ञानक हेतु, अपन आत्माक भाव जतए जगैत अछि'[३३८] से, तहिना परिशुद्धा अवधूता नाड़ीक प्रसङ्ग लक्षणासँ अर्थक सङ्गति बैसाओल जाएत, से जानक थिक। तेँ ई कथमपि बुझब उचित नहि जे डोम्बी वा नैरात्मा वा शौण्डी नाड़ीक वाचक शब्द थिक, लक्षणामात्रसँ नाड़ीक हेतु प्रयुक्त होइत अछि।

३१६. ई 'डोम्बी' आदि शब्द शक्तिहिक हेतु प्रयुक्त भेल अछि, महामुद्रा तथा अन्तरङ्गा प्राणशक्ति, दूनूक हेतु। अन्तरङ्गा शक्तिक विचार आगाँ जाए स्पष्ट कएल जाएत। तत्काल नाड़ीक अन्तःस्थिता शक्तिमात्र बुझबाक थिक। परिशुद्धा-अपरिशुद्धाक प्रयोग नाड़ीक शुद्धि-प्रक्रियाक दृष्टिएँ कएल गेल अछि[३३९], जकरा हिन्दुअहु योगमे कम सत्ता नहि देल गेल अछि।

३१७. आब देखल जाए 'बोधिचित्त'क प्रयोग कोन अर्थमे भेल अछि संस्कृत-टीकामे। आलोच्य गीतसभमे तँ ई शब्द कतहु नहि अछि, 'बोधि' शब्द मात्रक प्रयोग भेल अछि, ततए कोनो समस्या नहि अछि।

३१८. 'बोधिचित्त'क प्रयोग दुइ अर्थमे भेल अछि—[१] परमार्थ-बोधिचित्त तथा [२] संवृति-बोधिचित्त[३४०]।

३१९. [१] एहि दूनूमे परमार्थ-बोधिचित्तक स्वरूप तहिना निर्विकल्पक आ' अद्वितीय सूचित कएल गेल अछि जेना वेदान्तमे ब्रह्म (वा परमार्थ-ब्रह्म)क वा परमशिवक। जेना वेदान्तमे अवसर-अवसरपर व्यवहार-ब्रह्म वा कार्यब्रह्म मानि लेल जाइत छथि, तहिना मानल जाइत अछि संवृति-बोधिचित्त[३४१]। अस्तु, परमार्थबोधिचित्त वास्तविक वा यथार्थ सत्यस्वरूप छथि, किन्तु जेना ब्रह्मक लक्षणवाक्यमे 'परमार्थ' शब्द जोड़ब अनावश्यक, तहिना बोधिचित्तक लक्षणवाक्यमे ई शब्द जोड़बाक प्रयोजन नहि आ' तहिना भेटितहुँ अछि वा प्रारम्भमे एहू पोथीमे मानल गेल अछि।

---

३३६। ष० च० नि०—श्लो० १

३३७। ऐजन —श्लो० २

३३८। ऐजन —श्लो० ३क सं० टी०

३३९। भा० सं० सा० [खण्ड २] पृ० २५६, २६१

३४०। च० गी० को०—पृ० ९०[सं० टी०]

३४१। A. I. T. B.—P. 163

३२०. [२] संवृति-बोधिचित्तक चर्चा तीनि अर्थमे भेल अछि—[क] शुक्र [बिन्दु]क अर्थमे[३४२] [ख] सोभे-सोभ चित्तक अर्थमे[३४३] तथा [ग] प्राणक अर्थमे[३४४]। एक विषय निवेदनीय। इहो सम्भव थिक जे कतहु 'संवृति' शब्द नहि जोड़ल रहए, ओतए सङ्गतिसँ आक्षेप कएल जाइत अछि, विद्वद्गण कएनहु छथि तथा परमार्थबोधिचित्तक विवादहीन संस्कृतटीकानुमोदित लक्षणकेँ वँचबैत एहन विचार कएल जाइत अछि, तेँ कोनो क्षतिओ नहि।

३२१. [क] अस्तु, शुक्र वा बिन्दुक उत्थानक अर्थमे जे संवृति-बोधिचित्तक उत्थान देखल जाइत अछि से दूनू तन्त्रसँ अनुमोदित होएत। बौद्धतन्त्रमे तँ बिन्दु-सिद्धिक सत्ता अछिए[३४५], शुक्र-बिन्दु स्खलित नहि भए ऊर्ध्वमुख भए जाए आ' ऊपर ऊष्णीषकमल धरि ऊठि सकए जे भावना हिन्दुअहु तन्त्रमे कम नहि अछि[३४६]। डेग-डेगपर चित्तकेँ शुद्ध राखि उपासना करबाक इङ्गित[३४७], षट्चक्रभेद वा कुण्डलिनी-योगक प्रसङ्ग 'यमनियमसमभ्यासशील: सुशीलो'क आदेश[३४८] तथा किछु मूर्धन्य योगतन्त्रवेत्ताक तथ्यपूर्ण उक्तिसँ एहि शुक्र बिन्दुक स्तम्भन तथा ऊर्ध्वरेतसक समर्थन होइत अछि। आगाँ प्रतिपाद्य प्राणशक्तिक उत्थानमे कतहु ई सहायक नहि हो? 'मरणं बिन्दुपातेन' प्रसिद्ध सत्यो तँ सएह सङ्केतित करैत अछि।

३२२. तँ बोधिचित्त-उत्थानक उक्त अर्थ लेलासँ कुण्डलिनीयोगक निषेध नहि होइत अछि [ विधि आगाँ स्पष्ट भए जाएत ]

३२३. [ख] आब संवृतिबोधिचित्तक चित्त-अर्थमे प्रयोगपर ध्यान देल जाए, जाहिसँ बोधिचित्त-उत्थानक तात्पर्य भए जाएत चित्तक उत्थान। एहू परिस्थितिमे कुण्डलिनीयोगक निषेध नहि सूचित होएत। चित्तकेँ सत्ता कौलहु तन्त्रमे देल गेल

---

३४२। च० गी० को०—पृ० ३५
भा० सं०सा० [२]—पृ० २६३

३४३। ऐजन [ऐजन]—पृ० २६४, २६५

३४४। A. I. T. B.—P. 169 तथा च० गी० को०—पृ० ७३

३४५। भा० सं० सा० [ खण्ड २ ]—पृ० २५८

३४६। The Serpent Power—Intro. P. 224

३४७। कु० त०—उ० ५ श्लो० ११०-११२

३४८। ष० च० नि०—श्लोक ५० [ प्र० ८ ]

अछि, विशेषतः कुण्डलिनीयोगमे चित्तकें चक्रकेन्द्रमे गड़ाएब आवश्यके,[३४९] मनं आओर प्राणक सङ्ग[३५०] कुण्डलिनी उठैत जाइत छथि।

३२४ [ग] आब रहल प्रश्न संवृतिबोधिचित्तक प्राण-अर्थमे प्रयोगक, जाहिसँ बोधिचित्त-उत्थानक अर्थ प्राणकें ऊपर उठाए महासुखचक्र वा सहस्रारमे लए जाएब सिद्ध होइत अछि। से तँ चक्रभेद वा कुण्डलिनीयोगमे प्रधाने वस्तु बुझल जाइत अछि[३५१]।

३२५. उक्त विवेचनासँ एतबा धरि सिद्ध भए गेल जे बोधिचित्त-समुत्पाद-प्रक्रिया कोनो विजातीय वा प्रतिकूल प्रक्रिया नहि थिक, कुण्डलिनीयोगक दृष्टिएँ।

३२६. तखन प्रश्न रहल—सिद्धलोकनिक गीतसँ कुण्डलिनीयोगक सङ्केत कोना भेटैत अछि? शुक्रक उत्थान, चित्तक उत्थान तथा प्राणक उत्थानसँ तँ ई आवश्यक नहि सिद्ध होइत अछि। ई कोना अनुमान होइत अछि जे एहिसभक उत्थानक सङ्ग ओ सभ निर्माणचक्र [ निम्नतम चक्र ] सँ शक्तिकेँ ऊपर उठाए महासुखचक्रमे शिवमे लीन कए दैत छलाह वा ताहि सङ्ग लीन भए जाइत छलाह ?

३२७. एहि प्रश्नक समाधानमे जँ गीतसभ ताकए लगलहुँ तँ तीनि गोट गीतमे 'चण्डाली' पर ध्यान गेल[३५२]। गीतक तथा सहजयानक विचारसँ ई प्रतीत भेल जे एहि चण्डाली-शक्तिमे कुण्डलिनी-शक्तिक लक्षण धरि घटैत अछि अवश्य, हुनका 'कुण्डलिनी' कहल जाए वा नहि।

३२८. धामपादक गीतमे समतायोगें चण्डालीक प्रज्वलित होएब, शरीरस्थ भूतसभक दहन, चन्द्रामृतसँ आप्लावन, ओहि तेजक पुनः मेरुशिखरपर पहुँचब, फलतः ब्रह्माविष्णुमहेशक विग्रह-नाश [ शुद्ध चित्तस्वरूपमात्रक अनुभूति ] तथा समस्त बन्धनक कटि जाएब वर्णित भेल अछि।

३२९. चण्डालीक ई सभ लक्षण कुण्डलिनीशक्तिमे घटि जाइत अछि। जेना पहिने देखाओल गेल अछि, किछु यौगिक प्रक्रियासँ कुण्डलिनी उत्तप्ता भए जाइत छथि तथा सोझ आ' सूक्ष्मरूपमे ब्रह्मद्वारमे प्रवेश कए क्रमशः उठैत जाइत छथि। ततबे नहि, कौलतन्त्रक प्रकाण्ड विद्वान् तथा समर्थक उडरफ महाशय जे अपन साधक-

३४९। The Serpent Power —Intro. P 229, 285

३५०। ष० च० नि०—श्लोक ५०क सं० टी० [ पृ० ८० ]

३५१। The Serpent Power—Intro. P. 228

३५२। मु० ८, का० ७ तथा धा० १

मित्रकेँ पत्र लिखलथिन्ह प्रश्न पुछैत, तकर उत्तरमे जे विचार आएल, तदनुसार एतेक दूर धरि कहि सकैत छी जे एहि योगमे योगीकेँ तेजो[३५३] ज्वालहिक अनुभव होइत छन्हि, कोनहु सर्पाकार जन्तुक नहि। दोसर, पापपुरुषक दग्ध भए जाएब[३५४] सेहो तहिखन सम्भव। तेँ चण्डालीक जागरणकेँ प्राणशक्ति-कुण्डलिनीक जागरण मानि सकैत छी।

३३०. एही दृष्टिएँ भुसुकुपादहुक गीतमे सङ्गति बैसि सकैत अछि, प्रत्युत अन्यथा नहि। पञ्चपत्तनक दाह अन्यथा हो कोना ?

३३१. षट्चक्रभेदक प्रसङ्गमे कुण्डलिनाक काम-ज्वालाक चर्चा भेल छल, जे हुनकामे कुम्भक-बन्ध-प्रक्रियासँ जागि जाइत अछि आ' हुनका अपन नाथ परशिवक सङ्ग मिलनक हेतु आकुलि कए दैत अछि। एहि तथ्यकेँ जँ देखबाक अछि तँ कान्ह-पादक 'काम-चण्डाला'केँ देखल जाए[३५५]। एहि ज्वालहिक हेतुएँ ने हुनक ई नाम ? कामक ताप सहित कुण्डलिनीए कान्हपादक कामचण्डाली [ कामचण्डाग्निवाली ] छथि, जे उपर्युक्त उडरफ महाशयक पत्रक दृष्टिएँ कुण्डलिनीयोगक रहस्ये अछि [बौ०त०मे 'चण्डाली'क व्युत्पत्ति अछि चण्डा+आली। द्र०A.I.T.B.-P.112-113]।

३३२. आब रहल प्रश्न 'डोम्बी' शब्दक प्रसङ्ग। जेना शाक्ततन्त्र अपरा, परा-परा तथा पराशक्ति मानैत अछि, तहिना बौद्धतन्त्र अवधूती, चण्डाली तथा डोम्बी मानैत अछि[३५६] [ अवधूतीकेँ नाड़ाशक्ति बुझबाक थिक, जे पूर्व सूचित भए गेल अछि ]। तँ एहू शब्दक प्रयागमे सङ्गति बैसिए जाइत अछि, महामुद्रा तथा अन्तरङ्गा शक्तिक दृष्टिएँ। डाम्बी सभसँ ऊपर छथि, सभ सृष्टि तँ हुनके, तेँ विवाद नहि उठैत अछि। कान्हपाद [ गीत सं० ३, ७, ८ ], डोम्बापाद [ गात सं० १ ] तथा पुनः धामपादकेँ देखल जाए। डोम्बापादक 'मातङ्गा पोइआ' [ नीच स्त्री ] श्लेषसँ मातङ्गी महा-विद्याक सङ्ग-सङ्ग निम्नतमचक्रस्थिता कुण्डलिनीशक्ति नहि छथि, से नहि।

३३३. एक गोट गीतमे किछु विवाद भासित भेल, जकर समुचित समाधान कतहु नहि भेटल। ओ गात अछि शबरपादक [ गीत सं०१ ]। एहिमे स्पष्टतः देल

---

३५३। The Serp. Power—Intro. P. 312-313

३५४। पाछाँ 'भूतशुद्धि' द्रष्टव्य—अनु० २६५-२६६

३५५। का० ७

३५६। भा० सं० सा० [ २ ]—पृ० २६२

अछि जे शबरीबाला ऊँच पर्वतपर बसैत अथि। प्रश्न उठल—की ई कुण्डलिनी शक्ति छथि? उत्तर समीचीने भेटल।

३३४. दूनू तन्त्रमे अन्तिम पद्म महासुख-चक्र वा सहस्रारमे चन्द्रक षोड़शी कलाक चर्चा आएल अछि,[३५७] 'षट्चक्रनिरूपण'क सातम प्रकरणमे हुनका परा वा चिच्छक्तिरूपा कहल गेल अछि। तँ इएह शक्ति शबरक सुमेरुशिखरपर बसैत छथि। एहि अर्थानुसन्धानक पुष्टि ओही गीतक 'सहज सुन्दारा' शब्दसँ आओर नीक जकाँ होइत अछि। कोना? (षोड़शीमहाविद्या-स्वरूपा हेतु) 'सुभगोदय'सँ उद्धृत वचनें 'दर्शादि पञ्चदशकला पूर्णिमान्त धरि आ' षोड़शीकला सच्चिदानन्दरूपिणी छथि'[३५८]। ततबे नहि, उक्त चक्रनिरूपणमे आएल उडरफ महाशयक उक्ति देखल जाए—

"सहस्रारक चन्द्रमण्डल बैन्दवो कहल जाइत अछि। एक कला ओहिमे अक्षया। ओ कला चित् छोड़ि किछु नहि, जे आत्मे थिकीह। हमरालोकनि हुनका [ओहि शक्तिकें] 'त्रिपुरसुन्दरी' कहैत छिअन्हि"[३५९]।

३३५. शबरपादक सहजसुन्दरी एहि त्रिपुरसुन्दरीसँ भिन्न नहि। तेँ आगाँक एहि गीतमे वर्णित सामरस्यक अनुभूतिसँ इहो अर्थ सङ्केत भए जाएत जे कुण्डलिनीए ओतए पहुँचि गेल छथि, कारण शिवविरहिता तँ वर्णित नहि छथि, आत्मरूप शिवसंयुक्ते सुरतप्रसङ्गमे वर्णित छथि।

३३६. उपर्युक्त अन्तःसाक्ष्यक आधारपर ई सिद्ध होइत अछि जे चर्यागीतमे अभिव्यक्त अन्तरङ्गसाधनक केन्द्रबिन्दु अछि नाड़ीशुद्धिपुरःसर श्वासप्रक्रियानुशासन द्वारा तथा बन्ध द्वारा अन्तरङ्गा प्राणशक्तिकें वा हिन्दूयोगक शब्दमे प्राणदेवताकें जगाए, महासुखचक्रस्थ वा सहस्रारस्थ (शून्यगगनस्थ) आत्मरूप शिवक सङ्ग मिलाए, सामरस्य-मुक्ति वा निर्वाण प्राप्त करब। जेना कहल गेल अछि, एही सामरस्ययोगसँ आनन्दामृतस्राव होइत अछि, सूक्ष्म (वा स्थूल) रूपमे।

३३७. उक्त चण्डाली-योगक सङ्केतक हेतु एक बाह्यहु साक्ष्यकें राखि सकैत छी। मर्मकालिकातन्त्र तथा हेवज्रतन्त्रमे एक श्लोकमे भूतशुद्धिक दृष्टिएँ चण्डालाकें देखले गेल अछि—

---

३५७। पाछाँ चक्रविचार द्रष्टव्य अनु० २०३, २८५

३५८। नि० षो० [सेतुबन्ध व्याख्यान]—पृ० २६ [सुभगोदयसँ उद्धृत]

३५९। The Serpent Power—P. 235

"चण्डाली नाभिमे ज्वलिता भए उठलीह, पञ्चतथागतकें दग्ध करैत छथि, लोचनादि दग्ध भेला पर हूँ मन्त्रसँ, चन्द्रमासँ [अमृत-] स्राव भए रहल अछि"[३६०]।

३३८. एहि श्लोकक पाँच गोट व्याख्या देखाओल जाइत अछि, सभमे चण्डालीक अर्थ प्रज्ञे, शक्तिए, भेटैत अछि; केवल 'आली'क भिन्न भिन्न अर्थ देल गेल अछि[३६१]। किन्तु एक विषय ध्येय, 'आली'क अर्थसभमे सभसँ समीचीन 'वाम नासिकासँ वहैत वायु' अर्थ सएह प्रतीत होइत अछि। अन्य अर्थसभपर सम्प्रदायक छाप पड़ि गेल अछि, जे सहमति डा० दासगुप्तहुक कथनसँ सूचित होइत अछि[३६२]। फलतः उपर्युक्त श्लोकक तात्पर्य एतबे अछि जे श्वास [वामनासिकाबाला श्वास]क सहायतासँ जागल जे तेजोमयी शक्ति सँएह चण्डाली छथि। प्रज्ञा शक्तिए छथि, से पूर्वंहि सूचित कए देल गेल अछि, तँ चण्डा ओएह शक्ति छथि, ओ श्वास-प्रक्रिया वा निरोध द्वारा जाग्रत होइत छथि निर्माणचक्र [ निम्नतम चक्र ]मे, ओ अग्निशिखा समान तेजः-स्वरूपिणी छथि तथा समस्त तत्त्वक लय करैत छथि, तेँ 'चण्डाली'।

३३९. आब कुण्डलिनीक प्रसङ्ग म० म० कविराजजीक अनुसन्धान देखल जाए[३६३]। परापश्यन्तीमध्यमावैखरी वाक् प्रसिद्ध अछि, एहि चारूमे वैखरी [ स्थूलतमा]क सभ वर्ण जखन विगलित भए जाइत अछि तँ मध्यमामे नादाभास तथा पश्यन्तीसँ विशुद्ध नादमय ज्योति प्रकाशित होइत अछि, अनायास नहि, यौगिक साधनासँ ई अनुभूति सम्भव अछि ।

३४०. आब प्रश्न उठैत अछि जे 'नादरूपमे वर्णक परिणतिक हेतु तापक आवश्यकता अछि। ओ ताप थिक चिदग्नि। तँ कविराज जी समस्त साधनाक मूल तत्त्व एहि चिदग्निअहिकें मानैत छथि आ' वस्तुतः परिणाममे तँ ओएह सभ किछु। किन्तु ई अग्नि जागए कोना? सएह साधना तँ थिक कुण्डलिनी-जागरण। कुण्डलीनीक तेजक प्रसङ्ग पूर्वंहु विचार कएल गेल अछि। उडरफ महाशयक मित्र-साधकक अनुसन्धानक चर्चा भेल छल। एमहर नाद-साधना आ' कुण्डलिनी-योगक मधुर समन्वयक हेतु जे म० म० कविराजजीक मत प्राप्त भेल, तकरो स्वारस्य इएह प्रतीत होइत अछि, प्रत्युत आगाँ जाए स्फुटरूपमे ओ कहैत छथि—

३६०। A. I. T. B.—P.112

३६१। ऐजन—ऐजन

३६२। ऐजन—ऐजन [ द्रष्टव्य 'सम्प्रदायव्याख्या' शब्द ]

३६३। ता० वा० शा० द०—[षट्चक्रका भेद ]—पृ० ६६

"एवं कुण्डलिनीरूपा वाक्शक्ति वास्तवमे अग्निक स्वरूप थिक" ३६४।

३४१. 'वास्तवमे' शब्दसँ हुनक दृढ़ विश्वास व्यक्त होइत अछि। फलतः ई मानल जाए सकैत अछि जे बौद्धतन्त्र जाहि शक्तिकेँ 'चण्डाली' कहैत छथि, ताही 'प्रज्वलद्भुजगाकारा पद्मतन्त्रनिभा जननी' केँ ३६५ शाक्ततन्त्र 'कुण्डलिनी' कहैत अछि। आ एहि शक्तिकेँ निम्नतमचक्रमे जाग्रत करए कहैत अछि, तहिना ई [ हिन्दू वा शाक्त तन्त्र ] एहि शक्तिकेँ आधारचक्रमे जगबए कहैत अछि। जँ हेवज्रतन्त्रकेँ प्रामाणिक मानल जाए तँ बौद्धहु तन्त्रमे नाभि नहि, योनिए वा जननेन्द्रियनिकटे स्थान अछि निम्नतम चक्र [ निर्माणचक्र ]क ३६६।

३४२. उक्त एक-दू बाह्यहु साक्ष्यसँ हमर ई धारणा पोषित भए गेल जे कान्हपाद तथा धामपादक चण्डाली बौद्धतन्त्रोक्त चण्डालीशक्ति [ वायुनिरोधसमुत्थापित प्रज्ञाशक्ति ] वा हिन्दूतन्त्रोक्ता कुण्डलिनीशक्ति [ वायुनिरोधसमुत्थापिता प्राणशक्ति वा चित्शक्ति ] छोड़ि अन्य केओ नहि। भूतलय काज तँ इहो करितहिँ छथि, तेँ नस् छथिए, तेँ दहन मानल जाए सकैत अछि भूतशुद्धिक क्रममे।

३४३. एहि दृष्टिएँ सिद्धक साधनाकेँ अन्तरङ्गशक्तिसाधन कहल गेल अछि। एहन इएह योग अछि जकर उल्लेख प्राचीन एवं नवीनसँ नवीन युगक साधना-ग्रन्थमे भेटैत अछि। कुब्जिकातन्त्रक 'निर्गुण नाद-बिन्दु', 'षट्चक्रकेँ भेद कए सनातन शब्दरूप चैतन्य [ चित् ] परिकीर्तित होइत छथि' तथा मूलाधारनिवासिनी भुजङ्गरूपिणी देवीक ध्यायन ३६७ एही योगक सङ्केत करैत अछि। मायातन्त्रक 'सहस्रार-महापद्मवन' तथा 'ब्रह्मपङ्कजमे मनोनिवेशक उल्लेख ३६८ 'महाकुण्डलिनी साक्षात् ओ स्त्री सम्भोगरूपिणी' सन पुरश्चरणरसोल्लासक भावना ३६९ मुण्डमालातन्त्रक 'तप्तचामीकरप्रभ सहस्रारस्थित लिङ्ग' ३७० तथा विश्वसारतन्त्रक 'शक्तिक सम्भोगमात्रसँ क्रियापरनाद'क सिद्धान्तपर आधारित मूलाधारसँ सहस्रार धरि

---

३६४। ता० वा० शा० इ०—[ षट्चक्रका भेद ] पृ० ६६

३६५। ष० च० नि०— श्लोक ५० क पा० टि० [ पृ० ८० ]

३६६। A. I. T. B.—P. 152 [ योनिक लक्षण द्रष्टव्य पाछाँ अनु० २६५ ]

३६७। कुब्जिकातन्त्रम्—पृ० २,७

३६८। मायातन्त्रम्—पृ० ५

३६९। पु० रसोल्लास—पृ० ५

३७०। मु० मा० त०—पृ० ५

सप्तचक्रक [ सहस्रार छोड़ि षट्चक्रहिक ] भेद तथा 'ज्योतिक घरमे विद्युल्लताकारा परदेवता कुण्डली'क नाड़ीशुद्धिक पश्चात् ऊर्ध्वप्रयाण[३७१] हरगौरीसंवादहुमे एहि योगक सत्ताकेँ अभिव्यक्त करैत अछि। पश्चातक प्रमाणमे गोरक्षसंहिताकेँ राखल जाइत अछि, जाहिमे 'वह्नियोग' सँ 'कुञ्जीसँ कपाट खोलि कुण्डलिनीक सङ्ग योगाक मोक्षद्वार-प्रवेश' देखाओल गेल अछि[३७२]। षट्चक्र-निरूपणक चर्चा तँ कएठाम भेले अछि जे एहि योगकेँ सत्ता तान्त्रिक दर्शनक विश्वासी अरविन्दो अपन योगक पोथीमे देने छथि[३७३]। आनन्दक विषय थिक जे एक नवीन विद्वान् समस्त षट्चक्रव्यवस्थाकेँ शरीररचनाशास्त्रक दृष्टिएँ देख अंगरेजीमे एक स्वतन्त्र ग्रन्थ[३७४] लिखने छथि।

## प्राणायाम

३४४. कुण्डलिनी योगक प्रक्रियामे अनायास प्राणायामकेँ प्रमुखता देल जाइत अछि। पूर्वहु सूचित कएल गेल अछि जे कुण्डलिनी-उत्थानक हेतु वायुकेँ उत्तोलित करए पड़ैत अछि। भूतशुद्धिमे कहल गेल अछि जे गुरूपदिष्टमार्गमे एक बेरि कुम्भक द्वारा देहमे वायु भरि ली, जाहिसँ तेजोवृद्धि भए जाइत अछि आ' ओ तेजस् पुनः कुण्डलिनीकेँ उत्तप्ता बनाए दैत अछि।

३४५. प्रायः एहि प्रक्रियापर बौद्धहु तन्त्रक ध्यान गेल, तेँ श्रीगुह्यसमाजतन्त्रमे प्राणायामकेँ 'महारत्न' कहल गेल अछि[३७५]। ततबे नहि, मर्मकालिकातन्त्रमे षडङ्ग-योग द्वारा बोधिचित्त [ संवृतबोधिचित्त, बिन्दु ]क अधोगमन रोकबाक निर्देश अछि। ई षडङ्ग योग प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति तथा समाधि थिक[३७६]। षडङ्गयोगक विधान हठयोगक प्रक्रिया दिशि सङ्केतित करैत अछि आ' ताहिमे प्राणायामक सत्ता निर्विवाद सिद्ध अछि।

३४६. अर्थात: एहि प्राणायामक सङ्केत तँ गुण्डरीपाद [ गी० सं० १ ], कुक्कुरीपाद [गी०सं० १] तथा कान्हपाद [गी० सं० ४ ] सेहो कएने छथि श्वासक चर्चा

३७१। वि० सा० त०—पृ० ३, १०, ११

३७२। ष० च० नि०—श्लो० ५० क पा० टि० [ पृ० ८० ]

३७३। On Yoga—Vol. I P. 695

३७४। The Mysterious Kundalini by Vāsant G. Rele

३७५। श्री गु० स० त०—प० १८ श्लो० १४७ [पृ० १३२]

३७६। A. I. T, B,—P, 164

कए जे एक गोट गीतमे कुम्भकक शब्दतः उल्लेख अछि, कुम्भकहिक हेतु 'कुम्भीर' शब्द मानल जाएत[३७७]। कुक्कुरोपादक कुम्भीर समस्त चित्तक विकारकें खाए लैत अछि। एही प्रकारें तथा उद्देश्यें कान्हपाद श्वास [ सासु ]कें मारि इन्द्रियकें, तकर व्यापारकें, देहनगरीक घरमे अवरुद्ध कए कापालिक बनैत छथि, तहिना कुक्कुरीपाद श्वासक अवरोध करैत छथि[३७८] आ' गुण्डरीपाद कुञ्जीसँ बन्दे कए दैत छथि।

३४७. कुण्डलिनी-उत्थानक प्रसङ्गमे तँ गप्पे कोन ? ओहि तेजोमयी भुजङ्गीक जागरणे विनु प्राणायामें संभव नहि, बौद्धशब्दमे चण्डालीक ज्वलित होएबे असम्भव अन्यथा सेहो प्राणायामक सत्ता दूनू तन्त्रमे कम नहि भेटैत अछि। बौद्धतन्त्रक चर्चा तँ ऊपर कएले गेल अछि जे हिन्दूतन्त्रहुक अनेक साधना-पद्धति-साहित्यमे एकर स्वतन्त्र चर्चा भेटैत अछि[३७९], मन्त्रोच्चारणसहित पूरक, कुम्भक तथा रेचक करबाक विधान अछि, जपक संख्या-निर्देश सेहो देल गेल अछि[३८०]।

## मध्यविकास

३४८. स्वतः चित्तशोधन तथा मध्यविकास मन पड़ि जाइत अछि। चित्तशोधन तँ समस्त साधनाक निकटवर्त्ती लक्ष्य अछि, दूर लक्ष्य अछि चतुर्वर्ग-प्राप्ति[३८१], त्रिवर्गसम्बन्धी अभ्युदयक पश्चात् मुक्तिक प्राप्ति। अस्तु, एहि चित्तशोधनक प्रसङ्ग, विकल्पक्षयक प्रसङ्ग, विचार स्वतन्त्रहि शीर्षकमे देल गेल अछि। केवल ओकर यौगिक उपायक निर्देश एहिठाम प्राप्त अछि।

३४९. षडङ्गयोगक प्राणायामक तँ कथे कोन जे ध्यान[३८२] तथा समाधिअहुकें मध्यविकासरूपमे अनुभूत होएब आवश्यक, जकरा बौद्धयोगो सत्ता दैत अछि।

३५०. मध्यविकासक व्याख्या दार्शनिक तथा वैज्ञानिक दूनू प्रकारक भेटैत अछि। वैज्ञानिक [ यौगिकप्रक्रियासम्बन्धी ] व्याख्यामे कहल जाइत अछि मध्यभूता ब्रह्मनाड़ीक विकास[३८३]।

---

३७७। कु० १
३७८। ऐजन
३७९। अ। दक्षिणामूर्त्ति तन्त्र, —प्रा० तो० पृ० ३८८मे उद्धृत
आ। वि० सा० त०—प० २ [ पृ० २४ ]
३८०। तारिणीपारिजात—पृ० १२
३८१। म० नि० त०—उ० ३ श्लो० १७
३८२। द्रष्टव्य 'झाण'—लु० १ तथा दा० १
३८३। मध्यभूता ब्रह्मनाड़ी विकसति।—प्रत्य० हृ० सू० १७ क वृत्ति

३५१. प्रत्यभिज्ञाहृदयमे मध्यविकाससँ सच्चिदानन्दलाभ होइत अछि[३८४], एहि सूत्रक वृत्तिमे उक्तहि रूपक व्याख्या भेटैत अछि।

३५२. जेना एहि ब्रह्मनाड़ीक विकासक हेतु वाम-दक्षिण इड़ापिङ्गला नाड़ीकेँ अवरुद्ध करए पड़त, ताहना [ बौद्धक शब्दमे ] ललना-रसनाकेँ छोड़ि सोझ मध्यम[३८५] पथ [ उजुबाट ] धरए पड़त।

३५३. तँ सरहपाद [ गी० सं० २ ], डोम्बीपाद [गी० सं० १], चाटिल्लपाद [ गी० सं० १ ] तथा शान्तिपाद [ गी० सं० १ ] उक्तहि अर्थमे वाम-दक्षिण छोड़वाक आदेश देल, सेहो बहुत विद्वानक धारणा छन्हि। वामदक्षिण प्राण पथकेँ मध्यमपथ-रूपमे समन्वित करब आवश्यक।

३५४. ततबे नहि, कान्हपाद [ गी० सं० ६-७ ], धामपाद [ गी० सं० १ ] तथा कङ्कणपाद [गी० सं० १] तँ मध्यक निर्देश शब्दतः कएने छथि, सेहो पुनः उक्तहि अर्थमे। एही मध्यकेँ डोम्बीपाद सन्धिक तथा वीणापाद समरससन्धिकरूपमे तथा जयनन्दीपाद 'अन्तराल' कहि देखने छथि।

३५५. मध्यविकाससँ ध्यानमे आलोक आएब स्वाभाविक। आ' षडङ्ग-योगक एहि ध्यानतत्त्वकेँ चर्यागीतमे शब्दतहो सत्ता देल गेल अछि जे लुइपाद [ गी० सं० १ ] तथा दारिकपादक गीतक 'झाण' देखि स्पष्ट भए जाएत। मध्यविकास सामरस्यक समुचित साधन अछि।

## पीठक अनुसन्धान

३५६. किन्तु जेना किछु पूर्वो सूचित कएल गेल अछि, सिद्धमार्ग भाव-विरहित योगसाधनाक पक्षमे नछि। शक्तिक प्रति अटूट श्रद्धासँ, प्रेमसँ, आह्लादित भए वा द्रत भए साधकक हृदय ओहि शक्तिक केन्द्रबिन्दु लए उत्कण्ठित प्रतीत होइत अछि। एहि भावात्मक योगसाधनाकेँ परिपुष्ट करैत अछि पीठक अनुसन्धान।

३५७. पीठ की थिक ? जेना बाह्य जगतमे कामरूप आदि अनेक साधना-पीठक उल्लेख अछि तहिना शरीरक अन्तर्गतो कामरूप, पूर्णगिरि, जालन्धर तथा

---

३८४। मध्यविकासाच्चिदानन्दलाभः॥ —प्रत्य० हृ० सू० १७

३८५। A. I. T. B.—P. 165

उड्डीयानपाठक अस्तित्व अछि, वस्तुतः ई सभ क्रमशः उक्त मूलाधार, हृदय, भ्रू मध्य तथा सहस्रारमे[३८६] शक्तिक साङ्केतिक योनिरूपमे गोपित अछि।

३५८. आलोच्यकृतिमे गुण्डरीपाद, डोम्बीपाद, कुक्कुरीपाद, महीधरपाद तथा ढेण्ढणपाद शब्दतहो पीठक उल्लेख कएने छथि। सभसँ मर्मस्पर्शी अछि गुण्डरीपादक[३८७] ई अर्थयोजना—

"योगिनी मणिकूलसँ बहि उड्डीयानमे पसि जाइत अछि।"—मणिकूलसँ बहि सहस्रार वा महासुखचक्रमे योगिनी कुण्डलिनी पैसि जाइत छथि—इएह तँ तात्पर्य अछि प्रस्तुत पंक्तिक।

३५९. प्रत्युत एक गोट चमत्कार आओर भेटैत अछि। एहिठाम जे मणिकुलक उल्लेख अछि तकरा जँ मणिपूरक किञ्चित् परिवर्त्तितरूप मानल जाए तँ अर्थसङ्गति आओर बैसि जाइत अछि। हिन्दूयोगमे मणिपूरचक्रक स्थान नाभि अछि[३८८]। बौद्धयोग सामान्यतया निम्नतमचक्र [ निर्माणचक्र ]क स्थान नाभिए मानैत अछि[३८९], जाहि दृष्टिएँ नाभिस्थानसँ चण्डालीक उत्थानक कल्पना स्वाभाविक। ई कतेक चमत्कारक लगैत अछि जे हिन्दूतन्त्रक मणिपूरकेँ बौद्धो सिद्ध गुण्डरीपाद मान्यता दैत छथि, मणिकूलसँ उड्डीयानक तात्पर्य नाभिचक्रसँ सहस्रार मात्र, जे दूनू तन्त्रसँ स्वीकृत भए जाएत आ' तेँ चमत्कारक प्रयोग। जँ मणिकुलमे कुलकेँ शक्ति वा शरीरमात्रक वाचक[३९०] मानल जाए तँ 'मणि' शब्द निश्चित मणिपूरक संक्षिप्त रूप मात्र सिद्ध भए जाएत, तेँ उपर्युक्त अनुसन्धान [ पा० टि० मे मणिपूरक व्युत्पत्ति—द्रष्टव्य पूर्वपृष्ठ ]।

३६०. एहि अनुसन्धानसँ ई सूचित होइत अछि जे बौद्ध तान्त्रिक हिन्दूयोगसँ परिचिते टा नहि छलाह, मणिपूरचक्रकेँ नाभिस्थानीय चक्र मानितहुँ छलाह [ प्रत्युत निर्माणचक्रक नामोल्लेखो नहि अछि उक्त गीतमे। ताँहिसँ तँ इएह प्रतीत होइत अछि जे मणिपूरे मानैत छलाह, निर्माण नहि ]।

---

३८६। षट्चक्रविवृतिः—अष्टमं प्रकरणम् [ पृ० १२७ ]

३८७। गी० सं० १

३८८। नाभिपद्मं मणिपूराख्यम् "तत्पद्मं मणिवद्भिन्नं मणिपूरं तथोच्यते"॥—
ष० च० नि०—तृतीयं प्रकरणम् [ पृ० ३१ ]

३८९। द्रष्टव्य पूर्वं चक्रविचार—अनु० २६४

३९०। ल० स०—सौ० भा० व्याख्या—पृ० ५३

## मातृका–वर्णमाला

३६१. सिद्धलोकनिक अन्तःसाधनाक निगूढ़ रहस्यमे मातृका-रहस्यकेँ सेहो राखि सकैत छी। शबरपादक गीतमे ग्रीवामे गुंजरीमालीक व्याख्यामे मुनिदत्त 'गुह्यमन्त्रमाधिक्ये' शब्दक प्रयोग कएने छथि। दोसर म० म० कविराजजीक मतेँ बौद्धतन्त्रसाहित्यमे वर्णमालाक विचार अछि[३९१]। तेँ सम्भव थिक जे नैरात्मा-शक्तिक ग्रावाक गुंजरीमाला गुह्यमन्त्रक माला[३९२] वर्णमालाकेँ लक्षित कए वर्णित अछि।

३६२. आब हिन्दूतन्त्रक एतत्समान मत देखल जाए—

"महेश्वर जेना माहेश्वरीक हृत्पद्ममे देखलथिन्ह तहिना [ उतारि ] विधाता वर्णसभक आकारक सृष्टि कएल"[३९३]।

३६३. ततबे नहि, डा० अवस्थीमहाशय कामधेनुतन्त्रक एक उद्धरण रखैत छथि, जाहिसँ उक्त भावनाक परिपुष्टि होइत अछि—

"हमर कण्ठमे अद्भुत पचास वर्णक बीज स्थित अछि"[३९४]।

३६४. डा० अवस्थीक तँ इहा धारणा छन्हि जे महाकालीक कण्ठमे जे पचास-मुण्डक मालाक चर्चा भेटैत अछि सेहो पचास वर्णक मालहिक प्रतीक थिक,[३९५] हमहु एहि धारणासँ सहमत छी। समस्त मन्त्रशास्त्रक प्राण थिक इएह माला, वर्णमाला।

३६५. विशेषतः शबरपादक इष्टदेवी नैरात्माक कण्ठमे जे माला छन्हि आ' मुनिदत्त जे आकरा गुह्यमन्त्रमय मानैत छथि, ताहि प्रसङ्ग ई विषय नीक जकाँ कहल जाए सकैत अछि। किएक ?

३६६. पाछाँ एकठाम [ एहा गीतक प्रसङ्ग ]-शबरीकेँ त्रिपुरसुन्दरी [षोड़शी] रूपमे देखल गेल छल, कारण इएह जे चन्द्रक षोड़शीकलाक चर्चा द्धनू तन्त्र अन्तिम चक्रक प्रसङ्ग करैत अछि, सहस्रार वा उष्णीषकमल [ महासुखचक्र ] मे ई महाविद्याक

३९१। ता० वा० शा० इ०—पृ० ३११
३९२। च०ग्री० को०—पृ० ६४
३९३। Principles of Tantra—P. 521
३९४। .म० मा० र०—पृ०१७१
३९५। ऐजन — ऐजन

प्रसङ्गमे वर्णक अनुसन्धान आओर स्वाभाविक प्रतीत होइत अछि। त्रिपुरासम्प्रदायक अनेक ग्रन्थ अछि ताहिमे वाक्शक्तिक व्याख्यान कानहु रूपमे भेटितहिँ अछि। दृष्टान्तमे 'नित्याषोड़शिकार्णव' लेल जाए—

"आदिज्ञान होएबाक कारणेँ त्रिपुरा [ त्रिपुरसुन्दरी, षोड़शी ] परमा तथा आद्या शक्ति मानल जाइत छथि परमशक्ति स्थूलसूक्ष्मविभेदसँ तीनू लोकक उत्पत्तिमातृका [ वर्णमयी ] छथि" ३९६।

३६७. 'ललितासहस्रनाम'केँ भास्करराय त्रिपुरामतक ग्रन्थ मानैत छथि जे 'त्रिपुरा' शब्दक व्याख्यहिक क्रममे स्पष्ट भए जाइत अछि। एहि ग्रन्थक उपोद्घातहिमे अगस्त्यक उक्ति भेटैत अछि—

"[ ललितादेवीक चरितमे ] श्रीमत्पञ्चदशाक्षराक महिमा सेहो वर्णित अछि" ३९७।

३६८. वस्तुतः मातृकाशक्ति वा वाक्शक्तिसँ पराशक्तिकेँ वाक्तत्त्वरूपमे परिकल्पित कएल जाइत अछि। शब्दब्रह्मस्वरूपिणी छथि ओ महती शक्ति—ई मूलभित्ति अछि शाब्दी सृष्टितत्त्वक।

३६९. सृष्टिक दू पक्ष अछि शाब्दी सृष्टि आ' आर्थी सृष्टि। आर्थी सृष्टिमे पृथ्वी-तत्त्वसँ लए केँ शिवतत्त्व धरिक छत्तीसहु तत्त्वक परिगणन तथा दशाविकासक विचार आओत। किन्तु एहि मतक समानान्तर शाब्दी सृष्टिक विचार अछि, जाहिमे शिवतत्त्वक प्रथम स्पन्द शब्द वा नादहि रूपमे देखल जाइत अछि। एहि मतेँ शिवतत्त्वक अन्तरङ्गा पराशक्ति अपनाकेँ प्रथमतः नादरूपमे प्रकम्पित वा झङ्कृत करैत छथि। शब्दक प्रथम अवस्था 'परा' कहबैत अछि। एहि नाद तथा बिन्दुसँ पुनः त्रिबिन्दुक प्रादुर्भाव होइत अछि—सित, शोण [ लाल ] तथा मिश्रबिन्दुक [ एहिठाम बिन्दु कार्यबिन्दु थिक, कारणबिन्दु तँ 'महाबिन्दु' कहबैत अछि, सभसँ पहिल स्थिति ] एहि त्रिबिन्दुकेँ पुनः बिन्दु, नाद तथा बीज कहल जाइत अछि तथा तनूक हेतु क्रमशः चन्द्र, अग्नि तथा सूर्य वा इच्छा, ज्ञान, क्रिया अथवा वामा, ज्येष्ठा तथा रौद्री शक्तिक उल्लेख होइत अछि ३९८।

---

३९६। नि० षो० —वि० ४ श्लो० ४

३९७। ल० स०—उपोद्घात कला १—पृ० ४

३९८। Varṇamālā ( Garland of letters )—Foreword P. Vi-Vii

३७०. जे किछु हो, ई तानू बिन्दु एक महत् त्रिकोणक शीर्ष तथा आधार-विन्दुद्वय थिक। इएह महत्त्रिकोण 'कामकला' शब्दें ख्यात अछि। एहि कामकलासँ मातृकाक उत्थान होइत अछि। प्रत्युत कामकलामे समस्त मातृका अन्तर्निहित अछि। तँ इएह कामकला-विद्या महात्रिपुरसुन्दरीरूपमे महाविद्योपासकगण द्वारा उपासित होइत छथि [३९९]। महात्रिपुरसुन्दरीमे समस्त वाक्सृष्टि उपगूहित रहैत अछि, ताही विषयकें ध्वनित करैत अछि शक्तिक कण्ठस्थित पचासवर्णक माला-धारण। भक्त साधक एहि त्रिपुरसुन्दरीकें वर्णमाला पहिरने रूपमे ध्यान करैत छथि, आओर तहिना तँ कएने छथि शबरपाद। शबरपाद अपन अन्तरङ्गा शबरी [पराशक्तिक प्रतिरूप वा प्रतीक] कें एही रूपमे देखने छथि—मुनिदत्तक 'गुह्यमन्त्र' शब्द एही कामकला-रहस्यकें व्यक्त करैत अछि आ' ताही दृष्टिएँ शबरीक ग्रीवाक 'गुंजरीमाली'कें वर्णमाला कहल गेल अछि। पाछाँ जे 'एवं' आ' हूँ-कारक महिमा द्योतित भेल अछि, ताहिसँ सिद्धलोकनिक मन्त्र-रहस्यक अवबोध सूचित होइत अछि। तखने नहि, उक्त कुण्डलिनीयोगमे जँ एक गोट मूल मन्त्र प्रेरक मानल जाएत तँ से थिक हूँ-बीज, कूर्चबीज जे आगमकल्पद्रुमसँ उद्धृत वचन "कामाग्निसँ कूर्चयोग द्वारा पर-हंसाभिलाषिणीकें"-[४००] सँ पुष्ट होइत अछि, लययोगी सिद्ध जँ एहि बीजकें प्रश्रय देल तँ हिन्दू योगतन्त्रक अनुसार उचिते कएल।

३७१. एहि प्रसङ्ग अधिक कहबाक प्रयोजन नहि, मन्त्रशक्तिक मूलमे तँ वाक्शक्तिहिक वा शब्दब्रह्महिक सत्ता अछि [४०१]। ताहिसँ ई परम स्वाभाविक सिद्ध होइत अछि जे मन्त्रविश्वासी सिद्ध अपन नैरात्माक गरामे वर्णमालाक कल्पना कएल एवं शास्त्रसम्मत धारणा व्यक्त कएल।

## गुरुक महिमा

३७२. ऊपर तथा एहिसँ पूर्व कहल समस्त साधनाविचारमे जे चित्तविशोधन तथा मुद्रासाधन-कुण्डलिनीयोगसाधन-मन्त्रसाधन- नादसाधन-पाठानुसन्धान - मध्यविकास

३९९। का० वि०-श्लो० ८—इति कामकला-विद्या देवीचक्रक्रमात्मिका सेयम्।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरीरूपः॥
टी०—इतीति। "इति पूर्वोक्तमहाप्रबन्धेन व्याख्याता कामकलामहात्रिपुरसुन्दरी ॥ [पृ० २५]

४००। प० व० नि०—अष्टमं प्रकरणम् [पृ०८१] आओर: 'हूँकारेण समुत्थाप्य कुण्डलीं' [पृ० ८०]

४०१। Varṇamālā ( Garland of letters )—P. 232

द्वारा सामरस्यानन्दक सङ्केत कएल गेल अछि से सद्धान्तिक दृष्टिएँ सुस्पष्ट प्रतीत होइतहुँ व्यावहारिक दृष्टिएँ परम कठिन अछि। सैद्धान्तिक दृष्टिएँ तँ एक सूत्र मात्र पर्याप्त होएत—"शक्तिक सङ्ग आत्माक अन्तरङ्गता बढ़ाएब"।

३७३. किन्तु ई अन्तरङ्गता सुप्राप्य नहि। कौलसाधनामे पदपदपर पतनक डर, जं चित्त अशुद्ध रहत; कौल साधना-मार्ग अत्यन्त सुगम पथ, जँ चित्त सहजरूपमे शुद्ध बनि जाए, जँ चित्तमे विकल्पभाव नहि जागए—ई सिद्धान्त दूनू तन्त्रसँ अनुमोदित अछि।

३७४. तँ भोगकेँ योगमे परिणत कोना कएल जाए? इएह तँ थिक वास्तविक समस्या जे तन्त्रकेँ आलोचकगणक कटु आलोचनाक आखेट बनाए देने अछि। ई समस्या मौलिक समस्या अछि, जकर अनुसन्धान शिवोक्तहु वचनमे भेटैत अछि। किन्तु एहि समस्याक समाधान अत्यन्त सुलभ भए जाएत जँ समस्त तन्त्र [ हिन्दू वा बौद्ध ] क कहल एक गोट उपदेशमात्रकेँ सत्ता देल जाए। ओ उपदेश थिक—'सद्गुरुकेँ पुछिअन्हु'।

३७५. बौद्धतन्त्रग्रन्थसभमे गुरुक उपदेशकेँ बड़ महत्त्व देल गेल अछि[४०२]। कहल जाइत अछि, साधना तँ व्यावहारिक वस्तु वा प्रक्रिया थिक आ' व्यावहारिक विषयमे तँ अनुभवकेँ सत्ता दिअए पड़त, शक्तिपात [ शक्तिक अनुग्रहसँ सामर्थ्य ] वा प्रतिभासँ व्यावहारिक कार्यमे काज नहि चलत।

३७६. बौद्धतन्त्रमे गुरुसँ लेल कलशाभिषेक, गुह्याभिषेक, प्रज्ञाभिषेक तथा वज्राभिषेकक पटल भेटैत अछि, जाहि प्रसङ्ग मुद्रा, मण्डल तथा मन्त्रहुक चर्चा आएल अछि[४०३]।

३७७. अस्तु, प्रस्तुत आलोच्य कृतिमे सरहपाद, शबरपाद, लुइपाद, दारिकपाद, डोम्बीपाद भुसुकुपाद, काह्नपाद, भादेपाद, कम्बलाम्बरपाद तथा शान्तिपाद शब्दतः सत्ता देखओने छथि। ओहि गीतसभमे ततेक संक्षेपमे गुरुकेँ पुछबाक हेतु कहल गेल अछि जे हेतु-विचारक प्रश्ने नहि उठैत अछि।

३७८. ओ सिद्धसभ प्रायः गुरुकेँ आदर करब, गुरुसँ रहस्यक जिज्ञासा करब, गुरुकेँ अन्य समस्त तत्त्व, मन्त्र, देवतादिसँ व्यापक मानब, एहि विषयसभकेँ स्वयं-सिद्ध मानैत छलाह। तेँ सभ किछु कहितहुँ बोधिसत्त्व वा प्रज्ञा-उपायकेँ [ शिव-

---

४०२। A. I. T. B.—P. 159

४०३। ऐजन —P. 160-161

शक्तिकें ] सत्ता दैतहुँ, साधनाक आनन्द व्यक्त करितहुँ, मुद्रामे डुबल रहितहुँ, सिद्धगण एहि विषयकें नहि बिसरैत छथि जे वास्तविक व्यावहारिक रहस्यक अनुभूति गुरु-अहिसँ ज्ञेय, अन्यथा नहि। दारिकपादक 'लुइपाद', कान्हपादक 'जालन्धरपाद' तथा शान्तिपादक 'नाथ' [नाहा][४०४] शब्द इतिहासमे एक आदर्शक काज करैत अछि।

३७६. किछु विद्वानक धारणा छन्हि जे बौद्धतन्त्रक विकास भेलासँ गुरु-भावनाक विकास भेल। किन्तु प्राचीनसँ प्राचीन आगमग्रन्थमे गुरुक प्रसङ्ग विचार भेटैत अछि। कुलार्णवतन्त्रक बारहम उल्लास समग्र गुरुअहिपर अछि तथा तेरहममे सद्‌गुरुशिष्य लक्षण भेटैत अछि। पुरश्चरणरसोल्लासमे सद्‌गुरुक चर्चा अछि[४०५]। मुण्डमालातन्त्रमे, जेना बौद्धतन्त्रमे गुरुकें 'जिनरत्न' कहल गेल अछि;[४०६] गुरुकें 'परं तत्त्वं' कहल गेल अछि[४०७]। जेना बौद्धतन्त्रमे गुरुकें सत्ता देल गेल[४०८] तहिना शाक्ततन्त्रमे गुरुकें शिवसँ पैघ मानल गेल अछि[४०९]। जेना बौद्धतन्त्रमे गुरुसँ अभिषेक लेबाक विधान अछि [ ऊपर द्रष्टव्य ], तहिना हिन्दूतन्त्रमे अभिषेक-विधान देल अछि वा दीक्षाक निर्देश अछि[४१०]। चर्यागीतमे अभिषेकक उल्लेख नहिं अछि, संस्कृतटीकासँ जँ ज्ञातो होइत अछि तँ केवल प्रज्ञाभिषेकक प्रसङ्ग। तँ सविस्तार अभिषेकक विधान अनुपयुक्त प्रतीत होइत अछि वा एम्हरहु तँ शाक्ताभिषेक अछिए[४११]। तें संक्षेपमे, अनभव। गुरुसँ दीक्षा वा अभिषेक लए चललासँ जिनपुरप्राप्ति वा मुक्ति सुलभ भए जाएत, ततबे लक्ष्य बुझबाक थिक।



---

४०४। दा० १, का० १० तथा शा० १
४०५। पु० रसोल्लास—प० ६ [ पृ०६ ]
४०६। भा० सं० सा० [ खण्ड-२ ] पृ० २५८
४०७। मु० मा० त०—प० १ [ पृ० २ ]
४०८। A. I. T. B.—P. 161
४०९। पुरश्चर्यार्णव—पृ० ४३
४१०। कु० तं०—उ० १४ [सम्पूर्ण] तथा
म० नि० त०—उ० ३ श्लो० १२६-१४२
४११। प्रा० तो०—पृ० २६१ [ वामकेश्वरतन्त्रसँ उद्धृत ]

# चर्यागीत

( मूल, छाया, व्याख्या, पा० शा० अनुक्रमणिका )

## सरहपाद

### १ (२२)[1]

अपणे रचि रचि भवनिर्वाणा[2]।
मिछेँ लोअ बन्धाबए अपणा॥
अम्हे[3] ण जाणहुँ अचिन्तजोइ।
जाम मरण भव कइसण होइ॥
जइसो[4] जाम मरणवि तइसो।
जीवन्ते मइलेँ[5] णाहि विशेसो॥
जा एथु जाम मरणे विसङ्का[6]।
सो करउ रस रसानेरे कङ्खा॥
जे सचराचर तिअस भमन्ति।
ते अजरामर किम्पि न होन्ति॥
जामे काम कि कामे जाम।
सरह भणति अचिन्त सो धाम॥

× × ×

अपने रचि रचि भव निर्वाणा।
मिथ्येँ लोक बन्हाबए अपना॥
हम न जानी अचिन्त्य योगि (गी)।
जन्म मरण भव कइसन होइ॥
जइसे जन्म मरणो तइसे।
जीने मुइने नाहि विशेषे॥
जे एत जन्ममरणे विशङ्का।
से करओ रस रसायन (क) कांक्षा॥

---

१। कोष्ठक संख्या, सभगीतमे, चगीको, च० वि० पोथीक तत्तद्गीतक संख्या थिक।
२। सेन—निवाणा ३। सेन—अम्भे ४। सेन—जइसा
५। चगीको। शास्त्री, सेन—मअलें ६। सेन—वि सङ्का

जे सचराचर त्रिदश ( पुर ) भ्रमथि ।
से अजरामर किमपि (किछु) न होथि ॥
जन्मे कर्म की कर्में जन्म ।
सरह भणथि अचिन्त्य से धर्म ॥

जगतक बन्धन आ' मोक्ष एहि दूनू विकल्पकें रचि रचि, कपोल-कल्पित कए, व्यर्थें लोक अपनाकें बन्हैत अछि। हम तँ अचिन्त्ययोगसिद्ध भए गेलहुँ ( परमात्मलीन भए गेलहुँ ), आब तँ बुझबहिमे नहि अबैत अछि जन्म-मरण लक्षित जगतक स्वरूप केहन छैक। हमरा हेतु तँ जेहने जन्म तेहने मरण, कारण जीवन्मुक्त छी ( जीवित रहितहुँ मोक्ष प्राप्त कएने छी )। आब जीवन की ? आ' मृत्युए की ? दूनूमे कोनो विशेष नहि प्रतीत होइत अछि। जकरा जन्म-मरणक विकल्प रहैत छैक से रस ( -सिद्धिक पश्चात् परमानन्द ) तथा रसायनादि द्वारा योगसाधनाक इच्छा करैत अछि। जा' धरि आत्मा चराचरलोकमे, मृत्युभुवन आ स्वर्गमे, भ्रमण करैत रहैत अछि ता' धरि ओ अजर अमर ( मुक्त ) नहि मानल जाएत ( स्वर्गहुसँ तँ पुण्यक्षय भेला पर पतन देखले गेल अछि )। मुक्ति ओएह थिक जकर पश्चात् आत्मा नित्य अविनाशी आनन्दमे लीन भए जाइत अछि। सरह कहैत छथि, हमरा एहि विवादमे नहि जेबाक अछि, हम इएह जनैत छी जे वस्तुतः एके टा धाम ( पवित्र लक्ष्य ), अछि, ओ थिक अनुत्तरत्वलाभ, शिवत्वलाभ, जे अचिन्त्य थिक, अवाङ्मनसगोचर थिक।

## २ ( ३२ )

नाद न बिन्दु न रवि शशि मण्डल[१] ।
चिअराअ सहावे मुकल ॥
उजु रे उजु[२] छाड़ि मा लेहु रे वङ्क ।
निअडि[३] बोहि मा जाहु रे लाङ्क ॥
हाथे रे[४] काङ्कण मा लेउ दापण ।
अपणे अपा बुझ तु निअमण ॥
पार उआरें सोइ गजिइ[५] ।

१। चगीको। शास्त्री, सेन—न शशि ( ससि ) मण्डल
२। सेन—दुद्दु रे उज्ज ३। चगीको। शास्त्री—निअहि । सेन—निअड्हि
४। सेन। शास्त्री—हाथेरे ५। चगीको। शास्त्री, सेन—गजिइ

दुज्जण साङ्गे अवसरि जाइ ॥
बाम दाहिण जो खाल विखला ।
सरह भणइ बापा[६] उजुबाट भाइला ॥

× × ×

नाद न बिन्दु न रवि-शशिमण्डल ।
चित्तराज स्वभावेँ खुजल ( मुक्त ) ॥
सोझ रे ! सोझ छाड़ि न लएह वङ्क (।) ।
निअर बोधि न जाह रे ! लङ्क ( । ) ॥
हाथे रे ! कङ्कण न लएह दर्पण ।
अपने आत्मा बुझह तोँ निज मन ॥
पार उबारैँ से डूबए ( मज्जति ) ।
दुर्जन सङ्ग ( जे ) अपसरि जाए ॥
बाम-दहिन जे खद्धा-खुद्धी ( छल ) ।
सरह भनइ बाप ! सोझ बाट भेल ॥

चित्तक शोधनक हेतु नाद, बिन्दु, रवि-शशिमण्डल कथूक साधनक प्रयोजन नहि । चित्तराज स्वभावतः मुक्त छथि, हुनका सोझहि बाटपर जाए दहुन, टेढ़ बाटपर नहि । निकटहिमे बोधि, परम प्रकाश-विमर्श-बोध प्राप्त होएतह, तखन चित्तकेँ दूर देश लङ्का दिशि नहि लए जाह । शरीरहिमे समस्त ब्रह्माण्ड तथा सभक सार तत्त्व शिवशक्ति छथि तखन ओहि परम सत्ताकेँ देहमे नहि ताकि अनतह की तकैत छह ? हाथमे कगना तखन अएनाक काजे की ? अपनहि आत्मासँ अपन मनकेँ चिन्हह, आत्म-बोध भेला पर अपन मनकेँ चिन्हिए जएबह । जे दुर्जन ( अन्य सम्प्रदायक पोषक अचार्य ) क सङ्गमे पड़ि जाइत छथि आ' एहि सहजमार्गसँ अपसृत भए जाइत छथि से जगतक पार-बारीमे डूबि जाइत छथि, जन्ममरणक चक्रमे नष्ट भए जाइत छथि । सरह कहैत छथि, बाम-दक्षिण मार्गमे जे खद्धा-खुद्धी छल से सभ एहि बाटमे नहि रहल । ई बाट, कौलमार्ग, सोझ बाट भए गेल ।

६ । सेन—बपा ।

३ ( ३८ )

काअ णावड़ि[1] खाण्टि मण केड़ुआल ।
सद्गुरुवअणे धर पतवाल ॥
चीअ थिर करि धरहु रे नाइ[2] ।
आन[3] उपाये पार ण जाइ ॥
नौ वाही[4] नौका टाणअ गुणे[5] ।
मेलि मेलि[6] सहजे जाउ ण आणेँ ॥
बाटत भअ[7] खाण्ट वि[8] बलआ ।
भव उलोलेँ विषअ बोलिआ[9] ॥
कुल लइ खर सोन्तेँ[10] उजाअ ।
सरह भणइ गअणेँ समाअ[11] ॥

× × ×

काय नावक खुट्टी मन करुआरि ।
सदगुरुवचने धर पतबार ॥
चित्त थिर करि धरहु रे नाव [ह] ।
आन उपायेँ पार न जाह ॥
नाव - वाही नौका टानए गुणेँ ।
मोलि मौलि सहजेँ जाउ न आनेँ ॥
बाटे भय खड्गो बली ।
भव - उल्लोलेँ विषय तोड़ी [तोड़ि] ॥
कुल लए खर सोतेँ उजाह[12] ।
सरह भनथि [ तोँ ] गगने समाह ॥

---

१। सेन-णावड्हि २। सेन—नाही। तु० मैथिली 'नाह' (निम्नवर्गक शब्द )
३। चगीको। शास्त्री, सेन—अन
४। सेन—नौवाही ५। सेन—टागु अगुणे ६। चगीको। शास्त्री, सेन—मेलि मेल
७। चगीको। शास्त्री, सेन—बाट अभअ
८। चगीको। शास्त्री—खाण्टवि। सेन—खाणठा वि
९। सेन—वि बोलिआ १०। सेन। शास्त्री—सोन्ते ११। सेन—पमाएँ
१२। मै० 'उजहिआ' शब्द द्रष्टव्य

कायकेँ नौका बनाए आ' तकर खुट्टी ( अनाहतचक्र ) मे बान्हल मनकेँ करुआरि बनाए सद्गुरुवचनकेँ पतबार ( कर्णधार द्र० बागची ) मानि पकड़ह। चित्तकेँ स्थिर कए एहि नावकेँ, शरीरनौकाकेँ, पकड़ि आगाँ बढ़ह। आन उपायसँ भवसागर पार नहि कए सकबह। बाह्य जगतमे नौका-वाहक अन्य गुण ( वा रस्सी ) सँ नाव खेबैत अछि, एहि मार्गमे ओहिसभ गुणक प्रयोजन नहि, सहजस्वरूप शिवशक्तिक अन्तरङ्ग बनि आगाँ बढ़ह, आन रीतिएँ नहि बढ़ह। बाटमे भयास्पद तत्त्व वा घटना भेटतह, प्रतीत होएतह जे खड्ग धारण कएने दानवीय जीव तोरा पथच्युत करबाक हेतु कामादिरूपमे लागल छह, आ' भव-उल्लोलक प्रसङ्गमे अनुभूत विषय-वासनाकेँ तोड़ि, कुलाश्रित भए, शक्तिक आश्रित भए ( कौलमार्गें ), भवसागरक प्रखर स्रोतमे आगाँ बढ़ह पार करह। सरह कहैत छथून्ह—तोँ शून्यगगनमे अन्तर्लीन भए जाह, महती-शक्तिक अभिन्न बनि जाह।

४ ( ३९ )

सुइणा ह अविदार अरे निअमन तोहोर दोसे[१]।
गुरुवअणविहारेँ रे थाकिब तइ घुण्ड कइसे ॥
अकट हूँ भव इ गअणा[२]।
बङ्गे जाया निलेसि परे भागेल तोहोर विणाणा ॥
अदभुअ भवमोह रे दिसइ पर अप्पणा।
ए जग जलबिम्बाकारे सहजेँ सुण अपणा ॥
अमिआ अच्छन्तेँ विस गिलेसि रे चिअ पररस अपा।
घरेँ-परेँका[३] बुझिझले मारि[४] खाइब मइ दुठ कुण्डबाँ ॥
सरह भणन्ति वर सुण गोहाली कि मो दुठ[५] बलन्देँ।
एकेले जग नाशिअ रे विहरहु सुच्छन्दे[६] ॥

× × ×

सपना हे ! अविद्याक अरे ! निज मन दोषेँ।
गुरुवचनविहारे रहबह तोँ घूमि कइसेँ ॥

---

१। सुइणेँ ह[त्थ्]अ बिदारअ रे निअ मन तोहोरेँ दोसे—चगीको
२। सेन—हूँ-भव गअणा ३। चगीको। शास्त्री—घरेँ परेक। सेन—घारेँ पारेँका
४। चगीको। शास्त्री—रे। सेन—म रे ५। सेन—दुठ्य
६। चगीको। शास्त्री—विहरहुँ सुच्छन्दे। सेन—विरहू ईइन्द्रे

अकट[७] हूँ-भव ई गगना ।
बङ्गे जाया लेलह, परे भागल तोहर विज्ञाना ॥
अद्भुत भवमोह रे ! देखाइ पर अपना ।
ए ! जग जलबिम्बाकारें सहजें सून अपना ॥
अमिअ अछैतें विष गिड़सि रे ! चित्त पररस आत्मा ।
घर-पर की बुझलह रे ! मारि खाएब हम दुष्ट कुण्डबा ॥
सरह भणथि वर सून गोशाला, कि मोर दुष्ट बलदें ( बड़दें ) ।
अकेले जग नाशल रे ! विहरह स्वच्छन्दे ॥

हे ! अरे ! तोहरा अपन मन अविद्या-दोषें यथार्थ प्रतीत होइत छह, किन्तु वस्तुतः ओहि प्रतीतिकें अयाथार्थ स्वप्न सदृश मात्र बुझह अथवा [ डा० बागची-संस्करणक अनुसार ] शून्यरूप हाथसँ तों अपन मनकें विदारण करह, दोष दूर करह । गुरुवचन-विहारमे तों कोना घूमि सकबह ? जखन तोहर मन एतेक दोषग्रस्त छह तखन ओ विहार कोना कए सकबह ? ई हूँबीजोद्भव गगन अखण्डनीय अछि अथवा ओ गगनहृदया हूँ-बीजोद्भवा महामाया अखण्डा छथि । देखह, तों जहाँ बङ्ग-जायाकें, शून्यस्वरूपिणीकें, जायाभावें स्वीकार कएलह कि परक्षणे तोहर मोहादिविज्ञान दूर भए गेलह । एहि संसारक मोह अद्भुत, पर-अपन एहन भेद प्रतीत होइत रहैत अछि । किन्तु तत्त्वदर्शीकें ई जगत् जलमे प्रतिबिम्ब जकाँ, चिद्घनक प्रतिबिम्ब जकाँ, महती शक्तिक आभास मात्र जकाँ, प्रतीत होइत अछि । एवं ओ अपनाकें सहज-साधना द्वारा शून्य आत्माक रूपमे देखैत छथि । हे चित्त ! अमृत ( अमरत्वक साधन शक्ति-साधना आ' तकर परिणाम सामरस्य )क अछैते ( ओकर सुविधा रहितहुँ ) तों विष ( -सदृश विषय ) गिड़ैत छह, रे आत्मन् ! तों पररस ( इतर पदार्थक रस )मे डुबाए मोहादिकें अभिन्न बनबैत छह । तों घर-पर एहन भावना की रखैत छह ? आब हम महामुद्राक आलिङ्गन कए सभ विषयवासनाक मूल उत्सहिकें मारि चिबा जाएब ( कुचित्तहिक विनाश कए लेब ) । सरह कहथि—की हमर पवित्र गोशाला ( इन्द्रियशाला ), शून्यक अधिष्ठान कायपीठ, बलद ( बड़द वा मलिन चित्त, दुष्टक हेतु बलदेनिहार चित्त )सँ दुष्ट बनि गेल ? नहि । हम एकसरे विश्व ( क बन्धन )कें नाश कए देब । रे चिन्मय चित्त ! स्वच्छन्द भए विहार करह ।

## शबरपाद

### १ ( २८ )

उँचा उँचा पावत तहिँ बसइ सबरी बाली ।
मोरङ्गिपीच्छ परहिण सबरी गिवत गुञ्जरी माली ॥
उमत सबरो पागल सबरो मा कर गुली गुहाडा तोहोरि[१] ।
निअ घरिणी नामे सहज सुन्दारी ॥
नाना तरुवर मौलिल रे गअणत लागेली डाली ।
एकेली सबरी ए वण हिण्डइ कर्णकुण्डलवज्रधारी ॥
तिअ धाउ खाट पाड़िला[२] सबरो महासुहे सेजि छाइली ।
सबरो भुजङ्ग नैरामणि[३] दारी पेम्ह राति पोहाइली ॥
हिअ ताँबोला महासुहे कापुर खाइ ।
सुन नैरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाइ ॥
गुरुवाक् पुञ्छआ[४] बिन्ध णिअमण बाणेँ ।
एके शरसन्धानेँ बिन्धह बिन्धह परमणिवाणेँ ॥
उमत सबरो गरुआ रोषे[५] ।
गिरिवरसिहरसन्धि पइसन्ते सबरो लोड़िब कइसे ॥

× × ×

ऊँच ऊँच पर्वत ताहि बसइ शबरी बाला ।
मोर-अङ्ग-पुच्छ पहिरन शबरी ग्रीवमे गुञ्जामाला ॥
उन्मत्त शबर ! पागल शबर ! न कर गुली[६] गोहारि, तोहार ।
निज घरना नामेँ सहजसुन्दरी ॥
नाना तरुवर मौलल रे ! गगनहि लागल डारि ।
अकेली शबरी ऐ वन झूलइ कर्णकुण्डलवज्र धारि ॥
त्रिधातु खाट पड़ल शबर महासुखेँ सेज ओछाओल ।
शबर भुजङ्ग नैरात्मा दारिका प्रेमेँ राति पोहाओल ॥

---

१। चगीको । शास्त्री, सेन—तोहौरि
२। सेन—पड़िला ३। सेन—णइणामणि
४। चगीको (पा०टि०)। शास्त्री, सेन—गुरुवाक पुञ्चआ ५। सेन—गरु आस रोषे
६। गुहामे लीन, साक्षी, आनन्दादि विकल्प

हिय-ताम्बूला महासुखें कपूंर खाइ।
सून नैरात्मा कण्ठे लए महासुखें राति पोहाइ॥
गुरुवाक्-पुङ्खें बेध निज मन बाणें।
एके शरसन्धानें बेधह बेधह परमनिर्वाणे॥
उन्मत्त शबर गरुअ रोषें।
गिरिवर-शिखर-सन्धि पैसैते शबर लडब कइसें॥

ऊँच सुमेरुशिखरपर चिन्मयी ज्ञानमुद्रा बसैत छथि, हुनक ध्यान नवयौवना जकाँ कएल जाइत अछि। हुनक परिधान मयूर-पुच्छ सदृश चित्र-विचित्र भाव-विकल्प, ग्रीवामे गुञ्जामाला सदृश वर्णमाला। ओ शबरपादकेँ कहैत छथि—हे बताह शबर! तोँ हमरा गुहा ( मेरुगुहा )मे लीन कए विकल्प दिशि जएबाक हेतु ( विग्रह धारण करबाक हेतु ) गोहारि नहि करह। हमरा तोँ अपन अभिन्न, आत्माभिन्न गृहणी बुझह, हम नामहिसँ सहजसुन्दरी, त्रिपुर-सुन्दरी, स्वतः चिरन्तन सुन्दरि छी, हमरा तोँ ओही सहज शून्यरूपमे बिहार करए दएह। नाना अविद्याजनित दोषसभ ओहि सहस्रारस्थ ( महासुख-चक्रस्थ ) शून्यस्वरुप वृत्तमे लटकल अछि, ओहि सभसँ वस्तुतः ओ वृत्त झाँपल भए मौलाएल प्रतीत होएत (ध्यान देलासँ)। विषय-वासना कोनो सङ्ग नहि, (शुद्ध शून्यरूपा ) शबरी ज्ञानमुद्रा ( विमर्श स्वरूपिणी ) एकसरे एहि सुमेरुपर्वतवनमे ( चित्त-) सचकीपर झुलैत छथि; कानमे वक्रता ( चक्र वा प्रपञ्च )क प्रतीक कुण्डल तथा वज्र ( शिवक पुं-चिह्नक प्रतीक ) धारण कएने छथि[1]। काय, वाक् तथा चित्त एहि तीनू तत्त्वक खाटपर पड़ि शबर सामरस्यमे ( क हेतुएँ ) शय्या बिछाए लेल। भुजङ्गधारी शिवरूप बनल शबर अपन क्लेशविदारिणी, त्रिबिधताप-संहारिणी अर्धाङ्गिनी एहि नैरात्माक प्रीति-लीलाक सङ्ग राति ( कुण्डलिनीयोगक अवधि ) बिताओल। हृदयक महाराग-ताम्बूलक आ' सामरस्यसौरभयुक्त कपूरक भोग कएल। शून्य-चिन्मयी महामुद्राकेँ कण्ठमे ( विशुद्धचक्रमे ) लगाए अद्वैत-भावसँ शिवरूपमे शक्तिसन्नद्ध भए राति बिताओल। हे बालयोगिन्! गुरुवाक्-पुच्छबाणसँ कुचित्तकेँ लक्ष्य कए बेध करह, कुचित्तक विनाश करह, तदनन्तर परम मोक्षक भेद एकहि संधान ( गुरुमन्त्रबल )सँ करह। गुरुतर रोषेँ उन्मत्त शबर सहस्रारपर वा मेरुशिखरपर, बामदक्षिणक सन्धिस्थलमे प्रवेश कए परमपद, परमशिवत्व लाभ कएल। आब शबर मायासँ, विषय-वासनासँ, लड़ताह कोना? आब तँ ओ मुक्त भए गेल छथि।

१। ऊपर 'एकसर' सँ परमशिवपँ विरहितता नहि सङ्केतित अछि, कारण सं० टी०मे 'वज्रमुपायज्ञानं विधृत्य' देल अछि। ओ वज्र वा उपाय शिव ( द्र० पाछाँ भूमिका अनु० ८३ ) मानल जाइत छथि। 'एकसरे' सँ केवल पञ्चस्कन्धविरहितता बुझबाक थिक [ द्र० सं० टी० ]।

२ ( ५.० )

गअणत गअणत तइला बाड़ी[१] हेञ्चे कुराड़ी ।
कण्ठे नैरामणि बालि जागन्ते उपाड़ी ॥
छाड़ु छाड़ु[२] माआ मोहा विषम दुन्दोली ।
महासुहे विलसन्ति शबरो लइआ सुणमेहेली ॥
हेरि से मेरि तइला बाड़ी खसमे समतुला ।
सुकड़[३] ए से[४] रे कपासु फुटिला ॥
तइला बाड़िर पासेँर जोह्नाबाड़ी उएला[५] ।
फिटेलि अन्धारि रे आकाशफुलिआ ॥
कङ्गुरि[६] पाकेला रे शबरा शबरि मातेला ।
अणुदिन[७] शबरो किम्पि न चेवइ महासुहेँ भोला ॥
चारि वासे गड़िला रे दिआ[८] चञ्चाली[९] ।
तहिँ तोलि शबरो डाह कएला कान्दइ सगुणशिआली ॥
मारिल भवमत्ता रे दह दिहे दिधलि बली ।
हेर से सबरो निरेवण भइला फिटिलि सबराली[१०] ॥

× × ×

गगन-गगनमे तेसर बाड़ी भिकभोरि कुठारी ।
कण्ठे नैरात्मा बाला जगैते उपाड़ो ॥
छाड़ छाड़ु माया मोहा विषम द्वन्द्वला ।
महासुखे विलसैत शबर लए शून्यमहिला ॥
हेरि से मोर तेसर बाड़ी खसमे समतूला ।
शुक्ल हे! से रे! कपास फुटला ॥
तेसर बाड़ीक पासे ज्योत्स्नाबाड़ी उगला ।
फाटल अन्हार रे! आकाश फुलएला ॥

---

१। सेन—बाड्ही २। चगीको। शास्त्री, सेन—छाड़ छाड़
३। चगीको। शास्त्री, सेन—षुकड़ ४। सेन—एसे
५। सेन—ता एला ६। चगीको। शास्त्री, सेन—कङ्गुचिना
७। चगीको। शास्त्री, सेन—अणुदिण ८। चगीको। शास्त्री, सेन—रे दिआँ।
९। चगीको—सं० टी० क प्रसङ्ग पा० टि०मे 'चराडाली' पाठ द्रष्टव्य।
१०। चगीको। शास्त्री—षबराली

कङ्गूरि पाकल रे! शबरा शबरी मातल।
अनुदिन शबर किमपि [ किछु ] न देखइ महासुखेँ भोल [ र] ॥
चारि बासे गढ़ि रे! देल चञ्चाली ( चण्डाली )।
तहँ तौलि शबर डाह कएला कानइ सगुण शृगाली ॥
मारल भवमत्ता रे! दशदिशे दऽ देल बली [लि]।
हेरि से शबर निवृत्त भेल फाटल शबरालि [शबरत्व] ॥

शून्य, प्रतिशून्य एवं महाशून्यरूप तेसर बाड़ीकेँ चतुर्थशून्यरूप हृदयक कुठारसँ झिकझोरि कण्ठस्थिता महतीशक्ति, महामुद्रा ( गृहिणी ) शून्यताशक्ति जाग्रत भए उजाडि देल, वासनादिक वृक्षसभकेँ [जे ओहि शन्यसभमे संलग्न छल, तकरा ] उपाडि फेकल। हे बालयोगिन्! माया-मोह, विषम द्वन्द्व-प्रतिद्वन्द्व, त्यागह। देखह, आइ शबर शून्य (गगन) हृदया-महिला चिच्छक्तिकेँ अन्तर्लीन कए शिवरूपमे सामरस्य-सुखक भोग करैत छथि। तेसर बाड़ीकेँ, प्रकाश-प्रतिबिम्बसंमिलित महाशून्यकेँ, गगनक समतुल देखि हमर उज्ज्वल सदृश आत्मज्ञान स्फुटित भेल। महाशून्यक निकटे ( केवल ) ओहि प्रकाशपुञ्जक अनुसन्धान भेल, अज्ञानान्धकार फाटि गेल, ई तहिना असंभव छल जेना आकासकुसुम। चित्त परिपक्व भेल, प्रबुद्ध भेल ( कङ्गूरिफलसदृश ), ओकर आस्वाद कए सशक्ति शबर उन्मत्त छथि, परमानन्दरस-निर्भर छथि। अनुदिन सामरस्यमे डुबल, विभोर, शबरकेँ अन्य किछु नहि सुझैत छन्हि। ओहि चञ्चल विषय-वासनामय चित्तकेँ स्थिर कए चतुरानन्दमे निवसित कएल। ताहि दशामे शबर ओहि चित्तकेँ तौलल ( ओजन बुझल ) आ पुनः ओकरा दग्ध कए निर्गुणमे मीलि गेलाह, सगुण शृगाली विखिन्न अछि [ विग्रहवती देवी खिन्ना छथि अनादर देखि ]। अरे! भवमत्त नीच ( मायाबद्ध ) चित्तकेँ मारि, दशहु दिशामे ओकर बलि दए देल आ आब सभक रहस्यक साक्षात्कार कए शबर स्वयं निर्गुणब्रह्मरूप, परमशिवरूप, भए गेलाह; शबरत्व, जीवात्मत्व आब चल गेल, परमात्मत्व, परमशिवत्व आबि गेल।

## लुइपाद

१ (१)

काआ तरुवर पञ्च वि डाल।
चञ्चल चीए पइठो काल ॥

दिढ़ [1] करिअ महासुह परिमाण ।
लुइ भणइ गुरु पुच्छिअ जाण ॥
सअल समाहिअ[2] काहि करिअइ ।
सुख दुखेतेँ निचित मरिअइ ॥
एड़ि एउ[3] छान्दक बान्ध करण कपटेर [4] आस ।
सुनुपाख भिति लेहु रे पास ॥
भणइ लुइ आम्हे झाणे दिठा ।
धमण चमण बेणि पिण्डि[5] बइठा ॥

× × ×

काया तरुवर पाँचो डारि ।
चञ्चल चित्त पैसल काल ॥
दृढ़ कए महासुख परिमाण ।
लुइ भनइ गुरु पूछिअ ज्ञान ॥
सकल समाधितः की कृत होए ?
सुख-दुःखसँ निश्चित मृत होए ॥
एड़ि एहु छन्दक बन्ध करणकपटक आश ।
सून-पक्ष-भित्ति लेहु रे पास ॥
भनइ लुइ हमे ध्याने दृष्टा ।
धमण-चमण दुइ पीढ़ी बैठा ॥

शरीर वृक्षवत् अछि, पाँचो ज्ञानेन्द्रिय तकर शाखा-प्रशाखा, जाहि द्वारा चित्त चञ्चल रहला पर विषयवासना ओहिमे प्रवेश कए लैत अछि। मुक्तिक दृष्टिएँ तँ विषयवासना काले थिक। तेँ चित्तकेँ स्थिर राखब आवश्यक, तहिखन ओकर विकास, चिन्मयत्वप्राप्ति, सम्भव आ' बिनु चित्तक चिन्मयताक प्राणशक्तिकेँ शिवमे लीन करब सम्भव नहि, दोसर शब्दमे सामरस्य-सुखानुभूतिक हेतु चित्तक शोधनपर, कुचित्त-विनाशपर, जोर दैत बालयोगिगणकेँ गुरुसँ रहस्य-साधना-पद्धति बुझबाक हेतु आदेश दैत छथि। हुनक कहब अछि जे आन-आन यौगिक प्रक्रियासँ कोनो फल नहि। ताहिसभसँ सुख-दुःखक

१। सेन—दिट २। सेन—सहिअ ३। सेन—एव
४। चर्गीको। शास्त्री, सेन—करणक पाटेर ५। सेन—पारिंड

चक्र बन्द होएब कठिन आ' सएह चक्र तँ मृत्यु थिक। एहि चक्रक विनाशे त मुक्ति थिक। किन्तु एहि चक्रक विनाशक हेतु इन्द्रियक आहार-विषयसभकेँ, ओहिपर लागल आशा-आकांक्षाकेँ, मनसँ ठेलए पड़त,शून्यस्वरूपिणी, गगनहृदया चितिक सङ्ग, अपरिणामिनी शक्तिक सङ्ग, तादात्म्य आवश्यक,हुनका भित्ति मानि ओहिपर ओङठब आवश्यक। तेँ लुइपादक अनुरोध अछि जे ओहि शून्यरूपिणीक भित्तिपर अवलम्बित होउ, ओहि भित्तिक सामीप्य बढ़ाउ, अन्तरङ्गता बढ़ाउ। ओ सिद्धाचार्य तँ स्वयं अनुभवप्राप्त छथि, नाड़ी-योग-साधन द्वारा ओ ई साक्षात् रूपमे देखने छथि जे इड़ा-पिङ्गला दूनूक मध्यभूता ब्रह्मनाड़ीमे कुण्डलिनीशक्ति प्राणशक्तिक सङ्ग मीलि ऊपर कोना उठैत छथि तथा ओही सङ्गमभूता सुषुम्ना-नाड़ीक अन्तरङ्गा ब्रह्मनाड़ीक द्वारा सिद्धक प्राणवायु महती शक्तिक रूपमे सहस्रारमे आनन्द, अनिर्वचनीय आत्म-शक्ति-मिथुनक आनन्द, दैत अछि। ओएह प्राणशक्तिक सङ्ग, कुण्डलिनीशक्तिक सङ्ग, प्रकाशरूप आत्माक सामरस्य अथवा, संक्षेपमे, शक्तिक सङ्ग शिवक सामरस्य तँ महासुख थिक वा मुक्ति थिक।

## २ ( २९ )

भाव न होइ अभाव ण जाइ।
अइस[१] संबोहेँ को पतिआइ॥
लुइ भणइ बट दुलक्ख विणाणा।
तिअ धाए विलसइ उह लागे णा॥
जाहेर वाणचिह्नरूव ण जाणी।
सो कइसे आगम वेएँ बखाणी॥
काहेरे किस भणि मइ दिबि पिरिच्छा।
उदकचान्द जिम साच न मिच्छा॥
लुइ भणइ मइ भावइ[२] किस।
जा लइ अच्छम ताहेर उह ण दिस॥

× × ×

भाव न होइ अभाव न जाइ।
अइसन सबोधेँ के पतिआइ ?

---

१। चगोका। शास्त्री, सेन—आइस २। चगोको। शास्त्री, सेन—भाइब,

लुइ भनइ बड़ दुर्लक्ष्य विज्ञाना।
त्रिधातुएँ विलसइ, ऊह लागे ना॥
जाहि ( केर ) वर्ण-चिह्नरूप न जानी।
से कइसेँ आगमवेदेँ बखानी॥
ककरा की भनि हम देब परीक्षा?
उदकचान्द जिमि सत्य न मिथ्या॥
लुइ भनइ हम भावी काहि।
जे लए छी ताहि (केर) ऊह न देखि ( खी )॥

परमसत्यक अस्तित्व अलक्षित अछि, कारण अछि विषयवासनाक ओझराहटि। अनस्तित्वो नीक जकाँ मनमे पैसेत नहि अछि। एहन ज्ञानकेँ के पतिआएत? लुइ कहैत छथि—वास्तविक तत्त्वक परिज्ञान वा अभिज्ञान दुष्प्राप्य थिक, साक्षात् रूपमे ओ परमशिवक परमा स्फुरत्ता, महासत्ता, बोधगम्या नहि। ओ महासत्ता, चिति वा अपरिणामिनी सत्ता वा महती शक्ति अपन क्रीड़ाक माध्यम रखने छथि काय, वाक् तथा चित्त, जकरा एक शब्दमे त्रिधातु वा त्रितत्त्व कहि सकैत छी। कोना क्रीड़ा करैत छथि, ताहि दिशि ऊह कहाँ होइत अछि? ओहि कीड़ाक जँ ऊहापोह भए जाए तँ आत्मा वा परमशिवक परिचय अनायास भेटि जाएत। संक्षेपमे, प्रत्यभिज्ञा उपलब्ध भए जाएत। एहि आत्मप्रत्यभिज्ञाक हेतु छोटछीन सूत्रक निर्देश असम्भव। परमा सत्ताक आकार कोनहु वर्ण-चिह्नक आकार रहन्हि, तखन ने कोनहु सूत्रक निर्देशेँ हुनक प्राप्ति भए सकए? से तँ छन्हि नहि, तखन, हुनक वर्णन, आगम रहओ वा वेद, कए कोना सकत? केओ जँ प्रश्न पुछत तँ ओकर हृदयङ्गम उत्तर हम दए कोना सकबैक? अवाङ्मनसगोचरक स्वरूपकेँ शब्दसँ कोना व्यक्त कएल जाए? वस्तुतः परमात्मा वा वा परमशिव वा परमाशक्ति, जे कहल जाए, अव्याख्येय तत्त्व थिक। अधिकसँ अधिक ओहि प्रकाशक प्रतिबिम्ब मात्र देखल जा सकैत अछि। जेना जलमे चन्द्रक प्रतिबिम्बकेँ सत्यो कहि सकैत छी, यथार्थ चन्द्रक स्वरूप भासित होएबाक कारणेँ, असत्यो कहि सकैत छी, कारण ओ थिक तँ प्रतिबिम्बे, वास्तविक चन्द्र नहि, तहिना एहि जगतकेँ। परमशिवक स्वातन्त्र्य-शक्तिहिक स्फुरण वा परिणमन थिक ई विश्व, एहि विश्वरूपमे ओ अपनाकेँ आभासित करैत छथि, प्रतिबिम्बित करैत छथि, तेँ ( तन्त्रक अनुसारेँ ) ई जगत्

सत्ये थिक, हँ ओहि परमशिव वा परमात्माकेँ विश्वोत्तीर्ण मानलासँ तँ विश्व मिथ्ये बूझि पड़त, अधिकसँ अधिक प्रतिबिम्बे। लुइ कहैत छथि–तखन हम ई की करैत छी ? कोन शक्तिमे ओझराएल छी ? ओ सत्य छथि वा मिथ्या ? जनिका पकड़ने छी तनिक ऊह नहि होइत अछि, की करू किछु फुरैत नहि अछि।

## गुण्डरीपाद

१ ( ४ )

तियड्डा चापी जोइनि दे अङ्कवाली।
कमलकुलिश घाण्टि करहुँ विआली॥
जोइनि तँइ बिनु खनहिँ न जीवमि।
तो मुह चुम्बी कमलरस पीवमि॥
खेपहुँ जोइनि लेप न जाअ।
मणिकुले बहिआ ओड़िआणे समाअ॥
सासु घरेँ घालि कोञ्चा ताल।
चान्दसुजवेणि पखा फाल॥
भणइ गुण्डरी अम्हे कुन्दुरे वीरा।
नरअ[1] नारी माझेँ उभिल चीरा।

× × ×

त्रिअड्डा[2] चापि योगिनि ! दे अङ्कपालि[3]।
कमलकुलिश घसि करी विकाली॥
योगिनि ! तोहि बिनु खनहु न जाबी।
तोर मुख चूमि कमलरस पीबी॥
क्षेपहुँ योगिनि लेप न जाए।
मणिकुले बहि उड्डीयाने समाए॥
सासु घरे घालि कोँचल (कोँचि) (लगाए)[4] ताल।
चान-सूर्य दुइ पक्षा फार (ह)॥

---

१। सेन—सरअ २। नाड़ीत्रय वा बिन्दुत्रयक अड्डा, योन्यग्र—चर्गीको (पा० टि०)
३। चर्गीको—सं० छाया
४। कोञ्चा = कोँचा वा कुंचिका ( द्रष्टव्य चर्गीको—सं० टीका )

भनइ गुण्डरी हमे कुन्दुरे[५] वीर।
नरक नारी (क) माझे उद्धृत चीर॥

हे योगिनि ! सहचरि मानवीशक्ते ! त्रिअङ्गा ( त्रिवृत्ता ) ( योनि ) चापि अपन कोरमे बैसाउ, अथवा, हे महतीकुण्डलिनीशक्ते ! अहाँ नाड़ीत्रयकेँ चापि ओहिपर आरूढ़ भए अपन चिह्नस्वरूपता दान करू। कमल-कुलिश वा भग-लिङ्गक घर्षण कए अहाँ हमरा विकाली, कालरहित शक्तिक अभिन्न, बनाउ। हे योगिनि ! भैरवरूपमे हम अहाँक बिनु क्षणो भरि नहि जीबि सकी, अहाँक मुखक चुम्बन कए, ओकरे मधुरस पीबि, हम जीबि रहल छी। उत्क्षेपो भेला पर, योगिनी लिप्ता नहि होथि ( स्वाधिष्ठानसँ मूलाधारो गेला पर ओ कुण्डलिनी-शक्ति शुद्धसत्त्वा रहबे करथि )। ओ शक्ति मणिपूरमे बहैत उड्डीयानपीठमे पैसि जाइत छथि। हे शक्ते ! अहाँ सासु श्वासकेँ शरीर-गृहमे घायल कए मणिमूलनिराधेँ बन्द कए देल। आब चन्द्र-सूर्य ( इड़ा-पिङ्गला ) दूनूक पक्षकेँ दूर कए मध्य-विकास कराउ। गुण्डरीपाद कहैत छथि—हम कुन्दुरयोगमे ( द्वीन्द्रियसंयोगमे ) वीर छी, नर-नारी दूनूक मध्य उद्धृत चीर छी ( जाहिमे दूनू लीन भए जाए, तेहन सत्त्व, परमात्मरूप भए गेल छी)।

## आर्यदेवपाद

१ (३१)

जहि मण इन्दिअ पवण[१] होइ णठा।
ण जानमि अपा कहिँ गइ पइठा॥
अकट करुणाडमरुलि बाजअ।
आजदेव निरासे[२] राजअ[३]॥
चान्दरे चान्दकान्ति जिम पतिभासअ।
चिअ विकरणे तहिँ टलि पइसअ[४]॥
छाड़िअ भय घिण लोआचार।
चाहन्ते चाहन्ते सुण विआर॥

---

५। कुन्दुर योग=सामरस्य-योग। द्र० कुन्दुर योग=द्वीन्द्रिय-संयोग—ता० बौ०-सा०सा० पृ० ३२०

१। सेन—इन्दिअवण ( छन्द, अर्थछटाक रक्षा ) २। सेन—णिराले

३। चगीका। शास्त्री, सेन—राजइ ( तुकक दृष्टिएँ अनुपयुक्त )

४। चगीको। शास्त्री, सेन—पइसइ

आजदेवेँ सअल विआरिउ[५]।
भय घिण दूर[६] निवारिउ॥

× × ×

जहँ मन इन्द्रिय पवन होइ नष्टा।
न जानी आत्मा कहँ गइ पइसा॥
अकट करुणा - डमरू बाजए।
आर्यदेव निराशेँ राजए॥
चन्द्रे चन्द्रकान्त जिमि प्रतिभासए।
चित्त विकरणे तहँ टरि [जा] पइसए॥
छाडि भय घृण [ा] लोकाचार।
देखैते देखैते सून विचार॥
आर्यँदेवेँ सकल विचारल।
भय घृण [ा] दूर निवारल॥

जतए मन-इन्द्रिय-प्राणपवन सभ समाप्त भए जाए, ततए आत्मा कतए जा कए पैसल से बुझबामे नहि अबैत अछि। अद्भुत वा अखण्ड करुणामय शिवक डमरू बाजि रहल अछि, आर्यदेव आब सकल आशा-आकांक्षासँ विहीन शोभित भए रहल छथि, विशुद्ध आनन्दमे मग्न छथि, विषय-वासनासँ मुक्त छथि। चन्द्रक सम्पर्कमे जेना चन्द्रकान्तमणि वा चन्द्रिका चकमक लगैत अछि तहिना विकल्पजाल विशुद्ध चित्तक सम्पर्कसँ शुभ्र प्रकाशरूप धारण कए लैत अछि, चित्त जखन चितिक रूपमे विकसित होइत अछि तखन ओकर विकारो चितिलीन भए तद्रूपे भए जाइत अछि। भय-घृणा-लोकाचार आदि (अष्टपाश)केँ छोड़ला पर शून्यस्वरूपिणीक विचरण (वा शून्यक विचार)क अनुभव करैत करैत आर्यदेवसँ सभ रहस्य विचारल गेल। आब हुनकामे भय-घृणादि नहि रहल, सभक निवारण भए गेल।

---

५। चगीको। शास्त्री, सेन—विहरिउ ( अग्रिम पाँतीक तुक नहि बैसए )

६। चगीको। शास्त्री, सेन—दुर ( छन्दोभङ्ग, अशुद्धो प्रतीत )

## दारिकपाद

१ ( ३४ )

सुन करुण रे[१] अभिनचारेँ काअवाकूचिए[२] ।
विलसइ दारिक गअणत पारिमकुलेँ ॥
अलकूखलकूखणचित्ता महासुहेँ ।
विलसइ दारिक गअणत पारिमकुलेँ ॥
किन्तो मन्ते किन्तो तन्ते किन्तो रे झाणबखाने ।
अपइठानमहासुहलीलेँ दुलक्ख[३] परमनिवाणे ॥
दुःखेँ सुखेँ एकु करिआ भुञ्जइ इन्दीजानी[४] ।
स्वपरापर न चेबइ दारिक सअलानुत्तर माणी[५] ॥
राआ राआ राआ रे अवर राअ मोहे[६] रे बाधा ।
लुइपाअपसाएँ दारिक द्वादश भुअणेँ लधा ॥

× × ×

सून - करुण रे ! अभिन्नाचारेँ कायवाक्चित्ते ।
विलसइ दारिक गगनहिँ पारिमकुलेँ ॥
अलक्ष्यलक्षणचित्ता महासुखेँ ।
विलसइ दारिक गगनहिँ पारिमकुलेँ ॥
की तुअ मन्त्रेँ की तुअ तन्त्रेँ की तुअ रे ! ध्यान-बखानेँ ।
अपइसान - महासुखलीलेँ दुर्लक्ष्य - परमनिर्वाणे[७] ॥
दुःखसुख एक कए भोगइ इन्द्रिय जानि [इन्द्रियज्ञानी] ।
स्वपरापर न देखइ दारिक सकलानुत्तर मानि ॥
राजा राजा राजा रे ! अवर राज मोहे रे ! बद्ध [ । ] ।
लुइपादप्रसादेँ दारिक द्वादश भुवने लब्ध [ । ] ॥

---

१ । चगीको । शास्त्री, सेन—सुनकरुणरि २ । सेन—चिअ
३ । चगीको । शास्त्री, सेन—दुलख ४ । चगीको, सेन—इन्दी जानी (णी)
५ । चगीको । शास्त्री—सअलानुत्तरमाणी ६ । चगीको । शास्त्री—मोहेरे
७ । चगीको (सं० छाया)—'निर्वाणं'

अरे ! शून्य–करुणा अर्थात् शक्ति–शिव अभिन्न भए आचरण करैत कायवाक् चित्तमे विलास करैत छथि, शून्यस्वरूपिणीमे, परम कुल ( शक्ति )मे ( हमर ) अलक्ष्यलक्षण चित्त सामरस्यसुखसँ लीन अछि। तोरा मन्त्रसँ की होएतह ? तन्त्रसँ की होएतह ? ध्यान–व्याख्यानसँ की होएतह ? अप्रविश्य महा-सुखलीलाक सङ्ग दारिकपाद दुर्लक्ष्य परम मोक्षमे लीन भए इन्द्रियक असारतासँ परिचित भए, दुःखसुखकेँ एक बूझि ओकर भोग कए रहल छथि। समस्त जाग-तिक तत्त्वकेँ अनुत्तर परमशिवक आभासक रूपमे स्वीकृत कए दारिक आइ स्व-पर–अपर भेदक अनुभव नहि करैत छथि। अरे ! राजा, राजा, राजा—अन्य राजा ( साधक–चक्रवर्ती ) सभ तँ मोहमे जकड़ले रहि गेलाह, मुदा दारिकपाद गुरुलुइ-पादक प्रसादात् द्वादश भुवनपर विजय प्राप्त कएल, ई बड़ संतोषक विषय।

## डोम्बीपाद

१ ( १४ )

गङ्गा जउना माझेँ रे[1] बहइ नाइ[2]।
तहिँ बुड़िली मातङ्गीपोइआ[3] लीले पार करेइ ॥
बाहतु डोम्बी बाह लो डोम्बी बाटत भइल उछारा।
सद्गुरुपाअपसाएँ[4] जाइब पुणु जिणउरा ॥
पाञ्च केडुआल पड़न्तेँ माङ्गे पिठत काच्छी बान्धी।
गअणदुखोलेँ[5] सिञ्चहु पाणी न पइसइ सान्धि ॥
चन्द सूज्ज दुइ चका सिठि संहार पुलिन्दा।
बाम दाहिण दुइ माग न चेवइ बाहतु छन्दा ॥
कवड़ी न लेइ बोड़ी न लेइ सुच्छड़े पार करइ।
जो रथे चड़िला बाहवा ण जा [ न ] इ[6] कुलेँ कुल बुड़इ ॥

× × ×

गङ्गा यमुना माझे रे ! बहइ नाव।
तहँ बुड़ली मातङ्गी डोमिनि लीलेँ पार करइ ॥

१। चगीको। शास्त्री—माझेँ रे २। चगीको। शास्त्री—नाई
३। चगीको। शास्त्री—मातङ्गी पोइआ ४। चगीको। शास्त्री—पसाए। सेन—पएँ
५। चगीको—गअण हुखोले ँ। सेन—गअण-दुखोलेँ ६। सेन—जाबाइ

खेबह डोमनि ! खेबह हे डोमिनि ! बाटे भेल उत्सूरा[७] ।
सद्गुरु-पाद-प्रसादेँ जाएब पुनु जिन पू(पु)रा ॥
पाँच करुआरि पड़ैते मागेँ ( वा माङि ), पीठे कच्छी बान्धि ।
गगन-सेचनीएँ[८] सीँचह[९] ( फेकह ) पानी, न पइसए सन्धि ॥
चन्द-सूर्या दुइ चक्का सृष्टिसंहार-पोलिन्दा[१०] ।
बाम दाहिन दुइ मार्ग न देखिअ खेबह छन्दा ॥
कउड़ी न लेइ, बौड़ी न लेइ, सुछन्देँ पार करइ ।
जे रथ चढ़ला ( किन्तु ) खेबा न जा ( न )इ कुलेँ कुल बुड़इ ॥

गङ्गा–यमुना ( इड़ा–पिङ्गला )क मध्यमे हे बालयोगिन् ! ब्रह्मनाड़ी (सुषुम्नास्थ सूक्ष्म नाड़ी ) एक प्राणवाहक नौका बहि रहल अछि। ओहि स्थानमे अन्तःस्था महाविद्या–शक्ति वा चाण्डलिनी ( मातङ्गी = चाण्डालिनी[११] ) मातङ्गीरूपा डोमिनी ( पोइआ = नीच स्त्री[१२] ) ( शरीरक निम्न प्रान्तसँ उठनिहारि शक्ति चण्डाली वा ) कुण्डलिनी अपन लीला देखाए साधकपुत्रसकलकेँ ऊर्ध्व–गामी ( पारगामी ) बनबैत छथि। हे डोमिनि ! महामुद्रे ! प्राणनौकाकेँ, चित्त–नौकाकेँ खेबह, बाटमे आब जीवनक साँझ भेल जाइत अछि, सद्गुरु–चरण–प्रसादेँ पुनः जिनपुर ( परलोक ) जेबाक अछि, पञ्च–उपदेशरूप कर्णधार मार्गमे वा माङिपर रखैत, पीठमे कच्छी ( वा रस्सी ) बान्हि शून्यरूप सेचनीसँ नौकास्थ जलकेँ उपछि फेकह, जाहिसँ ओ जल मध्यनाड़ी (नाड़ी–हृदय–सन्धि )मे पैसए नहि ( अर्थात् विषयवासना प्राण–नौका वा चित्त–नौकामे अँटकि नहि सकए, से देखह, अबितहिँ उपछि फेकह )। चन्द्र–सूर्य–मण्डल–चक्र दूनू सृष्टि–संहारक प्रतीक, ओहि नौकाक मध्यस्थ दुइ गोट मस्तूल ( वा खुट्टी थिक ) ताहि प्रकारेँ प्राण–वाहमे लीन हुअह जेँ एहि दूनू चक्र– सम्बन्धी ( इड़ा–पिङ्गला रूप ) दूनू मार्ग दिशि ध्यान नहि जा सकह। हे बालयोगिन् ! तेहन व्यक्ति, महामुद्रा ( ऊपर सम्बोधिता ) पार करओनिहारि छथून्ह जे आनन्दे आनन्द,

---

७। उत्सूरः—Evening Twilight-आप्टे सं० श० को० P. 103 तथा चगीको पा०टि०
८। दुल्लोल—सेचनी [ चगीको—एहीं गीतक पा० टि० ] ९। चगीको—सं० छायामे 'उदंचय', 'सिंच' दूनू समानार्थक [उपछब अर्थमे ]; सिंच = सीँचह [ मै० रूप ]
१०। पुलिन्दा—पोलिन्दा, द्रष्टव्य चगीको ओएह गीत पा० टि० तथा आप्टे सं० शब्द-कोश P. 349 'पोलिन्द' शब्द = मस्तूल। ११। सं० शब्दकोश पृ० ४ ३ [ द्र० बौद्धक 'चराडाली' ] १२। चगीको—ओएह गीत—पा० टि०

हुनका हेतु एकोटा कौड़ी–बौड़ी पारिश्रमिक खर्च नहि करबाक काज। ओ मातङ्गी-शक्ति महाविद्या स्वच्छन्द भए आनन्दसँ पार करैत आएल छथि। एहि प्रकारेँ पारगमन करबाक हेतु जे एहि चित्त–प्राण–नौकापर सबार होएताह, किन्तु ओकर वाहसँ परिचित नहि रहताह, से देह–देहहिमे[१३] डूबि जएताह वा ( जेना 'कूल' मानि कहल गेल ) इतस्ततः तटहिपर डूबि जएताह[१४]।

## कुक्कुरीपाद

१ ( २ )

दुलि दुहि पिटा धरण न जाअ[१]।
रुखेर तेन्तलि कुम्भीरे खाअ॥
आङ्गन घरपण[२] सुन भो बिआती।
कानेट चौरे निल अधराती॥
सुसुरा निद गेल बहुड़ी जागअ।
कानेट चोरे निल का गइ[न] मागअ॥
दिवसइ बहुड़ी काड़इ[३] डरे भाअ।
राति भइले कामरु जाअ॥
अइसन चर्य्या कुक्कुरीपाएँ गाइड़।
कोड़ि मझेँ एकु हिअहि समाइड़॥

× × ×

दुली दूहि पीठ धारण न जाए।
रुहक ( वृक्षक ) तेतरि कुम्भीर खाए॥
आङन घरपन ( गृहापन्न ) सुन हे बिआती ( प्रसूती )!
कानेट ( कर्णफूल ) चौरे लेल अधराती॥
ससुरा निंद गेल बहुरी जागए।
कनेट चोरे लेल का गति माङए॥
दिवसे बहुरी काड़ [ काड़ कौआ ] क डरे भागए।
राति भेने कामरु जाए॥

---

१३। सं० टी० तथा आओर द्रष्टव्य 'देहेऽपि कथितं कुलं ...' ल० स० पृ० ५३०
१४। चगीको पृ० ४६ पा० टि०
१। चगीको। शास्त्री, सेन—जाइ। २। सेन—घरयण ३। चगीको, सेन—काउइ

अइसन चर्या कुक्कुरीपादें गाआल ।
कोटि माझे एक हिअहि न समाएल ॥

दुली शब्दक दू अर्थ—कच्छपी[४] आ द्वयाकार, लीन होएबाक स्थान 'महासुखकमल'[५] वा सहस्रार, वस्तुतः कच्छपीअहुकें घेँट बाहर-भीतरक दृष्टिएँ द्वयकार कहि सकैत छी। अस्तु। प्रथम पंक्तिक तात्पर्य एतबे अछि जे सहस्रारक अमृत दूहि (दूनूक मध्य सामरस्य स्थापित कए मिथुनामृतज्ञान दूहि) पुनः ओकरा मणिपीठमे धारण नहि कएल जाए सकैत अछि (कुण्डलिनी-उत्थान द्वारा सामरस्य-मुक्तिक पश्चात् प्रत्यावर्त्तनक प्रश्न नहि उठैत अछि)। काय-वृक्षक वक्र आ' अम्मत तेतरि सदृश (कु) चित्तकें, कुंभीर जन्तु वा कुम्भक प्राणायाम खा लैत अछि। हे जगत्-प्रसूति महामुद्रे ! सुनह, अर्धरात्रिमे (कुण्डलिनी-उत्थान-कालमे) कर्णाभरण (कर्ण द्वारा ग्राह्य नाद-पवन) सामरस्य चोरा लेलक, ससुर सदृश त्वरितादि श्वास अवरुद्ध (निद्रित) भए गेल, बधू-सदृश योगिनीगण जागलि रहए। जखन कर्णाभरण नाद-पवन चोरे लए लेलक, तखन पुनः ककरासँ माङ्ब ? दिनमे वधू काड़ (काड़कौअहु)सँ डेराए जाइत छथि, राति भेने प्रियतमकें कामरु पहुँचबैत छथिन्ह वा कामरूप जाइत छथि (कामसाधनार्थ) अर्थात् प्राणक आरोहक क्रममे कुण्डलिनी-महामुद्रा कालपुरुषसँ त्रस्त रहथि, किन्तु सहस्रारस्थ भए पुनः शिव-संयोगमे उन्मुखी होथि। एहन चर्या कुक्कुरीपाद गबैत छथि, कोटिमे एकहुक हृदयमे ई रहस्य पैसल नहि।

## २ (२०)

हाँउ निरासी खमण भतारे[१]।
मोहोर विगोआ कहण न जाइ ॥
फेटलिउ गो माए अन्तउरि चाहि।
जा एथु चाहाम सो एथु नाहि ॥
पहिल बिआण मोर वासनपूड़ा।
नाड़ि विआरन्ते सेव बापूड़ा ॥

---

४। दुली—कच्छपी—सं० शब्दकोश

५। द्वयाकारं यस्मिन लीनं गतं महासुखकमलं दुलि इति संध्यासंकेते बोद्धव्यं। चगीको सं० टी०

१। चगीको, सेन। शास्त्री—भतारि

जाणजौवण मोर भइलेसि पूरा।
मूल निखणि[१] बाप संघारा॥
भणथि कुक्कुरीपा ए भव थिरा।
जो एथु बुझइ सो एथु वीरा॥

× × ×

हम निरासी खमन भतारे।
हमर विगोप्ता कहल न जाइ॥
फाड़ल गे माए! अन्तः पुरी देखि।
जे एत देखी से एत नाहि॥
पहिल बिआन मोर वासनापुर ( I )।
नाड़ी विचारैते सेहो बेचारा॥
जान यौवन मोर भेल पूरा।
मूल खोधि बाप संहारा॥
भनथि कुक्कुरीपा ई भव थीरा।
जे एत बुझइ से एत वीरा॥

हम (भगवती महामुद्रा) व्यापक परब्रह्मस्वरूपिणी रहबाक कारणेँ निरासक्ति छी, शून्यस्वरूप मन वा चित् (चित्तो तँ चित् बनि जाइत अछि) हमर भर्त्ता, स्वतः हम चिच्छक्ति वा चिति। हमर पालयिता के से कहल नहि जाए। गे मैया! हम अन्तःपुर (साधकक चित्त-जगत्) दिशि ताकि ओकर विषय-वासनाकेँ तोड़ि देल। जेना अहाँ एहि जगतकेँ देखैत छी, तेना अछि नहि, अर्थात् असत् अछि बाह्यतः एवं सत् अछि मूला शक्तिक आभास होएबाक कारणेँ। हमर पहिल बिआनमे वासनानगरी ई देह प्रसूत भेल, नाड़ी सभपर विचार कएला सँ वासनानगरी देहो दयनीये। ज्ञान-यौवन वा उद्दाम यौवन हमर पूर भेल, चितिरुपमे (ब्रह्म-) मूलमे पैसि ओकरा चिन्हल, वासनादिजनक चित्ताक संहार (विनाश) कएल। कुक्करीपा कहैत छथि—ई जगत् स्थिरे अछि, जे ई रहस्य नीक जकाँ बुझैत अछि से वीर अछि (जगत् स्थिर, स्थिरा नित्याक आभास होएबाक कारणेँ)।

एहिठाम महामुद्राक उक्ति अछि वा कविक, से समस्त गीतमे सुस्पष्ट नहि अछि। ई अनुसन्धान किछु उपयुक्त प्रतीत होइत अछि जे अन्तिम चारू

१। चगोको। शास्त्री, सेन—नखलि।

पंक्ति कविक उक्ति अछि, अवशिष्ट महामुद्राक। किन्तु, अधिक समीचीन बुझना जाइत अछि ई अनुमान जे समग्र गीत कविक अभिन्ना प्राणशक्तिक उक्ति थिक, तेँ "मूल............................संघारा"। वस्तुतः सिद्धपाद चित्ततरुक संहार कएल, किन्तु हुनक अभिन्नारूपमे शक्तिओ तेना बाजि सकैत छथि।

३ (४८)[१]

कुलिशाब्जयुद्धं प्रविष्टाः।
समतायोगस्य सैनिकसमूहाः॥ १॥
विषयेन्द्रियग्रामानहन्।
शून्यताराजो महासुखनामा॥ ध्रुवपद॥
तूर्यशब्दः शङ्खध्वनिर् अप्रतिहतनादं नदति।
मोहभवबलानि दूरातीतानि॥ २॥
सुखपुरं शिखरे संस्थाप्य सर्वम् आकृष्टं [ संगृहीतं वा ]।
अंगुलिम् ऊर्ध्वं क्षिप्त्वा कुक्कुरीपादो वदति॥ ३॥
अयं त्रैलोक्ये महासुखेन जयति।
तत्त्वस्यार्थं शब्दान्तरेण कुक्कुरीपादेन कथितं॥ ४॥

× × ×

कुलिश - कमल - युद्ध पसल।
समतायोगक सैनिक समूह॥ १॥
विषयेन्द्रिय - ग्राम मा'ल।
शून्यताराज महासुखनामा॥ धुवपद॥
तूर्य शब्द शङ्खध्वनि अप्रतिहतनाद बाजए।
मोहभवबल दूर बीतल॥ २॥
सुखपुर शिखरे राखि सभ आकृष्ट (संगृहीत) (भेल)।
अङ्गुलि उठाए कुककुरीपाद कहथि॥ ३॥
एहि त्रैलोकये महासुखेँ जय हो।
तत्त्वक अर्थ शब्दान्तरेँ कुक्कुरीपादेँ कथित हो॥ ४॥

---

१। "The Caryā with its commentary, lost in its original form, has been retranslated here from the Tib. version appended at the end of the work." चगीको—पा० टि० (पृ० १५७)

वज्र ( लिङ्ग वा शिवक प्रतीक )आ' कमल ( योनि वा शक्तिक प्रतीक ) एहि दूनूक सामरस्ययोगमे समस्त काय, वाक् चित्त तत्पर भए गेल। शिव-शक्तिक सामरस्यक बलसँ विषयग्राहक इन्द्रियसभक व्यापार नष्ट कए देल गेल। तुरीयनाद, विजयक शङ्खध्वनि जकाँ, अप्रतिहतरूपमे झङ्कृत भए रहल अछि। आब संसारक सामर्थ्य, मोहमायाक पराक्रम दूर चल गेल, आब समस्त विषय-वासनासभ सहस्रार (मेरुशिखर) पर, सामरस्यक भूमिकामे, अन्तर्लीन भए गेल, सभ वासना ओही चक्रमे आकृष्ट भए विलीन भए गेल। आङुर उठाए कुक्कुरीपाद कहैत छथि—त्रैलोक्यक आभास-दोषसभ सामरस्यसँ जितल भए गेल। ओ एहि सामरस्यानन्दक जयकार करैत छथि, एहि सङ्ग रहलासँ त्रैलोक्यो श्रेयस्कर। ओ (कुक्कुरीपाद) तत्त्वहिक विषयकेँ दोसर शब्दमे ( अपन ढङ्गसँ ) कहैत छथि।

## भुसुकुपाद

### १ ( ६ )

काहेरे घिणि मेलि अच्छहु कीस।
वेटि(ढ़ि)ल हाक पड़अ चौदीस॥
अपणा मांसेँ हरिणा बैरी।
खनह न छाड़अ भुसुकु अहेरि (री)॥
तिन न च्छुपइ हरिणा पिबइ न पानी।
हरिणा हरिणीर निलअ न जानी॥
हरिणी बोलअ सुण हरिणा तो।
ए वण च्छाड़ी होहु भान्तो॥
तरंगते[1] हरिणार खुर न दीसइ[2]।
भुसुकु भणइ मूढ़हिअहि न पइसइ॥

× × ×

काहि घिनि मीलि रहू कीदृश।
वेढ़ल हाक पड़ए चहु दीस॥
अपना मांसेँ हरिणा बैरी।
खनहु न छाड़ए भुसुकु अहेरी ( आखेट )॥

---

१। चगीको, सेन—तरसँन्ते २। चगीको। शास्त्री, सेन—दीसअ

तृण न छुबइ हरिणा पिबइ न पानी ।
हरिणा हरिणीक निलय न जानी ( जानइ ॥
हरिणी बोलए सुन हरिणा तों ।
ऐ वन छाड़ि होहु भ्रान्तो ॥
तरङ्गमे हरिणाक खुर न देखी ।
भुसुकु भनइ मूढ़-हिअहि न पैसइ॥

ककरा ( कोन तत्त्वकेँ ) पकड़ू, ककरा घृणाक दृष्टिएँ देखि छोड़ू ? किछु नहि फुरैत अछि। हम केवल क्षुब्ध छी, चारू कात विषय-वासनासँ घेरल छी, बूझि पड़ैत अछि, विषयसभ मूर्त्तिमान् भए जोर-जोरसँ बाजि रहल अछि— एकर आत्मा केँ मारह ( नष्ट करह )। हमर चित्त-हरिण अपन हानि, अपनहि मांसक लोभमे पड़ि अर्थात् वासना-पूर्त्तिक लोभमे पड़ि, कए रहल अछि, तेँ अपन शत्रु अपने अछि, वासनापूर्त्तिक लोभमे रहने चित्तक विकास संभव नहि। किन्तु भुसुकुपादक आत्मा ओकर जान नहि छोड़त, ओ ओकर दोष-विनाशपर लागल अछि ; महती शक्ति निराकारब्रह्ममयीशक्तिरूपमे हरिणीक सदृश छथि। एहि हरिणीकेँ अपन प्रियतम सिद्धक चित्तहरिणक व्याकुलता देखल नहि जाइत छन्हि, ओ बुझैत छथि जे हमर चित्त-हरिण सामान्य हरिण नहि जे खढ़-पातक आहार करैत अछि आ' स्थूल जलसँ अपनाकेँ परितृप्त कए सकैत अछि, किन्तु ओ हरिण अपन परिचय नहि रखैत अछि। ओ शून्यहृदया जगदम्बाक अधिष्ठानसँ अनभिज्ञ अछि, जे ओकरासँ दूर नहि छथि। ई स्थिति देखि ओ शून्यस्वरूपिणी जगन्मयी ओकरा कहैत छथिन्ह-हे साधकक चित्त हरिण ! हे हमर प्रियतम ! सुनह, तोँ आब एहि विषयवासनाक जंगल-झाड़मे अपनाकेँ नहि ओझराबह, एतएसँ निकलि चलह, चलह, हमरा सङ्ग सहस्रारवनमे विचरह। तात्पर्य एतबे जे चित्त ऊपर ऊठि, विकसित भए, चितिक अभिन्न बनि, शिवरूप बनि जाए। जगदम्बा चितिरूपा छथि, चित्त विकसित भेलापर चितिक अभिन्न बनि जाइत अछि आ' फलतः साधकक आत्मा, शिवात्माक पदवी प्राप्त करैत अछि। एहि प्रक्रियाकेँ ध्यानमे राखि चिति अपरिणामिनीशक्ति साधकक मनकेँ अपनामे रमाए, अपन अभिन्न बनाए, सहस्रारस्थ शिवरूपमे परिणत देखए चाहैत छथि।

अस्तु, ई आशय सिद्धक चित्तकेँ जखन बुझबाक योग्य भए गेलैक तखन ओ बड़ बेगसँ विषयसँ भागल आ' महती शक्तिक अभिन्न (अन्तरङ्ग) बनि शिवरूपताकेँ प्राप्त कएलक। कोना ? से रहस्य तँ मूढ़क हृदयमे पैसि नहि सकैत अछि, भुसुकुपादक सएह धारणा छन्हि।

२ ( २१ )

निसि अन्धारी मुसअ चारा ।
अभिअभखअ मुसा करअ आहारा ॥
मार रे जोइआ मुसा पवण ।
जेण तुटअ अवणागवण ॥
भवविन्दारअ मुसा खणअ गाती ।
चञ्चल मुसा कलिआँ नाशक थाती ॥
काल मुसा उह ण बाण ।
गअणे उठि करअ अमिअ पाण[1] ॥
ताब से मुसा उञ्चल पाञ्चल ।
सद्गुरुबोहे करह सो निच्चल ॥
जबेँ मुसाएर चार तुटअ ।
भुसुकु भणअ तबेँ बान्धन फिटअ ॥

× × ×

निशि अन्हारी मूषक चारा ।
अमृत-भक्षक मूसा करए आहारा ॥
मार रे ! योगिआ मूसा पवना ।
जहिसँ टूटए आवागमना ॥
भव-विदारक मूसा खुनए गर्त्तो ।
चञ्चल मूसा खाए ( कओरेँ ) थाती ॥
काल मूसा, तनि न वर्ण ।
गगने ऊठि करए अमृतपान ॥
तावत् से मूसा उकस-पाकस [चञ्चल] ।
सद्गुरुबोधेँ करह सोइ निश्चल ॥
जबे मूसाकेर चार टूटए ।
भुसुकु भनए तबे बन्धन टूटए ॥

चित्त-मूस चतुर्थ प्रहरान्तमे, अर्थात् प्राणवायुरूप सूर्यक अस्त भेलापर [ षट्चक्रयोगक क्रममे ] चरैत चरैत सहस्रारस्थ मधुक पान करैत अछि। किन्तु

1. चगीको। शास्त्री, सेन—चरअ अमण धाण

एहि यौगिक प्रक्रियामे स्थायित्व नहि, अर्थात् स्थायी रूपमे अमृत-पान करबाक हेतु, सामरस्य-सुख भोग करबाक हेतु, कुचित्त-विनाश आवश्यक। एही विषयकेँ सिद्धगण चित्त-विनाश शब्देँ सूचित कएने छथि। आ' एही दृष्टिएँ प्रस्तुत सिद्ध कवि बालयोगीसभकेँ प्राण-पवन वा चित्त मूसकेँ मारए कहैत छथि। विषयवासनासँ मलिन चित्तक विनाशहिसँ वा तदभिन्न प्राणक नाशहिसँ सामरस्य-मुक्ति सम्भव, जन्म-मरणक विच्छेद सम्भव। कवि कहैत छथि—ई जे विषयानुरक्त चित्त से यद्यपि षट्चक्र-साधन द्वारा क्षणक हेतु सामरस्यक ईषद्भोग करैत अछि, किन्तु सामान्यतया पुनः विषयमे लपटाए अपनहिसँ खाधि कोड़ैत अछि ; वस्तुतः ओ थिक भव-विदारक, किन्तु लागल रहैत अछि खाधि कोड़बामे, अपन पतनक आयासमे। चञ्चल रहि चित्त-मूस नाशक भण्डार विषयवाषसनाक भोग करैत अछि, आहार करैत अछि, किन्तु ओएह स्थिर भए, समाधिस्थ भए, महाकालरूप भए जाइत अछि, जकर कोनो वर्ण-स्वरूप नहि, ताहि रूपमे तँ ओ शून्यगगनमे विचरण करैत अछि आ' सामरस्यक अमृतपान करैत अछि, शक्तिक अन्तरङ्ग बनि। जा' धरि ई स्थिरता नहि आएल रहैत अछि ता'धरि ओकर छटपटी कहल नहि जाए, ओ मानू उकस-पाकस करैत अछि। एहि छटपटीकेँ कोना दूर कएल जाए, सामरस्यक आनन्द कोना भेटए, चित्त ब्रह्ममयीमे लीन भए शिवरूपताकेँ कोना पाबए? एहिसभक व्यावहारिक रहस्य सद्गुरुअहिसँ ज्ञातव्य। संक्षेपमे एतबे बुझह [ हे बालयोगिन् ] जे जखन एहि चित्त-मूसक संचार [ ऊपर उठब, पुनः नीचा खसब ] रुकि जएतह, तखन समस्त बन्धन टूटि जेतह।

३ ( २३ )

जइ तुम्हे भुसुकु अहेरि जाइबेँ मारिहसि पञ्चजणा।
नलिणीवन पइसन्ते होहिसि एकुमणा॥
जीवन्ते भेला विहाण[1] मएल रअणि।
[ग]हण[2] विणुमाँसे भुसुकु पद्मवण पइसहि णि॥
माआजाल पसरि उरे[3] बाँधेलि[4] माआहरिणी।
सद्गुरुबोहेँ बुझि रे कासु कहिनि[5]॥

१। चगाको। शास्त्री, सेन—बिहखि २। चगीको। शास्त्री, सेन—हण
३। चगोका,सेन—रसरिउ रे ४। चगीको। शास्त्री—बधेलि
५। चगीको। शास्त्री, सेन—कदिनि

× × ×

जं तोँ भुसुकु आखेट जएबह, मारिहह पञ्चजना ।
नलिनीवन पैसैते होइहह एकमना ॥
जीवित भेळा बिहान, मुइल रजनी ।
[ग्र] हण बिनु मांसेँ भुसुकु पद्मवन पैसिहह नहि ॥
मायाजाल पसरि उरे बाँधलि मायाहरिणी ।
सद्गुरुबोधेँ बुझल रे ! [का] ककर कहिनी ॥

हे भुसुक ! जँ तोँ कुचित्तक आखेटार्थ जइहह तँ शब्दस्पर्शादि पञ्चतन्मात्रा आ तत्सम्पर्कों पञ्च-अनुभूतिक विनाश पहिने कए लिहह, सहस्रारदल-प्रवेशसँ पूर्व एकमना भए आराध्यक अन्तरङ्ग बनि जइहह, तखन कोनो गप्प। आब तोहरा ज्ञानोदय भए गेलह, अज्ञान-निशा समाप्त भए गेलह। निहत चित्त-मृगक मांस उपहार लए अर्थात् कुचित्त-विनाश कए ओकर मूलभूता शक्तिक सङ्ग हे भुसुकु ! तोँ सहस्रार पैसिहह, प्राणवायुकेँ षट्चक्र-भेद करैत-करैत सहस्रारमे मिलबिहह। संसारक मायाजाल पसरल अछि। एहि जालमे ओझराए साधक महामाया-हरिणीकेँ पर्यन्त सीमित दृष्टिएँ हृदयमे रखैत छथि, रूप-कल्पना द्वारा स्वार्थवशात्। सद्गुरुप्रदत्त ज्ञानसँ हमरा ई बुझबाक योग्य भए गेल अछि जे कनिक की स्थिति छल। कहबाक अभिप्राय ई जे संसारक विषयवासनाक रूपमे मायाजाल पसरल अछि, ताहिमे नहि फँसि, चिच्छक्तिक सङ्ग अन्तरङ्गता स्थापत कएल जाए, सएह थिक चरम लक्ष्य।

४ ( २७ )

अधराति भर कमल विकसिउ।
बतिस जोइणी तसु अङ्ग उह्लसिउ[१] ॥
चालिअ ससहर[२] मागे अवधूइ।
रअणहु सहजे कहेइ ॥
चालिअ ससहर गउ णिवाणे।
कमलिनि कमल वहइ पणालेँ ॥
विरमानन्द विलक्षण सुध।
जो एथु बुझइ सो एथु बुध ॥

१। चगीको। शास्त्री, सेन—उहसिउ २। चगीको। शास्त्री, सेन—षषहर

भुसुकु भणइ मइ बुझिअ मेलेँ।
सहजानन्द महासुह लीलेँ॥

× × ×

अधराति भरि कमल विकसल।
बत्तीस योगिनी तसु अङ्ग उल्लसल॥
चालित शशधर मार्गें अवधूती।
रतनहु सहजे कहइ (अजगूत)॥
चालित शशधर गेल निर्वाणेँ।
कमलिनि कमल बहइ प्रनालेँ॥
विरमानन्द विलक्षण शुद्ध।
जे एत (ए) बुझइ से एत (ए) बुद्ध॥
भुसुकु भनइ हम बुझल मेलेँ।
सहजानन्द महासुखलीलेँ॥

चतुर्थान्त प्रहर ( चतुर्थी सन्ध्या ) मे, अर्थात् प्राणसूर्यक अस्तमित भेलापर सहस्रार विकसित भेल ( अथवा निशामे जाए सहस्रार विकसित भेल )। योगिनीक सदृश,महाविद्याक सङ्ग सामीप्यभाव अगओनिहारि देवीक सदृश, बत्तीसो नाड़ी ओहि सहस्रारक अङ्गकेँ उल्लसित कएलक,आनन्दोत्फुल्ल कएलक। प्राणचन्द्र अवधूती वा सुषुम्ना नाड़ीमे ऊपर उठए लागल आ' सहज वा सामरस्यक अनुभूति-रत्नक परिचय हमरा कहए लागल, अर्थात् हमरा ओ अनुभव होअए लागल। समुत्थित ई प्राण-चन्द्र वा चित्त-चन्द्र निर्वाणप्राप्त भेल अर्थात् मुक्त भए गेल, कमलिनी अर्थात् कुण्डलिनी वा प्राणशक्ति सहस्रार-कमलमे प्रवेश कएल, प्रकृष्ट ब्रह्मनाड़ी द्वारा। तखनुक आनन्द विलक्षण तथा विशुद्ध सच्चिन्मय। जे एतए ई रहस्य बुझए सएह अछि प्रबुद्ध। हमहुँ तँ जीव ( प्राण )-आत्मा ( परमात्मा )क मेलक वा शक्ति-शिवक संयोगहिक, सहज सामरस्यहिक, प्रसादात् एहि रहस्यसँ परिचित भेल छी। अर्थात् बिनु ओहि सामरस्यानुभूतिक आनन्दक साक्षात् अनुभव प्राप्त भेने ई संभव नहि अछि (एहिठाम जीवन्मुक्तिपर प्रकाश अछि )।

५ ( ३० )

करुणा मेह निरन्तर फरिआ।
भावाभाव द्वन्दल दलिआ॥
उइत्ता गअण माझेँ अदभूआ।
पेख रे भुसुकु सहजसरुआ॥
जासु सुनन्ते तुट्टइ इन्दिआल।
निहुए[१]णिअ मन देअ[२] उलास॥
विसअ विशुद्धेँ मइ बुज्झिअ आनन्दे।
गअणह जिमि उजोलि चान्दे॥
ए तैलोए एत वि सारा[३]।
जोइ भुसुकु फेटइ अन्धकारा॥

× × ×

करुणा मेघ निरन्तर फरए।
भावाभाव द्वन्द्वल दलए॥
उदित गगन माझे अद्भुता।
पेख रे ! भुसुकु सहजस्वरूपा॥
जसु सुनइते टूटइ इन्द्रियजाल (इन्द्रजाल)।
निभृत निज मन दिअए उल्लास॥
विषय विशुद्धेँ हम बुझी आनन्दे।
गगने जिमि इजोरि चन्दे॥
ऐ त्रैलोक्ये एते विसारा।
योगि भुसुकु फाड़इ अन्धकारा॥

परमा सत्ताक भाव वा अभाव, एहन विकल्पकेँ दलित कए, हृदयमे करुणा-मेघक उत्पत्ति भेल अर्थात् शिवक करुणामय स्वरूपक स्फुरण भेल। शून्य-गगनमे अद्भुत सहज-स्वरूप-प्रकाशक उदय भेल, एहन प्रतीत भेल। अर्थात् शून्य-स्वरूपिणी शक्तिक सङ्ग सम्मिलित शिवक सामरस्यमय स्वरूपक वा विमर्श-सम्मिलित-प्रकाशक साक्षात्कार भेल। हे भुसुकु ! एहि स्वरूपकेँ

१। चगोको। शास्त्री, सेन—निहुरे २। चगोको। शास्त्री, सेन—दे
३। चगोको। शास्त्री—ए त विसारा। सेन—एतवि षारा

नीक जकाँ देखह, चिन्हह। ओ तँ एहन प्रकाश अछि जकर वर्णन सुनलासँ इन्द्रियजाल वा मायाजाल टूटि जएतह, आ' मन निभृत भए जेतह, अनायास उल्लसितो। विषय-वासना आब शुद्ध सत् आनन्दरूपमे परिणत भेल अछि, कोना लगैत अछि तँ जेना आकाशमे चन्द्रोदय भए गेल हो, चन्द्रमाक इजोरिया जकाँ ओहि असीम परमशिवक सहज-प्रकाश चित्त-जगतकेँ व्याप्त कएने अछि। एतेक तँ कँहल, मुदा एहि त्रैलोक्यक मायाजालमे पड़ि लोक सभ किछु बिसरि जाइत अछि, किन्तु भुसुकु अज्ञान-तिमिरकेँ फाड़ि देल, तत्त्वज्ञानी बनि गेलाह।

६ (४१)

आइए अणुअना ए जग रे भांतिएँ सो पड़िहाइ।
राजसाप देखि जो चमकिइ साँचे कि ताक बोड़ो खाइ॥
अकट जोइआ रे मा कर हाथ[१] लोह्वा।
आइस[२] सभावेँ जइ जग बुझसि तुटइ वासना[३] तोरा॥
मरुमरीचि गन्ध[ब]नअरी[४] दापणपतिबिम्बु जइसा।
वातावत्तोँ सो दिढ़ भइआ अपेँ पाथर जइसा॥
बान्धिसुआ जिम केलि करइ खेलइ बहुबिह खेला।
बालुआतेलेँ ससर सिंगे आकाशफुलिला॥
राउतु भणइ कट भुसुकु भणइ कट सअला अइस सहाव।
जइ तो मूढ़ा अच्छसि भान्ती पुच्छतु सद्गुरुपाव॥

× × ×

आदि [मे] अनुत्पन्न [ा] ई जग रे! भ्रान्तिएँ से प्रतिभाति।
रज्जु-साप देखि जे चमकइ सत्ये कि ताक बोड़ो खाइ?
अकट योगिआ रे न कर हाथ नोनाह।
अइसन स्वभावेँ यदि जग बुझसि टुटए वासना तोरा॥
मरुमरीचि गन्ध[र्व]नगरी दर्पण प्रतिबिम्ब जइसन।
वातावर्त्तेँ से दृढ़ भेला अपेँ पाथर जइसन॥

१। चगीको। शास्त्री, सेन—हथा २। चगीको, सेन। शास्त्री—अइस
३। चगीको। शास्त्री, सेन—वाषणा ४। चगीको। शास्त्री—गन्धनइरी

बन्ध्या सुता जिमि केलि करइ खेलइ बहुविह खेला ।
बालुका तेलें शशक सिंघे आकाश फुलएला ॥
राउत भनइ ओह ! भुसुकु भनइ ओह ! सकला अइसन स्वभाव ।
यदि तों मूढ़ा छह [तों] भ्रान्त [ ी] पुछह सद्गुरुपाद ॥

हे बालयोगिन ! वस्तुतः आदिमे जे अनुत्पन्न छल एहन जगतकें भ्रान्तिक कारणे तों यथार्थ बूझि स्वीकार करैत छह। तोहरा असत्य जगत् सत्य प्रतिभासित होइत छह, भ्रमक कारणें। किन्तु बुझह जे रज्जुसर्प देखि जे डरें चौंकि उठैत छथि तनिका वस्तुतः ओ साप खाए तैं नहि लैत अछि। मिथ्या धारणा मात्र रहैत अछि जे ओ साप खा लेत, तहिना एहि जगतकें यथार्थ मानि निरन्तर भीति-दुःखसँ व्याकुल रहब भ्रममात्रक परिणाम थिक। एहि जगतसँ किछु होबएबाला नहि, एकर डर की ? ई अकट गप हम कहैत छिअह। एहि भवसागरक द्वार विषय-जलकें स्पर्शो नहि करह, केवल हाथ [मन] कें नोनछराइन, विषयी, करब होएतह। ई भवसागर किछु नहि सत्ता रखैत अछि, विच्छक्तिक आचरणरूप माया मात्र थिक। एहि रूपमे जँ तों संसारकें स्वीकार करबह, तँ अनायास विषय-वासना टूटि जएतह। ई बुझह जे ई संसार तहिना किछु काजक नहि जेना मरुभूमिमे पानि पीबाक इच्छा केवल कष्टकारके, ई कपोलकल्पित सुखदुःखमय संसार तहिना मिथ्या जेना आकाशमे गन्धर्वनगरी बसल, अथवा जेना दर्पणमे प्रतिबिम्बित वस्तु [ वस्तु भासित होइत, किन्तु वस्तु नहि, छाया-प्रतिबिम्ब मात्र ]। ई जगत् परमा सत्ताक आभास मात्र, छाया मात्र, वस्तुतः अपनामे ई किछु नहि, इएह आशय। वातावर्त्तमे पड़ल पाथर कहिओ स्थिर भेल ? बन्ध्याक पुत्री कहिओ जन्म लए खेलाएल ? बालुसँ कहिओ तेल बनल ? खढ़ियाकें कहिओ सिंघ उपजलैक ? आकाशमे कहिओ कोनो फूल फुलाएल ? एहि सभ प्रश्नक उत्तर एकेटा होएत—कहिओ नहि। तहिना ई जगत् कहिओ यथार्थ तत्त्वक रूपमे उत्पन्न भेल, से नहि। राउत ( सिद्ध राजकुमार ) ई अद्भुत विषय कहैत छथून्ह, भुसुकु ई अद्भुत विषय कहैत छथून्ह जे सभ जातिक विषयकें, वस्तुकें, एही रूपमे बुझह। तथापि जँ तों मूढ़े छह तँ कोनहु सद्गुरुसँ सत्यक जिज्ञासा करह।

७ ( ४३ )

सहजमहातरु फरिअ ए तेलोए।
खसमसभावे रे वाणत मुका कोए[1] ॥
जिम जले पाणिआ टलिआ भेड़ न जाअ।
तिम मणरअणा रे समरसे गअण समाअ ॥
जासु नाहि अप्पा तासु परेला काहि।
आइ अनुअणा रे जामभरण भाव नाहि ॥
भुसुकु भणइ कट राउतु भणइ कट सअला एह सहाव।
जाइ ण आबइ रे ण तहिँ भावाभाव ॥

× × ×

सहज महातरु फरए रे! त्रैलोक्ये।
खसम-स्वभावेँ रे! वानतः मुक्ता कोए ॥
जिमि जले पानिआ खसि भेद न जाए।
तिमि मनरतना रे! समरसे गगन समाए ॥
जसु नाहि आत्मा तसु परक काहि।
आदि अनुत्पन्ना रे! जन्ममरण-भाव नाहि ॥
भुसुकु भनइ कृत, राउत भनइ कृत, सकला (इ) एह स्वभाव।
जाइ न आबइ रे! न तहँ भावाभाव ॥

हे बालयोगिन्! एहि समस्त त्रैलोक्यमे एक सहजरूप, सामरस्यमय शिव-शक्तिक अद्वयरूप, महान् वृक्ष जकाँ पसरल अछि, ओही महान् वृक्षक मिथुनक फलरूप थिक ई यावतो सृष्टि, मायाजाल। ओ आकाशसदृश स्वभावे, शून्यता-स्वभावे, गगनहृदयस्वभावे, तँ स्वातन्त्र्य वा विमर्शशक्ति थिक परमात्मा वा परमशिवाद्वैतक एहि शक्तिकेँ, परमात्माक स्वभाव ( विमर्शहि स्वभावे ) केँ पकड़लासँ मुक्ति भेटब सुनिश्चित, किन्तु दौर्भाग्यवशात् बड़ थोड़ व्यक्ति तत्त्वज्ञानी भए सकलाह, अधिकांश ज्ञानविहीन उपासना वा धार्मिक अन्य चर्या कए बन्धनग्रस्ते रहलाह। जेना जलाशयमे एक लोटा जल देलासँ व्यापक-व्याप्य जलक भेद नहि अनुभूत हो, तहिना मनोरत्न सामरस्यपूर्ण शून्य-स्वरूप शिव-शक्तिमे मीलि ( पैसि ) गेलासँ तद्रूपे भए जाइत अछि। कहलो तँ गेल अछि जे साधनाक चरमदशामे चित्त चिति ( चित्-शक्ति )मे परिणत भए जाइत अछि।

१। चगीको। शास्त्री— वा ण मुका कोए। सेन— वाणतका[ ]कोए।

एहि अवस्थाकेँ प्राप्त करबाक हेतु आत्मविकास आवश्यक, जकरा आत्मबोध नहि, तकरा परतत्त्वबोधे कोना हो ? भुसुकु कहैत छथि जे एहि त्रैलोक्यक यथार्थ स्वभाव बुझह आदिमे अनुत्पन्नता, तखन जन्म मरणहिक सद्भाव कोना ? एहन भासित होएब भ्रान्ति मात्र थिक। तेँ ई निश्चित रूपेँ बुझह जे जगतक इएह उक्त स्वभाव थिक, एहि अनुत्पन्नतामे भावाभावक, आवागमनक, प्रश्ने नहि उठैत अछि, राउत भुसुकुक इएह धारणा छन्हि।

८ ( ४९ )

वाजणाव पाड़ी पँउआ खालेँ बाहिउ।
अदअ बङ्गाले क्लेश लुड़िउ॥
आजि भुसु[कु][1] बङ्गाली भइली।
णिअ घरिणी चण्डाली लेली॥
डहिअ[2] पञ्चपाटण[3] इंदिविसआ णठा।
ण जानमि चिअ मोर कहिँ गइ पइठा॥
सोण रुअ मोर किम्पि ण थाकिउ।
निअपरिवारे महासुहे थाकिउ॥
चउकोड़ि भण्डार मोर लइया सेस।
जीवन्ते मइलेँ नाहि विशेष॥

× × ×

वज्रनाव पाड़ि पदुमा–ह्रदमे खेबल।
अद्वय-बङ्गालेँ कलेश लूटल॥
आजु भुसुकु बङ्गाली भेल।
निज घरनी चण्डाली लेल॥
दग्ध पञ्चपत्तन, इन्द्रिय-विषया नष्टा।
न जानी चित्त मोर कत गइ (जा) पइसो॥
सोन-रूप मोर किछु न रहल।
निज परिवारे महासुखे रहल॥
चउकोटि भण्डार मोर लए शेष।
जीबत मुइने नाहि विशेष॥

१। चगीको। शास्त्री—भुसु। सेन—भुसुकु २। चगीको। शास्त्री—दहिअ। सेन—डहि जो ३। चगीको। शास्त्री—पञ्चधाटण। सेन—पञ्च धाटण

वज्र लिङ्गक प्रतीक थिक आ' पद्म योनिक। तेँ, प्रथम पंक्तिक आशय अछि— लिङ्गरूप नौका योनिरूप धारमे खसाए खेबए लगलहुँ, अथवा महाशक्तिकेँ, कुण्डलिनीशक्तिकेँ, सहस्रारस्थ शिवक सङ्ग मिलाए, शिवरूप भए, आत्मा हमर तत्समाने, मैथुनसदृशे, आनन्दातिरेकक, निर्विकल्पक आनन्दक, अनुभव कएलक। शिवशक्ति-अद्वयक उपयुक्त बङ्गालक कारणेँ अनेक दुःख लूटल, विषयभोगक क्रमेँ बड़ बड़ कष्ट सहल। आब कोनो कष्ट नहि। आइ हम शुद्ध बङ्गाली ( ब्—शिव, अङ्गाली—अभिन्न, तेँ शिवक अभिन्न ) भए गेल छी। आइ स्थूल साधकरूपमे हम डोमिनिकेँ अपन घरनी बनाए नेने छी आ' शिवात्मरूपमे परमाशक्तिकेँ कुण्डलिनीक स्वरूपमे अपन अन्तरङ्ग बनाए नेने छी। आइ पञ्चपत्तन [ पञ्चस्कन्धाश्रित[४] अहङ्कार-ममकारादिक संवेदना ] दग्ध भए गेल, इन्द्रियविषय शब्दस्पर्शादि नष्ट भए गेल। हमर चित्तपर आब ओहिसभक कोनो प्रभाव नहि, न जाने ओ आइ कतए जाए पैसल अछि ( वस्तुतः शून्यस्वरूप शक्तिमे अन्तर्लीन अछि किन्तु हुनक आकार कोनो सीमित नहि, जे स्थूल रूपमे ज्ञातव्य भए सकए, तेँ नहि जानी )। आब हमरा हेतु सोन-रूप किछु मूल्यवान् नहि, दूनूसँ एके रङ्ग तटस्थ छी अर्थात् शून्य ( सोन ) आ' आकार ( रूप ) दूनूमे कोनहु एकमे अधिक आसक्त छी, एहन प्रश्न नहि अछि, शून्य-आकार दूनूक संकल्प-विकल्पक क्षय भए गेल अछि, केवल प्रकाशानन्दचिन्मयक, ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञानक एकतानताक, बोध भए रहल अछि। एहि असीम सामरस्यक आनन्दक अनुभूति लए अनतह नहि जाए पड़ल, अपन परिवारहिमे भेटि गेल, अपन शक्ति डोमिनिक अनुग्रहसँ। आब हमर विषयवासनाक चतुष्कल भण्डारे समाप्त अछि, आब हमरा की सताओत? आब जेहने जीवन तेहने मरण ( जीवन्मुक्तक अवस्थामे स्वतः आनन्दे आनन्द )।

## काह्नु पाद ( कृष्णाचार्य )

१ ( ७ )

आलिएँ कालिएँ बाट रुन्धेला।
ता देखि काह्नु विमन भइला॥

४। पञ्चस्कन्ध = रूप, वेदना, संज्ञा, सस्कार आ' विज्ञान—ता० बौ० सा० सा० पृ० ५८

काह्नु कहिँ गइ करिब निवास।
जे मनगोअर सो उआस॥
ते तिनि ते तिनि तिनि हो भिन्ना।
भणइ काह्नु भव परिच्छिन्ना॥
जे जे आइला ते ते गेला।
अवणागवणे काह्नु विमन भइला॥
हेरि से काह्नि निअड़ि जिनउर बसइ[1]।
भणइ काह्न मो हिअहि न पइसइ॥

× × ×

आलिएँ कालिएँ बाट रोधल।
से देखि काह्नु विमन भेल॥
काह्नु कत गइ (जा) करब निवास।
जे मनगोचर से उदास॥
से तीनि से तीनि तीनि हो भिन्ना।
भनइ काह्नु भव परिच्छिन्ना॥
जे जे अएला से से गेला।
आवागमनेँ काह्नु विमन भेल॥
हेरि से काह्नु निअर जिनपुर बसइ।
भनइ काह्नु मोहि हिअहि न पइसइ॥

इड़ा-पिङ्गला तेँ सुषुम्नास्थ ब्रह्मनाड़ीगत कुण्डलिनीशक्तिक उद्ध्वंगमनमे रोधके, बाधके, भए गेल अछि, से देखि हम, काह्नुपाद, विमन भए गेल छी अथवा (जेना टीकामे, ठीक विपरीत अछि) कुण्डलिनी-शक्तिक विकेन्द्रित होएबाक बाट रुद्ध अछि, कारण हुनक सन्मार्ग ब्रह्मनाड़ीकेँ दूनू दिशिसँ इड़ा-पिङ्गला दबने अछि, तेँ काह्न विमन, विशिष्टमन। आब काह्नु कतए जाए बसताह? जतए बसताह से अलक्ष्य, अवाङ्मनोगोचर। जे मनोगोचर जागतिक तत्त्व सेसभ उदास जकाँ लगैत अछि, ओहिमे कोना ढुकू? ओ तीनि, काय-वाक्-चित्त, आ' ई तीनि, स्वर्ग-मर्त्य-पाताल, भिन्नताक

१। सेन। शास्त्रा—बट्टइ

सूचक थिक, एहन गप्प विश्वक परिच्छिन्न स्वभावक दृष्टिएँ अछि। विश्वक मायाजाल अनित्य वस्तु, जे जनमल सभ चल गेल। काह्न एहि आवागमनसँ विक्षुब्ध छथि। ई आवागमन कोना टुटए ? मुक्तिसँ। से मुक्ति-प्रतीक जिनपुर तँ लगहिमे अछि; केवल हृदयमे पैसए, चित्त-विकास हो, ततबे आवश्यक।

२ (६)

एवंकार दढ़[1] बाखोड़ मोड्डिउ।
विविह विआपक बान्धण तोड़िउ॥
काह्नु[2] विलसअ आसवमाता।
सहजनलिनीवन पइसि निविता॥
जिम जिम करिणा करिणिरेँ रिसअ।
तिम तिम तथतामअगल वरिसअ॥
छड़गइ सअल सहावे सूध।
भावाभाव वलाग न[3] छुध॥
दशबलरअण हरिअ दशदिसेँ।
[अ]विद्याकरिकुँ दम अकिलेसेँ॥

× × ×

एवंकार दढ़ खम्हा मोड़ल।
विविध विआपक बन्धन तोड़ल॥
काह्नु विलसए आसवमत्त (ा)।
सहजनलिनीवन पैसि निवृत्त (ा)॥
जिमि जिमि करिणा करिणीए रिसए।
तिमि तिमि तथता मदकल बरिसए॥
षड्गति सकल स्वभावेँ शुद्ध।
भावाभाव बालाग्र[4]न छूत (क्षुब्ध)॥
दशबलरतन हरल दशदिसे (शे)।
अविद्याकरिकेँ दम (ह) अकलेसेँ (शेँ)॥

१। सेन—दढ़ २। सेन—काह्नु
३। चगीको, सेन। शास्त्री—वला।ग न [ा]
४। वाल=केश (आप्टे सं० श० को० P. 390 द्रष्टव्य)

'एवं' मन्त्ररूपी वा शक्ति–शिवरूपी चन्द्रसूर्यनाड़ीक दृढ़ स्तम्भकेँ कोणित कए (मर्दित कए) हृदयस्थ कएल। बाह्य विविध व्यापक बन्धनसभकेँ तोड़ल। आब काह्न मद्य पीबि उन्मत्त वा सामरस्य–सुखानुभवमे विभोर छथि, ओहि सहजानन्द–सामरस्यरूप, शक्तिसङ्गमरूप, कमलिनी–वनमे विलास कए रहल छथि। संसारसँ आइ निवृत्त छथि। जेना जेना चित्तगजेन्द्र शून्यस्वरूपिणी महा-शक्तिकरिणीमे रिसिआ रिसिआ सटैत अछि, तेना तेना शिवत्वक आनन्द-मदधारा बरिसैत अछि। देवासुरप्रभृति षड्गतिशील जीवसभ स्वभावतः शुद्ध अछि, केवल मायाक कारणेँ अशुद्ध। आब हमरा मायाक स्वरूप स्पष्ट भए गेल अछि आ' तेँ भाव–अभावक समस्यासँ केशाग्रो भरि स्पृष्ट वा क्षुब्ध नहि छी। अविद्या तँ हमर दशबल[५]–रत्न (शिवत्वबल)केँ हरण कए लेने छल। अविद्यहिक कारणेँ ओ दशहु दिशामे छिड़िआ गेल छल। किन्तु आब हम ओहिपर विजय प्राप्त कएने छी। तोहरहुसँ इएह अनुरोध अछि जे अविद्या–हथिनीकेँ सुलभ रीतिएँ, तान्त्रिक भोगमय साधनसँ दमन करह। अविद्या–हथिनीसँ काज नहि चलतह, चित्त–गजकेँ विद्याकरिणीक अन्तरङ्ग बनबह, सएह आशय।

३ (१०)

नगरबाहिरि रे डोम्बि तोहोरि कुड़िआ।
छोइ छोइ जाह सो बाह्मनाड़िआ॥
आलो डोम्बि तोए सम करिब मो[१] साङ्ग।
निघिन काह्न कापालि जोइ लांग॥
एक सो पदुमा चौषठ्ठी पाखुड़ी।
तहिँ चड़ि नाचअ डोम्बी बापुड़ी॥
हा लो डोम्बि तो पुछमि सदभावेँ।
आइससि जासि डोम्बि काहरि नावेँ॥
तान्ति विकणअ डोम्बि अवरना[२] चांगेड़ा[३]।
तोहोर अन्तरे छाड़ि नड़पेड़ा[४]॥

५। दश पारिभाषिक बल—श० क०—पृ० ८११ ('बल' शब्द)

१। चगोको। शास्त्री, सेन—म २। चगोको, सेन—अवर ना

३। सेन—चङ्गता ४। सेन—नडएता

तु लो डोम्बी हाँउ कपाली।
तोहोर अन्तरे मोए घेणिलि[५] हाड़ेर माली॥
सरवर भाञ्जिअ डोम्बी खाअ मोलाण।
मारमि डोम्बि लेमि पराण॥

× × ×

नगर बाहर हे! डोमिनि! तोहर कुटिआ।
छूबि छूबि जाह से ब्रह्मनाड़िआ॥
हे गे डोमिनि! तोहि सम करब हम सङ्ग।
निर्घृण काह्न कपाली योगी नङ्ग॥
एक से पदुमा चौंसठि पंखुड़ी।
ताहि चढ़ि नाचए डोमिनि बापुड़ी॥
हे हे डोमिनि! तोहि पुछी सद्भावें।
आबह जाह डोमिनि! ककर नावें॥
ताँति बेचह डोमिनि! आवरण (।) चङेरा।
तोहर अन्तरे छाड़ी नटपेटा॥
तों हे डोमिनि! हम कपाली।
तोहर अन्तरे हम गहल हाड़क माली॥
सरवर भाङि डोमिनि खाए मृणाल।
मारी डोमिनि ली परान॥

हे डोमिनि! नगरसँ बाहर तोहर खोपड़ी छह, अथवा हे महाशक्ते! शरीरक स्थूल परिधिसँ बाहर, सूक्ष्म रूपमे अहाँक वास्तविक सत्ता अछि; कुण्डलिनीरूपमे अहाँकाँ ब्रह्मनाड़ी छूबि छूबि जाइत अछि। हे महामुद्रे! हम अहाँक सङ्ग रतिलीन होएब शिवरूपमे, आइ काह्न अष्टपाश-विमुक्त छथि, स्वतः घृणा नहि, कापालिकक रूपमे अघोर छथि, नग्न छथि, विषयवासनासँ अनावृत छथि। एक ओ मूलाधारचक्रक पद्म, तकर चौंसठि दल, ताहिपर मानू कुण्डलिनीरूपमे महामुद्रा डोमिनी माता नाच करैत छथि। हे महामुद्रे! अहाँकेँ हम सद्भावें पुछैत छी—'अहाँ कोन नावसँ सहस्रारपर बहैत जाइत

५। सेन—घलिलि

छी आ' ओतएसँ बहैत उतरैत छी ?' कोनो स्थूल संवाहक तत्त्व नहि अछि, चित्त मात्र माध्यम अछि, सएह आशय। हे डोमिनि ! हे महामुद्रे ! अहाँक काज अछि ओभराहटि-पतनक रूपमे मूल्य लए मायाक ताँति बेचब आ आवरणरूप चङेरा बेचब। अहाँक निकट भेलासँ हम नटपेटा छोड़ि दी, जाहिसँ उपकरण लए मायामय विश्वमे नट-लीला करैत छलहुँ। अहाँ डोमिनि [अस्पृश्या, अत्वक्गोचरा] छी। हम कापालिक छी, अहाँक समीप भए हम अस्थिमाला धारण कए नेने छी। प्राणशक्ति पशुक शरीरक अन्तश्चक्ररूप सरोवरकेँ तोड़ि, ओहिमे पैसि मृणालसदृश ब्रह्मनाड़ीक भोग करैत छथि। आब हम कुण्डलिनीक (नाड़ीक मूलभूत व्यापक) सत्त्वकेँ अपनामे ग्रहण कए आत्मामे मिलाए लेब, सभक मूलाशक्तिकेँ आत्मकेन्द्रित कए शिवत्वलाभ करब।

४ (११)

नाड़िशक्ति दिढ़ धरिअ खाटे[1]।
अनहा डमरु बाजइ वीरनादे ॥
काह्न कपाली योगी पइठ अचारे।
देहनअरी विहरइ एकाकारे ॥
आलि कालि घण्टा नेउर चरणे।
रवि शशी कुण्डल किउ आभरणे ॥
राग द्वेष[2] मोह लाइअ छार।
परम मोख लबए मुत्तिहार[3] ॥
मारिअ शासु नणन्द घरे शाली।
माअ मारिआ काह्न भइल कबाली ॥

× × ×

नाड़िशक्ति दृढ़ धरी खाटे।
अनहद डमरू बाजइ वीरनादे ॥
काह्न कपाली योगी पइस आचरे।
देहनगरी विहरइ एकाकारे ॥

---

१। चगीको। शास्त्री—खट्टे। सेन—खदे २। चगीको। शास्त्री—देष। सेन—देश
३। चगीको, सेन। शास्त्री—मुत्ताहार

आलि कालि घण्टा नेउर चरणे ।
रवि-शशि-कुण्डल कएल आभरणे ॥
रागद्वेषमोह लेपिकेँ छार ।
परम मोक्ष ल [भ]ए मुक्तिहार [ मुक्ताहार ] ॥
मारि सासु ननंद [ ननदि ] घरे श्याली ।
माए मारि कान्ह भेल कपाली ॥

ब्रह्मनाड़ी आदि [ षट्चक्रनिरूपणक प्रसङ्गमे कहल ] नाड़ीसभक अन्तः-स्थित समस्त शक्तिकेँ, कुण्डलिनी वा प्राणशक्तिकेँ, चित्तक आधार बनाए, ओहि-पर ओङठि मनसा पड़ि रहल छी। एहि मननक क्रममे अनाहत-ध्वनिरूप डमरूक निनाद 'सोहं' जोरसँ सूनि रहल छी। कापालिक कान्ह योगी आब तेहन आचारक अनुसरण करैत छथि जाहिमे देहे देवालय थिक। एहि आलयमे, देवनगरीमे, मानू ओ एकरूपमे, एक तानमे, समाधिस्थ भए सामरस्यसुखोपभोग करैत विहार कए रहल छथि। ओहि साधनाक क्रममे इड़ा-पिङ्गलागत पवनक सन-सन शब्द, ओहि नाड़ीयुगलमध्य ऊर्ध्वसंचारिणी कुण्डलिनीशक्तिक नूपुर-ध्वनि अछि, शरीरस्थ सूर्यमण्डल एवं चन्द्रमण्डल ओहि महतीशक्तिक ताटङ्कद्वय थिक। एहि प्रकारक अनुभूतिक प्रसादात् कान्ह सांसारिक विषयवासनासभकेँ दग्ध कए राख बनाए देल। आब जँ ओहिसभक अनुभवो होइत छन्हि तँ दमित, प्रशान्त, शीतल संवेदना मात्रक रूपमे, एहन सन जेना अपन समस्त ज्वालाकेँ छाड़ि निःशक्ति भए ओ केवल शरीरमे ( भस्म जकाँ ) लागल अछि। आब कान्ह बड़ बहुमूल्य हार, मुक्ताहार, लाभ कएने छथि, ओ थिक परममोक्षहार, मुक्तिहार। जीवात्मा (स्त्री)क सासु-ननदि जकाँ श्वास आ' ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-सुखसाधनसभकेँ तँ कान्ह दमित कए समाप्त कए देल जे सभक मूलभूता मलिन-सत्त्वप्रधाना मायहुकेँ, समस्त विषयवासनाक जननी मायहुकेँ आइ समाप्त कए देल, हुनक प्रपञ्चजालसँ अवगत भए ओहिसँ अप्रभावित छथि ( शुद्ध सत्त्वप्रधाना महामायामे लीन भए गेल छथि, स्वतः परम शिवरूप, सच्चिदानन्दरूप बनि गेल छथि)।

५ ( १२ )

करुणा पिहाड़ि खेलहुँ नअबल ।
सद्गुरुबोहेँ जितेल भवबल ॥

फीटउ दुआ मादेसि रे ठाकुर।
उआरिउएसेँ काह्न गिअड़[1] जिनउर॥
पहिलेँ तोड़िआ बड़िआ मारिउ[2]।
गअवरेँ तोड़िआ पाञ्चजना घालिउ॥
मतिएँ ठाकुरक परिनिविता।
अवश करिआ भवबल जिता॥
भणइ काह्नु अम्हे[3] भाल दान देहुँ।
चउषठ्ठि कोठा गुणिया लेहुँ॥

× × ×

करुणा पीढ़ी खेलाइ नयबल।
सद्गुरुबोधेँ जीतल भवबल॥
काटल द्वैत, मातु रे! ठाकुर।
उपकारि-उदेशेँ काह्न निअर जिनपुर॥
पहिने तोड़ि पत्तिका मारल।
गजवरे तोड़ि पाञ्चजन घालल॥
मतिएँ ( मन्त्रिएँ ) ठाकुरक परिनिवृत्त।
अवश कए भवबल जित ( ल )॥
भनइ काह्न, हम भल दान दी।
चौँसठि कोठा गुनि लए ली॥

आइ काह्न करुणामय स्वाधिष्ठानचित्तकेँ समस्त जागतिक प्रपञ्चक सतरञ्जक घर जकाँ मानि, ओहि घरसभमे जागतिक अनुभवकेँ नहि राखि, आध्यात्मिक तत्त्वसभकेँ उपविष्ट कए अपूर्व लोकोत्तर विलास कए रहल छथि, खेड़िए जकाँ सद्गुरुदत्त ज्ञानसँ अपन आध्यात्मिक शक्ति शरीरस्थ तत्त्वसभक द्वारा सांसारिक वासनासभकेँ जीति जगद्बल प्राप्त कए नेने छथि। आइ द्वैततरु छिन्न भए गेल, अद्वैत-भावना अङ्कुरित पुष्पित भेल। रे अविद्याग्रस्त चित्त! तोँ आइ मातु भए गेलह, तोहर प्रशक्ति समाप्त। उपकारीक उद्देश्येँ तकैत तकैत

१। चगीको—निअर २। चगीको—माराडिउ। सेन—मराड़िइउ
३। चगीको। शास्त्री, सेन—आम्हे

काह्नक ध्यान अकस्मात् एहिपर जाइत छन्हि जे महान् स्वर्ग ( आनन्दमय लोकोत्तर जगत्) निकटहिमे अछि। जगत्प्रपञ्च-सतरञ्जक जालपर कोना विजय प्राप्त कएल, तकरा सूचित करबाक हेतु काह्न ओकर प्रक्रिया देखबैत छथि। पहिने (आठो) प्यादा कटल अर्थात् घृणाशङ्कादि अष्टपाश कें काटल। समाधिस्थ चित्तगज फील गोटीकें ढुकाए अन्य पात्र ( घोड़ा आदि ) वा ज्ञानेन्द्रिय विषय-सभकें काटल। मन्त्री वा मन्त्रशास्त्रीय बुद्धि द्वारा तँ अविद्याग्रस्तचित्तराज स्वयं मातु भए गेलाह, अचल भए गेलाह। आब ओहि कलुषमय चित्तहिकें जखन मातु कए लेल तखन जगद्वललाभक गप्पे कोन? ओ तँ अनायास सिद्ध भए गेल। काह्न कहैत छथि—हे महामुद्रे! चौँसठि दलक पद्म(चक्र) हम अहीँक सेवामे प्रस्तुत कएने छी, ओ अहीँक निवास-मन्दिर अछि, सएह हमर अनुदान बुझू।

६ ( १३ )

तिशरण णावी किअ अठकुमारी।
निअ देह करुण शून मेहेरी[१]॥
तरित्ता भवजलधि जिम करि माअ सुइना।
मझ वेणी तरङ्ग म[२] मुनिआ॥
पञ्च तथागत किअ केडु आल।
बाहअ काअ काह्निल[३] माआजाल॥
गन्ध परस रस जइसोँ तइसोँ।
निंद विहुने सुइना जइसो॥
चिअकएणहार सुणत माङ्गे[४]।
चलिल काह्न महासुहसाङ्गे॥

× × ×

त्रिशरण नावी कृत अठकुमारी।
निज देह करुणासूनमेहेली ( महिला )॥

---

१। चगीको। शास्त्री—करुणाशूणमे हेरी। सेन—करुणाशून मेहेली।
२। चगीको। शास्त्री—तरङ्गम ३। चगीको। शास्त्री—काह्नि न ल
४। चगीको। शास्त्री—सुणतमाङ्गे

तीर्ण भवजलधि जिमि करि माया सपना।
माझ वेणी तरङ्ग हम मूनि॥
पञ्चतथागतकृत करुआरि।
बाहए काय काह्निल मायाजाल॥
गन्ध-परस-रस जइसन तइसन।
निंद-विहीने सपना जइसन॥
चित्ताकर्णधार शून्यता-मार्गे (मांङ्ग ९२)।
चलल काह्न महासुख सङ्गे॥

काय, वाक्, चित्त इएह तीनू तँ साधनाक साधन अछि, एहि तीनू शरणकेँ नौका मानि प्राणशक्तिकेँ ऊपर खेबए लगलहुँ, एहि नौकहिक प्रसादात् समस्त अष्ट-कुमारी (ब्राह्मी आदि वा शिवक अष्टमूर्त्तिक सहचरी अष्टप्रकृति पञ्चमहाभूतार्कचन्द्र-यज्वान) केँ, अपन देहहिमे, करुणा-शून्यमे वा शिव-शक्तिमे (अन्तरङ्ग परम-सत्तामे) देखल, अथवा एहि तीनू शरणकेँ अष्टशक्तिमे परिणत कए (साधनाक बलेँ अष्टशक्तिक अभिन्न काय, वाक्, चित्तकेँ बनाए), अपन देहकेँ शिवशक्तिमे लीन कए देल, एहन अनुभव होअए लागल। तखन मायाकेँ सपना मानि संसार-सागरकेँ पार कएल। इड़ा-पिङ्गला दूनूक तरङ्गकेँ रोकि (मध्यस्थ सङ्गम ब्रह्म-नाड़ीकेँ अपन प्राण-कुण्डलिनीशक्तिसँ पूर्ण कए) वैरोचन, अक्षोभ्यादि देवसमूहकेँ करुआरि मानि हुनकहि लोकनिक आश्रय धएने काय-नौकाकेँ खेबैत, योगसाधनामे लागल लागल काह्न मायाजालसँ उत्तीर्ण भेलाह। गन्ध-स्पर्शरसादि जे सुख-दुःख दिअए, हम इएह मानैत छी जे ओकर सत्ता निद्रा-विहीन, जाग्रत-सुषुप्तक मध्यवर्त्ती दशा स्वप्नदशासँ अधिक नहि, अर्थात् अवास्तविक थिक, भ्रममात्र होइत अछि जे यथार्थ थिक। चित्तकेँ कर्णधार मानि (चित्तहिक बलेँ) काह्नपाद सामरस्य-सुख-द्वीप दिशि चललाह।

७ (१८)

तिणि भुअण मइ वाहिअ हेलेँ।
हाँउ सुतेलि महासुहलीलेँ॥
कइसणि हालो डोम्बी तोहोरि भामरिआली।
अन्ते कुलिणजण माझेँ कावाली॥

तँइ लो डोम्बी सअल विटालिउ।
काज ण[1] कारण ससहर टालिउ॥
केहो केहो तोहोरे विरुआ बोलइ।
विदुजन[2] लोअ तोरें कण्ठ न मेलइ॥
काह्ने गाइ तु कामचण्डाली।
डोम्बीत[3] आगलि नाहि च्छिणाली॥

× × ×

तीनू भुवन मोहि वाधित हेलें।
हम सुतल महासुखलीलें॥
कइसनि हे गे डोमिनि! तोहर भभटपन।
अन्ते कुलीन जन माझे कपाली॥
तोहें हे डोमिनि! सकल विटारल।
कार्य्य न कारण शशधर टारल॥
केओ केओ तोहरा विरूपा बोलइ।
विद्वज्जन लोक तोर कण्ठ न मेलइ॥
काह्न गाबइ, तोँ कामचण्डाली।
डोम्बोसँ (तः) अगिली नाहि छिनारी॥

तीनू लोककेँ हम तुच्छ बुझल, अवहेलना कएल, आब ओकर कोनो प्रशक्ति नहि हमरापर, ओकर विडम्बना रुकि गेल। आइ हम सामरस्यसुख-विलासक सङ्ग तुरीयावस्थाक अनुभव करैत समाधिस्थ छी। हे महामुद्रे वा शरीरधारिणी डोमिनि! ई तोहर की भभटपन जे हमरा, कापालिककेँ, मध्य-स्थान दैत कुलीन (शरीरलीन) जनकेँ अन्तमे मोजर दैत छहुन्ह (कापालिक महाशक्तिक मध्यस्थ विन्दुमे आत्माकेँ लीन कए दैत छथि, सएह आशय)। तेँ ने कहल जाइत अछि जे तोँ प्रपञ्चिनी छह, तेँ तोँ सभकेँ बिलटा दैत छह, कार्य्य-कारण-सम्बन्धक अभावहुमे सहजेँ प्रबुद्धचित्तचन्द्रकेँ मुक्त करैत छह। केओ केओ तोरा विरूपा (विकृत रूपा, विना रूपक) कहैत छथून्ह, विद्वज्जन

१। चर्गीको। शास्त्री—काजण २। चर्गीको। शास्त्री—विदुजण
३। चर्गीको। शास्त्री—डोम्बी त

तोरा कण्ठसँ नहि छोड़ैत छथून्ह ( अथवा कण्ठ नहि मैलैत छथून्ह )। काह्ण गबैत छथि—हे महामुद्रे ! तोँ कामचण्डाली, कुण्डलिनी ( शक्ति ) वा कामेश्वरी महाशक्ति छह। काह्णक धारणा तँ इएह छन्हि जे एहि डोमिनिसँ, महामुद्रासँ, आगाँ कोनो छिनारि नहि ( बड़ पैघ छिनारि छथि ओ, एहि अर्थमे जे सकल प्राणीक आत्मभूत शिवक सङ्ग रतिलीलाक हेतु आकुलि रहैत छथि )।

८ ( १९ )

भवनिव्वाणे पड़ह मादला।
मणपवणवेणि करण्डकशाला[1]॥
जअ जअ दुन्दुहिसाद उछलिआँ।
काह्ण डोम्बीविवाहे चलिआ॥
डोम्बी विवाहिआ अहारिउ जाम।
जउतुके किअ आणुतु[2] धाम॥
अहणिसि सुरअपसङ्गे जाअ।
जोइणिजाले रअणि पोहाअ॥
डोम्बीएर सङ्गे जो जोइ रत्तो।
खणह न छाड़अ सहज उन्मत्तो॥

× × ×

भवनिर्वाणे पटह मर्दला।
मन-पवन दुइ करण्ड-कसाला॥
जय जय दुन्दुभि शब्द उछलला।
काह्ण डोम्बी विवाहए चलला॥
डोम्बी विवाहि आहारल जन्म।
जउतुके कृत अनुत्तर धर्म॥
अहर्निशि सुरत-प्रसङ्गे जाए।
योगिनि-जाले रजनी पोहाए॥
डोम्बीकेर सङ्गे जे योगी रक्त।
खनहु न छाड़ए सहज उन्मत्त॥

---

१। सेन—करण्ड-कसाला २। सेन—आनुणुत्त

भव–बन्धन आ' मोक्ष ई दूनू पटहमर्दल वाद्ययन्त्रक काज कएलक आ' मनप्राणपवन करण्ड आ' कसाला वाद्ययन्त्रक। भव–बन्धनक ढोल–मृदङ्ग पिटैत आ' मन–प्राणक अनाहत-शब्द-ध्वनि प्रसरित करैत काह्न डोमिनि महा–मुद्राक सङ्ग सामरस्यक हेतु चललाह, बूझि पड़न्हि जे शून्यगगन दहराकाशमे जय-जय तुमुलनाद भए रहल अछि। काह्न साधना–मार्गपर बढ़ैत बढ़ैत शिवत्व–लाभ कए महाशक्तिमे सदाक हेतु संलीन भए गेलाह, आब जन्मक बन्धन हटि गेल, जउतुकमे अनुत्तरत्व ( परमपद ) लाभ भेलन्हि, आइ ओ मुक्त छथि, अहर्निशि सामरस्यसुखोपभोगमे डुबल छथि; शास्त्रकथित शून्यहृदया योगिनीक विलास–विच्छित्तिक साक्षात्कार करैत राति बितबैत छथि। एहि डोमिनि– महामुद्रामे, चितिअपरिणामिनिशक्तिमे जे योगी सटि जाइत छथि ( एक बेरि ), तनिका पुनः ओहि विमर्शक आनन्दकेँ छोड़ल नहि जाइत छन्हि, ओ सहज–सामरस्यानन्दमे विभोर रहैत छथि।

९ ( २४ )[1]

पूर्णचन्द्र उदयति यदा।
चित्तराजो विमलो भवति तदा॥ १॥
मोहमलं छिन्नं गुरूपदेशेन।
विषयेन्द्रियं गगनमुपेतं ॥ ध्रु० ॥
खसमबीजं यत् खसमं याति।
आत्मवृक्षस् त्रिधातुषु वितनोतिच्छायां॥ २॥
यथा उदिते सूर्ये रात्रिर्व्यपयाति।
( तथा ) भवसमुद्रमोहरजो दूरीभवति ॥ ३॥
राजहंसो यथा जलं विविनक्ति।
भवं भुङ्क्ष्व [तथा] इति कथयति कृष्णपादः॥ ४॥

× × ×

पूर्णचन्द्र उगए जब।
चित्तराज विमल होए तबे॥

१। "This gīti with its Sanskrit Commentary lost due to a lacuna in the Ms. is given below in Sanskrit retranslation from Tib. version appended in Roman Transliteration at the end of the work....... ."

मोहमल छिन्न गुरूपदेशें ।
विषयेन्द्रिय गगनयुक्त ॥ ध्रु० ॥
खसमबीज जे ( से ) खसम जाए ।
आत्मवृक्ष त्रिधातु ( मे ) पसारए छाया ॥
जेना उगने सूर्यक राति पड़ाए ।
( तेना ) भवसमुद्र मोहधूलि दूर होए ॥
राजहंस जेना जल बिभिनाबए ।
भव भोगह ( तेना ) ई भनथि किसुन ( कान्ह ) पाद ॥

षोड़शकलायुक्त प्रबुद्ध चित्तचन्द्र वा प्राणचन्द्र जखन उदित होइत अछि, उठैत अछि, वा जखन विकसित भए षोड़शीक अन्तरङ्ग भए जाइत अछि सहस्रारस्थ शिवरूपमे, स्वतः तखन चित्तराज शुद्ध सत्, चित्, आनन्दमे परिणत भए जाइत अछि। गुरूपदेशसँ मोहमल नष्ट भए जाए आ' इन्द्रियसभक प्रेरणा आब शून्यमे अन्तर्लीन भए जाए, सभ ओहीमे लागल रहए। पिण्डक शून्यस्थ बीज सेहो व्यापक अण्डक शून्यमे मीलि जाए। आत्मारूप वृक्षक छाया काय, वाक्, चित्तकेँ व्याप्त कएने अछि। जेना सूर्योदय भेलासँ राति [ अन्धकारयुक्त ] पड़ाए तहिना संसारक अगम्य सागरक मोहान्धकारमय निशा, चिद्‌घनप्रकाशसँ दूर पड़ा जाए। राजहंस जेना नीरकेँ क्षीरसँ फराक करैत अछि तहिना अचित्‌केँ चित्‌सँ फराक रूपमे देखैत संसारक [ आ पुनः सामरस्यक ] भोग करह, कृष्णपादक ई कहब।

१० ( ३६ )

सुण वाह तथता पहारी ।
मोहभण्डार लइ सअला अहारी ॥
घुमइ ण चेबइ सपरविभागा ।
सहजनिदालु काह्निला लाङ्गा ॥
चेअण न वेअन भर निद गेला ।
सअल सुफल करि सुहे सुतेला ॥
स्वपणे मइ देखिल तिहुवण सुण ।
घोरिअ अवणागमण विहुन ॥

शाखि करिब जालन्धरिपाए ।
पाखि ण चाहइ[1] मोरि पाण्डिआचाए ॥

× × ×

सून-बाह तथता प्रहारि ।
मोहभण्डार लए सकल (।) आहारि ॥
सुतइ न देखइ स्वपरविभागा ।
सहज-निद्रालु काह्न नङ्गा ॥
चेतन न वेदन भरि निन्द गेला ।
सकल सुफल करि सुखे सुतला ॥
स्वपने मोहि देखल त्रिभुवन सून ।
घोरि आवागमन विहीन ॥
शाक्षि करब जालन्धरपादे ।
पक्षी न देखइ मोर पण्डिताचार्यें ॥

शून्यमायाक प्रवाहकेँ शिवता-धर्मसँ, विमर्शसँ, प्रहार कए काह्न समग्र मोहभण्डारकेँ लए कए खा' गेलाह । आइ कान्ह तुरीयानन्दमे विश्रान्त छथि, स्व-परक भेद देखितहिँ नहि छथि । सामरस्यमे डुबल समाधिस्थ रहैत छथि, मायाक आवरणसँ मुक्त [ नग्न ] रहैत छथि, आब चैतन्यक अवस्थामे छथि, कोनो वेदना नहि, गाढ़ तुरीयमे ध्यानमग्न छथि । प्रतीत होइत छन्हि जे आइ सभ साधना सुफल भेल आ सुखसँ महाशक्तिमे डुबल सुतल छथि, स्वप्नहुमे जँ देखैत छथि तँ शून्यमये शून्यस्वरूपे विश्व, विषयवासना स्वप्नहुमे नहि सतबैत छन्हि । आब आवागमन-प्रक्रिया वस्तुकेँ छोड़ि देल, ओ निस्सन नहि रहल, घमि गेल, ओहि बन्धनसँ विहीन भए गेल छथि । एहि अवस्थाकेँ ककरा बुझाओल जाए ? केवल जालन्धरपादकेँ साक्षी मानल जाए, जे बुझैत छथि, अन्य पण्डिताचार्य तँ एहि मार्गक पक्षपाती नहिए प्रतीत होइत छथि ।

११ ( ४० )

जो मणगोअर आलाजाला ।
आगम पोथी इष्टामाला ॥

१। चगीको। शास्त्री, सेन—राहब्र

भण कइसेँ सहज बोलवा[१] जाअ।
काअ वाक् चिअ जसु ण समाअ॥
आले गुरु उएसइ सीस।
वाक्पथातीत काहिब कीस॥
जेत इ[२] बोली तेत वि टाल[३]।
गुरु बोब से सीसा काल॥
भणइ काह्नु जिणरअण वि कइसा[४]।
कालेँ बोब संबोहिअ जइसा॥

× × ×

जे मनगोचर आला-जाला ( इन्द्रजाला )।
आगम-पोथी इष्टामाला॥
भन कइसे सहज बोलल जाए।
काय वाक् चित्त जसु न समाए॥
अलं गुरु उपदेशइ सीस ( शिष्य )।
वाक्पथातीत कहब काहि॥
जते ई बोली तते टाल-मटोल।
गुरु बौक से शिष्य बहिर॥
भनइ कान्हु जिनरतनो कइसन।
बहिर बौक संबोधित जइसन॥

जे किछु मनोगोचर तत्वसभ अछि, सभ मायाक इन्द्रजाल मात्र थिक, असत् थिक, तेँ आगमशास्त्रहुक सिद्धान्तसभ, देवी-देवतासभक विग्रहसभ, इष्टदेवीक जपमाला आदि सभ इन्द्रजाले थिक ( चित्त-शोधन-विकासक साधन मात्र थिक, अन्तिम सत्य नहि ) सहज सामरस्यानन्दकेँ शब्द द्वारा व्यक्त कोना कएल जाए ? कारण, ओहिमे तँ शरीरक, वाक् तत्त्वक वा चित्तक प्रवेशे नहि भए सकैत अछि [अवाङ्मनसगोचर ओ परम तत्त्व शिव-शक्ति तत्त्व थिक]। व्यर्थे

१। चगीको। शास्त्री—बोल वा २। चगीको। शास्त्री, सेन—जे तइ
३। चगीको। शास्त्री—ते त विटाल
४। चगीको। शास्त्री—विकसइ सा

कोनो गुरु शिष्यकेँ उपदेश द्वारा हृदयङ्गम करेबाक प्रयास करैत छथि, वाक् माध्यमसँ उत्तर, अतीत परम तत्त्व ककरा कहल जाए? जे किछु कहल जाइत अछि से सभ प्रश्नसभक समाधानक क्रममे टालमटोल करब मात्र थिक, उपयुक्त उत्तर अनुभवमात्रैकगम्य थिक। गुरु जखन ओहि परम सत्ताक वास्तविक परिचय दैत छथि तखन हुनका मूके बनए पड़ैत छन्हि (उत्तरमे 'नेति नेति' कहए पड़ैत छन्हि, परिणाममे चुप ), शिष्य जँ सत् शिष्य रहैत छथि तँ कथित शब्दसभकेँ अनसुनी कए केवल सारक अनुभवमे डूबि जाइत छथि। कान्हक धारणा तँ इएह छैन्हि जे ओ स्वर्गरत्न (परमसुखक अवस्था) केहन थिक से कहब तहिना संभव आ' प्रभावशाली जेना सङ्केतमात्र द्वारा, बौकक द्वारा, बहिर केँ बुझाओल जाएब।

१२ ( ४२ )

चिअ सहजे शूण संपुन्ना।
कान्धवियोएँ मा होहि विसन्ना॥
भण कइसे काहु नाहि।
फरइ अनुदिनँ[1] तैलोए पमाइ॥
मूढ़ा दिठ नाठ देखि काअर।
भाग तरङ्ग कि सोषइ साअर॥
मूढ़ा अच्छन्ते लोअ न पेखइ।
दूध माझेँ लड़ अच्छन्ते न देखइ॥
भव जाइ ण आवइ एथू कोइ।
अइस[2] भावे विलसइ काह्निल जोइ॥

× × ×

चित्त सहजे शून सम्पूर्णा।
कान्ह वियोगेँ न हो विषण्णा॥
भन कइसे कान्हु नाहि।
फरइ अनुदिन त्रैलोक्ये प्रमापि॥

१। चगीको। शास्त्री—अनुदिन। २। चगीको। शास्त्री, सेन—आइस।

मूढ़ ( ा ) दृष्ट नष्ट देखि कातर।
भग्न तरङ्ग की सोखइ सागर?
मूढ़ अछैते लोक न पेखइ।
दूध माझे नेनु अछैते न देखइ॥
भव जाइ न आवइ ( न ) एत काइ।
अइसन भावेँ विलसइ काह्निल योगि॥

आब काह्न सहजावस्थामे शून्यस्वरूपिणी महाशक्तिमे डुबल छथि, पूर्ण बनि गेल छथि, मुक्त छथि, चित्तक विषयी व्यापारक दृष्टिएँ मरिए गेल छथि ( प्राण रहितहुँ जीवन्मुक्त छथि ), आब काह्न व्यक्तिरूपमे ( विषयासक्तरूपमे ) नहि भेटताह, हुनक वियोग अनुभूत होएत, किन्तु विषाद नहि करू, ई किएक बजैत छी जे काह्न नहि छथि, काह्न छथि ( हँ, जीवन्मुक्त छथि ) ओ तँ अनुदिन त्रैलोक्यक प्रमाता शिवरूप बनि चिद्रूपमे स्फुरित होइत छथि, सफल होइत छथि, मूढ़ व्यक्ति सकल दृष्ट वस्तुकेँ नष्ट होइत देखि कातर भए जाइत अछि, ई नहि बुझैत अछि जे एक तरङ्ग भग्न भेलासँ की सागर सुखा जाएत ? मूढ़, अछैते लोक ( सूक्ष्म लोक ) ओकरा देखैत नहि अछि, दूधमे मक्खन अछैते ओकरा देखैत नहि अछि ( अर्थात् समस्त पदार्थक सारभूत शक्तिकेँ, ओकर निकट रहितहुँ, ओकर अस्तित्व रहितहुँ, चिन्हैत नहि अछि )। भवसँ केओ जाइत नहि अछि आ' ने केओ एतए अबैत अछि ( केवल मायाक कारणेँ जन्म-मृत्युक सीमाबोध होइत अछि ), एहन भावसँ काह्नयोगी सामरस्य-सुख-विलास करैत छथि ( ओ आइ नित्या परमा सत्तासँ परिचित छथि आ' ओहि सत्ताक आभास मायाकेँ मानैत छथि, तेँ जन्म-मृत्यु वस्तु निरर्थक बूझि पड़ैत छन्हि, आत्माक अविनाशित्व रहबाक कारणेँ ओकर अएबा-जेबाक प्रश्ने उठाएब अनुचित )।

१३ ( ४५ )

मण तरु पाञ्च इन्दि तसु साहा।
आसा बहल पात फलवाहा॥
वरगुरुवअणकुठारेँ छिजअ।
काह्न भणइ तरु पुण न उइजअ॥

बाढ़इ सो तरु सुभासुभ पाणी ।
छेवइ विदुजन गुरु परिमाणी ॥
जो तरु छेव भेवउ न जाणइ ।
सड़ि पड़िआँ रे मूढ़ ता भव माणइ ॥
सुण तरुवर गअण कुठार ।
छेवह सो तरु मूल न डार[१] ॥

× × ×

मन तरु पाँच इन्द्रिय तसु शाखा ।
आशा बहल पात फलवाहा ( क ) ॥
वरगुरुवचनकुठारें छेवह ।
कान्ह भनइ तरु पुनि नहि उपजए ॥
बाढ़इ से तरु शुभाशुभ पानी ।
छेवइ विद्वज्जन गुरु - प्रमाणी ॥
जे तरु छेव (ए), भेदो न जानइ ।
सड़ि पड़ए रे मूढ़ ता' भव भानइ ॥
सून तरुवर गगन कुठार ।
छेवह से तरु मूल, न डार ( रि ) ॥

पञ्च ज्ञानेन्द्रिय मनरूपी वृक्षक पाँच डारि थिक, ओहि शाखासभमे आशाक पातसभ लटकल रहैत अछि जे सभ फलवाहक मानल जाइत अछि। मोहेँ ( मोहक कारणेँ ) लोक शब्दस्पर्शादिगत सुखानुभवक प्राप्तिमे आशाकेँ लगओने रहैत अछि, सदिखन आशा करैत अछि जे अमुक फल भेटत एवमादि। आशामे घुरिआएल रहि लोक सत्यसँ दूर भए जाइत अछि, तेँ परम-सत्यक अनुसंधानक हेतु ओहि आशाक मूल मनोवृत्तहिकेँ काटह, श्रेष्ठ गुरु-वचन-कुठारसँ से कए सकबह। ओ गाछ शुभाशुभ (-उत्पादक पुण्य-पाप )क जलसिञ्चनसँ बढ़ैत अछि, शुभाशुभकर्मसँ चित्तक विषय-वासना बढ़ैत जाइत अछि, गुरुप्रमाणसँ विद्वज्जन एहि वासनानुरक्त चित्तवृत्तकेँ कटैत छथि।

१। चर्गीको। शास्त्री, सेन—डाल।

जे व्यक्ति एहि वृक्षक छेद-भेद करए नहि जनैत छथि से ता' धरि जगज्जालमे विश्वास करैत सड़ि जाइत छथि। सुतरां अविद्यारूप, मायारूप ओहि शून्य-तरुकेँ विद्यारूप ( विमर्शरूप ) गगन-कुठारसँ काटह, शून्य-मायाक आवरण-विक्षेपरूप वृक्षकेँ महामायाक शून्याहन्ताविमर्श-कुठारसँ काटह, जड़िसँ काटह, केवल शाखासभकेँ नहि काटह।

## विरुवापाद

### १ ( ३ )

एक से शुण्डिनि[1] दुइ घरे सान्धअ।
चीअण वाकलअ वारुणी बान्धअ॥
सहजे थिर करि वारुणी सान्ध।
जेँ अजरामर होइ दिढ़ कान्ध॥
दशमि दुआरत चिह्न देखिआ[2]।
आइल गराहक अपणे बहिआ॥
चउशटि घड़िये देल पसारा।
पइठेल गराहक नाहि निसारा॥
एक से घड़ली[3] सरुइ नाल।
भणन्ति विरुआ थिर करि चाल॥

× × ×

एक से शुण्डिनो दुइ घर मिलबए।
चिक्कन बाकलेँ वारुणी बान्हए॥
सहजे थिर करि वारुणी मिलबह।
जेँ अजरामर होइ दीढ़ कान्ह ( स्कन्ध )॥
दशमि दुआरिएँ चिह्न देखिकेँ।
आएल ग्राहक अपने बहिकेँ॥

---

१। सेन—शुण्डिनिणी। २। सेन—देखइआ। ३। चगीको, सेन—घड़ली।

चौँसठि घड़िएँ देल पसार।
पइसल ग्राहक नाहि निःसार॥
एक से घटी, सूक्ष्म नाल।
भनथि विरुवा थिर करि चाल ( ६ )॥

एक ओ शुण्डिनी, शौण्डीशक्ति वा कुण्डलिनी-शक्ति दुइ घरकेँ वा सूर्य-चन्द्र नाड़ी केँ मिलबैत अछि, विवाह द्वारा वा सुषुम्नामे ऊठि; चिक्कन वस्त्र-ब्रह्मनाड़ी (सुषुम्नास्था) वा गुरूपदेशसँ वारुणी (सहस्रारस्थ मधु) केँ बन्हैत अछि। सहजभाव वा सामरस्य-भावकेँ स्थिर कए ओहि चित्तकेँ परमशिवलीन करह। किएक? ओहिसँ तोँ अजर-अमर भए जएबह, दृढ़स्कन्ध भए जएबह। हे कांन्हक आत्मन्! दशम दुआरिएँ [ वैरोचनद्वारसँ ( सं० टी० ) वा दशम इन्द्रिय उपस्थचिह्नद्वारेँ ][४] महाराग-सुख-चिह्न देखि ओ ग्राहक (कामसत्त्व) बाहर आएल आ' अपनाकेँ दिवारात्र प्रसरित रखलक, ओहि सामरस्य-सुख ( वा स्त्री-चिह्न )मे प्रविष्ट भए पुनः निःसृत नहि भेल। ओ जे पूर्वोक्त तत्त्वज्ञानकेँ घटित केनिहारि नाड़ी, तकर नाल सूक्ष्म (ज्ञानमय)। विरुवापाद कहथि—ओहि चित्त वा प्राणकेँ निस्तरङ्ग रूपमे, प्रशान्तरूपमे चलाबह। (एहिठाम मैथुनक प्रतीक अछि)।

## महीधरपाद

१ ( १६ )

तिनिएँ पाटेँ लागेलि रे अणह कसण घण गाजइ।
ता सुनि मार भयङ्कर रे विसअमण्डल सअल भाजइ॥
मातेल चीअगएन्दा धावइ।
निरन्तर गअणन्त तुसेँ घोलइ॥
पाप पुण्ण बेणि तोड़िअ सिकल मोड़िअ खम्भाठाणा।
गअणटाकलि लागि रे चित्त पइठ निवाणा॥

४। 'सिद्धसाहित्य' ( पृ० २११ )मे मूलाधार तथा शुक्रवैरोचनक उल्लेख; दोसर, ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय ( ५-५ ) क गणनामे दशम अछि 'उपस्थ'।

महारसपाने मातेल रे तिहुअन सएल उएखी।
पञ्चविसअनायक[1] रे विपख[2] कोवि न देखी[3]॥
खररविकिरणसन्तापेँ रे गअणाङ्गण गइ पइठा।
भणन्ति महित्ता मइ एथु बुड़न्ते किम्पि न दिठा॥

× × ×

तीनिएँ पाटेँ लागल रे! अनहद-कर्षण घन गर्जइ।
से सुनि मार भयङ्कर रे! विषय-मण्डल सकल भञ्जइ॥
मातल चित्त-गजेन्द्रा धाबइ।
निरन्तर गगनान्त तुषेँ घोरइ॥
पाप पुण्य दुइ तोड़ि साकड़ मोड़ि खम्भाथाना ( स्थाना )।
गगन अनहद लागि रे! चित्त पइस ( ल ) निर्वाणा॥
महारसपाने मातल रे! त्रिभुवन सकल उपेखि।
पञ्चविषयनायक रे! बिपक्ष काहु ने देखि॥
खर रवि-किरण-सन्तापे रे! गगनाङ्गन गइ ( जा ) पैसा।
भनथि महित्ता मोहि डुबैते किमपि ( किछु ) न दृष्टा॥

काय-वाक्-चित्त एहि तीनू पट्टमे लागल अनाहत घनघोर गर्जन करैत अछि, से सूनि भयङ्कर विषय-वासनादिरूप मार ( काम ) टूटि जाइत अछि। महीधरपादक चित्त-गजेन्द्र ज्ञानासवप्रमत्त भए दौड़ैत अछि, ऊपर उठैत अछि, सहस्रारस्थ शून्य-गगनकेँ सकल विकल्परूप चोकड़क सङ्ग घुसबैत ( वा विकल्प घोरैत )[4] अछि अर्थात् शून्यगगनरूप जाँतमे सकल विकल्पकेँ पीसैत अछि। पाप-पुण्य दूनू सीकड़केँ तोड़ि, अविद्यास्तम्भकेँ मोड़ि ( ममोड़ि ) शून्यगगनक अनाहतध्वनि ( टाकलि[5] )मे लीन भए चित्त मुक्तिमे, सामरस्य-समाधिमे, पैसि गेल। ओहि समाधिक सुखसँ उन्मत्त पञ्चविषय ( शब्दस्पर्शादिक अनुभव )क विजेता चित्त सकल त्रिभुवनक ( भोगक ) उपेक्षा करैत अछि आ' आब ओकरा

---

१। सेन—पञ्च विषयरे नायक २। चगीको —विपथ ३। चगीको। शास्त्री—देखि

४। मैथिलीक 'घोरब' ( एहिठाम चोकड़क सङ्ग घोरब ) प्राप्त रहितहुँ चगीको (एहि गीत)क पा० टि० सँ 'घूर्ण' तेँ दूनू अर्थ देल।

५। तुलनीय आसामीक 'टकालि' शब्द 'a clicking noise'—चगीको (पा० टि०) द्रष्टव्य

हेतु विपन्नताक, प्रतिकूलताक, कोनो प्रश्ने नहि अछि। सभकें अनुकूले देखैत अछि। आब ओ चित्त कुण्डलिनी-योगक द्वारा सामरस्यक प्रखर ज्ञानरवि-किरणक आलोक पाबि शून्य गगनाङ्गनमे जा' पैसल। महीधर कहैत छथि, आब ओहि शून्यमे, चिन्मयीमे, डुबल हम किछु नहि देखैत छी।

## भादेपाद

१ ( ३५ )

एत काल हाँउ अच्छिलोँ स्वमोहेँ।
एवेँ मइ बुझिल सद्गुरुबोहेँ॥
एवेँ चिअराअ मोकु[1] णठा।
गअणसमुदे टलिआ पइठा॥
पेखमि दह दिह सव्वंइ शून।
चिअ विहुन्ने पाप न पुन्न॥
बाजुले दिल मो लक्ख भणिआ।
मइ अहारिल गअणत पसिआ॥
भादे भणइ अभागे लइला[2]।
चिअराअ मइ अहार कएला॥

× × ×

एत काल हम छलौं स्वमोहें।
अबे हम बुझल सद्गुरुबोधें॥
अबे चित्तराज मोर नष्ट [ा]।
गगन-समुद्रे टरि [जा] पैस [ा]॥
पेखी दश दिश सबइ शून्य।
चित्त-विहीने पाप न पुण्य॥
वज्रिल देल मोहे लक्ष्य भनि।
मोजे आहारल गगने पसि॥
भादे भनइ अभागे लेला।
चित्तराज मोहि आहार कएला॥

---

१। चगीको। शास्त्री, सेन—मकुँ २। चगीको। शास्त्री, सेन—लइआ

एतेक काल हम मोहक सङ्ग छलहुँ, आब हमरा सद्गुरुप्रदत्त ज्ञानसँ बुझबामे आबि गेल। आब हमर कुचित्त नष्ट भए गेल, शून्यगगनमे टरि कए चल गेल, पैसि गेल। आब सभ दिशि शून्ये शून्य प्रतीत होइत अछि। आब चित्तक व्यापार रुकि गेल, वासना नष्ट भए गेल, स्वतः पाप-पुण्यक प्रश्ने नहि अछि। वज्रकुल वा कौल सम्प्रदाय हमरा लक्ष्य बुझाए देलक, विषयसभकेँ छोड़ि हम सहस्रारस्थ शून्यमे पैसि अमृत आहार ( भोग ) कएल। भादेपाद कहैत छथि—आब हम अविभाज्य परमाणुकेँ आत्मसात् कए लेने छी, आब हम चित्राजहिकेँ आत्मस्थ कए लेने छी।

## धामपाद

१ ( ४७ )

कमल कुलिश माझेँ भइअ मिअली।
समताजोएँ जलिल[1] चण्डाली॥
डाह डोम्बीघरे लागेलि आगि[ णी ][2]।
ससहर लइ सिञ्चहुँ पाणी॥
न उ खरजाला धूम[3] न दिशइ।
मेरुशिखर लइ गअण पइसइ॥
दाढ़इ हरि हर बाह्म भड़ा।
फीटा हइ नवगुण शासन पड़ा॥
भणइ धाम फुड़ लेहु रे जाणी।
पञ्च नालेँ उठे गेल पाणी॥

× × ×

कमल कुलिश माझे भए मिलली।
समतायोगेँ ( प )जरल चण्डाली॥

---

१। चगीको। शास्त्री, सेन—जलिअ २। चगीको। शास्त्री, सेन—आगि
३। चगीको। शास्त्री—धुम

डाँह डोम्बीघरे लागलि आँग ( नी ) ।
शशधर लइ ( ए ) सीँचह पानी ॥
न ओ खरज्वाला धूम न देख ( ा )इ ।
मेरुशिखर लइ ( ए ) गगन पइसइ ॥
डाहइ हरि-हर ब्राह्म ( ब्रह्म ) भट्टा ।
फाटल होइ नवगुण शासन पट्टा ॥
भनइ धाम स्फुट लेहु रे ! जानी ( नि ) ।
पञ्चनालेँ उठि गेल पानी ( नि ) ॥

कमल कुलिशसँ तन्मध्यमे संयुक्त भेल अर्थात् शरीरस्था शक्ति शिवक मध्यबिन्दुमे ( ताहि परमतत्त्वक सङ्ग ) संयुक्त भेलीह ( कमल योनिक प्रतीक आ' कुलिश लिङ्गक प्रतीक, योनि लिङ्गक मध्य भागमे संयुक्त भेल, किन्तु योनि-लिङ्ग कुण्डलिनी-स्वयम्भूलिङ्ग अर्थात् शक्तिशिवक स्थूल सङ्केत मात्र अछि )। एहि (कुण्डलिनी-) योग द्वारा चण्डालीक, अर्थात् कुण्डलिनीशक्तिक तेजोमय शरीर जाग्रत भए गेल। हुनक निवास, अन्तःस्थ अङ्गुष्ठप्रमाण मात्र पाञ्चभौतिक शरीर, ओहि ( कुण्डलिनीक ) तेजसँ विनष्ट भए गेल, वासनादिक दृष्टिएँ। ओकर प्रखर ज्वाला शान्त कोना भेल ? शरीरस्थ चन्द्रमण्डलक शीतल अमृतसँ। आब ओ ज्वाला प्रखर नहि रहल, कालिम विकारक लेश धूमो नहि नयनगोचर रहल'- मेरुशिखरक आश्रित भएकेँ ओ प्राणशक्ति शून्यगगनमे प्रविष्ट भए गेलीह ( आ' पुनः गगनस्वरूप महाशक्तिस्वरूप धारण कए लेलन्हि )। आब तँ ओहि शक्तिक तेजसँ हरि-हर-ब्रह्मा, सभ विग्रहवान् देवतागण ( वा मूत्रशुक्रविष्ठानाड़ी ), दग्ध भए गेल छथि [ भेदभाव जाइत रहल, एक मात्र तत्त्व बँचि गेल परमशिव ( शिव-शक्ति, परस्पराश्लिष्ट आ' परस्पराभिन्न ) ] नवपवनरूप नवगुणक एवं इन्द्रियशासनक पट्ट फाटि गेल । धाम कहैत छथि—हे योगिन् ! स्फुट ( रूपमे ) जानि लएह, उक्त पाँचो तत्त्व वा व्यक्ति, हरिहरब्रह्मा ( वा मूत्रशुक्रविष्ठानाड़ी ), पवन आ' इन्द्रिय पाँच नाल ( नहरि, द्वारा )क काज कएलक, जकर सहायतासँ अद्वैतक शीतलभावना-जल, सामरस्यक शीतल आह्लाद दैत, प्रवाहित भेल। ई सभ हरिहरादि तत्त्व प्रारम्भमे सहायक भेल, द्वारा भेल, किन्तु परिणाममे शक्ति संयुत शिवतत्त्वक आ' पुनः तद्रूपत्व-अभेदक वा सामरस्यक अनुभव शीतल आनन्द देलक। सएह अभिप्राय।

## वीणापाद

१ ( १७ )

सुज लाउ ससि लागेलि तान्ती ।
अणहा दाण्डी एकि[1] किअत अवधूती ॥
बाजइ अलो सहि हेरुअवीणा ।
सुनतान्तिधनि विलसइ रुणा ॥
आलि कालि बेणि सारि सुणिआ[2] ।
गअवर समरस सान्धि गुणिआ ॥
जबेँ करहा करहकलेँ[3] चापिउ ।
बतिश तान्तिधनि सअल विआपिउ ॥
नाचन्ति बाजिल गान्ति देवी ।
बुद्धनाटक[4] विसमा होइ ॥

× × ×

सूर्य लौका शशि लागलि तन्त्री ।
अनहत दण्डी एकीकृत अवधूती ॥
बाजइ अरे ! सखि ! हेरुकवीणा ।
सून-ताँतिध्वनि [धनि ]विलसइ रुणा ॥
आलि कालि दुइ सा रि सूनि ।
गजवर समरस सन्धि गूनि ॥
जबे करभा करभकले चापल ।
बतिस तान्ति-ध्वनि सकल विआपल ॥
नाचैत वज्रिल गबैत देवी ।
बुद्ध - नाटक विश्राम होइ ॥

सूर्यमण्डलक आभासरूप लौका ( तुम्बा ) हमर वीणा ( अन्तःसुखमय ज्ञानमयसंगीतक अभिव्यञ्जक नाड़ी-चक्र)क चन्द्राभासरूप तन्त्रीमे लागल अछि।

---

१ । सेन—वाकि २ । सेन—सुणेआ

३ । चगोको । शास्त्री, सेन—करहकले

४ । चगोको । शास्त्री—बुद्ध नाटक

अनाहत-वीणादण्डमे समस्त वासनाकेँ सुषुम्नाद्वारा लीन ( लय ) कए देल। आब हे सखि ! महामुद्रे ! हेरुकक वा शिवक वीणा बाजि रहल अछि, आ हम, वीणाधारी वीणापाद, शिवत्व प्राप्त कएल आ' हमर सामरस्यमय संगीतकेँ गुञ्जित करैत ई देह-चक्र नादहीन अछि। शून्य-तन्त्रीध्वनि रुणु-रुणु शब्द-विलास, वाक्-विलास, करैत अछि। अलि-कालि, स्वरव्यञ्जन वर्णमे सा रि ध्वनि सूनि, हमर चित्त-गजेन्द्र सामरस्यसन्धिक अनुभव कएल। तत्पश्चात जखन ओ गजवर सकल विषयरूप अन्य गजशिशुसभकेँ करभध्वंसक ( विषय-गण-शिशुध्वंसक ) ज्ञानप्रकाशसँ चापि देल, दमित कए देल, तखन समस्त बत्तीसहु नाड़ीरूप तन्त्रीमे नाद-ध्वनि व्याप्त भए गेल। आब वज्री, पुंचिह्नधारी शिवरूप साधक नाचि रहल छथि, हुनक अभिन्ना शक्ति गाबि रहल छथि ( सामरस्यभाव व्यञ्जक ध्वनि व्यक्त कए रहल छथि ) तथा बुद्धनाटक वा प्रबुद्ध शिवरूप साधकक आनन्दमयी लीला विश्रान्त भए रहल अछि।

## चाटिल्लपाद

### १ ( ५ )

भवणइ गहण गम्भीर वेगेँ वाही।
दुआन्ते चिखिल मञ्झे[१] न थाही॥
धामार्थे चाटिल साङ्कम गढ़इ।
पारगामि लोअ निभर तरइ॥
फाड्डिअ मोहतरु पाटि जोड़िअ।
अदअ दिढ़ टाङ्गी निवाणे कोहि [ ? ड़ि ]अ[२]॥
साङ्कमत चड़िले दाहिण बाम मा होही।
नियड़ि बोहि दूर मा जाही॥
जइ तुम्हे लोअ हे होइब पारगामी।
पुच्छतु चाटिल अनुत्तरसामी॥

× × ×

भवनदी गहन गम्भीर वेगेँ वाही।
दूनू अन्ते [ तीर ] पिच्छड़, माझे न थाही॥

१। चगीको। शास्त्री, सेन — माझे
२। चगीको। शास्त्री—कोरिअ। सेन—कोड़िअ

धर्मार्थे चाटिल बान्ह (पूल) गढ़इ ।
पारगामी लोक निर्भर तरइ ॥
फाड़ि मोहतरु पाट जोड़ि ।
अद्वय दृढ़ टेङारी निर्वाण कोड़ि ॥
बान्ह (पूल) चढ़ि दहिन वाम न होअइ ।
निअर बोधि दूर न जाइ ॥
यदि तोहें लोक हे! होएबइ पारगामी ।
पूछइ चाटिल अनुत्तर सामी [स्वामी] ॥

जगत् रूप नदी अथाह गम्भीर वेगसँ बहैत अछि, एकर दूनू तट, धर्म-अर्थ, पिच्छड़ अछि जाहिसँ एहि नदीमे उतरबे कठिन। मध्यमे जाइत जाइत तँ एहन विकट परिस्थिति आबि जाइत अछि जे थाह पाएब कठिन, कारण, विश्वक मध्यबिन्दु छथि रहस्यमय चिद्रूप। दूनू तटक, धर्म-अर्थक, समन्वयक हेतु चाटिल्लपाद एक पूल गढ़ैत छथि, ओ पूल थिक कौल साम्प्रदाय; एहि पूलपर चढि पारगामी लोकसभ निर्भर भए जगत्-नदीकेँ पार कए सकैत अछि। मोहतरुकेँ उपाड़ि, ओहि भवकेँ उदात्त शक्ति-अनुरागसँ आत्मसात् कए पट्ट (पीठस्थान)मे जोड़ि मिलाए लएह। अद्वय (शिवशक्ति-परस्पराश्लिष्ट परम अद्वितीय तत्त्व) रूप टेङाड़ीसँ मुक्तितरुक मूल कोड़ि निकालह, जाहिसँ आन्तरिक रहस्य ओकर बोधगम्य भए सकइ। कौलमार्गरूप पूलपर चढि दक्षिण-वाम उपचारक फेरिमे नहि पड़ह, निकटहिमे चित्-बोध प्राप्त होएतह, ओ छूटि नहि जाइ, अधिक दूर नहि चल जएबह। हे श्रोतृगण? जँ तोँ सभ पारगामी होअए चाहैत छह तँ अनुत्तर स्वामी (शिवतुल्य ईश) चाटिल्लपादकेँ पूछह।

## कम्बलाम्बरपाद

१ (८)

सोने भरिती करुणा नावी।
रूपा थोइ नाहिक[1] ठावी ॥

---

१। सेन—महि के

बाह्तु कामलि गअण उवेसेँ ।
गेला[२] जाम बाहुड़इ[३] कइसेँ ॥
खुण्टि उपाड़ी मेलिलि काच्छि ।
बाह्तु कामलि सद्गुरु पुच्छि ॥
माङ्गत चड्हिले चउदिस[४] चाहअ ।
केड़ुआल नाहि के कि[५] बाहबके पारअ ॥
वाम दाहिण चापी मिलि मिलि माङ्गा ।
बाटत मिलिल महासुहसाङ्गा ॥

× × ×

सोनेँ भरती करुणा नाव ।
रूपा थापए नाहक [ नहि अछि ] ठाम ॥
खेबह कम्बल [ कामालि ] गगन-उदेशेँ ।
गेल जन्म बहुरइ कइसेँ ॥
खुट्टा उपाड़ि खोलल डोरी ।
खेबह कम्बल [ कामालि ] सद्गुरु पूछि ॥
माङि [ वा मार्ग ][६] [ पर ] चढ़ने चहुदिस ताकए ।
करुआरि नाहि कैं की खेबा कऽ पारए ॥
बाम-दाहिन चापि मिलि मिलि माङि [ मार्ग ] ।
बाटे मिलल महासुख सङ्ग ॥

करुणामय वा शिवमय चित्त-नौका हमर शून्य-स्वर्णसँ ( स्वर्णसदृश चकमक शून्यताविमर्शसँ ) जड़ल अछि, भरल अछि, ओहिमे रूपसंवेदना वा रूप-धातु रखबाक स्थान नहि, अवकाश नहि, अथवा नाहक ओहिपर रूप-वेदनादिक स्थापन। हे कम्बल ! वा हे कामालि ! शून्यस्वरूपिणीक प्राप्तिक हेतु करुण-चित्त-नौकाकेँ खेबि चलह, ई विश्वास राखह जे एहि पारगमनसँ जे जीवन बीति जएतह से कथमपि पुनः नहि आबि सकैत छह, निश्चित तोँ मुक्त भए जएबह।

२। चगीको। शास्त्री, सेन—गेली ३। चगीको। शास्त्री—बहु उइ। सेन—बहुड्इ
४। चगीको। शास्त्री—चउ दिस ५। चगीको। शास्त्री, सेन—केँ कि
६। 'माङ्ग'कअर्थ मार्ग सं० टी० मे, 'माङि' [ नावक भागविशेष ] अधिक समीचीन।

ई चित्त-नौका जाहि आभास-दोषमे बान्हल छलह से दोष-खुट्टी आब उपड़ि गेलह, जाहि अविद्याक डोरसँ बान्हल छलह से आब ढील भए गेलह, तखन हे कम्बल ! [ कामालि ! ] तोरा चित्त-नौका-वाहनमे कठिनता किएक होएतह ? सद्गुरुकेँ पूछि खेबि चलह। सामान्यतया लोक एहि नौकाक माङ्गिपर [ वा मार्गपर ] चढ़ि भीत भए चारूकात आश्रय तकैत रहैत अछि। करुआरि [ गुरु-पदेश, दैवी-कृपा ] नहि रहलासँ के कोना पार कए सकैत अछि ? तेँ गुरुक आश्रयसे, गुरु-देवताक निर्देशकृपासँ चित्त-नौकाकेँ जीवन-नदीमे वा प्राण-वाहमे आगाँ बढ़बह [ चित्तकेँ विकसित कए चितिरूपमे परिणत करह ]। एहि स्वनिर्दिष्ट शङ्का-विचारक क्रममे कम्बलाम्बरपाद स्वयं कहैत छथि—उक्त विषय-सभकेँ ध्यानमे राखि हम आगाँ बढ़लहुँ, वामदक्षिण मार्गसभकेँ दबाए अपन कौलसाधनाक अनुसरण कए नौका-माङ्कि वा मार्गक अवलम्बन कएल, बढ़ैत बढ़ैत अनायास बाटहिमे महासुख [ -प्रदात्री शक्ति वा सामरस्य-भाव ] सङ्ग भए गेल।

## ढेण्ढणपाद

१ ( ३३ )

टालत मोर घर नाहि पड़वेशी[1]।
हाड़ीत भात नाहि निति आवेशी ॥
वेङ्गस साप[2] बड़हिल जाअ।
दुहिल दुधु कि बेण्टे समाअ[3] ॥
बलद बिआएल गविआ बाँझे।
पिटा दुहिअइ ए[4] तिना साँझे ॥
जो सो बुधी सोध निबुधी।
जो सो[5] चौर सोइ साधी ॥
निते निते सिआला सिहे सम[6] जुझअ।
ढेण्ढणपाएर गीत विरले[7] बुझअ ॥

× × ×

१। चगीको। शास्त्री, सेन—पड़वेषी २। चगीको। शास्त्री—वेङ्ग संसार। सेन—वेग संसर
३। चगीको। शास्त्री—षामाअ ४। चगीको। शास्त्री, सेन—दुहिए ए
५। चगीको। शास्त्री, सेन—षो ६। चगीको। शास्त्री, सेन—षिआला षिहे षम
७। चगीको। शास्त्री—विचरिले

नगरे[८] मोर घर नाहि प्रतिवेशी ।
हाँड़ मे भात नाहि नित आवेशो ॥
बेङ (बेग)सँ साप काटल जाए ।
दूहल दूध की (स्तन-, वृन्ते समाए ॥
बल्ल ड़)द बिआएल गैआ बाँझे ।
पीठा दुहल जाए ए! तीन साँझे ॥
जे से बुद्धि सेहे (शुद्ध) निर्बुद्धि ।
जे से चोर सेहे साधु (धि) ॥
नित नित शृगाला सिंहे सम जुझए ।
ढेण्ढणपादक गीत विरले बुझए ॥

उच्च नगर सहस्रार-मेरुशिखर हमर निवासस्थान; ओहिठाम अद्वैत परमशिवरूपमे हम एकसरे छी, केओ पड़ोसी नहि अछि। अढ़ियामे भात नहि, अर्थात् अपन शरीरमे ओझरएने परिपक्व, प्रबुद्ध, चित्त नहि, चित्त चितितादात्म्य प्राप्त नहि कए सकए, तेँ योगीन्द्रकेँ नित्य शून्यस्वरूपिणीक आवेश राखए पड़ैत छन्हि (अथवा चित्त नित्य विषयक आवेशमे डुबल रहैत अछि)। सापे बेङ्गसँ काटल जाइत अछि, अर्थात् चित्ते काय-वाक्सँ खण्डित (नष्ट) कएल जाइत अछि (अथवा व्यङ्ग शून्यरूपे जेना कुचित्त-सर्पसँ दष्ट हो, तहिना अद्भुत प्रतीत भए रहल अछि)। दूहल दूध पुनः स्तनाग्रमे कोना प्रवेश करए? अर्थात् योगीन्द्रक चित्त वा आत्मा पुनः अपन उद्गम शून्यमयी महामुद्रामे प्रविष्ट भए रहल अछि, ई आश्चर्यक गप्प। बलद प्रबुद्ध चित्त (बलद, बड़द रहितहुँ) ज्ञानरूप सन्तान प्रसूत कएलक आ' गाय बन्ध्ये रहल अर्थात् शून्य नैरात्माक प्रसवक प्रश्ने नहि। अरे! देखह तीनू साँझ शरीरस्थ पीठक दोहन करैत छी, शक्तिकेँ आकर्षण कए आत्मलीन करैत छी। एहि अवस्थामे बुझब, नहि बुझब दूनू एके रङ्ग। विषयरूप परद्रव्यापहारी चित्त-चोर आ' समाधिस्थ चित्त-साधु दूनू एके रङ्ग। आब ई साक्षात् अनुभव होइत अछि जे नित्य प्रतिनित्य सिआर सिंहसँ लड़ैत अछि अर्थात् संसरणशील चित्त सबल भए, स्थिर भए, अद्वयक, अद्वितीय परमशिवक प्रभुता, छिनए चाहैत अछि। ढेण्ढणपादक एहि गीतक आशय विरले बुझए।

---

८। टाल—नगर [बा०], चक्र [शास्त्री] प्रायः आलङ्कारिक।

## ताड़कपाद

१ ( ३७ )

अपणे नाहिँ सो[1] काहेरि शङ्का ।
ता महामुदेरी टुटि गेलि कङ्खा ॥
अनुभव सहज मा भोल रे जोइ ।
चौकोटिविमुका जइसो तइसो होइ ॥
जइसने अछिलेस[2] तइसन अच्छ ।
सहज पिथक जोइ भान्ति मा हो वास ॥
बाण्डकुरुण्ड सन्तारे जाणी ।
वाक्पथातीत काँहि वखाणी ॥
भणइ ताड़क एथू[3] नाहिँ अवकाश ।
जो बुझइ ता गलेँ गलपास ॥

× × ×

अपने नाहि तँ ककर शङ्का ।
से महामुद्रा, टुटि गेल कांक्षा ॥
अनुभव सहज न भूल रे योगि (न्) !
चौकोटि-विमुक्ता जइसे तइसे होइ ॥
जइसने छलह तइसन छह ।
सहज-पृथक् योगि (न्) भ्रान्ति न हो वास ॥
बटुआ—पौती सन्तारे जानी ।
वाक्पथातीत काहि बखानी ॥
भनइ ताड़क एत नहि अवकाश ।
जे बुझइ तसु गले गलपाश ॥

अपन ( शरीरक ) जखन शङ्का ( चित्तमे ) नहि तँ आन ककर चिन्ता ? ओ महामुद्रा तेहन छथि जे हमर सभ कामना चल गेल, आब हम हुनकहिमे

---

१। सेन-मो २। सेन। शास्त्री—अछिले स। चगीको—इछिलेसि
३। चगीको—एथु। सेन—एषु

लीन भए सन्तुष्ट छी। हे योगिन् ! सहज-सामरस्यक अनुभूतिकेँ बिसरह नहि, जेना तेना चतुष्कल विषय-भण्डारसँ, संचित कर्मकोपसँ, मुक्त भए जाह। ई बुझह जे तोहर आत्मा नित्य तत्त्व, सभ दिन एक रूप रहएवाला, छह। हे योगिन् ! एहि सहज कौलसाधनासँ धोखहुसँ फराक नहि होअह। भवसागर पार करबामे अपन पाथेय ( तत्त्वज्ञान ) दिशि ध्यान रखबह। कतेक कहिअह तोरा, अवाङ्मनोगोचर ककरा बुझाओल जाए ? एहि साधनाक रहस्यमे पैसबाक अवकाश सभक हेतु नहि, जे एकर मर्म बुझत तकर गरमे गर-फाँस पड़ि जाएत, तकरा हेतु ई संसार फाँसी जकाँ बन्धन प्रतीत होएत—ई ताड़कक कहब छन्हि।

## कङ्कणपाद

१ ( ४४ )

सुने सुन मिलिआ जबेँ।
सअल धाम उइआ तबेँ॥
आच्छहुँ चउखन (ण)[1] संबोही।
माझ निरोहेँ अणुअर बोही॥
बिन्दु णाद ण हिएँ पइठा।
आण चाहन्ते आण विणठा॥
जथा आइलेसि[2] तथा जान।
माझे[3] थाकी सअल विहाण॥
भणइ कङ्कण कलअल सादेँ।
सर्व्व विचुरिल तथतानादेँ॥

× × ×

सूने सून मिलित [ । ] जबे।
सकल धाम उदित [ । ] तबे॥

---

१। चगीको, सेन। शास्त्री—आछहुँ चउ खण

२। चगीको। शास्त्री, सेन—जथाँ आइलेँसि

३। चगीको। शास्त्री, सेन—मार्स (चँ)

छी [ हम ] चउखन संबोधी ।
माझ - निरोधेँ अनुत्तर बोधी ॥
बिन्दु नाद न हिये पइसा ।
आन देखैते आन विनष्टा ॥
यथा अएलह तथा जान [ गमन ] ।
माझे रहि सकल विहान [ विजहीहि ] ॥
[ माझे बसइ सकल विहान ( प्रभात ) ] ॥
भनइ कङ्कण कलकल - शब्देँ ।
सब विचूरल तथता - नादेँ ॥

शरीरस्थ शून्य जखन ब्रह्माण्ड–शून्यमे मिलित भए गेल, तखन सकल अनुत्तर धर्म उदित भए गेल। हम सर्वदा संबोधिमे, तुरीयमे लीन रहैत छी, मध्य–निरोधसँ, मध्यविकास भेलापर, हम परम–शिवरूप बनि गेल छी। बिन्दु–नाद हृदयङ्गम नहि, तेँ व्यर्थ बूझि पड़ैत अछि। एक दिशि ध्यान गेलासँ दोसर दिशि नष्ट भए जाइत अछि ( नाद–बिन्दु दिशि गेलासँ समाधिए टूटि जाइत अछि )। जहिना अएलह ( आत्मरूपमे ) तहिना चल जएबह। मध्यमे, शक्तिकेन्द्रमे, चित्त रखला पर आब अन्य तत्त्वकेँ छोड़ह अथवा ई बुझह जे मध्यसमाधिसँ सगरो प्रभातकालीन प्रकाश प्रतीत होएतह। कङ्कणपाद कहैत छथि—तथतानादसँ ( शिवक 'तत्'–रूपतानादसँ[४], विमर्श–शक्तिस्वभाव–नादसँ ) सभ विचूर्ण भए गेल, अविद्याक समस्त सृष्टि समाप्त भए गेल।

## जयनन्दीपाद

१ ( ४६ )

पेखु सुअणे अदशे जइसा।
अन्तराले मोह तइसा॥
मोहविमुक्का जइ मणा।
तबेँ तुटइ अवणागमणा॥

---

४। "—— in the form of the 'thatness' (tathata of all entities or as pure consciousnes;."—A. I. T. B.—P. 18
संग-संग, 'सोहं' नाद—विमर्शनाद अभिप्रेत ( द्रष्टव्य पाछाँ विमर्श-लक्षण )।

न उ दाढ़इ न उ तिमइ न च्छिजइ ।
पेख लोअ मोहे बलि बलि बाझइ ॥
छाआ माआ काअ समाणा ।
बेणि पाखेँ सोइ विणाणा[1] ॥
चिअ तथतास्वभावे षोहइ ।
भणइ जअनन्दि फुड़ण ण होइ ॥

× × ×

पेखु सपने अादर्शे जइसा ।
अन्तराले मोह तइसा ॥
मोहविमुक्ता यदि मना ।
तबे टुटइ आवागमना ॥
ने ओ जरए ने ओ भीजए ने छेदल जाए ।
पेख लोक मोहेँ बलि बलि बाझए ॥
छाया माया काय समाना ।
दुइ पक्षे सोइ विज्ञाना ॥
[ दुइ पक्षे सएह नाना[2] ] ॥
चित्त तथतास्वभावे सोहइ ।
भनइ जयनन्दि स्फुरण न होइ ॥

देखह, स्वप्न वा दर्पणमे जेना तहिना चित्तक अन्तरालमे भ्रमात्मक मोह, स्वप्नमे वा दर्पणमे यथार्थ–प्रतिविम्बमात्र अयथार्थ आपाततः सत्य प्रतीत होइत अछि, तहिना प्रतीत विश्वक मोह अछि। जँ मन मोह-मुक्त भए जएतह तँ जन्म–मृत्यु–बन्धन टूटि जेतह। आत्मा शिवरूप अजर अछि, जलप्रवेशयोग्य नहि अछि, अछेद्य अछि, किन्तु लोक मोहसँ ओकर स्वरूप नहि चिन्हैत अछि आ' विषयवासनाक मोहसँ अपनाकेँ नष्ट कए ओहिमे ओझराए जाइत अछि। छाया [ शिवक, प्रकाशक आभासमयी शक्ति ], माया [ बन्धनग्रस्त करए बाली ] आ' काया तीनूमे वस्तुतः तादात्म्ये अछि, केवल आपाततः भिन्नता प्रतीत होइत

१। चगीको—वि णाणा
२। द्रष्टव्य पूर्व पा० टि०।

अछि । वाम–दक्षिण दुहू मार्ग परिणाममे एही विज्ञानपर जाइत अछि [ अथवा दूनू मार्गक अनुसार तीनू एकहि परमशिवक नाना रूप अछि[३] ]। जयनन्दीपाद कहैत छथि—हमर चित्त आब तथतास्वभावक सङ्ग, परम शिवतास्वभावक अर्थात् विमर्शशक्तिक[४] सङ्ग शोभित अछि, अहन्ताक एहि स्थितिमे किछु फूरि नहि रहल अछि, 'नेति नेति'क मूकास्वाद होइत अछि ।

## तन्त्रीपाद

### १ ( २५ )[१]

धर्मोदयः पादाधिष्ठानं वज्रपदं नादः ।
पञ्चक्रमं वयित्वा तन्त्रिणः पटो विमलः ॥१॥
अहमेव तन्त्री स्वयमेव तानं ।
वितानं [च] स्वयमज्ञातलक्षणं ॥ध्रु०॥
सार्धत्रिहस्तं गृहे वेमयुक्तं त्रिवृतं ।
गगनं पूर्णं स हि तन्त्रवयनं ॥२॥
अनाहतो वेमवरशब्दो हि गुरूपदेशेनाविरहितं ।
द्वे स्थिती छित्त्वा सूत्राणि व्यावृत्य दृढं प्रसारितानि ॥३॥
मणि गतः शून्यतया लक्षणशून्यतासारं ।
वयन [ जाल ]रसस्तन्त्री मोहजालमुक्तः ॥४॥

× × ×

धर्मोदय पादाधिष्ठान, वज्रपद नाद ।
पञ्चक्रम बीनि तन्त्रीक पट विमल ॥
हमहि तन्त्री अपने तानी ।
भरनी स्वयं अज्ञातलक्षण ॥

---

३। छायामे कोष्ठान्तर्गत पाठक अनुसार, तें ओ द्रष्टव्य ।
४। विमर्शशक्तिकें शिव( प्रकाश )क स्वभाव मानल जाइत अछि—'प्रकाशश्च विमर्शस्वभावः'—पराप्रवेशिका पृ० १

१। "The Caryā and the Sanskrit Commentary ( save the last two verses ) are lost which are put here in Sanskrit retranslation from Tib. version appended at the end of this work."—चगीको (पृ० ८३) पा० टि०

साढ़े तीनिहाथक, गृहमे परतानमुक्त त्रिवृत्त ।
गगन पूर्ण, ओएह पट तन्त्रवयन [बीनब] ॥
अनाहत परतान—वरशब्द गुरुपदेश सँ अविरहित ।
दुइ [सूतक] बान्ह काटि, सूत घुमा दृढ़ पसारल ॥
मणिमे जाए शून्यता सङ लक्षण शून्यतासारमे ।
वयन [जाल] रस—तन्त्री मोहजालमुक्ता ॥

धर्मोदय भेल अर्थात् विमर्शस्वभावक स्फूर्त्ति भेल। नादक अनुसंधान-रूप वज्रपदक अर्थात् शिवपदक प्राप्ति भेल। गुरुक पञ्चक्रमोपदेशरूप सूतकेँ बीनि, तन्त्रीक पट विमल भए गेल अर्थात् चित्तपट विशुद्ध भए गेल, विकल्पहीन भए गेल। हम स्वयं जोलहा छी, तानी सेहो हमहि छी अर्थात् हमर आत्मा अछि तानसमान मूलरूप। भरनी जे शक्ति तनिक लक्षण अज्ञात अछि। एहि जगद्रूप घरमे ई साढ़े तीनि हाथक शरीर आब परतानसँ मुक्त अछि, एहिपर आब चित्तविशुद्धीकरणरूप बिनबाक प्रक्रियाक प्रयोजन नहि। आब ई शरीर अपन शरीरत्वके छोड़ि शून्यस्वरूप, पूर्णाहन्तास्वरूप, विमर्शस्यरूप पूर्णताकेँ प्राप्त कए गेल अछि। आब ओ चित्त जे एहि रूपकेँ प्राप्त कएने अछि सएह तँ थिक तन्त्रवयन अर्थात् सूतक बानि। हृदयस्थित अनाहतनादे तँ परतान [वेग]क शब्दविशेष थिक जे गुरूपदेशसँ कखनहुँ विरहित [फराक] नहि रहैत अछि। तानक आधार-भूत सूत जे खुट्टीमे बान्हल रहैत अछि, तहिना जे एहि शरीरस्थ प्राण तथा अपा-नक तन्तु वा इड़ा-पिङ्गलाक तन्तु, तकरा हम एहि दृष्टिएँ काटल जे वाम-दक्षिण श्वास-नाड़ीक गतिकेँ अवरुद्ध कए मध्यविकास कएल, सुषुम्नाख्या ब्रह्मनाड़ीक विकास भेल वा कुम्भक द्वारा वायु मध्यस्थितिमे अँटकि गेल। तत्पश्चात् कुण्ड-लिनीसूत्ररूप सूतकेँ विकसित कएल। मणिपूरचक्रमे शून्यताशक्तिक प्रतिरूप कुण्डलिनीमे, जनिक लक्षण नहि अछि ताहिशक्तिमे, मीलि वयनजालकरससँ [विमर्शमय स्वभावक अन्तरङ्ग चित्तकेँ बनएबाक जनित] सामरस्य-विभोर तन्त्री [जोलहा वा तन्त्रीपाद] आइ अन्य जालसँ, मोहजालसँ, विमुक्त भए गेल छथि।

## शान्तिपाद

१ ( १५ )

सअसम्वेअणसरुअविआरेँ अलक्ख लक्खण न जाइ।
जे जे उजूबाटे गेला अनाबाटा भइला सोइ॥

कुलें कुल मा होइ रे मूढ़ा उजूबाट संसारा।
बाल तिल[1] एकु बाकु ण भूलह राजपथ[2] कन्धारा ॥
मायामोहसमुदा रे अन्त न बुझसि थाहा।
अगे नाव न भेला दीसइ[3] भन्ति न पुच्छसि नाहा ॥
सुना पान्तर उह न दीसइ भान्ति न वाससि जान्ते।
एथ[4] अटमहासिद्धि सिझइ उजूबाट जाअन्ते ॥
बाम दाहिण दोबाटा च्छाड़ी शान्ति बुलथेउ संकेलिउ।
घाट न गुमा खड़ तड़ि ण होइ आखि बुजिअ बाट जाइउ ॥

× × ×

स्वसंवेदनस्वरूपविचारें अलक्ष्यलक्षण न जाइ।
जे जे सोझ बाटे गेला अनबाटा भेला सोइ ॥
कुले कुले न हाअह रे मूढ़ा ! सोझ बाट संसारा।
बाल ! तिल एक वाक् न भूलह राजपथ कनकधारा ॥
माया-मोह-समुद्रा रे ! अन्त न बूझसि थाहा।
अग्रे नाव ने भेला देखिअ, भ्रान्ति न पुछसि नाथा ॥
सुना प्रान्तर (पाँतर) ऊह न देखिअ, भ्रान्ति न बासह जैते।
एत अष्टमहासिद्ध सिझइ सोझबाट जैते ॥
बाम दहिन दो बाटा छाड़ शान्ति बूलथि संक्रीड़थि।
घाट न गुल्मा खड़-तर न होइ, आँखि बूनि बाट जाथि ॥

स्वसंवेदन (आत्मबोध) (आत्म-प्रत्यभिज्ञा)क स्वरूप विचार कएलास शान्तिपाद अलक्ष्यलक्षणयुक्त तत्त्व दिशि नहि जाइत छथि। जे जे योगी साधक एहि सरल मार्ग, कौलमार्गसँ गेल छथि, से सभ बिनु बाटक, बाटसँ मुक्त, भए गेलाह। एहि सम्प्रदायसँ ओहि सम्प्रदायमे, एना बदलि बदलि नहि चलह, एक सम्प्रदाय कौल सम्प्रदायकेँ, सोझ सम्प्रदायकेँ, एहि जगतमे पकड़ने रहह हे बालयोगिन् ! तिलो भरि ई वाक्य नहि बिसरह जे ई पथ राजपथ, स्वर्णपथ-सदृश पथ थिक। माया-मोहक समुद्रक अन्तमे कतहु थाह नहि भेटतह।

---

१। चगीको, सेन। शास्त्री—भिण २। चगीको, सेन। शास्त्री—राज पथ
३। चगीको। शास्त्री, सेन—दीसअ ४। चगीको। शास्त्री, सेन—एषा

एहि अगम्य समुद्रमे आगाँ नावो करुआरि नहि देखैत होएअह, तथापि तोँ भ्रान्त भए कोनहु गुरुअहुकेँ नहि पुछैत छहुन्ह। ओएह देखह, शून्य प्रान्तर (पाँतर) देखैत नहि छहक ? आगाँ बढ़ह, भ्रन्ति छोड़ह। कौल मार्गक, सरल पथक, अनुगामी भेने एहि संसारहिमे अष्टमहासिद्धिलाभ भए जेतह। वाम-दक्षिण, दूनू पथ, छोड़ि शान्ति विहार कए रहल छथि। एहि मार्गमे कतहु घाट, गुल्म, खढ़-तर आदि प्रतिबन्धक नहि (पतनक डर नहि), आँखि मूनि शान्ति-पाद जाए रहल छथि।

२ (२६)

तुला धुणि धुणि आँसु रे आँसु।
आँसु धुणि धुणि निरवर सेसु॥
तउ से हेरुअ[1] ण पाविअइ।
सान्ति भणइ किण स भाविअइ॥
तुला धुणि धुणि सुणे अहारिउ।
पुन लइआ[2] अपणा चटारिउ॥
बहल बढ[3] दुइ मार न दिशअ।
सान्ति भणइ बालाग न पइसअ॥
काज न कारण ज एहु जुगति।
सअसँवेअण बोलथि सान्ति॥

× × ×

तूर धूनि धूनि अंशु रे अंशु।
अंशु धूनि धूनि निरवयव शेष॥
तौओ हेरुक न पाबिअइ (प्राप्यते)।
शान्ति भनइ, की ओ भाविअइ (भाव्यते)॥
तूर धूनि धूनि सूने आहारल।
पुनि लए अपना (केँ) चाटल॥

---

१। चगीको। शास्त्री—तउसे हेरुअ। सेन—तउ षेहे रुअ
२। चगीको। शस्त्री—लइआँ। सेन—सइआँ
३। चगीको। शास्त्री—बट। सेन—बाट

बहल बढ़ल दुइ मार्ग न देखिअ।
शान्ति भनइ बालाग्र [ ो ][४] न पइसए॥
काज न कारण जे एहु जुगति।
स्वसंवेदन बोलथि शान्ति॥

तूर धूनि धूनि अंश –अंश कएल गेल अर्थात् शरीर, वाक्, चित्तक साधना करैत करैत बिन्दुरूपमे ओहिसभक अनुभूति होअए लागल, पुनः ओहि अंश–परमांशहुपर मनकेँ बैसबैत बैसबैत ओ निराकारपर केन्द्रित भए गेल, अंश–परमांश परिणाममे निराकारब्रह्ममे परिणत भए गेल। तथापि, शान्ति कहैत छथि, परम शिव ( हेरुक )क प्राप्ति नहि भए सकल, तेहन सन बूझि पड़ैत अछि, वस्तुतः हुनक स्वरूपक भावन होएबो कोना करए, ओ तँ भावित–भाव्य तत्त्वसँ अतीत छथि, शून्यरूपिणीमहतीशक्तिसँ संयुत तेजस् मात्र छथि। तेँ परम–शिवत्व प्राप्त करबाक हेतु हम शान्तिपाद ओहि शून्यमयी शक्तिकेँ आहृत कए आत्मसात् कए लेल, सएह तँ भेल आत्मामे विमर्श शक्ति, अहन्ताज्ञान, जगाएब। मुदा परिणाममे हमरा इहो अहन्ता नहि रहल; हम, शान्तिपाद, सभकेँ अन्तर्लीन कए लेल, स्वाद लए चाटि लेल। वाम–दक्षिण मार्ग, घन आ' बढ़ल–चढ़ल मार्ग, हमरा नहि देखि पड़ैत अछि, ओकर अनुसरण केनिहारसभकेँ तँ उक्त रहस्य ( शैव दर्शन ) केशाग्रो भरि ने पैसए। कार्य–कारण–सम्बन्धसँ विहीन जे ई युक्ति ( वा योग ) से तर्कगम्य नहि, स्वसंवेदन(स्वानुभूति)मात्रैकगम्य थिक, शान्तिक मत सएह छन्हि।



४। पूर्व द्र० गीत का० २

# पारिभाषिकशब्दानुक्रमणिका

एहि अनुक्रमणिकामे चर्यागीतमे आएल पारिभाषिक शब्दसभकेँ प्रकरणमे बैसाए, ताहिमे अक्षरानुक्रमेण राखि, शब्दक आगाँमे कोष्ठमे ताहि गीतक संकेत देल गेल अछि जाहिसँ ओ शब्द आएल अछि। स० आदि कविक नाम-संकेत अछि तथा १,२ आदि हुनक गीतक क्रमसंख्या अछि। स्वतः स०१क अर्थ भेल सरहपादक गीत संख्या १, एहि प्रकारेँ देखलासँ एहि पोथीमे गीत तथा ओ पारिभाषिक शब्द भेटि जाएत।

समानता-चिह्नसँ पारिभाषिक शब्दक छायार्थ तथा पुनः ओकर पारिभाषिक अर्थ दए देल अछि। पारिभाषिक अर्थक आगाँमे ओहि अनुच्छेदक संख्या देल अछि, एहि पोथीक भूमिकाक जाहि अनुच्छेदमे ओहि अर्थ, वस्तु वा तत्त्वक विचार भेटत। कतहु कतहु अर्थकेँ प्रामाणिक सूचित करबाक हेतु संस्कृतछायादिक निर्देश कएल गेल अछि। संकेतसभक प्रयोग कएल गेल अछि, जकर विवरण नीचा प्रस्तुत कएल जाइत अछि। संस्कृतछाया तथा टीकाक प्रसंग एक कथ्य ई जे केवल एकेटा छाया तथाटी का भेटैत अछि—डा० बागचीक संस्करणमे संस्कृत छाया तथा डा० बागची-म० म० शास्त्री वा सेनक संस्करणमे देल एक संस्कृत टीका। तेँ जतए संस्कृत छाया वा टीकाक निर्देश अछि ततए ई बुझबाक थिक जे शब्द लग कोष्ठमे निर्दिष्ट गीतक संस्कृत छाया तथा टीका अभिप्रेत अछि तथा ओ छाया-टीका उक्त ग्रन्थमे ओहि निर्दिष्ट गीतक नीचामे भेटैत अछि। किन्तु, (एहि अनुक्रमणिकामे) पारिभाषिक शब्दक लगमे ओहि संस्करणसभक गीतसंख्या नहि अछि, एहि प्रस्तुत पुस्तकमे जे हम गीत संख्या देल अछि से संख्या अछि। तखन उक्त दूनू संस्करणमे निर्दिष्ट गीत कोना

भेटत ? एहि समस्याक समाधान अनायास भए जाएत जखन एहि पोथीमे निर्दिष्ट गीतपर ध्यान जाएत; कारण, एहिमे हम प्रत्येक गीतक ऊपरमे, कोष्ठमे, उक्त तीन् संस्करणमे आएल ओहि गीतक संख्या दए देल अछि। तेँ ओहि संस्करण-सभकेँ देखबाक क्रम ई रहत जे पहिने एहि पोथीमे पारिभाषिक शब्द लग निर्दिष्ट संकेतक अनुसार गीत ताकि लेल जाए तखन, जँ तुलनाक प्रयोजन हो, ओहि गीतक ऊपरमे कोष्ठमे देल संख्या उक्त संस्करणसभमे देखल जाए, अनायास ओ गीत भेटि जाएत ।

एहि अनुक्रमणिकामे जे संकेतसभ प्रयुक्त भेल अछि तकर विवरण एहि प्रकारेँ बुझबाक थिक :—

१ । कविक नाम-संकेत—नाम संकेतक विवरण स्वतन्त्रे भेटत एहि पोथीक समस्त संकेतक विवरणमे। कविक नाम संकेतक आगाँक संख्या एहि पोथीमे ओहि कविक ओहि गीतक क्रम संख्या थिक, जाहिसँ स०१ संकेतक अर्थ सरहपादक गीतक संख्या १ बुझबाक थिक, तात्पर्य ई जे ओ पारिभाषिक शब्द सरहपादक गीत सं० १ मे भेटत, एवम्प्रकारेँ पारिभाषिक शब्दकेँ गीतमे ताकल जाए सकैत अछि।

२ । =चिह्नक अर्थ एतबे जे पूर्व आएल शब्दक छाया अर्थ आगाँ आएल शब्द भेल तथा पुनः तकर पारिभाषिक अर्थ तकर आगाँक शब्द भेल।

३ । अर्थक आगाँ कोष्ठमे आएल संख्या—प्रस्तुत पोथीक भूमिकामे सम्पर्कित अनुच्छेदक संख्या।

४ । द्र०—द्रष्टव्य ।

५ । सं० टी०—संस्कृत-टीका-भाग ओहि गीत वा गीतसभक ।

६ । सं० छा०—संस्कृतछाया [ श्लोकमय ] जे 'चर्यागीतिकोष'मे प्राप्य ।

७ । बं० टी०—म०म० शास्त्रीक संकलनक उत्तरभागमे बंगला टीका।

८ । च० गी० को०—चर्यागीतिकोष

९ । ता० बौ० सा० सा०—तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य

१० । सं० श० को०—संस्कृत-शब्दकोश [ आप्ते महाशयक ]

११ । I. B. I.—The Indian Buddhist Iconography.

१२ । पा० टि०—पादटिप्पणी

१३। तु०—तुलनीय

१४। पृ०—पृष्ठ

१५। ऐजन—ई सूचित करब जे जे ओहिसँ ठीक पहिने आएल अछि सएह।

१६। प्र०—प्रकाशः। सू०-सूत्र।

पोथीसभक विशद परिचय पुस्तकसूचीमे प्राप्य, ई केवल पारिभाषिक शब्दसूचीक संकेत-विवरण भेल। पारिभाषिक शब्दसभकेँ यथासाध्य विषयक दृष्टिसँ वर्गसभमे बाँटि अर्थ प्रस्तुत कएल जाइत अछि।

## परमसत्य

अचिन्त [स० १] = अचिन्त्य = परमात्मा वा परमशिव [६३]।

अजरामर [स० १, वि० १] = मुक्त [११७,१२१-१२५]।

अणुअर [क० १] = अनुत्तर [६२] = जाहिसँ ऊपर कोनो सत्ता नहि।

अदृअ [भु० ८, चां० १] = अद्वय = परस्पराभिन्न शिवशक्ति [८१]।

अनुत्तर [चा० १]——द्र० अणुअर।

अपा [स० २, आ० १] = आत्मा [८४–८६]।

अमिअ [भु० २] = अमृत = सहस्रारस्थ मधु [१०६] वा सामरस्यानन्द [११६]।

अमिआ [स० ४] = अमृता = अमृत [द्र० अमिअ]।

अलक्खलक्खण [दा० १, शा० १] = अलक्ष्यलक्षण [६३]।

आसव [का० २] = मद्य = अमृत। द्र० अमिअ।

एकाकारे [का० ४] = एकाकार भए = समरस भए [९३–९५]।

करुण शून [का० ६] = करुणा-शून्य = शिवशक्ति [८३]।

खसमे [श० २] = गगन समान = शून्य समान [७५]।

गअन [भु० ७] = गगन = शून्यरूप शिवशक्ति [७४]।

जिणउरा [डो० १] = जिनपुरा = महासुखपुर [सं० टी०] = परलोक, सामरस्यक अवस्था [११५]।

जिनउर [का० १, का० ५] = जिनपुर। द्र० जिणउरा।

धाम [स० १, का० ८, क० १] = अनुत्तरधाम [६३] = परमपद।

परम निवाणे [दा० १] = परम निर्वाणमे = परम मोक्षमे [१३२]।

परम मोख [का० ४] = परम मोक्ष = परमा मुक्ति [१३२]।

पूर्णचन्द्र [का० ६] = षोड़शकलायुक्त बोधिचित्तचन्द्रमण्डल [सं० टी०]
= सहस्रारस्थ षोड़शीक अन्तरङ्ग चित्त वा प्राण [२७३, ३२०]।

बोहि [स० २, चा० १] = बोधि = बोधिचित्त = परमशिव [८४]
= प्रकाश–विमर्श [६३]।

बोही [क० १] = बोधी = बोधिचित्त [द्र० बोहि]।

महासुख [कु० ३] = सामरस्यानन्द [११५]।

महासुह [लु० १, दा० १, भु० ४, का० ६, का० ७, कम्ब १] = महासुख =
सामरस्यानन्द [११५]।

महासुहे [श० १, श० २, भु० ८] = महासुखेँ[1] [द्र० महासुह]।

महासुहेँ [श० २] = महासुखमे [द्र० महासुह]।

मुकल [स० २] = मुक्त [१३२]।

मुका [भु० ७] = मुक्त [द्र० मुकल]।

वाक्पथातीत [का० ११, ता० १] = वाक्पथसँ अतीत परमतत्त्व [६३]।

वारुणी [वि० १] = मद्य = "वारुणीति सुखप्रमोदत्वात्" [सं० टी०] सँ परम-
शिवमे लीन भेला पर सामरस्यानन्द वा सहस्रारस्थ मधु [१०६]।

विरमानन्द [भु० ४] = विलक्षण चतुर्थानन्द [सं० टी०] = तुरीयानन्द [३१०]
= सामरस्य–समाधिक आनन्द [३१०]।

विहाण [भु० ३] = विहान = ज्ञान [–सूर्य]क उदय [१७२]।

शून [भा० १] = शून्य [७५]।

शून्यताराजो [कु० ३] = महासुख [द्र० गीतक ओही पंक्तिमे 'महासुखनामा']
= सामरस्यानन्द [११५]।

सअलानुत्तर माणी [दा० १] = सकलानुत्तर मानि = समस्त विश्वकेँ
अनुत्तर परमतत्त्व [क प्रतिविम्ब] मानि [द्र० अनुत्तर]।

---

१। चर्यागीतमे एँ तथा ए क प्रयोग वर्तमान विभक्तिसँ किछु दोसर रङ्ग भेल अछि। तृतीयामे ए तथा सप्तमीमे एँ क प्रयोग भेटैत अछि [द्र० सिद्धसरहपादकृत दोहाकोश—भूमिका पृ० ५१-५२]। किन्तु हमरा कतहु कतहु उक्त सत्यक अतिरिक्त एँ क प्रयोग तृतीयामे तथा ए क प्रयोग सप्तमी विभक्तिमे सेहो भेटल, प्रस्तुत अनुक्रमणिकामे सर्वत्र सं० छाया तथा सं० टीकासँ ई धारणा पुष्ट भेल अछि। कतहु एव अर्थमे ए लागल सेहो भेटैछ।

सअसँवेअण [शा० २] = स्वसंवेदन = आत्मप्रत्यभिज्ञा [२३३]।

सअसम्वेअण [शा० १] = स्वसंवेदन = [द्र०, सअसँवेअण]।

समरस [वी० १] = समस्त अनेकतामे एकताक अनुभूति [६६]
= सामरस्यमय [३५५-३५६]।

समरसे [भु० ७] = समरसस्थितिमे [६६]।

सहज [का० ११] = सहजेँ [स्वभावतः, स्वतः] प्राप्त सामरस्यक आनन्द [१४१]।

सहज निदालु [का० १०] = सहजनिद्रालु = सामरस्यसमाधि (तुरीय)मे
डुबल [१४१]।

सहजमहातरु [भु० ७] सामरस्यमय शिवशक्ति (= परमशिव) रूप
महान् वृक्ष [१४१]।

सहज सरुआ [भु० ५] = सहज स्वरूपा = सामरस्यमय शिव-शक्तिक
स्वरूप [१४१]।

सहजानन्द [भु० ४] = सामरस्यानन्द [१४१]।

सहजे [स० ३, का० १२, वि १ = सहजेँ = सहजक संग = शिवशक्तिक संग,
सामरस्येँ [१४१]।

सुण विआर [आ० १] = शून्य-विचार = शून्यक विचार = परमतत्त्वक
विचार [७४]।

सुन करुण [दा० १] = शून्य-करुणा = शक्ति-शिव [८३]।

सुने सुन [क० १] = शून्ये शून्य = ब्रह्माण्डशून्यमे पिण्डशून्य वा परमशिवमे
शून्यताशक्ति [७४-८३]।

सुहे [का० १०] = सुखेँ = सामरस्यक महासुखेँ [११६]।

सूना पान्तर [शा० १] = शून्य प्रान्तर वा शून्य पाँतर = परमतत्त्वक
साम्राज्य [७४]।

सोण रुअ [भु० ८] = सोन-रूप वा शून्यरूप (आकार) [७४]।

## शक्ति

अठकुमारी [का० ६] = अष्टकुमारी = अष्टप्रकृति [वं० टी०] [६८] अथवा अष्टशक्ति [कुमारी = शक्ति, द्र० शिवसूत्र प्र० १ सू० १३]।

उदकचान्द [लु० २] = जलचन्द्र = जलमध्य चन्द्र-प्रतिविम्ब। द्र० प्रति-विम्बवाद [२२१]।

कमलिनि [भु० ४] = कमलिनी = कुण्डलिनी [३४४] रूपी पद्मिनी महापद्म-वन दिशि जाइत।

खसम सभावे [भु० ७] = गगनसमान स्वभावेँ = शून्यस्वभावेँ = विमर्श-स्वभावेँ [७७]।

गअण डो० १, का० १३, कम्ब० १] = गगन = शून्यशक्ति = विमर्शशक्ति [७७]।

गअणा [स० ४] = गगना = शून्यस्वरूपिणी [गगनहृदया] [८०]।

गअणे स० ३] = गगने = शून्यतास्वभावेमे = महतीविमर्शशक्तिस्वभावमे [७७]

गगन [त० १]—द्र० गअण।

छाआ [ज० १] = छाया। द्र० प्रतिविम्बवाद [२२१]।

जलविम्बाकारे [स० ४] = जलमध्य प्रतिविम्बक आकारेँ। द्र० छाआ।

जोइणि [का० ८] = योगिनि = योगिनी = महामुद्रा [२१७]।

जोइणी [भु० ४] = योगिनी। द्र० जोइणि।

जोइनि [गु० १] = योगिनि। द्र० जोइणि।

डोम्बि [का० ३, का० ७] = डोमिनि = डोमिनि वा महाशक्ते [३३२]।

डोम्बी [डो० १, का० ८, धा० १] = डोमिनि। द्र० डोम्बि।

तथता [का० २, का० १०, क०१, ज० १] = तथारूपता = विमर्शस्वभाव [३०३]।

दापण पतिविम्बु [भु० ६] = दर्पण-प्रतिविम्ब। द्र० छाआ।

नैरामणि [श० २, दा० १] = गृहिणी रूपमे भाविता नैरात्मा [ता० बौ० सा० सा० पृ० ३२७] = गृहिणीरूपमे भाविता शून्यस्वरूपिणी, निराकारशक्ति [२०८, २२४] तथा [७६]।

पारिम कुलेँ [दा० १] = परम कुले = परमा शक्तिमे [१५७]।

पोइआ [डो०१] = नीच जातिक कन्या (च०गी०को०पृ० ४६), निम्नस्थिता स्त्री।
= डोमिनि तथा निम्नतसचक्रस्था कुण्डलिनीशक्ति [३३२]।

बहुड़ी [कु०१] = वधूटी = नवयौवना (सं०श०को०) = युवती शक्ति[मुद्रा][१६५।
अथवा कामोत्तप्ता कुण्डलिनीशक्ति [३३१]।

बिआती [कु० १] = बिआइत = जगत्प्रसूती महामुद्रा [१६६]।

महामुदेरी [ता० १] = महामुद्रा [२०८]।

मातङ्गी [डो० १] = मातङ्गी महाविद्या वा चाण्डालिनी (सं० श० को०)
= कुण्डलिनी शक्ति वा चण्डाली = कुण्डलिनीशक्ति [३४२]।

माआहरिणी [भु० ३] = महामायास्वरूपिणी हरिणी = अन्तःशक्ति [३३१]-
रूपिणी हरिणी।

शुण्डिनि [वि० १] = शौण्डी वा शौण्डिनी [मदमत्ता वा कलबारनी—
द्र० सं० श० को०] = रतिप्रिया शक्ति [२२५] अथवा
रतिप्रिया कुण्डलिनीशक्ति [३३१]।

शूण संपुन्ना [का० १२] = शून्य-सम्पूर्णा = शून्यस्वरूपिणी विमर्शसँ,
अहन्तपरामर्शसँ सम्पूर्ण [७७]।

सुइण [स० ४] = शून्य = शून्यस्वरूपिणी [८०]।

सुण तरुवर [का० १३] = शून्य-तरुवर = मायारूपमे शून्यवृत्त [७४ ख]।

सुणमेहेली [श० २] = शून्य-महिला (सं० छा०) = स्त्रीरूपमे भाविता
शून्याकारा शक्ति वा महामुद्रा [८०, २०८]।

सुण विआर [आ० १] = शून्य-विचार = शून्यशक्तिक [८०] विचरण।

सुणे अहारिउ [शा० २] = शून्ये (शून्यकेँ) आहारल = शून्यकेँ आहृत कएल
= शून्यशक्तिकेँ आत्मसात् कएल, अन्तःसाधना
द्वारा आत्मलीन कएल [३३६]।

सुन नैरामणि [श० १] = शून्यनैरात्मा। द्र० नैरामणि।

सुनुपाख [लु० १] = शून्य-पक्ष = शून्य-शक्तिक [८०] पक्ष।

सोने [कम्ब० १] = स्वर्णें वा शून्येँ = स्वर्णें वा [तत्समान चकचक करैत]
शून्यता (विमर्श) शक्तिएँ [८०]।

हूँ भव इ गअणा [स० ४] = हूँ-भव ई गगना = हूँकारबीजोद्भवा गगनहृदया
महाविद्या (तारा), महती शक्ति [१५७]।

## शिव

करुणाडमरुलि [आ० १] = करुणा-डमरू = करुणामय शिव [८३]क डमरू।
करुणा नावी [कम्ब० १] = करुणा-नाव = करुणामय वा शिवमय चित्त-नौका [८३, ८६, ८९, १६६]।
करुणामेह [भु० ५] = करुणा-मेघ = शिवक करुणामय स्वरूप [८३]-मेघ।
खमण भतारे [कु० २] = ख-मन भतारे = गगन-मन स्वामी = शून्य-चित्त-स्वामी = चिद्रूपमे चित्त-स्वामी (चिच्छक्तिक) [८९]।
हेरुअ [वी० १, शा० २] = हेरुक = प्रज्ञाक स्वामी [I. B. I.—P. 157] = शक्तिक स्वामी [८१] = शिव [८१]।

# साधना-मार्ग

## सामान्य प्रमाण

अटमहासिद्धि [शा० १] = अष्टमहासिद्धि [१५७]।
इष्टामाला [का० ११] = इष्टक माला [१५७]।
उजुबाट [स० २] = सोझ बाट [१४८, १५७]।
एवंकार [का० २] = एवं मन्त्र [१५४, १५७]।
कपाली [का० ३, का० ४] = कापालिक [१४९, १५७, १५८]।
कबाली [का० ४] = कपाली। द्र० कपाली।
कापालि [का० ३] = कापालिक। द्र० कपाली।
कुल लइ [स० ३] = कुलाश्रित भए = शक्तिक आश्रित भए वा कौल मार्गें [१५७]।
कुलेँ कुल [डो० १] = इतस्ततः तटपर [च०गी०को० पृ० ४९ पा० टि० कूल मानि] अथवा एक देहसँ दोसर देहमे [प्रस्तुत गीतक मैथिली टीका द्रष्टव्य]।
कुलेँ कुल [शा० १] = एहि कुलसँ ओहि कुलमे = कौलक एक आम्नायसँ दोसरमे। कौलक हेतु द्रष्टव्य [१५७]।

चर्य्या [कु॰ १] = आचार [६] ।

जोइ [का॰३, का॰ १२] = योगी [१५८] ।

जोइआ [भु॰ ६] = योगिआ । द्र॰ जोइ ।

दाहिण बाम [चा॰ १] = दक्षिण-वाम मार्ग [१४८] ।

धामार्थे [चा॰ १] = धर्म-अर्थ पुरुषार्थ मध्य [३४६] ।

बाम-दाहिण [स॰ २, डो॰ १, कम्ब॰ १, शा॰ १] = वाम-दक्षिण ।
द्र॰ दाहिण-बाम ।

वीरा [गु॰ १, कु॰ २] = वीरभावाश्रित [१५७] ।

हाड़ेर माली [का॰ ३] = हाड़क माला = अस्थिमाला [१५३, १५७] ।

हूँ [स॰ ४] = हूँ-बीज (कूर्च-बीज) [१५७, ३७१] ।

## काय-वाक्- चित्त [ त्रिधातु ]

काअ वाक् चिअ [का॰ ११] = काय-वाक्-चित्त [१६६] ।

काअवाक्चिए [दा॰ १] = कायवाक्चित्ते । द्र॰ काअवाक्चिअ ।

तिअ धाउ [श॰ १] = त्रिधातु = कायवाक्चित्त [सं॰ टी॰] [१६६] ।

तिअ धाए [लु॰ २] = त्रिधातुए = त्रिधातुमे [सं॰ छा॰]
= कायवाक्चित्तमे [१६६] ।

तिनिएँ पाटेँ [म॰१] = तीनि पाटमे = तीनि पीठमे [बं॰ टी॰] = कायवाक्चित्त-
पीठमे [सं॰ टी॰] [१६६] ।

त्रिधातुषु [का॰ ६] = तीनि धातुमे = कायवाक्चित्तमे । द्र॰ तिअ धाए ।

## मैथुन [ महामुद्रा-साधन ]

कमल कुलिश [गु॰ १, धा॰ १] = पद्म-वज्र = भगलिङ्ग [३४, १८५, २२६] ।

कुन्दुरे [गु॰ १] = द्वीन्द्रिय संयोगमे [२२७] = मैथुनमे [२२७] ।

कुलिशाब्ज [कु॰ ३] = वज्र-पद्म = लिङ्ग-भग । द्र॰ कमलकुलिश ।

छिणाली [का॰ ७] = छिनारी = छिनारि = सभक आत्मा (-रूप शिव)क संग
रमण केनिहारि [२२३] ।

जाणजौवण [कु॰ २] = जान-यौवन = ज्ञान-यौवन वा तरुणयौवन [च॰ गी॰
को॰ पृ॰ ६६ पा॰ टि॰] [२४] ।

तियड्डा [गु० १] = त्रिअड्डा = नाड़ीत्रय [१४६]क अड्डा अथवा योन्यम [२२३]।

दशमि दुआरत [वि० १] = दशम दुआरिसँ = वैरोचन-द्वारसँ वा दशम इन्द्रिय उपस्थसँ [२२७]।

पँउआ खालेँ [भु० ८] = पदुमा-खालेँ = पदुमा-छारनिमे [तु० त्तालनं-सं० श० को०] = पद्मधारमे = भगधारमे [३४] = प्रज्ञामे [१८५] = शक्तिमे [१८६]।

बिआण [कु० २] = बिआन = जगतकेँ प्रसूत करब। द्र० बिआती (शक्ति)।

वज्रधारी [श० १] = पुँचिह्नधारी [४३४] = उपाय [१८५] = शिव [१८६]।

वज्रपद [त० १] = लिङ्गपद [३४] = उपायपद [१८५] = शिवपद [१८६]।

वाजणाव [भु० ८] = वज्रनाव = लिङ्ग-नाव [३४] = उपायनाव [१८५] = शिवनाव [१८६]।

## चित्त

करहा [वी० १] = करभा = युवक हाथी [सं० श० को०] = चित्तगज [८७, १६५, १६६]।

करिणा [का० २] = करिन् (अनादरमे) = गज = चित्तगज। द्र० करहा।

कालमुसा [भु० २] = कालमूसा = दुष्ट चञ्चल चित्त-मूस [१६६]।

गअवर [वी० १] = गजवर = चित्तगजवर। द्र० करहा।

गअवरेँ [का० ५] = गजवरेँ। द्र० गअवर।

चिअ [भु० ८] = चित्त [८७, १६६]।

चिअकण्णहार [का० ६] = चित्त-कण्ठहार [१६६]।

चिअराअ [स० २, भा० १] = चित्तराज [१६६]।

चिअ विकरणे [आ०१] = चित्त विकरणे = चित्त विकारे = विकल्पजाल [१६६]।

चिअ विहुन्ने [भा० १] = चित्तविहीने = चित्तविहीन भेलासँ [१६६]।

चित्त [दा० १]——द्र० चिअ।

चित्तराज [का० ६]——द्र० चिअराअ।

चीअगएन्दा [म० १] = चित्त-गजेन्द्रा। द्र० गअवर।

चीअ थिर करि [स० ३] = चित्त स्थिर कए [१६६]।
चञ्चल चीए [लु० १] = चञ्चल चित्तो [१६६]।
चञ्चल मुसा [भु० २] = चञ्चल चित्त–मूस [१६६]।
णिअ मण [श० १] = निज मन = निज चित्त [१६६]।
णिअ मन [भु० ५] = निज मन [द्र० णिअ मण]।
बलन्दें [स० ४] = बलदें वा बड़दें = इन्द्रियकें बल देनिहार बड़द समान विकल्प-युक्त विमूढ़ चित्तों [१६६]।
मण [आ० १, का० १३] = मन = विकल्पयुक्त चित्त [१६६]।
मणरअणा [भु० ७] = मनरतना = मनोरत्ना = मनोरत्न = विकसित चित्त [१६६]
मुसअ [भु० २] = मूषक = मूस = चञ्चल चित्त–मूस [१६५]।
हरिणा [भु० १] = चित्त–हरिण [१६६]।

## विकल्प

अवणागमण [का० १०] = आवागमन = जन्ममरण [१७०,१७१]।
अवणागमणा [ज० १] = आवागमना = आवागमन। द्र० अवणा गमण।
अवणागवणा [भु० २] = आवागमना = आवागमन। द्र० अवणा गमणा।
अवरना [का० ३] = आवरणा = मायाक आवरण [१६६]।
अविदार [स० ४] = अविद्यार = अविद्याक [१७६]।
अविद्या [का० २] = अविद्या [१७६]।
आलाजाला [का० ११] = इन्द्रजाल [च० गी० को० पृ० १३१ पा० टि०] = इन्द्रजाल जकाँ मिथ्या मायाजाल [१७७]।।
इन्दिअ [आ० १] = इन्द्रिय [१७२]।
इन्दिआल [भु० ५] = इन्द्रिय–जाल [१७२] वा इन्द्रजाल [१७७]।
इन्दिविसिआ [भु० ८] = इन्द्रियविषया = इन्द्रिय–विषय [१७२]।
इन्दी [दा० १] = इन्द्रिय [१७२]।
करण कपटेर [लु० १] = इन्द्रियकपटक [१७२]।
करिणिरें [का० २] = हथिनीकें = इन्द्रियरूप हथिनीकें [१७२]।

गोहाली [स० ४]=गो-हाली=इन्द्रियशाला (शरीर) [१७२]।

चांगेड़ा [का० ३]=चङ्गेरा=मायाक आवरण-प्रपञ्चजाल (अपन हाथसँ बीनब) [१६६]।

जाममरण [भु० ७]=जन्ममरण [१७०, १७१]।

नणन्द [का० ४]=ननन्द=ननदि [ननान्दरं—सं० छा०] वा चक्षुरिन्द्रियादि (सं० टी०)=ननदि वा ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय [१७२]।

पञ्चजणा [भु०३]=पञ्चजना=पञ्चविषय (सं०टी०)=इन्द्रिय-विषय [१७२]।

पञ्चपाटण [भु० ८]=पञ्चपत्तन=(रूपवेदनासंज्ञासंस्कारविज्ञान) पञ्चस्कन्धपर आश्रित अहङ्कारममकारादि (सं० टी०) [१७३]।

पञ्चँ विसअ [म० १]=पाँच विषय=पञ्च ज्ञानेन्द्रियक विषय [१७२]।

बान्धण [का० २]=बन्धन [१७३]।

भय घिण [आ० १]=भय-घृण=भय-घृणा=अष्टपाशमे भय-घृणापाश [१७४]।

भव [का० १२]=जगत् [१६२]।

भवनिर्वाणा [स० १]=भव-बन्धन-मोक्ष [१७३]।

भवनिव्वाणे [का० ८]——द्र० भवनिर्वाणा।

भवमोह [स० ४]=भव-मोह=संसारक मोह [१७२, १७३]।

भावाभाव [लु० २, भु० ५, भु० ७, का० २]=भाव-अभाव विकल्प [१६६]।

भांतिएँ [भु० ६]=भ्रान्तिएँ [१६१]।

माआ [ज० १]=माया [१७२]।

माआजाल [का० ६]=मायाजाल [१७२]।

माआ मोहा [श० २]=मायामोहा=माया-मोह [१७२-१७३]।

मायामोह [शा० १]—द्र० माआ मोहा।

मोह [कु० ३, का० १०, चा० १, ज० १]=मोह [१७३]।

मोहँ [भा० १]=मोहसँ। द्र० मोह।

रस रसानेरे [स० १]=रस-रसाथनक [१७५]।

राग द्वेष [का० ४]=राग-द्वेष [१७२]।

राजसाप [भु० ६]=रज्जु-सर्प=रज्जुमे सर्पक भ्रान्ति [१६१]।

वाणत [भु० ७]=वाणतः=जालसँ (सं० श० को०)=मायाजालसँ [१७२]।

वासना [भु० ६]=वासना [१७८]।

विषयेन्द्रिय [का० ६]=विषयग्राहक इन्द्रिय [१७२]।

विसअमण्डल [म० १]=विषयमण्डल [१७०, १७८]।

सुख दुखेतेँ [लु० १] =सुख-दुःखसँ [१७२]।

सुभासुभ [का० १३]=शुभाशुभ [१७२]।

हरि हर बाह्म भड़ा [धा० १]=हरिहरब्रह्मा भट्ट [१७२, १७३]।

## योगसाधन [अन्तःशक्तिसाधन]

अणहकसन [म० १]=अनहत-कर्षण=अनाहत-कर्षण=अनाहत-घन-गर्जन [३०४, ३०६]।

अणहा [वी० १]=अनहा=अनहद=अनाहत नाद [३०६]।

अधराति [भु० ४]=अर्धरात्रि=सहस्रारसँ हृत्पद्मक मध्य धरिक प्राणक स्थिति [२६४]।

अनहा डमरु [का० ४]=अनाहत-डमरू। द्र० अणहकसन।

अन्तराले [ज० १]=अन्तरालमे=मध्यमे [३५०, ३५१, ३५४]।

अनाहत [त० १]——द्र० अणहा।

अमिअ पाण [भु० २]=अमृत पान=सामरस्ययोगामृत [३३६]।

अवधूइ [भु० ४], अवधूती [वी० १]=अवधूती नाड़ी [२४६]=सुषुम्ना नाड़ी [२५२]।

आलि कालि [का० १, का० ४, वी० १]=इड़ा-पिङ्गला नाड़ी [२५०]।

ओडिआणे [गु० १]=उड्डीयाने=उड्डीयान पीठमे [३५६]।

कमल [भु० ४]=शिरःस्थ महासुखपद्म (चक्र) [२७२]=शिरःस्थ सहस्रार-पद्म [२८६]।

कमलरस [गु० १]=सहस्रारक अमृत [३३६]।

काअणावड़ि [स० ३]=कायनावक=त्रिधातुमे काय-नावक [१६६]।

काआ तरुवर [लु० १]=काया तरुवर=काय-वृक्ष श्रेष्ठ [१६६]।

कुम्भीरे [कु० १]=कुम्भके=कुम्भकप्राणायामे [३४६]।

गअणटाकलि [म० १]=गगन-टाकलि ( शब्द वा ध्वनिविशेष—द्र० च० गी० को० पृ० ५६ पा० टि)० = आकाशक अनाहत नाद (द्र० ऐजन) = शून्यता-शब्द (सं० टी०)।

गअणे उठि [भु० २]=गगने उठि=महासुखकमलवन (चक्र)मे जाए (सं०टी०) =सहस्रार-कमलवन जाए [२८६]।

गअणत [श० १]=गगनमे=सहस्रारस्थ शून्यमे (द्र० गअणे उठि, गअण टाकलि )।

गिरिवरसिहर [श० १]=गिरिवरशिखर=मेरुशिखर=मेरुदण्ड-रूप मेरुपर्वतक शिखर [२५१,२५२,२५४]

गुली [श० १]=गुहामे लीन=मेरुदण्ड-कन्दरामे लीन [२५४]।

गङ्गा जउना [डो० १]=गङ्गा-यमुना=इड़ा-पिङ्गला [२५०]।

घड़ली [वि० १]=घटी (सं० टी०)=संवृति-परमार्थ सत्यद्वयकेँ घटित केनिहारि अवधूतिका नाड़ी (सं० टी०)=सुषुम्ना नाड़ी [२५२]।

चउकोड़ि [भु० ८]=चतुष्कोटि [२७५]।

चउसटि [वि० १]=चौँसठि (निर्माणचक्र वा आधारपद्मक बौद्धकथित-दल-संख्या) [२६४, ३४१]।

चण्डाली [भु० ८, का० ७, धा० १]=चण्डा+आली=कुण्डलिनी [३२७-३४२]।

चन्द सूज्ज [डो० १]=चन्द्रसूर्य=ललना-रसना=इड़ा-पिङ्गला [२५०,२५२]।

चान्दसुज [गु० १]——द्र० चन्द सूज्ज।

चौषठ्ठि [का० ५]——द्र० चउसठि।

तथतानादेँ [क० १]=तथता-नादेँ=तथारूपता-नादेँ [३०३]।

तूर्य [कु० ३]=तुरीय [३१०]।

दाहिण बाम [चा० १]=रसना-ललना=पिङ्गला-इड़ा [२५०]।

दुलि [कु० १]=द्वयाकार जतए लीन होथि, ताहि महासुखकमलकेँ (सं० टी०) =सहस्रारक अमृतकेँ [३३६]।

देहनअरी विहरइ [का० ४]=देहनगरी विहरैत छथि=अण्डमय निज पिण्ड-पीठमे [२३२] वा देह-देवालयमे [२४०] विहरैत छथि।

धमण चमण [लु० १]=इड़ा-पिङ्गला [२५०]।

न रवि शशि [स० २]=ने पिङ्गला, ने इड़ा [२५०]।

नलिणीवन [भु० ३]=नलिनीवन=महापद्मवन=सहस्रार-पद्मवन [३४३]।

नाड़ि [कु० २]=नाड़ी [२४८-२५३]।

नाड़िशक्ति [का० ४]=नाड़ी-शक्ति=ब्रह्मनाड़ीक अन्तःस्थिता शक्ति
=कुण्डलिनी शक्ति वा प्राणशक्ति [२८६]।

नाद [कु० ३, त० १]=नाद [३००]।

नाद न बिन्दु न [स० २]=नाद-बिन्दु किछु नहि [३०२]।

पद्मवण [भु० ३]=पद्मवन=महापद्मवन=सहस्रारपद्मवन [३४३]।

पिटा [कु० १, ढे० १]=पीठा=पीठ [३५७-३५६]।

बतिश तान्तिधनि [वी० १]=बत्तीस नाड़ी [२४८] रूप तन्त्रीक ध्वनि।

बतिस जोइणी [भु० ४]=बत्तीस नाड़ी [२४८]।

बाम दाहिण [स० २, डो० १, कम्ब०,१, शा० १]=ललना-रसना
=इड़ा-पिङ्गला [२५०]।

बाह्मनाड़िआ [का० ३]=ब्रह्मनाड़िका=ब्रह्मनाड़ी [२५३]।

बिन्दुणाद [क० १]=बिन्दु-नाद [३००]।

मझ [का० ६]=मध्य [३५१]।

मणपवण [का० ८]=मन-पवन=मन-प्राण [३२३]।

मणि [त० १]=मणिपूर [३५६]।

मणिकुले [गु० १]=मणिकुलेँ=मणिमूलेँ [सं० टी०]=मणिपूरसँ [३५६]।

माझ [क० १]=मध्य [३५०, ३५१, ३५४]।

माझेँ [धा० १]=मध्यमे। द्र० माझ।

मुसा पवणा [भु० २]=मूस-पवना=प्राण [२६१] रूपी मूस [लययोगसँ पूर्व]।

मेरुशिखर [धा० १]=मेरुशिखर। द्र० गिरिवरसिहर।

रवि शशी [का० ४]=रवि-शशि=पिङ्गला-इड़ा [२५०-२५२]।

वण [शा० १, भु० १]=वन=कायपर्वतवनँ [सं० टी०]=महापद्मवन।
द्र० पद्मवन।

विरमानन्द [भु० ४]=विलक्षण शुद्ध आनन्द [द्र० ओएह गीत] [२७५]।

शासु [का० ४]=श्वास [३४६]।

शिखरे [कु० ३]——द्र० गिरिवर सिहर।

ससहर [भु० ४, का० ७, धा० १]=शशधर=बोधिचित्त-चन्द्र [तीनू गीतक सं० टी०] अथवा चन्द्रमण्डल=चित्तचन्द्र [३२३], प्राणचन्द्र [३२४] वा इड़ा [चन्द्र] नाड़ीमण्डल [२५०]

सान्धि [डो० १, वी० १]=सन्धि=वाम-दक्षिण नाड़ीक सन्धि वा मध्य [२५०, ३५४]।

सासु [गु० १]=श्वास [३४६]।

सुखपुर [कु० ३]=महासुखचक्र [सं० टी०]=सहस्रारचक्र [२८६]।

सुज, ससि [वी० १]=सूर्य-चन्द्र=पिङ्गला-इड़ा नाड़ी [२५०]।

सुसुरा [कु० १]=श्वास [३४६]।



# द्वितीय खण्ड

# समीक्षा

१. पूर्वक व्याख्याभागमे मुनिदत्तकृत बौद्ध टीकापर दृष्टि रखैत बौद्धक स्थानमे हिन्दू अर्थक अनुसंधान भेल।

२. दोसर, अन्य समस्त प्रकाशित समीक्षा ग्रन्थ एही संस्कृत टीकाप. अवलम्बित अछि, किन्तु प्रस्तुत कृतिमे समीक्षहुमे हिन्दू प्रवृत्ति भेटत।

३. मुनिदत्ताक टीकाक प्रति किछु अनास्था अवश्य भेटल होएत। से किएक, से देखल जाए।

## संस्कृतटीकाक प्रामाणिकताक विचार

४. एहिमे सन्देह नहि जे मुनिदत्तक संस्कृतटीका चर्यागीतपर विचारसभमे प्राचीनतम अछि। तेरहम शताब्दीमे ओकर तिब्बती अनुवाद भेल,[1] तकर अर्थ भेल जे ओ ओहूसँ पूर्वक वस्तु थिक। एहूमे सन्देह नहि जे महासुख, बोधिचित्त, विरमानन्द, सहजानन्द, परिशुद्धावधूतिका तथा अपरिशुद्धावधूतिका सभ सन गूढ़ तत्त्वक परिचयमे ओ टीका अत्यन्त उपयोगी होइत आएल अछि।

५. किन्तु, जतेक दूर धरि चर्यागीतक तथा रचयिता सिद्धगणक मार्मिक अध्ययनक प्रश्न अछि, हमरा ओहि टीकाक प्रामाणिकता स्वीकार करबामे तारतम्य होइत अछि।

६. तारतम्यक कारण अछि संस्कृतटीकाक किछु तेहन स्थलसभ, जाहिसँ टीकाकारक पूर्वग्रह, अपभ्रंश-वाग्धाराक शुद्ध परिचयक अभाव तथा रचयिता सिद्धगणक निकटतम परिचयक अभाव सूचित होइत अछि। दृष्टान्तहिसँ ई आपत्तिसभ ज्ञात होएत।

१। च० गी० को०—Preface P. xiii

लुइपादक एक सरल पाँती अछि—"लुइ भणइ गुरु पुच्छिअ जाण"२—लुइ कहैत छथि, गुरुसँ ज्ञानक पुछारी करू।

७. पूर्वक पाँतीपर[3] ध्यान देलासँ एकर मार्मिक अर्थ एतबे होएत जे लुइ कहैत छथि, चित्त सभ बन्धनक मूल अछि। सामरस्यक आनन्द पएबाक हेतु, ओहि सुखकेँ दृढ़रूपमे सुरक्षित रखबाक हेतु, चित्तशोधन आवश्यक; ई चित्त-शोधन कोना होएत से गुरुअहिसँ ज्ञात होएत।

८. विकल्पत्रयसम्बन्धी एहि प्रकरणमे मुनिदत्त जे टीका करैत छथि से देखल जाए—"ताहिमे कुलिशारविन्दसंयोगात्क्षरसुखोपायक प्रसङ्ग गुरुकेँ पूछि विरमानन्दमे व्याप्य व्यापकता सङ्ग सभ धर्मक अनुपलम्भरूप सहजानन्द महा-सुखकेँ अहर्निश जानू।"[4]

९. एहि टीकांशसँ कुलिश-कमल-संयोग, विरमानन्द, सहजानन्द, महासुख तथा धर्मक अनुपलम्भ, एहि पारिभाषिक तत्त्वसभक सूचना अवश्य भेटैत अछि, किन्तु मूल पंक्तिक दृष्टिएँ किछु, अनावश्यक, अत्यधिक तथा असमीचीनो विषय कहि देल गेल अछि।

१०. प्रकरणसँ चित्ताक उपद्रव मात्र प्राप्त अछि, मैथुन-साधन वा अन्तः शक्तिसाधन नहि। ओहि विषयकेँ लुइ कहहु नहि चाहैत छथि। केवल समस्या राखि दैत छथि, प्रतीकार गुरुक हाथक वस्तु थिक, ओ कोन प्रतीकार नीक बुझैत छथि चित्तशोधनक, से ओएह जनैत छथि, अनुभवी छथि, सिद्ध छथि, कोनो प्रतीकार अवश्य कहताह, सेहो पुनः व्यावहारिक प्रतीकार कहताह। एही प्रकारक मर्म आ' केवल ततबे मर्म अछि उद्धृत पाँतीक। केवल एक मात्र शब्द आएल अछि 'महासुह', ताहि हेतु टीकाकारकेँ 'विरमानन्द', 'सहजानन्द' दूनू शब्दक उपादान प्रयोजनीय नहि। अनावश्यक एहि दूनू शब्दक प्रयोग कएल—'महासुख' तँ कहबे कएल, तखन पुनः 'सहजानन्द' किएक ? ओ चारिम कोटिक आनन्द थिक से तँ तेसर कोटिक आनन्द विरमानन्दक पश्चात् होएबे

२। लु० १.

३। दिढ़ करिअ महासुह परिमाण। —लु० १

४। तस्मिन् कुलिशारविन्दसंयोगात्क्षरसुखोपायं श्री गुरून् पृष्ट्वा विरमानन्दे व्याप्य-व्यापकतया सर्वधर्मानुपलम्भरूपं सहजानन्दमहासुखं अहर्निशं जानीहि।

—च० गी० को०—पृ० ३

करत, विरमानन्दप्राप्ति तँ स्वतः सिद्ध अछि। कुलिशारविन्दसंयोगक उल्लेख ताहि गीतक हेतु राखि लैतथि, आहिमे निश्चित रूपमे मैथुन-साधना व्यञ्जित होइत हो।

११. दोसर दृष्टान्त देखल जाए—"नाड़ि-शक्ति दिढ़ धरिअ खाटे"[५]—नाड़ीक अन्तःस्थिता शक्तिकेँ साधनाक आधार बनाए, एतबे कथ्य अछि।

१२. किन्तु टीका देखल जाए—"नाड़िका बत्तीस नाड़िका, ताहिमे शक्ति प्रधानावधूतिका विरमानन्दरूपा"[६]—एहि क्रमेँ कहि आगाँ बढ़लाह अछि।

१३. एहिठाम पुनः 'विरमानन्द'क प्रयोग अनावश्यक। दोसर, अवधूतिका नाड़ीकेँ ताहि शैलीमे सूचित कएने छथि जे ओ सहतीशक्ति बूझि पड़ैत अछि। किन्तु वस्तुतः ओ थिक ललना-रसनाक मध्यवर्त्ती नाड़ी मात्र[७], जेना हिन्दू योगमे सुषुम्ना। ई विषय ओ अन्यत्र अपनहु कहने छथि[८]।

१४. नाड़ि-शक्तिक तात्पर्य्य अछि नाड़ीक अन्तःस्थिता [ कुण्डलिनी- ] शक्ति अथवा यौगिक नाड़ी-बल मात्र। से अर्थ तथा नाड़ीकेँ शुद्ध करबाक प्रयोजन[९] झलफलाए जाइत अछि एहन एहन टीका-स्थलसँ। अवधूतिका नाड़ी मात्र थिक, तखन व्यर्थ उक्त रूपक टीका कए नाड़ीमे विरमानन्दरूपा शक्तिक भ्रम किएक जगाओल ?

१५. जेना अवधूतिकाकेँ शक्तिरूपमे देखि अनेकठाम 'परिशुद्धावधूतिका'क प्रयोग कएने छथि तहिना पूर्वग्रह देखैतछी 'बोधिचित्त'क।[१०] विशेष अध्ययनक पश्चात् तँ अर्थ स्पष्ट भइए जाएत, जे अपनामे टीका कतहु कतहु मूलहु पंक्तिसँ अस्पष्टे प्रतीत होइत अछि। जे किछु हो, एहन एहन स्थलमे परिशुद्धावधूतिकाकेँ परिशुद्धा नाड़ी मात्र मानल जाए तथा परमार्थक अर्थमे बोधिचित्त छोड़ि

---

५। का० ४

६। नाड़िका द्वित्रिंशन्नाडिकाः शक्तिस्तासां मध्ये प्रधानावधूतिका विरमानन्दरूपा [ तां ] गुरुप्रसादात् मणिमूले त्रिधृत्य खट्वांगमिति। —च० गी० को० पृ० ३६

७। पाछाँ भूमिका द्रष्टव्य—अनु० २५१

८। ललना रसना अवधूतिका नाड्यः॥—च० गी० को०—पृ० १४

९। भा० सं० सा० [ खण्ड २ ]—पृ० २६१।

१०। च० गी० को०—पृ० ७, १०, २६, ३५ आदि द्रष्टव्य।

अन्यत्र 'संवृति' जोड़ल रहए वा नहि, बोधिचित्ताकेँ चित्त, प्राण वा शुक्रक पर्याय मात्र मानल जाए, जाहि दृष्टिएँ मैथिली-व्याख्या कएल गेल अछि'।

१६. ई तँ भेल टीकाकारक पूर्वग्रहप्रयुक्तअनावश्यक प्रयोगक प्रसङ्ग तथा जेना एक दृष्टान्तसँ ज्ञात भए गेल होएत, असमीचीन सङ्गतिक दृष्टिए अप्राप्त अर्थक प्रसङ्ग।

१७. आब, एक आओर पाँती देखल जाए। एक गोट पाँती अछि—"डोम्बीत आगलि नाहि छिनाली'[११]—डोम्बीसँ आनाँ केओ छिनारि नहि।

१८. एहिठाम र-ल क साम्यसँ 'छिनाली'केँ छिनारी मानि तथा पुनः गेयताक कारणेँ दीर्घ मानि शुद्ध रूप 'छिनारि' प्राप्त अछि जे मैथिलीक प्रसिद्ध तथा प्रयुक्त शब्द अछि। संस्कृत छायामे शास्त्रीजी [ शान्तिभिक्षु शास्त्री ] कोष्ठमे 'पुंश्चली' दए[१२] संदेहक प्रश्ने नहि रहए दैत छथि। किन्तु टीकाकार कहैत छथि—'छिन्ननासिका नागरिका वा'। 'नागरिका'क अर्थ, पापीकेँ नागरिक मानि,[१३] जँ सङ्गतो होएत वेश्या, तँ अप्रयुक्तता-दोष होइत अछि। तँ एहन एहन स्थलमे अपभ्रंश-वाग्धाराक अनवगति देखाढ़ भए गेल अछि।

१९. कविक भावपक्ष दिशि टीकाकारक ध्यान कतेक दूर धरि जाइत छन्हि तकर सुन्दर दृष्टान्त देखल जाए—"कान्ह डोम्बी विवाहे चलिआ"[१४]—काह्न डोम्बी [ डोमिनि वा विशुद्धा अद्वैतस्वरूपिणी ]क सङ्ग विवाह करबाक हेतु, महारागमय अभेद-संबन्ध स्थापित करबाक हेतु चललाह।

२०. किन्तु टीका देखल जाए—"ओएह डोम्बी वायुरूपा, हुनक गमनद्वारक विवाह अर्थात् भङ्ग कए"[१५]—एहि क्रममे व्याख्या भेल अछि।

२१. मानल जे योगक दृष्टिएँ श्लिष्ट पद 'विवाह'क उक्तो अर्थ बैसि जाइत अछि, किन्तु काह्नपादक भावात्मक आह्लादसँ ई अर्थानुसंधान एकान्ततः वञ्चित अछि।

---

११। का० ७

१२। च० गी० को०—पृ० ६२

१३। सं० श० को० [ आप्ते ]—'नागरिक' शब्द।

१४। का० ८

१५। सैव डोम्बी वायुरूपा तस्या गमनद्वारस्य विवाहमिति भङ्गं कृत्वा।

—च० गी० को०—पृ० ६५

२२. एहि प्रकारेँ अनेक दृष्टान्त भेटत, जतए टीकाकार अपन तान्त्रिक अध्ययनमे ओझराए पाँती दिशि ध्यान कम दए अधीत संस्कृत-ग्रन्थसभक विचार, सेहो पुनः सएह विचारसभ जकर हुनका पूर्वग्रह छन्हि, रखबामे अधिक तत्पर भए गेल छथि, ततेक दूर धरि जे गीतक पंक्तिगत तात्पर्य, भावात्मक चमत्कार तथा प्रकरणक सङ्गति झलफलाइए गेल अछि। टीकाकारक कर्त्तव्य थिक पंक्तिक अर्थकेँ मर्मस्पर्शी, प्रियगर तथा वैज्ञानिक रूपमे अभिव्यक्त करब, जकर निर्वाहमे मुनिदत्त ततबे दूर धरि सफल भेलाह जतेक दूर धरि पारिभाषिक वस्तुतत्त्वसभक जिज्ञासा-पूर्त्तिक समस्या छल।

२३. जेहन जेहन स्थलसभक निर्देश कएल अछि, तेहन-तेहन स्थलमे कोना सहायक ग्रन्थसभ काज देलक से भूमिकाक सिद्धान्त-साधनापरक विषय-विवेचनसँ सूचित भेल होएत। ओ भूमिका एकान्ततः प्रस्तुत शोधक लक्ष्यमे केन्द्रित अछि—चर्यागीतमे तान्त्रिक सिद्धान्तसभक अनुसंधानमात्रमे। आ' ओहि भूमिकामे जाहि निर्णयपर पहुँचलहुँ, ताहि अनुसार गीतसभकेँ देखबाक प्रयास कएल। यद्यपि गीतसभमे बोधिचित्त, अवधूतिका तथा चण्डालीक चर्चा बड़ कम स्थलमे[१६] आएल अछि, तथापि जेना टीकाकार कतेको स्थलमे आक्षेप कएने छथि तेना करब आवश्यके अछि, गीतक प्रतीकसभक सम्यक् अवगमनक हेतु आ' तेँ भूमिकामे ओतेक विषयसभक उल्लेखो प्रयोजनीय भएँ गेल।

२४. समस्या अर्थक आक्षेपक नहि अछि। समस्या बनि गेल अछि ओ पूर्वग्रह जे टीकाकार तथा किछु समीक्षकक चिन्तनकेँ पकड़ि नेने अछि। ओ मूलभूत पूर्वग्रह थिक बौद्ध पारिभाषिक तत्त्वसभकेँ हिन्दूधर्मक दृष्टिएँ एकान्ततः विजातीय बुझब आ' ताही दृष्टिएँ सिद्धसाहित्यक अर्थानुसंधान वा समीक्षा करब। ततबे नहि, बौद्धिक जगतमे किछु एहनो सन धारणा देखैत छी जे बौद्धतन्त्र हिन्दूतन्त्रक विरोधी छल।

२५. संभव थिक, आगाँ प्रतिपदित किछु सत्यक अनुसंधानसँ ई पूर्वग्रह दूर भए जाए आ' एक स्वास्थ्यपूर्ण मधुर संबन्धक वातावरण निर्मित भए जाए। ताहिसँ वस्तुस्थितिहुक आदरे होएत, हिन्दूतन्त्रक सत्ता अक्षुण्ण रहत आ' सङ्ग-सङ्ग बौद्धक गौरवमय अतीतक पुनरनुसंधान होएत आ' ओर सभ मिलाए भारतक अनेकतामे एकताक भावनाकेँ उज्जीवित राखत।

१६। बोधि—स० २। अवधूती—भु० ४, वी० १। चण्डाली—भु० ८, का० ७, धा० १

## अनेकतामे एकता

२६. ई अनेकतामे एकता हमरा कोना भेटैत अछि, तकर प्रमाण अछि तन्त्रशास्त्रीय सामञ्जस्य, आलोच्य युगक प्रतिमा–लिखन–सामग्री, सिद्धाचार्य-गणक संस्कृतकृति, किछु ऐतिहासिक घटना, सामाजिक क्रान्तिमे बौद्ध-हिन्दू दूनू तन्त्रक योगदान तथा काव्यकलाक तत्कालीन प्रवृत्तिक आदर।

२७. एहिसभ प्रमाणसँ हिन्दू–बौद्धक मध्य सौमनस्य-भाव सर्वथा कोना निरूपित होइत अछि ताहि प्रश्नक सर्वाङ्गीण विचार अग्रिम ग्रन्थमे प्रस्तुत कएल जाएत, सम्प्रति चर्यागीतमे जतेक दूर धरि ओ सौमनस्य प्रतिफलित भेल अछि, तकरा दृष्टिमे रखैत किछु अनुसंधान प्रस्तुत कए रहल छी।

### तन्त्रशास्त्रीय सामञ्जस्य

२८. वस्तुतः इएह शास्त्रीय सामञ्जस्य सिद्ध करब शैवशाक्त तन्त्रक भूमिकामे, एहि शोधकार्यक उद्देश्य अछि आ' समस्त भूमिकाभागकेँ ओहीमे अर्पित कएल गेल अछि।

२९. प्रस्तुत पोथीक भूमिकाभागसँ ई स्पष्ट भए गेल होएत जे बौद्ध-हिन्दू तन्त्रमे एक जँ अनुत्तर तत्वकेँ बोधिचित्त [ परमार्थबोधिचित्त ] कहैत अछि तँ दोसर परमशिव, एक जँ नैरात्माकेँ प्रज्ञा मानि पुनः मूर्त्तिमयी कल्पना कए उपायक सङ्ग सन्नद्ध करैत अछि तँ दोसर ब्रह्मस्वरूपिणी शून्यकेँ विमर्श ( अहन्ताज्ञान ) मानि पुनः मूर्त्तिमयी कल्पना कए अर्धनारीश्वरमे परिसीमित करैत अछि, एक जँ महामुद्राक सङ्ग सुरतप्रसङ्ग–साधनकेँ मान्यता दैत अछि तँ दोसर 'पराशक्त्यात्ममिथुनसंयोगानन्दनिर्भर मैथुन' मात्र केँ मैथुन बुझैत अछि, एक जँ सकल बन्धनक मूल कुचित्तकेँ मानैत अछि तँ दोसर समस्त पाशक मूल विकल्पाश्रित चित्तकेँ मानैत अछि, एक जँ चित्तकेँ पुनः अनुशासित कए चित्तराजमे आ' अन्तमे बोधिचित्तमे परिणत देखैत अछि तँ दोसर ओकरा विकसित करैत करैत चितिक अभिन्न बनाए परमशिवमे लीन कए दैत अछि आओर ताहि हेतु एक जँ चण्डालीक अनलशिखाकेँ महासुखकमलमे लीन कए दैत अछि तँ दोसर कुण्डलिनीक विद्युत्प्रभाकेँ सहस्रारमे आत्मसात् करबकेँ अन्तिम सत्ता दैत अछि।

३०. बौद्ध-हिन्दू तन्त्रक तत्त्वसाधनामे केवल बगएबानिमे अन्तर अछि, शरीर एके अछि, प्रत्युत आत्मतत्त्वो एके अछि। एही सत्यकेँ पुसिन महाशय अपन ढंगसँ रखने छथि—"बौद्ध तन्त्र-धर्म वस्तुतः बौद्ध-हिन्दू धर्म वा शैव धर्म बौद्ध बगएमे" १७।

३१. जेना भारतीय संस्कृतिक अन्य विषयक प्रसंग क्षेत्रीय कला-भाषा-वेष-भूषादिक स्वातन्त्र्य तथा चमत्कारक अनुभव करैत ई देखल जाइत अछि जे सभक मध्य मौलिक एकते अछि आ' विविधतो परिणाममे उत्कर्षवृद्धिमे सहायके होइत अछि, तहिना दूनू तन्त्रक प्रसंग देखब उचित। बौद्धे नहि, पाञ्चरात्र, गाणपत्य तथा सौर, सभ शैव वा शाक्त तन्त्रसँ दोसर रूपक प्रतीत होएबे करत। ततबे नहि, शक्तिओहु तन्त्रमे पुनः भिन्न भिन्न आम्नायकेँ शाक्त तन्त्रसँ लक्षित कएल जाइत अछि। तेँ एहि क्रमसँ बौद्ध-हिन्दू दूनू तन्त्रकेँ भारतीय तन्त्रसँ लक्षित कए सकैत छी, कारण दूनू बगएमे भिन्न रहितहुँ पूर्वोक्त सिद्धान्त वा साधनाक दृष्टिएँ मूलतः एके अछि।

३२. एही विषयकेँ डा० दासगुप्त बड़ सुन्दर ढंगसँ सूचित कएने छथि—"तान्त्रिक धर्म मूलतः ने बौद्ध थिक आ' ने हिन्दू थिक। ई एक धार्मिक अन्तः प्रवाह थिक"१८।

३३. तिब्बती तन्त्रक गम्भीर अध्येता डा० स्टेन कोनाउ मन्त्रयानक प्रसंग विचार करैत महायानक चर्चा करैत छथि आ' मुक्तकण्ठेँ स्वीकार करैत छथि—"सङ्ग-सङ्ग ई (महायान) भारतीय जनताक गम्भीरतम प्रवृत्तिक पुनर्जागरण थिक" १९।

३४. वस्तुस्थिति ई अछि जे मूल तान्त्रिक सिद्धान्तसभ बड़ प्राचीन अछि,

---

१७। "Buddhist Tantrism is practically Buddhist Hinduism, Hinduism or Shaivism in Buddhist garb."—L. de La Valle Poussin—Lokāyat (P. 326) (उद्धृत)

१८। "Tantrism is neither Buddhist nor Hindu in origin ; it seems to be a religious undercurrent ........."—O. R. C.—P. 27

१९। "It is, at the same time, a reawakening of the deepest religious tendencies of the Indian people"

—J. B. O R, S. Vol. XI pt. I (P. 3)

जकरा केओ वैदक समयक कहैत छथि [२०] तथा केओ आदिवर्त्ती अनार्यहिक समयक मानैत छथि [२१]। किन्तु, एहूमे सन्देह नहिं जे ओहि मूलरूपमे तन्त्र प्राप्त अछि वा नहि से संदिग्ध अछि। पश्चात् आबि भिन्न भिन्न मार्गक साधक वा आचार्यसभ अपन अपन दृष्टिकोणसँ मूल सिद्धान्तकेँ देखि, ओहि सभकेँ नवीन ढंगसँ राखि ग्रंथसभ प्रस्तुत करए लगलाह, एहन एहन ग्रंथसभक समय अधिक प्राचीन नहि मानल जाएत। आधुनिक समीक्षकगण तान्त्रिक युगसँ एही समयकेँ अभिप्रेत करैत छथि। ई युग सामान्यतया छठम-सातम शताब्द थिक[२२]।

३५. जे किछु हो, एहिमे सन्देह नहि जे बौद्ध तथा हिन्दू दूनू तन्त्र मार्मिक विचारमे मतभेद नहि रखैत अछि केवल बाह्य आचारक क्रममे तथा तत्त्वसभक नाममे अन्तर भेटत, जेना पूर्वो निर्दिष्ट भेल अछि। आब किछु बाह्य साक्ष्य देखल जाए, जाहिसँ उक्त अनुसंधानमे बल अबैत अछि।

## प्रतिमालिखन-सामग्री

३६. उक्तरूपक अनेकतामे एकताक प्रमाणमे प्रतिमा-लिखनक सुदीर्घ परम्पराकेँ राखल जाए सकैत अछि। एहि शास्त्रक मूर्त्ति, खोधल प्रतिमा आ' चित्रक शोध उल्लेखनीय अछि।

---

२०। (a) The Cultural Heritage of India—Vol. IV ( P. 213 )
(b) शाक्त संप्रदायक प्राचीनताक हेतु द्रष्टव्य 'कल्याण'—शक्ति-अङ्क पृ० ५, २४३

२१। "Tāntrika usages and popular formulas were current and practised in a much earlier age; they belong to a type of thought that is primitive and among primitive peoples varies little in the course of centuries."—Lokāyat P. 322

२२। "The existrng treatises are probably for the most part at least, reproductions with additions and variations of older works, which are no longer extant, In their present form they are usually ascribed to the 6th or 7th Century of our era, but they may be considerably later."—Ibid— P. 322

३७. सर्वप्रथम ओहि मोहेंजोदड़ो–हड़प्पाक भग्नावशेषकेँ उत्कर्ष प्रदान कएल जाएत, जाहिमे अनेक शक्तिक मूर्त्ति पाओल गेल अछि आ' शक्तिपूजन तन्त्रक प्राण थिक, तेँ एहि मूर्त्तिसभकेँ सक्त प्रमाण कहि सकैत छी[२३]।

३८. डा० भट्टाचार्यक प्रतिमा–लिखन-शास्त्र [ इकोनोग्राफी ] सँ अनेक विषय ज्ञात होइत अछि। हुनक धारणा अछि जे खृष्टाब्द प्रथमहि शतीमे तक्षणकला विकसित भए गेल छल[२४]। एलोरा अजन्ताक चित्रसभसँ एहन अनुमान कए सकैत छी। साँची, भर्हुत, अमरावती आ' गान्धारक रीतिक तक्षणकलासँ बोधिसत्त्वसभक ओ तत्कालीन प्रचलित हिन्दूदेवगणक अनुसंधान होइत अछि। मगध, बंगाल, ओड़िसा, जावा तथा नेपालक अपन स्वतन्त्र कला–सम्प्रदाय छल, जे तान्त्रिक मूर्त्तिसभक अभिव्यञ्जनमे प्रतिबिम्बित भेल अछि। सारनाथ, पटना, कलकत्ता, ढाका. राजशाही, मयूरभञ्ज आदिक संग्रहालयमे धातुक मूर्त्ति तथा खोधल मूर्त्तिसँ तान्त्रिक युगक परिचय नीक जकाँ भेटि जाइत अछि[२५]।

३९. मंचुरिआक पेपिंग नगरमे सैकड़ो मूर्त्ति प्राप्त भेल। सन् १९२६ खृष्टाब्दक जुलाइमे स्टेल होल्सटेनकेँ लामा–मन्दिरमे ७८७ गोट आकृति प्राप्त भेल, किछु अन्यत्र प्राप्त भेल। एहि सभक अध्ययन कए अमेरिकाक आचार्यप्रवर वाल्टर युजीन क्लार्क एक ग्रन्थ लिखल जे १९३७ ई० मे प्रकाशित भेल[२६]।

४० बौद्धतन्त्रग्रन्थमे ३१२ गोट साधनाक उल्लेख अछि जे सातमसँ तेरहम शताब्दीक मध्यक प्रतिमा–विधानक परिचय देबामे वा अनुमान करएबामे बड़ सहायक होइत अछि[२७]।

४१. नेपालमे तिब्बती मूर्त्तिसभ अछि, से उल्लेखनीय अछि, बोधनाथक स्तूपमे १०८सँ कम बौद्ध मूर्त्ति नहि अछि, जाहिमे दश गोट मूर्त्ति तिब्बती पासभक अछि से कहल जाइत अछि[२८]।

---

२३। Lokāyat – P. 264
२४। I. B. I.— Intr. P. 5
२५। Do. — Intr. P. 5-6
२६। Do. — Intr. P. 3
२७। Do, — Intr. P. 2
२८। Do. — Intr. P. 6.

४२. उक्त समयक, आलोच्यकालक, तत्पश्चकालक स्थिति मगध, बंगाल, ओड़िसा, जावा तथा नेपालमे कोना विकसित भेल, तकर समग्र परिचयक हेतु डा० भट्टाचार्यक अनुसन्धान-ग्रन्थ बहुत दूर धरि सहायक होइत अछि। हुनक 'इकोनोग्राफी'सँ ई सुस्पष्ट भए जाएत जे कतेक दूर धरि मूर्त्तिपूजा बढ़ि गेल छल। ध्यानी मरणशील बुद्धगण, बोधिसत्त्वगण, मञ्जुश्रीवर्गक देवगण,अवलोकितेश्वर, अभिताभ, अक्षोम्य,वैरोचन, अमोघसिद्धि तथा रत्नसंभवकुलक देवगणक, जाहिमे नैरात्मा उल्लेखनीया छथि,[२९] नाम गनाएब प्रस्तुत ग्रन्थक सीमाक दृष्टिएँ प्रयोजनीय नहि बूझि पड़ैत अछि।

४३. सामूहिक देवगणमे दश दिक्पाल [ भिन्नहि नामक, हिन्दू नामक नहि ] छः दिक्पालिका, आठ उष्णीषदेव, पाँच रक्षिका, पाँच तारा [ भिन्न-भिन्न रङ्गक ] आठ गौरीकुलक देवी, चारि नृत्यमयी, चारि द्वारपालिका, चारि ज्योतिर्मयी तथा चारि पशु-आकृतिनी देवी, सभक नाम तथा सविस्तर विवरण भेटैत अछि।

४४. बौद्धदर्शनक क्षेत्रमे तथा तन्त्रक क्षेत्रमे बारह पारमिता, बारह वशिता देवी, बारह भूमि, बारह धारिणी तथा प्रतिसंवितक उल्लेख भेटैत अछि।

४५. अन्तमे निर्णीत हिन्दूदेवगणक चर्चा अत्यन्त आवश्यक। ओ हिन्दू देवतासभ, जे वज्रयानसँ आहृत भए सकलाह, महाकाल, गणपति, सरस्वती, अष्टदिक्पाल [ आकाश-पाताल छोड़ि सभ दिक्पाल ], वाराही, चामुण्डी, भृङ्गी तथा नन्दिकेश्वर छथि।

४६. बौद्ध-हिन्दू मध्य सामञ्जस्यक हेतु उल्लेखनीय छथि ब्रह्माविष्णुमहेश, धामपाद जनिका 'हरिहरब्रह्म' कहि लक्षित कएने छथि। डा० भट्टाचार्यक प्रतिमालिखन [ इकोनोग्राफी ]क पुस्तकमे वज्रयानपूजित हिन्दूदेवगणमे ब्रह्माविष्णुमहेशक नाम आओर ध्यान पर्यन्त प्राप्त अछि, जे चीनी मूर्त्तिसंग्रहक क्लार्क द्वारा अनुसंधानपर आधारित अछि[३०]।

४७. स्वतः सिद्ध अछि जे वज्रयानी सिद्ध एहि त्रिदेवकेँ आदरबुद्धया देखथि। किन्तु धामपादक गीतक अर्थयोजना देखि किछु विद्वान्केँ शङ्का उठि जाइत छन्हि। धामपाद चण्डाली-जागरणक क्रममे एक पंक्ति लिखैत छथि—

२९। I. B. I.— Intr. P. 203
३०। Do: —P. 363

"दाढइ हरिहर बाह्म भड़ा"[३१]—हरिहरब्रह्मा [ विष्णुमहेशब्रह्मा ]केँ [चण्डाली] डाहैत अछि।

४८. शङ्कामे पड़ि, संभवतः मुनिदत्तक टीकाकेँ देखि, डा० भारती लीखि देल—"ई तीनि उपनाड़ी थिक आ' हिन्दूदेवतागणकेँ नीचा देखएबाक हेतु एहि-सभकेँ त्रिदेवक संज्ञा देल गेल अछि"[३२]।

४९. डा० भारतीक ई धारणा सङ्गत नहि अछि, नीचा देखएबाक प्रश्न नहि अछि। धामपाद त्रिदेवक प्रति अश्रद्धालु निश्चित नहि छल होएताह। अश्रद्धा जँ भेटितहुँ अछि तँ टीकाकारमे। से कोना ? से स्पष्ट भए जाएत उक्त पंक्तिक टीका देखलासँ तथा प्रस्तुत आलोचनासँ। टीकामे भेटैत अछि—"ब्रह्मा इति सन्ध्यावचनसँ विड्नाड़िका बुझबाक थिक। हरि इति मूत्र- नाड़ी। हर इति शुक्रनाड़िका। एहि सभकेँ दग्धकए ऊपर जाए ललना रसनादिकेँ सेहो ( दग्ध कए )"[३३]।

५०. मुनिदत्तक द्वारा विष्ठामूत्रशुक्रनाड़ीकेँ धामपादक ब्रह्माहरिहर-प्रतीकलक्ष्य बुझल जाएब कतेक दूर धरि प्रामाणिक से देखल जाए।

५१. एहि अनुसार शुक्र-नाड़ी हर [महेश] भेल। उक्त टीकासँ इहो स्पष्ट अछि जे शुक्र-नाड़ी ललनानाड़ीसँ भिन्न नाड़ी थिक। किन्तु, ई धारणा बौद्धतन्त्रक दृष्टिएँ परम असङ्गत। बौद्धतन्त्र ललनहि नाड़ीकेँ शुक्र-नाड़ी मानैत अछि[३४]।

५२. दोसर, मुनिदत्तकेँ अपनहिसँ विरोध पड़ि जाइत छन्हि। विरुवा-पादक गीतक टीकामे ओ अवधूती नाड़ीकेँ शुक्रनाड़ी मानैत छथि[३५]। एहूठाम टीकाक जे क्रम अछि ताहिमे जँ शुक्रनाड़ीकेँ अवधूती मानल जाइत तँ 'अवधूती' शब्दक उपादान निश्चित रहैत, एहि नाड़ीक प्रति श्रद्धालु मुनिदत्त छोड़ितथि

---

३१। धा० १

३२। सिद्धसाहित्य—पृ० २१७

३३। ब्राह्मेति सन्ध्यावचनेन विड्नाड़िका बोद्धव्या। हरिरिति मूत्रनाड़ी। हर इति शुक्रनाड़िका। एता दग्ध्वा। ऊर्ध्वं ललनारसनादिकाश्च॥ च० गी० को०—पृ० १५६

३४। पाछाँ द्रष्टव्य भू० अनु० २५०।

'सिद्धसाहित्य'मे पर्यन्त ई धारणा—पृ० २१६

३५। सैव पूर्वोक्तावधूतिका——। तथा शुक्रनाड़िकया गुरोरुपदेशात् तैमपतितं बोधिचित्तं स्थैर्यं कृत्वा निस्तरङ्गरूपेण चालय॥—च० गी० को०—पृ० ११

नहि, तथापि मानि लेल जाए जे अवधूती लक्ष्य अछि, तँ क्षति कोन ? जखन तथाकथित बौद्धवन्द्या अवधूती शुक्र सन पदार्थक संवाहिका भइए गेलीह, चण्डालीक ते ऽसँ जरिए गेलीह तँ हिन्दू देवगणक अपमानक प्रश्ने कोन ? ललना-रसना तँ जरिए गेलीह, हुनक तँ गप्पे नहि हो।

५३. नहि, जेना कहल जँ अवधूतिका-दहन लक्ष्य नहि अछि, तँ निश्चित शुक्रनाड़ी अवधूतिका छोड़ि अन्य नाड़ी थिक, मुनिदत्तक टीकासँ सएह सूचित भेल। किन्तु एहिसँ हुनका अपनहिसँ विरोध भए जेतन्हि, एकठाम लिखने छथि जे अवधूतिका शुक्र नाड़ी छथि आ' पुनः एकठाम शुक्रनाड़ीक दहन देखबैत अवधूतिकाकेँ बँचएबाक हेतु दूनू नाड़ीकेँ भिन्न भिन्न नाड़ी मानि लैत छथि। ई अव्यवस्था भेल।

५४. फलतः तीनूमे कोनो एक संभावना मानए पड़त—मुनिदत्तकेँ बौद्ध [नाड़ी-]तन्त्र देखल नहि छल, हिन्दूबौद्ध सभक नाड़ीक दहन, अवधूती सन अपन वन्दनीयाक दहन पर्यन्त, देखओने छथि, अथवा अपनहिमे विरोध आबि जाइत छन्हि [एकठाम अवधूती शुक्रनाड़ी आ' एकठाम से नहि]। तीनू संभावनामे पहिल आ' अन्तिम संभावनामे मुनिदत्ताक प्रामाणिकते नष्ट भए जाइत अछि, दोसर सम्भावना सत्य मानलासँ हिन्दूक प्रति कटुताक प्रश्ने हटि जाइत अछि।

५५. तेँ हमरा जनैत टीकाक आधारपर धामपादपर निर्णय देब सर्वथा समीचीन नहि, अंशतः मात्र। वस्तुतः गीतक पंक्तिक अर्थानुसंधानक हेतु भूत-शुद्धि-कुण्डलिनीयोगक प्रकरण मानए पड़त। एहि योगमे तनुदहनक तथा समस्त तत्त्वक प्रविलयक अभिधान भेटैत अछि[३६], नामे अछि लययोग[३७]। भूमिका भागमे हम एहि योगपर स्वतंत्र विचार राखि आएल छी[३८]। एहिठाम एतबे कहबाक अछि जे ओहि आध्यात्मिक अलौकिक अनुभूतिक दशामे जँ धामपाद हरिहरब्रह्मा सन भट्टकेँ जरैत वा जरल देखल तँ से हिन्दूतन्त्रहुक दृष्टिएँ सङ्गते।

---

३६। प्रा० ता० पृ० ३८१। विशेषतः मातृका धरिक विलय द्रष्टव्य——
"महत्तत्त्वं मातृकासंज्ञकशब्दब्रह्मस्वरूपायां हृल्लेखानुभूतायां प्रकृतौ प्रविलापयामीति प्रविलाप्य तां तथाविधां नित्यशुद्धस्वभावे परमब्रह्मणि प्रविलापयामीति प्रविलापयेत्"।—प्रा० तो० पृ० ३८३

३७। The Serpent Power. Intr. P. 223

३८। भूमिका—भूतशुद्धिप्रकरण [अनु० २६५-६६], षट्चक्रभेद [अनु० २८८-९१]

५६. एहि प्रकारक समन्वयवादी दृष्टिकोणमे डा० भट्टाचार्यक त्रिदेव-मूर्तिक अनुसन्धान प्रामाणिक रूपमे सहायक भेल, तेँ ई ध्येय थिक जे प्रतिमा-लिखन-कला कतेक दूर धरि अनेकतामे एकताकेँ व्यञ्जित करैत अछि।

५७. आब एहि देवगणक विवरणमे नैरात्माक प्रसङ्ग विचार देखल जाए। नैरात्माक वाच्यार्थ बिनु आत्माक देवी होएत। शून्यवादीक शून्य आगाँ जाए मूर्त्तिरूपमे जखन कल्पित होअए लागल, तखन शून्यस्वरूपिणी भगवतीकेँ 'नैरात्मा' कहि उपासना होअए लागल[३९]। उपासनाक क्रम साकार भए गेल। एहि सत्यक सूचना भेटैत अछि डा० भट्टाचार्यक उक्त प्रतिमा-लिखन [इंकोनोग्राफी]-सम्बन्धी पुस्तकसँ। ओहिमे नैरात्माक सविधि ध्यान भेटैत अछि।

५८. नैरात्माक ध्यान भट्टाचार्यजी साधनमालासँ उद्धृत कएने छथि—"अर्धपर्यंकपर बैसलि कृष्णाङ्गी, कर्तृखर्परधारिणी, रक्तवर्तुलत्रिनेत्रा"। एहि प्रकारेँ ध्यान भेटैत अछि[४०]।

५९. सभसँ चमत्कारक अछि भगवतीक नित्यरसोत्सुक-बोधिसत्त्वालिङ्गन[४१]। बंगीय साहित्य-परिषद्में एक मूर्त्ति प्राप्त भेल, नचैत रूपमे नैरात्माक मूर्ति[४२]। ई मूर्त्ति यद्यपि ओतेक शुद्ध ध्यानक नहि अछि जतेक एक दोसर मूर्त्ति अछि, भारतीय संग्रहालयमे राखल[४३], तथापि नचैत रूपमे देवीक ध्यानसँ हुनक नित्य-रसोत्सुकता अवश्य व्यञ्जित भए सकल अछि।

६०. आब चर्यागीतक दुइ गोट गीतकेँ देखल जाए। एक गीत अछि वीणापादरचित। एहि गीतमे यद्यपि स्पष्टतः यौगिक साधनक विवरण अछि, तथापि अन्तमे एक पंक्ति अछि—"नाचन्ति वाजिल गान्ति देवी[४४]"—वज्री [पुंचिह्नधारी, शिवरूप साधक] नचैत छथि, देवी गबैत छथि। एहिठाम कहल गेल अछि साधकक नाचब, किन्तु सङ्ग सङ्ग देवीक गायनसँ ओहि नित्यरसोत्सुकताक अभिव्यञ्जन भए जाइत अछि जकर उल्लेख ध्यानमे भेल अछि। 'देवी'-पदेँ नैरात्मा लक्षित छथि वा नहि तकर प्रमाणमे टीकामे अधिक ठाम नैरात्माक

३९। I. B. I.—P. 204
४०। Do.— P. 203
४१। Do.— P. 204 आओर द्र० Fig. 149
४२। Do.— Do.
४३। Do.— Do.
४४। वी० १

चर्चा आओर एहू गीतक्रममे 'नैरात्मादिक' शब्दकेँ राखल जाए सकैत अछि। टीकाकारक "वीणापाद वज्रधरपदसँ नचैत छथि"[४५] समीचीने अछि बौद्धतन्त्रक दृष्टिएँ। वज्रयानमे वज्रक सर्वव्यापिनी कल्पनाक कारणेँ 'वज्रपद' शब्द, अन्यथा तत्त्वतः ओ शिवपद मात्र।

६१. दोसर गीत अछि शबरपादक। ओहि गीतमे आक्षेप करबाक प्रयोजन नहि अछि, शब्दतः नैरात्माक उल्लेख अछि, जँ 'नैरामणि' शब्दक प्रयोग ताहि दिनमे नैरात्माक वाचक रूपमे होइत छल हो। संभव थिक एहन प्रयोग। तँ ओहि गीतमे स्पष्टतः देल अछि—"रूबरो भुजंग नैरामणि दारी पेह्म राति पोहाइलि"[४६] तथा "सुन नैरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाइ"[४७]। एहि दून् पंक्तिमे रतिभावक मधुरतम अभिव्यञ्जन भेल अछि।

६२. यद्यपि टीकाकार "प्रेम अर्थात् कीड़ारस-अनुपमकेँ बढ़ाए"[४८] कहि एकठाम संकेतित कएने छथि, किन्तु एहिठाम आगाँ-पाछाँक सन्दर्भसँ इएह भासित होइत अछि जे योगसाधनकेँ अभिप्रेत नहि करैत छथि से नहि। किन्तु, हुनक 'कण्ठे लइआ'क एकभग्गू अर्थ 'कण्ठस्थित संभोग-चक्रमे देवीकेँ बैसाए'[४९] कएलासँ श्लिष्ट अर्थक चमत्कारक संग रसो पड़ाए जाइत अछि।

६३. संभोगक भूमिकामे उक्त गीतकेँ देखल जाए वा नहि, एहि तारतम्यमे पूर्वकथित नैरात्माक बोधिसत्त्वालिङ्गनक ध्यान तथा नृत्यपरायणताक चित्र बहुत दूर धरि, सहायक होइत अछि। नित्यरसोत्सुका भगवती, हावभावविभोर भए, नचैत [ चित्रमे ], गबैत [ वीणापादक पंक्तिमे ] बोधिसत्त्व [ वा शिवरूप बनल ] साधककेँ आलिंगन करैत छथि—एहि प्रकारक भावनामे रतिभाव संदिग्ध किएक ?

६४. एहिठाम बोधिसत्त्वक अर्थ स्पष्टे अछि, तथापि एतबा कहब आवश्यक जे वज्रयानी सिद्ध बौद्धधर्मक छाप देबाक हेतु हुनका शिवसमान अन्तिम गण्यमान-तत्त्व मानैत छलाह आ' बोधिसत्त्व-लक्षणक[५०] आशय इएह बूझि पड़ैत अछि जे

---

४५। च० गी० को०—पृ० ६०

४६। श० १,

४७। ऐजन

४८। च० गी० को०—पृ० ६४

४९। ऐजन — ऐजन

५०। कः बुद्धं कः बोधिसत्त्वं विशेषं नात्र विद्यते।
वस्तुबोधनाद् बुद्धोऽहन्तद्वस्तु बोधिसत्त्वकम्॥
—डाकार्णव [ चतुर्दशपटल ] बौ० गा० दो०—पृ० ५६

जेना 'शिवोऽहम्' तेना 'बुद्धोऽहम्' 'इत्याकारक भावना जखन आबि जाए तखन साधक बोधिसत्त्व मानल जेताह। तँ एहिमे सन्देह नहि जे जेना कौल साधक शिवोहम्-भावना जागि गेला पर शक्तिकेँ स्त्रीबुद्धया देखैत छथि, बाह्य जगतमे नारीमे प्रतिरूपित कए आ' अन्तर्जगतमे कुण्डलिनीमे प्रतिरूपित कए, तहिना बोधिसत्त्व नैरात्माकेँ देखथि से विहिते आ' तेँ शबरपादक गीतमे रतिभावक अभिव्यक्ति मानबामे तारतम्यक अवकाश नहि [ काल्पनिक रतिमे तँ लौकिकहु काव्यमे रहैत अछि, तेँ ओहू हेतु तारतम्यक प्रयोजन नहि ]।

६५. अस्तु, एहि दिशामे जे सामग्री सहायता कए सकल ताहिमे सभसँ उल्लेखनीय होएत प्रतिमा-लिखन। जतेक दूर धरि प्रामाणिक तथा निर्विवाद मूर्त्ति वा चित्र भेटैत अछि ततेक दूर धरि अन्य सूचनास्रोत नहि, तेँ उक्त रूपक विचार ओही प्रतिमा-लिखनक सम्पर्कमे कएल।

## सिद्धाचार्यक संस्कृत-कृति

६६. प्रतिमालिखनक पश्चात् जे उल्लेखनीय स्रोत अछि ताहिमे सभसँ अधिक प्रामाणिक मानल जाएत ओ संस्कृतक तान्त्रिक ग्रन्थसभ जे सम्पर्कित [ गीतिकार ] सिद्धलोकनिक अपन लिखल अछि अथवा जकरा ओ सभ आदर करैत छलाह [ से प्रामाणिक रूपमे ज्ञात अछि ]।

६७. आब गीतिकार सिद्धलोकनिक संस्कृत कृतिक नाम देखल जाए। सरहपादक सातगोट कृतिक नाम राहुलजी देने छथि[५१]—बुद्धकपालतन्त्र पञ्जिका 'ज्ञानवती', बुद्धकपालसाधन, बुद्धकपालमण्डलविधि, त्रैलोक्यवशङ्करलोकेश्वरसाधन [ तीनिगोट ], तथा त्रैलोक्यवशङ्करावलोकितेश्वरसाधन। शबरपाद तीनि गोट ग्रन्थक निर्माण कएल—वज्रयोगिनीसाधन, शून्यतादृष्टि आ' कुरुकुल्लासाधन।[५२] लुइपादक चारिगोट रचना अछि—वज्रसत्त्वसाधन, बुद्धोदय, श्रीभगवदभिसमय आओर अभिसमयविभङ्ग।[५३] दारिकपादक चक्रसंबर, कालचक्र, कङ्कालिनी तथा वज्रयोगिनीतन्त्र प्रसिद्ध अछि।[५४] हुनक शिष्या

५१। (सिद्धसरहपादकृत ) दोहाकोश-भूमिका—पृ० १६

५२। क। बौद्धगान ओ दोहा-भूमिका-पृ० २६

ख। A. I. B. E.—P. 68

५३। बौ० गा० दो०-भूमिका - पृ० २१

५४। ऐजन — ऐजन— पृ० ३०

सहजयोगिनी चिन्ता व्यक्तभावानुगततत्त्वसिद्धि लीखि लेखिकामे अग्रगण्या भेलीह।[५५]

६८. ओहि चिन्ताक शिष्य रहथिन्ह डोम्बीपाद जनिक आठ गोट पुस्तकक अनुवाद प्राप्त अछि आ' एक मूलो ग्रन्थ पाओल गेल अछि सहजसिद्धि।[५६] कुक्कुरीपाद महामायातन्त्र चलाओल, जेना डा० भट्टाचार्य कहने छथि[५७], किन्तु म० म० शास्त्रीक 'अनेक गुलि वज्रयानेर पुस्तक' शब्दसँ अनुमान कए सकैत छी जे ओ ओकर लेखको छलाह, उपासक तँ छलाहे।[५८] भुसुकुपादक प्रसङ्ग म० म० शास्त्री एक निबन्धमे निश्चित नहि छथि[५९], किन्तु दोसर निबन्धमे निश्चित रूपमे घोषित करैत छथि जे शान्तिदेव ओएह छलाह आ' तदनुसार कहि सकैत छी जे हिनक लिखल तीनि गोट संस्कृतग्रन्थ अछि—सूत्रसमुच्चय, शिक्षासमुच्चय तथा बोधिचर्यावतार, जाहिमे अन्तिम दूनू प्राप्य अछि।[६०] जेना कुक्कुरीपादक प्रसङ्ग तहिना कान्हपादक प्रसङ्ग डा० भट्टाचार्य संपुटतिलकक प्रवेश करएबाक गप्प[६१] कहैत छथि; किन्तु म० मु० शास्त्री जे हिनक ५७ गोट पोथीक संख्योल्लेख करैत छथि ओ ताहिमे दुइ गोट कृतिकेँ बंगलाक कृति कहैत छथि[६२]; ताहिसँ ई अनुमान करब सङ्गत जे अवशिष्ट कृति संस्कृतक ग्रन्थ छल ५५ गोट।

६९. विरुवापादक छिन्नमस्तासाधन उल्लेखनीय अछि हिन्दूतन्त्रक दृष्टिएँ आ' दोसर कृति अछि रक्तयमारिसाधन।[६३] महीधरपादक वायुतत्त्व-गीतिकामे जे ६३ गोट कथा अछि ताहिमे १४ गोट संस्कृत भाषामे लिखल अछि।[६४] वीणापाद वज्रडाकिनी देवीक गुह्यपूजाक प्रसङ्ग एक ग्रन्थ लिखने छथि।[६५] कम्बलाम्बरपादक प्रज्ञापारमिता उपदेश[६६] आ' अन्तमे शान्तिपादक

५५। A. I. B. E - P. 79
५६। Do. — पृ० ८०
५७। Do. — पृ० ६४
५८। बौ० गा० दो०—भूमिका—पृ० ३२
५९। ऐजन — ऐजन—पृ० ९३
६०। J. B. O. R. S. - Vol. V. Part IV - P. 502
६१। A. I. B. E.—P. 64
६२। बौ० गा० दो०—भूमिका - पृ० २४
६३। ऐजन —ऐजन पृ० २८
६४। ऐजन —ऐजन पृ० २६
६५। ऐजन —ऐजन पृ० ३१
६६। ऐजन —ऐजन पृ० २७

सहजरतिसंयोग आओर सहजयोगक्रम उल्लेखनीय अछि, ततबे नहि ई काल-चक्रयानहुपर पोथी लिखने छथि।[६७] तेंजुरमे जे एक सहजयानक पुस्तक 'सुखदुःख-द्वयपरित्याग-दृष्टि'क अनुसंधान भेल, ताहि अनुसार इहो मानि सकैत छी जे रत्नाकरशान्ति इएह कहबैत छलाह आ' उपर्युक्त पुस्तकक अतिरिक्त न्यायशास्त्रक अन्तर्व्याप्तिपर एक पुस्तक लिखने छथि।[६८]

७०. साधारणतया सभकें सिद्धक स्वनिर्मित मानल जाएत। एकाध पोथीक प्रसङ्ग 'चलाओल' शब्द भेटैत अछि, जेना कुक्कुरीपादक महामायातन्त्रक प्रसङ्ग ऊपर कहल। जे किछु हो, एहनहु पोथीकें, लिखल हो वा चलाओल, प्रस्तुत विचारक क्रममे प्रामाणिक मानले जाएत सिद्धक प्रिय रचना होएबाक कारणें।

७१. एहिमे कोनो सन्देह नहि जे सिद्धगण साधना-क्षेत्रमे अपन निर्मित वा प्रचलित उक्त पोथीसभकें मान्यता अवश्य देथि।

७२. एक विषय। उक्त पोथीसभक नाम भेटैत अछि, किन्तु अन्य बहुतहु पोथीक नाम नहि भेटैत अछि। अमुक सिद्ध बहुतो पुस्तक लिखने छलाह—तेहन विषय तँ अनेक ठाम सूचित भेटैत अछि।

७३. जेना तेना, सम्पर्कित सिद्धसभ संस्कृतक विद्वान् छलाह, बौद्धतन्त्रक साङ्गोपाङ्ग अध्ययन कएने छलाह, प्रत्युत ऊहापोह कए साधन-पद्धति सेहो चला ओल, विभिन्न तान्त्रिक मतक समन्वय कए।

७४. एहि पद्धतिक प्रसङ्ग उल्लेखनीय अछि हेवज्रतन्त्र तथा कालचक्र-यानपर आधारित साधना-पद्धति। सरोरुहवज्र, कान्हपादक गुरु जालन्धरपाद, सिद्धडोम्बीपाद तथा कम्बलाम्बरपाद हेवज्रतन्त्रकें प्रश्रय देबाक हेतु प्रसिद्ध छथि[६९]। शान्तिपाद तथा विरुवापाद कालचक्रयानपर आधारित पद्धति चला-ओल[७०]।

७५. एहि सूचनासँ सभसँ पैघ सैद्धान्तिक विषय ई अनुमित होइत अछि जे अन्तःसाधनामे, यौगिक साधनामे, उक्त चारि गोट सिद्धाचार्य अवश्य हेवज्र-तन्त्र तथा कालचक्रतन्त्रक अनुसरण करैत छल होएताह आ' पश्चात्वर्त्ती सिद्ध-

---

६७। बौ० गा० दो०—ऐजन—पृ० २८

६८। ऐजन —ऐजन—पृ० २८

६९। A. I. B. E—P. 71, 80, 64

७०। बौ० गा० दो०—भूमिका—पृ० २०

सभं सेहो हुनकेलोकनिक अनुसार चलैत छल होएताह। पूर्ववर्त्ती सिद्धहुक प्रसङ्ग विरुद्ध प्रमाण प्राप्त नहि अछि।

७६. तखन मुनिदत्ताक धारणा दोसर रूपक किएक ?

७७. निर्माणचक्र [ आधारचक्र ]क स्थानीयताक प्रसङ्ग मतभेद किएक ? एहि शङ्काक समाधानसँ पूर्व हेवज्रतन्त्रक तथा कालचक्रतन्त्रक एक मात्र प्राप्त प्रामाणिक मूलग्रन्थ श्रीकालचक्रतन्त्रक विचार देखल जाए।

७८. उक्त ई दूनू तन्त्र निर्माणचक्रक स्थान योनि मानैत अछि,[७१] योनि लिङ्ग [ मेढ़ ]-गुदाक मध्यवर्त्ती स्थानकेँ कहल जाइत अछि,[७२] आ' संएह तँ मूलाधार-हुक स्थान मानल जाइत अछि,[७३] तेँ कहि सकैत छी जे उक्त दूनू बौद्धतन्त्र निर्माणचक्रक स्थान, हिन्दूतन्त्रक समाने, मूलाधारचक्र मानैत अछि[७४]।

७९. जेना पहिने कहल, जालन्धरपाद हेवज्रतन्त्रक प्रचारक छलाह। फलतः एहिमे कोनो सन्देह नहि जे ओ निर्माणचक्रकेँ मूलाधारस्थानीये मानैत छल होएताह आ' भूमिकामे जेना विवरण देल गेल अछि, धामपाद जालन्धरक प्रिय शिष्य छलाह[७५], तेँ एहन अनुमान अवश्य कएल जाए जे ओहो निर्माण-चक्रकेँ मूलाधारस्थानीये मानैत छल होएताह।

८०. किन्तु मुनिदत्त एहि सम्भावना दिशि ध्यान नहि दए, हुनकहि

---

७१। त्रिकायं देहमध्ये तु चक्ररूपेण कथ्यते।

— — — — — — —

योनिहृत्कण्ठमध्ये तु त्रयः कायः व्यवस्थितः॥

—Hevajra Tantra Ms. P. 50 Samputikā Ms. P. 46 [ B ]

For the location of the Nirmāna-cakra in the region of the Sex-organ see also Shree Kālacakra Tantra Ms. Cambridge [ Add. 1364 ] P. 24 [ A ] —A. I. T. B. P. 152 [ Foot-note ]

७२। गुदमेढ्रान्तरं योनिः॥—शा० ति० [ सं० टी० ] पृ० ५५

७३। क। ध्वजाधा गुदशब्दोऽयं गुदस्योर्ध्वं॥—ष० च० नि०—पृ० ६-१० [पा० टि० ] [ मूलाधारचक्रक प्रसंग ]

ख। Below the genitals and above annus.

—The Serpent Power. P. 330

७४। भूमिकामे द्रष्टव्य अनु०-२६५, २७८

७५। पाछाँ भूमिका—अनु० १५ तथा ता० बौ० सा० सा०—पृ० २१८

[धामपादहिंक] गीतक एक पंक्तिक[७६] टीकामे हुनक साधनाक विरुद्ध कथा कहि देल, सेहो पुनः हुनकहि उक्ति जानि—"नाभिमे निर्माणचक्रमे हमर चण्डाली ज्वलिता भेलीह" [७७]।

८१. धामपादक गीतमे कतहु चण्डालीक जागरणक स्थान जखन नहि देल अछि, तखन तँ अनुमाने कएल जाएत। अनुमानसँ इएह सूचित होइत अछि जे धामपाद साधनाप्रसङ्गमे निश्चित कुण्डलिनी [चण्डाली]केँ मूलाधारस उठबैत छलाह, कारण, हुनक गुरु तहिना करैत छल होएताह [हेवज्रतन्त्रोक्ते वचन मानैत छल होएताह, जेना सूचना भेटैत अछि ओकर प्रचारक प्रसङ्ग]। तँ धामपादक पंक्तिक व्याख्या मुनिदत्तक व्याख्यासँ दोसर रङ्ग भए जाएत— "मूलाधारमे निर्माणचक्र [आधारचक्र] मे हमर तेजोमयी चण्डाली [कुण्डलिनी] जाग्रत भए गेलीह"।

८२. हेवज्रतन्त्र तथा कालचक्रतन्त्रसँ इएह व्याख्या अनुमोदित होएत, मुनिदत्तक नहि। तँ हुनक टीकाक अप्रामाणिकता।

८३. एहि प्रसङ्गमे प्रायः एक आओर विषयक उल्लेख अप्राकरणिक नहि होएत। यद्यपि सामान्यतया समीक्षकगण सिद्धसाहित्यक पश्चात् नाथ-साहित्यकेँ मानैत छथि, तथापि डा० द्विवेदीजीक ग्रन्थमे एहन विषय भेटैत अछि जे गीतिकार धामपाद गोरक्षनाथक समसामयिक छलाह[७८]। ताहि आधारपर ई अनुमान कए सकैत छी जे धामपाद, जेना गोरक्षनाथ तहिना, हिन्दू योगक अनुसारे चक्रक स्थान मानैत छल होएताह। नाथ-सम्प्रदायमे आधार-चक्रक स्थान मूलाधारे मानल जाइत अछि। तँ सम्भव थिक हमर धामपाद सएह मानैत छलाह।

८४. अस्तु, एहि विषयक शोध निर्भर अछि ओहि व्यापक समस्याक समाधानपर, बौद्ध-हिन्दू मध्य सम्बन्धक निर्णयपर तथा दूनूक पौर्वापर्य्यक निर्णयपर। एहि निर्णयक हेतु तिब्बती बौद्धधर्मक विभिन्न स्वरूपक अध्ययन, नेपाल-चीन-जापानक बौद्धधर्मक विभिन्न स्वरूपक अध्ययन, तथा भिन्न-भिन्न

७६। "समता जोएँ जलिल चराडाली ॥"—धा० १

७७। "नाभौ निर्माणचक्रे चराडाली ज्वलिता मम ॥"

—उक्त गीतक टीका—च० गी० को०—पृ० १५५

७८। नाथ-सम्प्रदाय—पृ० १४१

युगमे प्रचलित बौद्ध सिद्धान्तक सङ्ग सङ्ग भारतीय तन्त्रक भिन्न-भिन्न पद्धतिक अध्ययन अपेक्षित अछि।

८५. किन्तु, जेना पूर्वो कहि आएल छी, बौद्धतन्त्रकेँ विजातीय मानि आगाँ बढ़ब समुचित नहि। आपाततः विजातीयता परिलक्षित होएबे करत, से तँ भारतक संस्कृतिक विलक्षणता थिक।

८६. तँ एही सर्वव्याप्त समान धर्मक दृष्टिएँ डा० दासगुप्त विभिन्न तान्त्रिक धाराक अन्तरमे भारतीय तन्त्रक एक अन्तःसलिल प्रवाह देखैत छथि जे किछु शताब्दिअहिसँ नहि, सुदूर अतीतसँ, बहि रहल अछि। ओहि प्रवाहकेँ अपन अपन सम्प्रदायक प्रवाह सङ्ग मिलाए बौद्ध बौद्धतन्त्र कहि देल, शैव शैवतन्त्र, शाक्त शाक्ततन्त्र आ' अन्तमे वैष्णव सहजिया पर्यन्त ओकरा अपनाए सहजियातन्त्र कहि देल[७९]।

८७. एहि रूपमे हम अनेकतामे एकताक विशद परिचयमे सिद्धक पूर्ववर्त्ती हर्षवर्द्धनक समयक तथा समसामयिक पालराजाक समयक समन्वयात्मक विचार कोना सहायक होइत अछि तथा उक्त दृष्टिकोणमे कोना बल दैत अछि ताहि विषयकेँ सुस्पष्ट करबाक हेतु किछु ऐतिहासिक सूचना राखि रहल छी।

८८. जेना एहि पुस्तकक भूमिका [अनु०१५]सँ सूचित भेल होएत तथा किछु अन्य साक्ष्यसँ ज्ञात होइत अछि, सिद्धक समय पालराज्यकाले छल[८०]। गोपालसँ पालवंशी राजा लोकनि मिथिला-मगधक शासन करए लगलाह[८१]। तेँ आलोच्य केन्द्रो सामान्यतया पालहिक राज्यमे पड़ैत छल। आ' तेँ वस्तुतः राजाक तथा लोकमतक सामसामयिक प्रवृत्तिक हेतु पाल-राज्यहिक अध्ययन अपेक्षित अछि। किन्तु, इतिहासक वर्त्तमान अतीतसँ बहुधा जोड़ल रहैत अछि। ताहि दृष्टिएँ यत्किञ्चित् हर्षवर्धनहिक समयसँ सूचनासभकेँ पकड़ि प्रस्तुत करबाक प्रयास करैत छी।

---

७९। O. R. C.—Intro. XXXIV

८०। 2500 years of Buddhism—P. 231

८१। History of Mithilā—P. 204-14

## हर्षवर्द्धन-युगक सूचना

८९. आगाँ जाए पालराजालोकनिक जे धर्मिक समावेशकुशलता, मान्यता, सर्वतोमुखी प्रतिभाक परिचय भेटत से कोनो नवीन वस्तु नहि छल। ओहिसँ पूर्वहु हर्षवर्द्धन अपन शासननिपुणतासँ क्षत-विक्षत राजनीतिकेँ पुनर्गठित कए पञ्जाबसँ बङ्गाल धरिक प्रान्तकेँ समेटि लेने छलाह।

९०. हर्षवर्द्धनक राज्यकाल ६०६ ई० सँ ६४७ ई० धरि मानल जाइत अछि।[८२] इतिहाससँ ज्ञात होइत अछि जे ६४१ ई० धरि अबैत अबैत ओ बिहार (मिथिला-मगध)केँ अपन अधीनस्थ कए लेल[८३] आ' 'मगधराज' कहबए लगलाह।

९१. आलोच्य सिद्धलोकनिक स्फूर्त्तिकेन्द्र इएह प्रान्त छल। हर्षवर्द्धनक समयमे तथा तथाकथित अभ्युतोत्तर पश्चातक तिब्बती आक्रमणक समयमे[८४] कोन प्रकारक सांस्कृतिक परिवर्त्तन संभावित अछि ताहि प्रसङ्ग तत्काल आसामक राजा भास्करवर्मनक चर्चा आवश्यक बुझना जाइत अछि। एहि राजाक सङ्ग बौद्धक केहन सम्बन्ध छल ताहिसँ बौद्ध-हिन्दूक पारस्परिक सम्बन्धक निर्णय कएल जाए सकैत अछि। तेँ तकर उल्लेख आवश्यक।

९२. भारतीय राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहासमे चीनी यात्री ह्वेनसङ्गकेँ प्रामाणिक मानल जाइत अछि। ओ बौद्धयात्री पन्द्रह-सोलह वर्ष धरि [ ६२९ ई० सँ ६४५ ई० धरि ][८५] भारतमे रहलाह, अधिक समय हर्ष-वर्द्धनक राज्यमे रहि बिताओल। ताहि समयमे नालन्दाक कुलपति शीलभद्र छलाह। ह्वेनसङ्ग हुनकासँ दीक्षा लेल आ' अनेक शास्त्रक अध्ययन कएल।[८६]

९३. नालन्दामे जखन ओ अध्ययन करैत छलाह तँ एक समयमे कामरूप [ आसाम ] क राजा भास्करवर्मन् हुनका ओहिठाम अएलाह आ' हुनका कामरूप चलबाक हेतु अनुरोध कएल।

९४. एहि अनुरोधपर शीलभद्र बाजि उठलाह—"कामरूपमे एखन धरि

---

८२। O. H. I.—P.165

८३। Do. Do.

८४। History of Mithila—P. 198

८५। O. H. I.—P. 171

८६। J. B. O. R. S.—Vol. V Part IV. P. 499-500

बौद्धधर्मक प्रवेश नहि भए सकल अछि। जँ ह्वेनसङ्गक गेलासँ एहि धर्मक प्रचारमे किछु सहायता पहुँचि सकए तँ लाभक गप्प थिक" ८७।

९५. एक तँ शीलभद्र सन गुरुक हतोत्साह सन गप्प। दोसर, वस्तुतः ओहि समयमे कामरूप जाएब कतेक दुर्घट काज छल से सतरहम शताब्दक मीर जुमलाक पराभव-वर्णनसँ स्पष्ट भए जाइत अछि, जे वर्णन स्मिथ महाशय अपन इतिहासमे रखने छथि।८८ राजा तथा जनताक अभिरुचिक बिनु ककरो जाएब कठिन छल, विशेषतः शैवसँ भिन्न धर्मक लोकक हेतु; कारण, राजा शैव छलाह।८९

९६. एहि प्रकारक कठिनता रहितहुँ भास्करवर्मनक अनुरोधकेँ ह्वेनसङ्ग टारल नहि, हर्षवर्द्धनहुकेँ अप्रिय लगबाक प्रश्न नहि छल; कारण, कामरूपराजाक सङ्ग मधुर सम्बन्ध छलन्हि।९० फलतः ह्वेनसङ्ग कामरूप गेलाह। इतिहाससँ इहो ज्ञात होइत अछि जे हुनका ओतए रहबामे मन लगैत छलन्हि, कारण ओतए रहि ओ आसामक समग्र वृत्तान्त लिखब आरम्भ कए देल। किन्तु तावत् बीचहिमे हर्षवर्द्धन भास्करवर्मनक सङ्ग हुनका बजाए लेल। तत्पश्चात् ह्वेनसङ्ग कन्नौज तथा प्रयागक सभामे उपस्थित भेलाह, ओ बौद्ध सभा हर्षवर्द्धनक प्रधानताने सुसम्पन्न भेल।९१

९७. ई तँ भेल भास्करवर्मनक तथा कामरूपक प्रसङ्ग। एहि शैव-शाक्त केन्द्रसँ ९२ अतिरिक्तहु हिन्दू-केन्द्रसँ ह्वेनसङ्ग [युवानच्वाङ्ग] कम प्रेरणा ग्रहण नहि कएल।

९८. सभसँ प्रभावित भेलाह ओ काशी-विश्वनाथक प्रति तीर्थयात्रीक श्रद्धा देखि। ओ मुक्त कण्ठेँ बाजि उठलाह—"एहि [विश्वनाथक] मूर्त्तिक

---

८७। J. B. O. R. S.—Vol. V Part IV. P. 500

८८। O. H. I.—P. 179

८९। सिद्धसाहित्य—पृ० ६७

९०। भा० इ० स०—पृ० ८०-८१

९१। 2500 years of Buddhism—P. 271-72

९२। क। सिद्धसाहित्य—पृ० ६३

ख। O. H. I.—P. 180

दर्शन कए भक्त श्रद्धासँ विह्वल भए जाइत छथि आ' हुनका बूझि पड़ैत छन्हि जे भगवान् स्वयं सोझाँमे ठाढ़ छथि"[९३]।

९९. यात्रा-विवरणसँ जेना उक्तरूपक भावुकता प्रकट भेल अछि तहिना प्रकट होइत अछि हुनक हिन्दूयोगक प्रति आदर, तेँ ने ओ प्रयागमे हठयोगी सभकेँ देखि 'दंग' रहि गेलाह।[९४]

१००. ह्वेनसङ्ग [युवानच्वाङ्ग]क समस्त स्फूर्त्ति हर्षवर्द्धनहिपर निर्भर छल। से हर्षवर्द्धन प्रसिद्ध बौद्ध राजा रहितहुँ शिवभक्त केहन छलाह, से हुनक कुलक इतिहास पढ़लासँ अनायास सुस्पष्ट भए जाएत।[९५] बौद्ध सभामे [प्रयाग तथा कन्नौजमे] भाग लए जहिना ओ बौद्ध भिक्षुकक आदर लेल[९६] तहिना पाँच सए भिक्षुकक सङ्ग हजार ब्राह्मणकेँ भोजन कराए ओ ब्राह्मण-धर्मक प्रतिष्ठा प्राप्त कएल।[९७]

१०१. एहि स्वरूपक सौमनस्यपूर्ण सम्बन्धक सूचनासँ ई अनुमान करब असङ्गत नहि जे बौद्ध धर्म हिन्दूक निकट आबि गेल[९८] आ' बौद्धक इतिहाससँ एकर युक्तिओ ज्ञात भए जाएत। ओ युक्ति थिक योगाचारक प्रवेश तथा प्रचार। ई कहब असमीचीन नहि होएत जे मूलतः योगाचारक सिद्धान्त चिरप्रचलित हिन्दूयोग-दर्शनसँ किञ्चिते अन्तर रखैत अछि—चित्तक अनुशासनपर दूनू समानरूपक जोर दैत अछि, शब्द जे रहए।[९९] तहिना अद्वैतवादक[१००] कारणेँ वेदान्तसँ एकान्ततः भिन्न नहि अछि। फलतः "बौद्धकालहुमे हिन्दू धर्मक भारतीय जनतापरसँ प्रभाव ऊठि नहि गेल छल आओर ओ आइए काल्हि जकाँ ताहू समयमे अपन विभिन्न आ' विलक्षण रूपसभमे स्फूर्त्ति आ' प्रेरणाक स्रोत बनल छल"।[१०१]

---

९३। भा० इ० स०—पृ० ८२

९४। ऐजन —ऐजन

९५। I. G. I.—P. 295-96 (Vol. II)

९६। Do. —P. 297

९७। भा० इ० स०—पृ० ८०

९८। ऐजन—पृ०८६

९९। ता० बौ० सा० सा०—पृ० ६६ पर आधारित

१००। बौ० द० मी०—पृ० २३६

१०१। भा० इ० स०—पृ० ८३

१०२. उक्त लेखक तँ योगाचारहिक प्रसङ्ग एतेक दूर धरि स्पष्टतः कहि देल जे बौद्धमत हिन्दूमतक एकदमे लग चल गेल।[१०२]

१०३. संभव थिक जे एकर पश्चातक इतिहाससँ किछु विराट् परिवर्त्तन ज्ञात वा अनुमित भए सकए, तेँ पालराज्य आ' हर्षवर्द्धनक मध्यक परिस्थितिपर विचार कएल जाए।

## मध्यवर्त्ती समय

१०४. किछु इतिहासकार हर्षवर्द्धनक अभ्युतोत्तरे तिब्बतीक शासनयुग मानैत छथि। ताहि वृत्तान्तक अनुसार कामरूपक राजा भास्करवर्मन् कन्नौजक प्रतिपक्षी भए गेलाह, ई घटना पुलकेशिन् द्वितीय द्वारा हर्षवर्द्धनक पराजयक पश्चात् भेल, से कहल जाइत अछि।[१०३]

१०५. कहल जाइत अछि जे भास्करवर्मन् तिब्बतीकेँ सहायता कएल। किन्तु डा० ठाकुर एहि प्रकारक विचारसँ सहमत नहि छथि। ओ सप्रमाण, सयुक्ति, ई सिद्ध कएने छथि जे तिब्बतक शासन कहिओ नहि भेल, जँ भेलो होएत तँ किछुए दिनक हेतु, जाहिमे कोनो उल्लेखनीय घटना नहि।[१०४] हर्षक पश्चात् मिथिला-मगध हर्षक सामन्त-राजा मगधराज अदित्यसेनक प्रभुता मे आबि गेल। आदित्यसेनक पश्चात् थोड़ेक दिनक हेतु छोट छोट राजा देवगुप्त तृतीय, विष्णुगुप्त तथा जीवितगुप्तक शासन रहल। ई सभ सन ६४७ ई० सँ आठम शताब्दीक आरम्भ धरि, पचास-साठि वर्ष मात्र, रहलाह। पुनः किछु दिन अराजकताक समय छल आ' सन् ७५० ई० मे तँ पालवंशक राज्यसत्ता आबिए गेल।[१०५]

१०६. एहि समयमे जँ तिब्बती विजय प्रामाणिक, तँ किछु गम्भीर स्थिति मानलो जाए सकैत अछि। किन्तु से सिद्ध नहि अछि। तखन ई कहि सकैत छी जे इतिहाससँ कोनो तेहन घटना नहि सूचित होइत अछि जे बौद्ध-हिन्दूक मध्यक सामञ्जस्यकेँ छिन्न-भिन्न कए सकितए।

---

१०२। भा० इ० स०—पृ० ८६

१०३। History of Mithilā—P. 196-99

१०४। क। Do. —P. 199-201

ख। भा० इ० स० [ पृ० ८१ ]क मत सेहो एहने

१०५। History of Mithilā—P. 204-205

१०७. आलोच्य युग [ पालयुग ] सँ पूर्व बौद्धधर्मक प्रसङ्ग दू चारि शब्द कहब आवश्यक बुझना जाइत अछि।

१०८. पूर्ववर्ती यान [ हीनयान-महायान ]क साहित्य ततेक विपुल भए गेल छल आ' तेहन कठिन छल जे समग्र पढ़ि जाएब तथा बुझब असंभव भए गेल। फलतः जेना अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिताक संक्षिप्त रूप शतश्लोकी प्रज्ञापारमिता बनल तहिना संक्षिप्त सरल पोथीसभक निर्माण होअए लागल[१०६], एहि प्रसङ्ग डा० भट्टाचार्य कहैत छथि—"ई कोन आश्चर्यक गप्प जे एहि प्रतिकूल परिस्थितिमे बौद्धधर्म नष्ट भए गेल आ' लोक सरल आ' सुलभ मुक्तिक उपाय दिशि, अन्धविश्वासी बनि दौड़ए लागल ?"[१०७]

१०९. एहि धार्मिक पृष्ठभूमिमे हमरा बौद्धतन्त्रकेँ देखबाक अछि, सङ्ग सङ्ग, जेना पहिनहु किछु सूचित कएल, योगाचारक तत्त्व अएलासँ बौद्ध हिन्दूक निकट आबि गेलाह।

११०. डा० पण्णीकरक मत छन्हि, जेना पूर्वहु कहल गेल अछि, जे योगाचार द्वारा जे बौद्धमतक कायापलट भेल तकर श्रेय नालन्दाकेँ प्राप्त होएत,[१०८] योगाचारमे चित्तविकारक उपशमनपर जे जोर देल गेल से हिन्दूमतक निकट ओकरा आनि देल।[१०९]

१११. अस्तु। योगाचारक विषयसभकेँ लए पुनः आपेक्षिक सरल मार्ग वज्रयानक प्रवर्त्तन भेल।

११२. डा० भट्टाचार्य वज्रयानक मूल श्रीगुह्यसमाजतन्त्रमे देखैत छथि तथा असङ्गक समयक रचना एकरा कहैत छथि आ' इहो कहैत छथि जे असङ्ग तेसर शताब्दीमे भेलाह।[११०] किन्तु असङ्गक रचना थिक उक्त ग्रन्थ से विचार डा० शीतांशुशेखर बागची प्रभृति विद्वद्गणकेँ मान्य नहि छन्हि जकर हेतुओ ओ सभ प्रस्तुत कएने छथि।[१११] उक्त डा० बागची महाशय मञ्जुश्रीमूलकल्पहुक

---

१०६। A. I. B. E.—P. 30-31

१०७। Do. —P 31

१०८। भा० इ० स०—पृ० ८६

१०९। ता० बौ० सा० सा०—पृ० ६६ पर आधारित,

११०। A. I. B. E.—P. 62

१११ क। श्री गु० स० त०—प्राक्कथन—पृ० xi—xii

ख। ता० बौ० सा० सा०—पृ० ६१

ग। सिद्धसाहित्य—पृ० १३७

प्रसङ्ग किछु कहब समीचीन नहि बुझैत छथि प्रमाणाभावेँ,[११२] डा० भट्टाचार्य ओकरा दोसर शताब्दीक कहने छथि,[११३] डा० बागचीकेँ से मान्य नहि ।

११३. फलतः तान्त्रिक दृष्टिएँ वज्रयानक समयकेँ चौरासी सिद्धक समयसँ समीकरण करए पड़त । जेहो विद्वद्वर तन्त्रकेँ दोसर-तेसर शताब्दी वा तासँ पूर्व लए गेलाह सेहो तँ ई स्वीकार करितहिँ छथि जे ३०० वर्षक पश्चात्, विशेष-रूपमे ८४ सिद्धक उपदेश तथा रहस्यवादी गीत अथवा सिद्धक शिष्य द्वारा, एहिमे गति आएल ।[११४]

## पालराज्यमे सिद्धक आदर

११४. डा० भारती ऐतिहासिक आधारपर पालराजालोकनिक, राज्याभिषेक-तिथि दैत एक सूची प्रस्तुत करैत छथि[११५]—१। गोपाल १ [ ७५० ई० ], २। धर्मपाल [ ७७० ई० ], ३। देवपाल [ ८१० ई० ], ४। विग्रहपाल १ [ शूरपाल ] [ ८५० ई० ], ५। नारायणपाल [ ८५४ ई० ], ६। राज्यपाल [ ९०८ ई० ], ७। गोपाल २ [ ९४० ई० ], ८। विग्रहपाल २ [ ९६० ई० ], ९। महीपाल १ [ ९८८ ई० ], १०। नयपाल [ १०३८ ई० ], ११। विग्रहपाल ३ [१०५५ ई०], १२। महीपाल २ [ १०७० ई० ], १३। शूरपाल २ [१०७५ ई०], १४। रामपाल २ [ १०७७ ई० ], १५। कुमारपाल [ ११२० ई० ], १६। गोपाल ३ [ ११२५ ई० ], १७। मदनपाल [ ११४० ई० ], १८। गोविन्द-पाल [ ११५५ ई० ]।

११५. एहि राजालोकनिक सङ्ग वज्रयानी सिद्धलोकनिक केहन सम्बन्ध छल, ताहि प्रसङ्ग जे सूचना विभिन्न सहायकसामग्रीसँ प्राप्त भेल तकरा प्रस्तुत कए रहल छी। सूचना प्रस्तुत करबासँ पूर्व एक विषय कहब आवश्यक, भूमिकारूपमे ।

११६. राहुलजी जे सस्क्य बिहारक सूचीक अनुसार सिद्धक वंशवृत्त-विवरण [ शिष्यानुसार ] प्रस्तुत कएने छथि[११६] से डा० भारती तथा श्री-

११२। श्री गु० स० त०—प्राक्कथन—P. xi–xii

११३। A. I. B. E.—P. 62

११४। Do. —P. 34

११५। सिद्धसाहित्य—पृ० ४८५

११६। दोहाकोश [ सरहपादकृत ]—पृ० १८-२२ [ भूमिका ]

नागेन्द्रनाथ उपाध्याय दूनू अनुसंधानी व्यक्तिसँ समादृत भेल। विभिन्न सूचीकेँ देखि, राहुलजीक विवरण नीक जकाँ निरीक्षण-परीक्षण कए ओसभ, किछु आपत्ति रहितहुँ, ओकरा प्रश्रय देल, प्रश्रय देबाक हेतुओ अपन[११७] अपन[११८] पोथीमे दए देने छथि। तेँ अपन एहि पुस्तकक भूमिकामे हम ओकरा मान्यता देल।[११९] ओहि विवरणक सङ्ग उक्त राज-विवरणकेँ तुलना कएलासँ स्पष्ट भए जाएत जे वस्तुतः महीपाल [प्रथमहि] धरि वज्रयानी सिद्धक परम्परा रहल।

११७. ई परम्परा आदि सिद्ध सरहपादसँ[१२०] प्रारम्भ भेल पालवंशक द्वितीय राजा धर्मपालक समयमे,[१२१] ताहिसँ पूर्व केवल लोकतन्त्रक प्रचारक गप्प भेटैत अछि धर्मपालक पूर्ववर्त्ती राजा गोपाल [प्रथम]क प्रसङ्ग।[१२२] कहिआ धरि ई परम्परा रहल तकर आभास देबामे शान्तिपादक समकालीन दीपङ्करक धार्मिक स्फूर्त्तिकेँ राखल जाए सकैत अछि, आगाँ सविस्तर सप्रमाण विचार कएल जाएत। ताहिसँ ई सत्य प्रमाणित भए जाएत जे दीपङ्करक तिब्बत गेलापर, भारतक बौद्ध स्फूर्त्ति तिब्बत चल गेल। ओ नेपाल होइत गेलाह तेँ ओतए किछु अक्षुण्ण प्रभाव छोड़ि देल।[१२३] फलतः भारतमे बौद्धक स्थिति दुर्बल भए गेल, मठसभ नष्ट भए गेल आ' कतूको भिक्षु नेपाल-तिब्बत पड़ाए गेलाह।[१२४]

११८. जेना काल-विवरणसँ ज्ञात भेल होएत, शान्तिपाद महीपाल [प्रथम]क समयमे भेलाह[१२५]। एमहर ई कथा भेटैत अछि जे दीपङ्कर शान्ति-

---

११७। सिद्धसाहित्य—पृ० ३३,४०

११८। ता० बौ० सा० सा०—पृ० २१६

११९। भूमिका—अनु० १५ [उपर्युक्त तिथिसँ ओहि सूचीमे केवल एक वर्षक अन्तर भेटत]

१२० क। सिद्धसाहित्य—पृ० ४७-४८

ख। दोहाकोश [सरहपादकृत]—पृ० १८ [भूमिका]

१२१। ऐजन—पृ० १२

१२२। सिद्धसाहित्य—पृ० ६६

१२३। 2500 years of Buddhism—P. 235

१२४। Do. —P. 7

१२५। भूमिका—अनु० १५

पानुक सङ्ग रहल छलाह [१२६]। ताहिसँ ई निश्चित होइत अछि जे अन्तिम सिद्ध शान्तिपादे छलाह जेना पहिनहु, कालहुकेँ देखि, प्रतीत भेल होएत। दोसर, महीपालक पश्चात् नयपालक समयमे बौद्धसाधनाक स्थिति तेहने भए गेल जे नेपालसँ दीपङ्कर हुनका पत्र लिखल [१२७], सम्भवतः खेदपूर्ण। ततबे नहि, तिब्बत जाए जे दीपङ्कर कालचक्र [–यान] पर एक पुस्तक लिखल [१२८], ताहिसँ इहो अनुमान होइत अछि जे बौद्धक सङ्ग ओकर तान्त्रिको स्वरूप तिब्बत चल गेल।

११९. प्रायः एहीसभकेँ देखि राहुल सांकृत्यायन डोम्पटनपाक एहि उक्तिकेँ अपन निबन्धमे सत्य घोषित करैत छथि—"जाहि समयमे ओ शिक्षक भारत छोड़ल, बौद्ध धर्म, मानू जे, अपन निम्नतम सीमापर चल गेल छल" [१२९]।

१२०. एहि स्थितिमे जाए एहन अनुमान कए सकैत छी जे बौद्ध धर्मक अवशेष, जकर अर्थ ताहि समयक ओकर स्वरूपक दृष्टिएँ बौद्धतन्त्रक अवशेष भेल, हिन्दू धर्मक [स्वतः हिन्दूतन्त्रक] उदरस्थ भए गेल [१३०] जाहिमे पालराज्यक समाप्तिक सङ्ग यवनक आक्रमण सेहो उत्तरदायी भेल [१३१]।

१२१. तँ एहि दृष्टिएँ नयपालक पश्चात् बौद्ध स्फूर्त्तिक प्रश्न नहि उठैत अछि। तखन एक गोट घटनो भेटैत अछि रामपालक समयक। ताहि घटनाक आधारपर ई अनुमान कए सकैत छी जे पालराजालोकनि चिन्तित छलाह बौद्ध धर्मकेँ पुनरुज्जीवित करबाक हेतु,तँ तन्त्र छोड़ि पुनः परोपकारक भावनाकेँ प्रसारित करबाक हेतु राजा अभयाकर [अभयङ्कर] गुप्तकेँ भार देल आ' ताहिसँ गुप्त लोकप्रियो भेलाह [१३२]। अस्तु, सिद्धक स्फूर्त्तिक आब प्रश्न नहि रहल, विशेषतः साहित्यकार सिद्धक स्फूर्त्तिक, राहुलजीक सूचीनिर्दिष्ट सत्य प्रामाणिक प्रतीत होइत अछि [१३३]। कालक सीमाद्वयक विचारक पश्चात् आब राजाविशेषसभक सिद्धक प्रति सम्मान देखल जाए।

---

१२६। 2500 years of Buddhism—P. 230
१२७। Do.— P. 236
१२८। Do.— P. 237
१२९। Do.— (In Tibet) P. 235
१३०। भा० इ० स०—पृ० ८६, १०६, ११४
१३१। क। सिद्धसाहित्य—पृ० ७४
ख। भा० इ० स०—पृ० १२०
१३२। J. B. O. R. S.—Vol. V Pt. II P. 179
१३३। द्र० पा० टि० १२५ ऊपर.

## राजाक द्वारा सम्मान

१२२. कोनहु व्यक्तिक वा संस्थाक आदरक मापदण्ड ताहि दिनमे राजाक कृत आदर मानल जाइत छल। राजाक आदरक अर्थ लोकक आदर कोना ताहिपर आगाँ विचार कएल जाएत।

१२३. तत्काल किछु छिटफुट प्रमाणक आधारपर पालवंशीय तथा ताहि वंशक समानान्तर किछु अन्यहु राजकुलक सङ्ग सिद्धक सन्बन्ध केहन रहल तकर विचार प्रस्तुत कएल जाइत अछि।

१२४. पालराज्यक राजालोकनिमे प्रथम राजा गोपालकेँ मानि सकैत छी, जनिक समय ७०० ई० सँ ८१० ई० धरिमानल जाइत अछि। हिनक समयमे सिद्धक तँ नहि, किन्तु लोकप्रचलित तन्त्रक आदर अवश्य भेल[१३४]।

१२५. गोपालक पुत्र राजा धर्मपाल [ ७७० ई०–८१० ई० ] छलाह। ओ बौद्धभिक्षुक प्रति कतेक दयालु छलाह से हुनक सपत्नीक स्वर्णक तुलादानसँ स्पष्ट अछि[१३५] आओर विक्रमशिलाक शिलान्याससँ प्रमाणित होइत अछि[१३६]। राहुलजीक मतेँ सरहपाद शान्तरक्षितशिष्य हरिभद्रक शिष्य छलाह जे धर्मपालक समकालीन छलाह[१३७]। कहल जाइत अछि जे सरहपाद एक राजा रत्नपालकेँ अपन शिष्य बनाए लेल[१३८], रत्नपाल के छलाह[१३९] से इतिहाससँ समीचीन नहिओ रहैत, तारानाथक ई धारणा आदरणीय थिक। सम्भव थिक ओही कुलक कोनो राजकुमार छल होएताह, तारानाथ हुनका राजा कहि देने होथि, अन्यत्रो से प्रथा भेटैत अछि। ओ राजा ५ लाख प्रजाक सङ्ग वज्रयानमे सरहपाद द्वारा दीक्षित भेलाह, ई अवश्य उल्लेखनीय घटना थिक[१४०]।

१२६. ततबे नहि, राजा धर्मपालक कायस्थ रहथिन्ह लुइपाद जे सरह–

१३४। सिद्धसाहित्य--पृ० ६६

१३५। सिद्धसाहित्य—पृ० ६६

१३६। क। ऐजन — ऐजन

ख। 2500 Years of Buddhism–P. 230

१३७। दोहाकोश [ सरहपादकृत ]–भूमिका पृ० १२

१३८। सिद्धसाहित्य—पृ० ५०

१३९। ऐजन — पृ० ५०, ४४

१४०। ऐजन — पृ० ५०

पादक शिष्य शबरपादक विद्यार्थी रहथिन्ह [१४१]। इहो सम्बन्ध धर्मपालक समयमे सरहक प्रतिष्ठाक द्योतक थिक।

१२७. धर्मपालक पश्चात् देवपाल राजा भेलाह, हिनकहि समयमे काह्नपाद भेलाह, जकर उल्लेख साहित्यिक इतिहासमे सेहो भेटैत अछि [१४२]।

१२८. सभसँ उल्लेखनीय छथि महीपाल, जनिक समयमे शान्तिपाद विक्रमशीलमे छलाह, हुनकासँ ( शान्तिपादसँ ) दीपङ्कर तान्त्रिक दीक्षा लेल [१४३] तथा जावा-सुमात्रासँ घूमि ओ राजाक द्वारा विक्रमशीलक अध्यक्ष नियुक्त भेलाह [१४४]।

१२९. महीपालक पश्चात् नयपालहुक समयमे दीपङ्कर छलाह, राजाकें राजनीतिक परामर्श सेहो दैत छलथिन्ह अवसर-अवसरपर, तान्त्रिक आतिशय्यपर दीपङ्करक ध्यान गेल ओ संशोधित करए लगलाह आ' ताही हेतु तिब्बतहुसँ आमन्त्रण [१४५]। अस्तु, भारतक १०८ मठक भार हुनके देल गेल। काह्नपादक उपशिष्य अवधूतीपाद सेहो हिनक सम्पर्कमे आएल छलाह. शान्तिपादक सङ्ग ओहो हिनका तान्त्रिक विषयकें सूचना देबामे सहायक भेलाह [१४६]।

१३०. पालराजालोकनि तँ नीक जकाँ बौद्ध छलाहे जे एहि राजकुलक उत्साह देखि किछु अन्यहु कुलक राजासभ सिद्धक प्रति श्रद्धालु बनि गेलाह। लुइपादक शिष्य सिद्ध दारिकपाद पहिने ओड़ीसाक राजा छलाह। ओहि राजाक मन्त्रिओ ढेंकीपाद लुइकें गुरु मानल [१४७]। दारिकपादक शिष्या चिन्ताक तथा विरुवापादक शिष्य सिद्ध डोम्बीपाद सेहो मगधराजे छलाह पहिने [१४८]। तहिना कम्बलाम्बरपाद राजकुमार छलाह [१४९]।

---

१४१। क। सिद्धसाहित्य—पृ० ५१

ख। दोहाकोश [ सरहपादकृत ] – भूमिका पृ० १२

१४२। हि० सा० आ० इ० [ भाग १ ] पृ० ४६०

१४३। 2500 Years of Buddhism—P. 230

१४४। सिद्धसाहित्य—पृ० ७२

१४५। ऐजन — पृ० ७२

१४६। 2500 Years of Buddhism—P. 230

१४७। सिद्धसाहित्य—पृ० ५१

१४८। ऐजन — पृ० ५२

१४९। ऐजन — पृ० ५२-५३

१३१. काह्नक गुरु जालन्धरपाद पहिने राजा गोपीचन्दसँ सताओल गेलाह, किन्तु पश्चात् ओ राजा हुनक कट्टर अनुयायी भए राजपाट छोड़ि देल। एहि राजाक चर्चा मयनावती-कथामे भेटैत अछि [१५०]। इतिहाससँ एतबे ज्ञात भए सकल अछि जे मयनावती गोविन्दक माए रहथिन्ह [१५१] गोविन्दचन्द्र चन्द्रकुलक अन्तिम राजा ललितचन्द्रसँ एके खाढ़ी ऊपर रहथि तथा महीपालक समकालीन रहथि, जनिक समयमे गजेन्द्र चोलक आक्रमण भेल [१५२]। एहिसँ एतबे केवल अनुमान कए सकैत छी जे, गोपीचन्द्र जँ चन्द्रकुलक रहथि [ जकर संभावना अछि. तँ गोविन्दचन्द्र-मयनामती कथामे ], तँ निश्चित पालराजा महीपालसँ पूर्व भेल हेताह, तँ देवपालक समयमे छलाह ताहिमे आपत्ति नहि आओत, आ' ई संभावना उपयुक्त, कारण, काह्नक गुरु जालन्धरपाद देवपालहिक समयमे छल होएताह, जेना काह्न छलाह [१५३]।

१३२. अस्तु, एहि घटनासँ पालराजाक तथा मगध-ओड़ीसाक अन्यहु राजा-लोकनिक सिद्धक प्रति आदरभाव व्यक्त होइत अछि। गुरु मानिलेब, राज्य छोड़ि हुनक परम्परामे मीलि जाएब—ताहिसँ अधिक आदर आओर भेटि कए सकैत अछि ? ई विशेषता थिक पालयुगक, जकर उल्लेख राहुलजी कएने छथि [१५४]।

## लोककृत आदर

१३३. पूर्वपृष्ठसभसँ ई सूचित भए गेल होएत जे राजाक द्वारा सिद्धगण-केँ कतेक दूर धरि सम्मान भेटैत छल। आब ई देखबाक अछि जे ताहि समयमे लोकमत केहन छल।

१३४. ताहि प्रसंग प्रायः किछु घटना मात्र पर्याप्त थिक। सिद्ध सरहपाद सन क्रान्तिवादीकेँ राजा रत्नपाल ५ लाख जनताक संग गुरु मानल[१५५]। एक राजमन्त्री ढेंकीपाद पर्यन्त एक सामान्य कायस्थ लुइपादक शिष्य बन-लाह[१५६]। जे प्रजा मगधराज डोम्बीपादकेँ महामुद्रासाधनक हेतुएँ, रहस्यमय

१५०। सिद्धसाहित्य— पृ० ५४
१५१। बंगला और उसका साहित्य – पृ० २८
१५२। सिद्धसाहित्य—पृ० ७१
१५३। ऊपर द्रष्टव्य—अनु० १२७
१५४। दोहाकोश [ सरहपादकृत ]—भूमिका—पृ० ३
१५५। सिद्धसाहित्य—पृ० ५०
१५६। ऐजन —पृ० ५१

गुणकेँ नहि चीन्हि, एक दिन निर्वासित कए देलक से प्रजा [ जनता ] हिनका पुनः जखन चिन्हलक तँ शिष्यत्वे स्वीकार कए लेलक[१५७]।

१३५. एहि ठोस सूचनासँ अतिरिक्ति किछु अन्य विशेषता अछि, जाहिसँ लोकमतक अनुसंधान होइत अछि। ताहिमे सर्वप्रथम उल्लेखनीय अछि निम्न-वर्गक व्यक्तिक अङ्गीकार सिद्धसमाजमे। किछु सिद्ध अपनो शूद्रे छलाह यथा राहुलजीक सूचीक अनुसार कङ्कणपाद तथा महीधरपाद। गुंडरीपाद चिड़इमार छलाह। तन्त्रीपाद जोलहा छलाह। ताहिसँ ऊपर वर्ण मानल जाइत अछि क्षत्रिय, ताहू समाजसँ किछु सिद्ध आएल छलाह, जेना शबरपाद तथा डोम्बीपाद;[१५८] राजाक विचार पूर्वहि भए गेल अछि। एकर अतिरिक्त विवाह द्वारा निम्न-वर्णकेँ अङ्गीकारक हेतु दृष्टान्तमे राखल जाए सकैत छथि सरहपाद, जे शरकन्याकेँ शक्ति बनाओल[१५९]। जँ चर्यागीतक श्लिष्ट अर्थ प्रमाण तँ काह्नपादहुक शक्ति डोमिनि रहथिन्ह।

१३६. ई सभ किछु तेहन प्रमाण अछि जे स्पष्ट रूपमे जाति-पाँतिक संकीर्ण परिधिसँ बहिरुन्मुखता सूचित करैत अछि आ' एहिसँ स्वतन्त्र जातिक कल्पना होइत अछि—ओ जाति छल वज्रयानी वा सहजयानी। ओकर रहस्यमे जाहि व्यक्तिकेँ श्रद्धा होन्हि से ओहि जातिक बनि जाथि, शाक्ततन्त्रक शब्दमे अपनाकेँ 'द्विजोत्तम' बुझथि आ' ताहूसँ विशेष गप्प ई जे आनो तहिना बुझन्हि।

१३७. लोकमतक संग कोना चलैत छलाह तकर सूत्ररूप प्रमाण अछि सिद्ध सरहपादक एहन एहन वाक्य——

"हम ब्राह्मण छी, किन्तु निम्न वर्णक कन्याक संग रहैत छी; जाति वा अजाति, पुण्य वा पाप हमरा हेतु समाने अछि[१६०]।"

१३८. आ' एहिमे कोनो संदेह नहि जे, जेना बहुसंख्यकक मनोवृत्तिपर लोकमतक निर्णय आइओ काल्हि होइत अछि तेना जँ मानल जाए तँ, अवश्य लोकमत एहन एहन सिद्धक संग छल।

१५७। सिद्धसाहित्य—पृ० ५२
१५८। भूमिका— अनु० १५
१५९। ऐजन— अनु० १६
१६०। सिद्धसाहित्य—पृ० ५०

१३९. ततबे नहि। एहिसँ पूर्वक प्रकरणमे जे सिद्धलोकनिक सम्मान राजा द्वारा सूचित कएल गेल अछि, तकरो अर्थ ई कथमपि नहि बुझबाक थिक जे जनपदसँ फराकक एक व्यक्ति, अपन संकीर्ण ज्ञान आ' दुर्व्यसनमे बान्हल एक व्यक्ति मात्र, सिद्धक आदर कएल जे जनता नहि पसिन्न करैत छल।

१४०. ई प्रमाणित भए जाएत नीक जकाँ जखन तत्कालीन राजनीतिक, अर्थनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक गठनपर ध्यान जाएत। तेँ आगाँ देखल जाए।



# पालयुगक विशेषता

## ( सिद्धसाहित्यक पीठिका )

## राजनीतिक—अर्थनैतिक

१४१. इतिहासमे भेटैत अछि—गोपाल एहि अस्तव्यस्तताक प्रतिफलन छलाह, ओ जनतासँ बङ्गालक [ आगाँ जाए मिथिला-मगधक सेहो ] राजा चुनल गेलाह[१६१]।

१४२. एहि प्रकारक सूचना दिशि जखन ध्यान जाइत अछि तँ स्पष्ट भए जाइत अछि जे आलोच्य युग जनतान्त्रिक युग छल। अन्यत्रो एहन एहन विषय भेटैत अछि जे मध्ययुगमे [ ७ मसँ १२म शताब्दी धरि ] सेनाक आगमन वा अत्याचारक परिस्थितिमे कोनहु स्थानक जनता तेहन कोनहु व्यक्तिकेँ अपन शासक मानबाक हेतु प्रस्तुत रहैत छल जे सुरक्षामे सशक्त सिद्ध होथि[१६२]।

१४३. राजाक निर्वाचनमे जाति-कुल आदिक विचार नहि छल, जे व्यक्ति जनताक संरक्षण कए सकैत छलाह से अनायास सर्वमान्य भए जाइत छलाह, वर्ण एहिमे वाधक नहि छल[१६३]। एहन-एहन सचना भेटैत अछि आलोच्य युगक प्रसङ्ग आ' ई अन्यो विद्वान् मानैत छथि जे [ जेना सूचित कए देने छी ] मध्ययुगक प्रारम्भमे साम्राज्यक विघटनक पश्चात् देशमे अराजकता पसरि

१६१। History of Mithilā—P.205

१६२। हि० सा० वृ० इ० [ भाग १ ]—पृ० ३७

१६३। ऐजन — पृ० ६८

गेलासँ प्रजारक्षण एक बड़ पैघ समस्या भए गेल छल [१६४] जकर प्रतीकारमे उक्त-रूपक राजाक शासनकुशलता अत्यन्त प्रयोजनीय बुझल जाए लागल।

१४४. एहि जातिनिरपेक्ष निर्वाचनक सूचना एहूसँ भेटैत अछि जे कामरूप-मे १०म शताब्दीमे ब्रह्मपाल नामक शासक जनतासँ चुनल गेल छलाह जे भग-दत्तक वंशोद्भव छलाह आ' भगदत्तक परम्परा निस्सन्देह अवैदिक आ' अभारतीय कहल गेल अछि [१६५]।

१४५. कहल जाइत अछि जे प्रस्तुत पालो राजासभ 'दासजीविनः' छलाह, जकर अभिप्राय डा० भारती इएह मानैत छथि जे ओ उच्चकुल वा जातिक नहि छलाह। हुनक द्वारा लोककलाक अभिवृद्धि, लोकतन्त्रक प्रचलन, हुनक लोक-सापेक्षताकेँ सूचित करैत अछि, सङ्ग-सङ्ग ब्राह्मणेतर जातिक उत्थान सेहो [१६६]।

१४६. तँ एहि सूचनासभसँ ई अनुमान कए सकैत छी जे राजामे पर-म्परागत कुल-भावना [ हम अमुक वंशक छी, स्वतः राज्यक अधिकारी, एहन भावना ] नहि रहैत छल आ' ओ शङ्कित रहैत छलाह नियमविरुद्ध नहि भए जाइ; कारण, समाज द्वारा विकसित आ' ऋषि-आचार्य द्वारा शास्त्ररूप प्राप्त नियमक अनुसरण हुनका करए पड़ैत छलन्हि [१६७]।

१४७. जनताकेँ सुख-सुविधा देब राजाक कर्त्तव्य छल। राजाकेँ प्रति-बदलमे जनताक श्रद्धा, कर आदि भेटैत छलन्हि किन्तु ग्रामशासनक भार जनताक ऊपर छल। जनताकेँ स्वतन्त्रता छलैक जे अपन निर्वाचित ग्रामसभा द्वारा ग्रामक समस्याक समाधान कए लिअए। पृथक्-पृथक् काजसभक हेतु पञ्चकुली [ उप-समिति ] निर्मित छल ग्रामसभाक मुख्य अधिकारी ग्रामपति, ग्रामिक, ग्रामप वा महत्तर अथवा महत्तम कहल जाथि [१६८]।

१४८. तदनुसारे अर्थनैतिक ढाँचा छल। अर्थनीतिक मेरुदण्ड छल खेती-गृहस्थी; [१६९] मुदा, वाणिज्यहुक स्थान छल जेना आगाँ साक्ष्यसँ सूचित होएत

१६४। सिद्धसाहित्य—पृ० ६८
१६५। ऐजन — पृ० ६३
१६६। ऐजन — पृ० ६६
१६७। हि० सा० बृ० इ० [ भाग १ ]—पृ० ६८
१६८। ऐजन — पृ० ८०
१६९। सिद्धसाहित्य—पृ० ८७

वाणिज्यक हेतु यातायातक सुविधा केहन छल तकर सूचनामे म० म० शास्त्रीक निबन्ध सहायक होइत अछि जलयानक प्रसङ्ग [१७०]।

१४९. जाहि समयमे मिथिला-मगधमे नारायणपालक राज्य छल, ताही समयमे कन्नौजमे महेन्द्रपालक राज्य [ ८८५-९१० ई० ] छल, ओ भोजराजक बालक छलाह, इतिहाससँ ज्ञात होइत अछि [१७१]। ताहि प्रसङ्ग सूचना देबाक क्रममे केनेडी महाशय कहैत छथि—"भूमि उपजाउ छल आ' जनसंख्या घन छल। राजधानी बड़ पैघ व्यापारक केन्द्र छल"[१७२]।

१५०. ततबे नहि, ओ स्पष्टतः पूर्ववर्ती प्रान्तक चर्चा करैत छथि—"कन्नौजसँ ब्राह्मणे नहि, कायस्थ, सोनार, कुर्मी आदि जातिक लोकसभ पश्चिममे गुजरात धरि आ' पूबमे बङ्गाल धरि जाइत छल [ व्यापारक दृष्टिएँ ] [१७३]।

१५१. एहिसँ अनुमान कए सकैत छी जे ताहि समय सर्वप्रथम भूमिकेँ सत्ता देल जाइत छल, कृषिकेँ सत्ता देल जाइत छल, तखन वाणिज्यकेँ। इएह छल अर्थनीतिक सफलताक मापदण्ड।

१५२. ताहि दृष्टिएँ पालराज्यक समयमे पर्याप्त सुविधा छल। राजसत्ता कृषिक विकासमे सदैव तत्पर रहैत छल, नहरि पोखरि, इनार द्वारा सिञ्चन [ पटौनी ]क व्यवस्था छल, जनता भूमि जोतैत छल। यद्यपि राजस्वविभाग [ रेवेन्यू ] राजाक काज करैत छल, कर लगैत छल, किन्तु कर लगबाक निर्णय राजापर नहि निर्भर छल, ग्रामसभा [ पञ्चायत ] पर निर्भर छल [१७४]। ग्राम-सभाक विचार भेलापर हस्तान्तरण, अधिकारग्रहण आदि भूमिक होइत छल[१७५]। कर जे लगैत छल से सामान्यतया दुइअहि अवसरमे—राजागमनक अवसरपर आ' सेनाक हेतुएँ। जनता अपन विचारहिसँ, राजाक पालन-कर्त्तव्यसँ सन्तुष्ट भए कर दैत छल [१७६]।

---

१७०। J. B. O. R. S.—Vol. V Part IV. P. 495

१७१। I. G. I.—P. 310

१७२। Do.— Do.

१७३। I. G. I.—P. 310

१७४। सिद्धसाहित्य —पृ० ८७-८८

१७५। ऐजन — पृ० ८८

१७६। ऐजन — पृ० ८८-८९

## सामाजिक

१५३. सामाजिक कल्याणमे सभसँ अधिक सहायक छल, 'कर्मणा जाति-भेदः'केर सिद्धान्त। केनेडीमहाशयक शब्दमे- "सातमसँ दशम शताब्दीक मध्य प्राचीन जातिभेद चल गेल आ' एक नवीन भेद आएल, स्थिति आओर कर्मपर आधारित [१७७]।

१५४. जातिक कोन कोन भेद छल, ताहि प्रसङ्ग अलबेरुनीक विवरणकेँ प्रामाणिक मानल जाए सकैत अछि, समयक दृष्टिएँ। अलबेरुनी [ ६७३ ई०-१०४७ ई० ][१७८] क यात्राक समय महीपाल [ प्रथम ]क [ ९८८ ई०-१०३८ ई० ] राज्यकालमे पड़ल होएत, से अनुमान कए सकैत छी, कारण ९७३ ई० मे हुनक जन्म मानल गेल अछि आ' जन्मक १४-१५ वर्षक पश्चात् ओ अवश्य आएल होएताह आ' संभवतः मृत्यु [ १०४७ ई० ]सँ ९-१० वर्ष पूर्व आएल होएताह।

१५५. प्राचीन खुसरोक शासनक सङ्ग तुलना करैत जे अलबेरुनी तत्कालीन जातिभेदक चर्चा करैत छथि,[१७९] ताहि अनुसार समाजमे चारि वर्गमे जाति बाँटल छल—१। राजा-सामन्त २। भिक्षु-पुरोहित-धर्मशास्त्री ३। वैद्य-ज्योतिषी-वैज्ञानिक ४। कृषक-शिल्पी।

१५६. एहिसँ दू-चारि विषयक अनुसंधान होइत अछि—[ १ ] बौद्ध तथा ब्राह्मणकेँ समानरूपक प्रतिष्ठा देल जाइत छल, जे भिक्षु-पुरोहित शब्देँ अभिप्रेत अछि। [ २ ] ताहि समयमे अर्थनैतिक व्यवस्थाक मूलभित्ति छल कृषि। भए सकैत अछि, अन्यो व्यवसाय छल, किन्तु उत्तम खेतीकेँ बुझल जाइत छल। [ ३ ] कलाक आदर छल, जकर आभास प्रतिमा-लिखन-प्रकरणमे भेटल होएत। आगाँ पुनः काव्यकलाक सूचनासँ ज्ञात होएत। [ ४ ] राजाकेँ स्वेच्छाचारी नहि मानल जाइत छल, सामन्तवर्गपर निर्भर बुझल जाइत छल। किन्तु, अवशिष्ट तीनि वर्गसँ अधिक सत्तावान् राजा-सामन्तवर्गकेँ मानल जाइत छल, तकर प्रमाण नहि भेटैत अछि। इतर तीनि वर्गक स्वतन्त्र अस्तित्व एकरा प्रमाणित करैत अछि जे समाज राजा-सामन्तकेँ अवशिष्ट तीनि वर्गसँ अधिक सत्तावान् नहि मानैत छल।

---

१७७। I. G. I. (Vol. II) P. 308
१७८। O H. I.—P. 197
१७९। हि० सा० बृ० इ० [ भाग १ ]—पृ० १०५

१५७. अपन क्षेत्रमे जँ राजा-सामन्त पैध तँ अपन क्षेत्रमे भिक्षु-पुरोहित-धर्मशास्त्रिओ पैध, एवम्प्रकारेँ संकेत बुझबाक थिक।

१५८. किन्तु उक्त वर्गीकरणक अर्थ ई नहि जे वर्णव्यवस्था छले नहि। कारण, पुनः ओही विवरणमे भेटैत अछि—"प्रारम्भसँ ओकर [ वर्णक ] संख्या चारि अछि। सभसँ ऊँच जाति छल ब्राह्मणक, तकर नीचा क्षत्रियक। क्षत्रिय ब्राह्मणसँ अधिक नीच नहि। तकर पश्चात् वैश्य आ' तखन शूद्र।"[१८०]

१५९. ततबे नहि, एहनो साक्ष्य भेटैत अछि, जाहिसँ उपजातिक परिचय होइत अछि। उक्त चारू वर्णक शाखासभ फुटल छल, यथा ब्राह्मणक सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, उत्कल तथा मैथिल भेद छल।[१८१] उपजातिक प्रसङ्ग समग्र विचार अनुपयुक्त जानि आब अन्य विषय शूद्र तथा अस्पृश्यक प्रसङ्ग संक्षेपमे किछु सूचना प्रस्तुत करैत छी।

१६०. जेना तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्थाक्रममे सूचित कएल गेल अछि, जखन राजा पर्यन्त गोपाल सन द्विजेतरो [ दासजीवी ] भए सकैत छलाह,[१८२] अपन वैयक्तिक गुणपर, तखन राज्य वा समाजक अन्य क्षेत्रमे शूद्रकेँ अनादर भाव देखएबाक प्रश्ने नहि उठैत छल। शूद्रक उत्थानक समय छल, तेँ जतए एक दिशि वैश्यजातिक अपकर्ष भेल, ततए संपूर्ण शूद्रवर्णक उत्कर्ष [ भेल ], आ' ओकर आर्थिक तथा सामाजिक अवस्था ऊँच ऊठि गेल।[१८३]

१६१. अस्पृश्य जातिक आठ भेदक उल्लेख भेटैत अछि[१८४]—"१। धोबि २। चमार ३। जादूगर [ जादूटोनाबाला जाति, व्यक्ति-समूह ] ४। डोम-धरकार ५। केवट ६। मल्लाह ७। बहेलिया [ व्याधा ]-पाशी [ जाहिमे मद्यविक्रेता सेहो आबि जाएत ] तथा ८। जोलहा।"

१६२. एहिसभ जातिमे धोबि, चमार आओर जोलहाकेँ छोड़ि, परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध सेहो चलैत छल।[१८५]

---

१८०। हि० सा० बृ० इ० [ भाग १ ]—पृ० १०५
१८१। ऐजन —पृ० १०६
१८२। सिद्धसाहित्य—पृ० ६२-६३
१८३। हि० सा० बृ० इ० [ भाग १ ] —पृ० १०६
१८४। ऐजन —पृ० १११
१८५। ऐजन — ऐजन

१६३. अस्पृश्य जातिक अर्थ दलित जाति नहि बुझबाक थिक। सामान्यतया भोजन-विवाह सम्बन्ध जँ ओहि जातिक सङ्ग नहिओ चलैत छल तँ धर्मशास्त्रमे एकर उल्लेख कएल जाइत छल, विशेषतः मध्ययुग [ आलोच्ययुग ]मे किछु अवसर एहन छल जतए छूति नहि लागए।

१६४. ततबे नहि, "समाजमे स्वतंत्रतावादी, परम्परा-रूढ़ि-विरोधी एवं सुधारवादी किछु एहन संप्रदाय छल आ' संत महात्मा छलाह जे शारीरिक शौचपर अत्यधिक बल नहि दए मनुष्यक परिस्थितिक ध्यान कए ओकरा [ अस्पृश्य ]पर दयाभाव रखैत छलाह आ' मानवोचित अधिकारसँ ओकरा वञ्चित नहि रखैत छलाह।"[१८६]

१६५. वर्णक प्रसङ्ग विचार करबाक पश्चात् किछु आश्रमहु व्यवस्थापर ध्यान देल जाए। प्राचीन ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्य-वानप्रस्थ-संन्यास आश्रमक भेदकेँ बुद्धक समयमे किछु आघात पहुँचलैक, किन्तु ओकर प्रतिक्रियामे पुनः शुङ्गराज्य [ ७२ ई० पूर्व धरि ]मे आबि कए मनुक अनुसार 'आश्रमाद् आश्रमङ्गच्छेत्'केर सिद्धान्त लागू भए गेल। वानप्रस्थाश्रमी आओर संन्यासीक संख्या कम छल। नामान्तरेँ ओएह व्यक्तिसभ भिन्न-भिन्न सम्प्रदायक अनुसार परिव्राजक, श्रमण आदि कहबए लागल।[१८७] एकर अभिप्राय भेल जे आश्रम वस्तु छले।

१६६. अधिकांश लोक गृहस्थे छल। गृहस्थी-काज मुख्य रूपमे चलैत छल, जेना कहल गेल। गृहस्थाश्रमक आधार छल वैवाहिक सम्बन्ध। परिवारमे गृहस्वामिनीकेँ बड़ सत्ता देल जाइत छल। किन्तु पुतहुक अएला पर बहुधा मतभेद उठि जाइत छल। प्राचीनकालमे पुतहुक उपद्रवक चर्चा जातकसाहित्यमे भेटैत अछि। मध्ययुगमे किछु परिस्थिति बदलि गेल[१८८], किन्तु लोकक संस्कार हटल नहि छल।

१६७. मिथिला-मगधमे कुटुम्बक, सम्बन्धीसभक अनुरोध सभ दिनसँ रहैत आएल अछि। ताहि प्रसङ्ग सामान्य सूचनो सभ भेटैत अछि। मध्ययुग [ आलोच्य युग ]क विशेष सूचना तँ नहि भेटैत अछि, किन्तु गृहस्थधर्मक पालनमे मुख्य वस्तु थिक अतिथिक सत्कार,[१८९] तेँ अनुभव कए सकैत छी जे गृहस्थधर्मक

१८६। हि० सा० बृ० इ० [भाग १] पृ० १११
१८७। ऐजन पृ० ११२
१८८। हि० सा० बृ० इ० [भाग १]—पृ० १४७-१४८
१८९। संस्कृति—पृ० १२६

अनुकूल आलोच्य समयमे अतिथि-कुटुम्ब-सम्बन्धीसभक आदर अवश्य होइत छल।

१६८. गृहस्थकेँ पशुपालनमे बड़ मन लगन्हि। पश्चातक विवरण तँ वर्णरत्नाकरहुमे [१९०] भेटैत अछि जे पालहु युगक प्रसङ्ग सूचना भेटैत अछि—गोचर भूमि, गो-पथ [१९१] तथा पशुपालक [१९२] चर्चासँ नीक जकाँ अनुमान कए सकैत छी जे गाय पोसब, दूध-दही खाएब आदि प्रचलित छल।

१६९. अलबेरुनीक साक्ष्यसँ कृषक-शिल्पीक एक स्वतन्त्र वर्ग भेटैत अछि [१९३]। ताहिसँ अनुमान कए सकैत छी जे दूनूक मध्य सामञ्जस्य छल, कृषक जीवनक प्रयोजनक हेतु शिल्पीसँ काज लैत छलाह आ' शिल्पी ओहिसँ अपन निर्वाह करैत छलाह। व्यवसायक दृष्टिएँ जातिभेदसँ सेहो एकर पुष्टि होइत अछि। वर्णरत्नाकर-युगक जे जातिसभक सूचना भेटैत अछि, [१९४] ताहू आधारपर ई अनुमान कए सकैत छी जे डोम, कमार, सोनार, मलाह आदि गृहस्थकेँ अवसर-अवसरपर चङेरा बनाएब, सोन-चानीक गहना गढ़ि देब आदि काज कए दैत छल। पशुपालनसँ गोआरक संकेत सेहो होइत अछि, जेना वर्णरत्नाकर-युगमे भेटैत अछि [१९५]। शूद्रक उपजातिक तँ निर्माणे भेल छल श्रम-शिल्प-व्यवसायक आधारपर आ' तदनुसारे सच्छूद्र भेद बनल [१९६]। धातुक वस्तुसभ केहन सुन्दर रहैत छल, ताहि हेतु राहुलजीक आभूषण, सोनक पिजड़ा आदिक वर्णन द्रष्टव्य [१९७]।

१७०. समाजमे उपद्रवी चोर-डाकू-लम्पटक उपद्रवक डर रहैत छल। तेँ ग्रामिकक [ मुखियाक ] काजे छल ओहि उपद्रवसँ बँचाएब [१९८]। एहि ग्रामिक

१९०। वर्णरत्नाकर— पृ० १, ११४, ६६ (गोआर-दहीक चर्चा)

१९१। सिद्धसाहित्य—पृ० ८७

१९२। हि० सा० बृ० इ० [भाग १] पृ०—७६

१९३। पाछाँ द्रष्टव्य राजा-सामान्तादि वर्गभेद—अनु० १५५

१९४। वर्णरत्नाकर—पृ० १

१९५। ऐजन —ऐजन

१९६। हि० सा० बृ० इ० [भाग १]—पृ० १०६

१९७। सिद्धसाहित्य — पृ० ७६ [उद्धृत]

१९८। हि० सा० बृ० इ० [भाग १]—पृ० ८०

विषयक सूचना राजा नारायणपालक भागलपुर-ताम्रपट्टसँ सेहो प्राप्त भए सकल,[१९९] तँ पाल-राज्यक सूचनामे प्रामाणिक मानल जाए सकैत अछि।

१७१. समाजक रहन-सहनमे देशकालपात्रक विचार सभ दिनसँ रहैत आएल अछि। स्वतः प्रकृतिक सङ्ग समाज सम्बद्ध रहैत आएल अछि। जतए जाड़ अधिक होइत छैक ततए लोक वस्त्र-व्यवहार अधिक करैत अछि, जतए जलाशय अधिक छैक ततए लोक जलाशय सम्बन्धी पर्व-तिहारक वा विधि-व्यवहारक पालन अधिक करैत अछि। तँ, अन्य सामान्य प्रकृतिक परिस्थितिक प्रसङ्ग एहिस्थलपर विचार उपयुक्त नहिओ रहैत, एतबा धरि कहब आवश्यक जे आलोच्य देश[राज्य]क लोक ग्राम्य, वन्य तथा नदीसामीप्यक आनन्दकेँ पसिन्न करैत छल। आनन्दक साधनो पर्याप्त छल, क्रीड़ोपवन, क्रीड़ामृग,[२००] शस्यश्यामल भूमि, प्राकृतिक नल, गो-पथ, पोखरि[२०१] तथा नाव-जहाज जलयानक[२०२] वर्णन [पालसमयक] एहि सत्यकेँ सिद्ध करैत अछि।

## सांस्कृतिक

१७२. 'संस्कृति' शब्द ततेक व्यापक अछि जे सम्पर्कित क्षेत्र वा युगक समस्त संस्कारकेँ अपनामे समेटि रखैत अछि। ताहि दृष्टिएँ पूर्वसूचित पाल-युगक विशेषतासभमे सेहो बहुतो विषय ओकर सांस्कृतिक परिचायक मानल जाएत। मोटामोटी 'सांस्कृतिक'सँ धार्मिक-दार्शनिक चिन्तन तथा कलात्मक सर्जनादि किछु तेहन तत्त्व, व्यापार वा मनोवृत्ति बुझल जाइत अछि, जे युगविशेष वा समाजविशेषक आन्तरिक मान्यतासभकेँ, मूल्यसभकेँ प्रकट करैत अछि।

१७३. एहन-एहन आन्तरिक वैशिष्ट्यसभमे आलोच्य साहित्यसँ जे सम्पर्क रखैत अछि, से थिक सिद्धगणक समकालीन वातावरणमे दार्शनिक विचार-धारा तथा कलात्मक अभिरुचि वा अभिव्यक्ति। कलात्मक अभिरुचिक परिचय तँ किछु पूर्वहु भेटल होएत प्रतिमा-लिखन सामग्रीक विवरणक क्रममे। किन्तु, काव्य-तत्त्वक विश्लेषणसँ अभ्युतपूर्व किछु काव्यात्मक मान्यताकेँ

१९९। हि० सा० बृ० इ० [भाग १]—पृ० ७८
२००। राहुलजीक उक्ति—सिद्धसाहित्य [पृ० ७६] मे उद्धृत।
२०१। सिद्धसाहित्य—पृ० ८६-८७
२०२। J. B. O. R. S.—Vol. V Part IV. P. 498

पृष्ठभूमिरूपमे सूचित करब आवश्यक प्रतीत होइत अछि। दोसर, सिद्धलोकनिक साम्प्रदायिक विचारधाराकेँ जे पूर्ववर्त्ती तथा समकालीन दार्शनिक चिन्तन परिपुष्ट कएने होएत, जाहि दार्शनिक चिन्तनक प्रवाहमे ताहि युगमे हुनका लोकनिक साधनाकेँ प्रोत्साहन भेटल होएत, ताहि चिन्तनक किछु परिचय देब आवश्यक। प्रस्तुत निबन्धांश आलोच्य युगक ओही अंशसँ सम्पर्कित अछि।

## दार्शनिक

१७४. आस्तिक समाजमे सामान्यतया बौद्धदर्शन नास्तिक बुझल जाइत अछि। 'सामान्यतया' एहि हेतु कहल जे प्रायः कोनहु आलोचकक ध्यान बौद्धक तान्त्रिक दर्शन दिशि नहि गेल, नैयायिक-मीमांसक सभक स्थिति एहने देखैत छी। अस्तु, सिद्धयुगसँ पूर्वक बौद्धवादसभपर आस्तिक भारतीय दार्शनिकसभ पर्याप्त आक्षेप कएल। नैयायिक उद्योतकर [६०० ई०] तथा दिङ्नाग [५०० ई०] महायानी चिन्तकपर आक्षेप कएल। वाचस्पति [१०म शती] धर्मकीर्त्ति [७म शताब्दी] पर अपन ग्रन्थमे आक्षेप कएल।[२०३] पश्चातक तँ कथे नहि हो, नैयायिक तर्ककुशलतासँ शास्त्रार्थक क्षेत्रमे सभ दिनसँ विजयी होइत अएलाह अछि।

१७५. मुदा, साधना-क्षेत्र केवल तर्कहिसँ सम्बन्ध नहि रखैत अछि, साधनामे भावहुक सत्ता कम नहि, सङ्ग सङ्ग विश्वासक सत्ता सेहो रहैत अछि आ' विश्वास सर्वदा तर्कहिपर निर्भर नहि, बहुधा जीवनमे बीतल अनुभवपर निर्भर रहैत अछि, तेँ बौद्ध-साधना तथा तदनुकूल दर्शनकेँ न्यायशास्त्रसँ ओतेक आघात पड़बाक डर नहि छल, विशेषतः तान्त्रिक बौद्धयुगमे, जतेक डर छल मीमांसासँ। तेँ मीमांसाक प्रसङ्ग किछु कहि, आलोच्य साहित्यमे प्रयुक्त अद्वैतवादक विचार प्रस्तुत कए रहल छी।

१७६. यद्यपि बुद्धक किछुए दिनक पश्चात् जैमिनि [४०० ई० पू०] भेलाह[२०४], तथापि दार्शनिकगणकेँ हुनक मीमांसासूत्रमे बौद्धपर कोनो आक्षेप नहि भेटल। प्रथम ग्रन्थ थिक शबरस्वामीक कृत [३०० ई०] शबरभाष्य जाहिमे बौद्धक अनेक विचारक खण्डन भेल अछि[२०५]।

२०३। H. I. P.—P. 452
२०४। Do. —P 763
२०५। Do. — Do.

१७७. तत्पश्चात् कुमारिल [ ७०० ई० लगभग ] मीमांसाक भट्ट-सम्प्रादायक प्रवर्त्तक बनि तन्त्रवार्त्तिक, टुप् टीका तथा बृहट्टीका लिखल जकर संक्षिप्त रूप श्लोकवार्तिक अछि। [२०६] ताहिमे कुमारिल बौद्धक ज्ञानक परतः प्रामाण्यकेँ खण्डित कए स्वतःप्रामाण्यकेँ सिद्ध कएने छथि [२०७]। पुनः ओण्ड्र काज पार्थसारथि मिश्र [ ९०० ई० ] उक्त ग्रन्थक टीका 'शास्त्रदीपिका'मे नीक जकाँ कएल[२०८]। कुमारिल दोसर काज जे कएल से बौद्धक प्राचीन सिद्धान्त प्रतीत्य-समुत्पादकेँ खण्डित करब [२०९]। कुमारिलक [संभवतः] शिष्य प्रभाकर [७०० ई०] रहथिन्ह[२१०], ओहो चार्वाकक सङ्ग बौद्धहुकेँ नहि छोड़ल। मुदा, बौद्धक हेतु संतोषक विषय ई थिक जे प्रभाकर अद्वैतहु वेदान्तकेँ छोड़ल नहि, जतेक दूर धरि आत्माक स्व-प्रकाशत्वक समस्या अछि [२११]।

१७८. मीमांसा आओर बौद्धदर्शनमे मौलिक विवाद छल वेदोक्त कर्मक प्रसङ्ग, ब्राह्मण-कर्मक प्रसङ्ग। मीमांसक धर्मक कुञ्जी अपने हाथमे राखि[२१२] वेदोक्त, ताहूमे ब्राह्मणोक्त, विधानसँ इतर विधानकेँ स्वीकार करबाक हेतु प्रस्तुत नहि रहथि। लोकमतसे शक्तिओ आएल, तथापि ओसभ आग्रहकेँ छोड़थि नहि, समन्वय दिशि ध्यान देथि नहि। फलतः संघर्षक, अराजकताक, डर छल[२१३]।

१७९. एहन परिस्थितिमे पालशासकक समावेश-कुशलता, सर्वदल-विचारसहिष्णुता बड़ काजक भेल[२१४]; किन्तु, बौद्धिक जगतक शान्ति भग्न भए जेबाक संभावना पूर्णतया छले। आ' शान्ति जे भग्न नहि भए सकल, ताहिमे सभसँ अधिक सहायक भए सकल शङ्कराचार्यक अद्वैतवादी विचार, निष्पक्ष अध्ययन, विपक्षीक तर्ककेँ सुनबाक धैर्य तथा व्यवहारावस्थामे विभिन्न धर्मक अविरोध।

---

२०६। H. I. P. —P. 763
२०७। Do. —P. 768-69
२०८। Do. —P.769
२०९। Do. —P. 826
२१०। Do. —P. 764
२११। Do. —P 830
२१२। भा० इ० स०—पृ० १०२
२१३। ऐजन —पृ० १०३ पर आधारित
२१४। J. B. O. R. S.—Vol. V Pt. II—P. 171

१८०. शङ्करक समय ७८८ ई०क लगभग मानल जाइत अछि [२१५]। कहल जाइत अछि जे जाहि समयमे शङ्कर ब्रह्मसूत्रक शारीरक भाष्य लिखैत छलाह ताही समयमे राजा धर्मपालक आदेशसँ हरिभद्र अष्टसाहस्रिका पारमिताक सुबोध टीका लिखैत छलाह[२१६]।

१८१. शङ्करक अद्वैत आ' सिद्धक अद्वय, एहि दूनूक समानता देखएबासँ पूर्व शङ्करक किछु समन्वयात्मक विचारक आभास देल जाइत अछि।

१८२. अद्वैतवादकेँ शङ्कराचार्य सुसङ्गठित रूप देल। किन्तु वस्तु ई पुराने छल। वेदक शतरुद्रीय [२१७] जँ प्रमाण तँ ताही समयसँ, प्रत्युत मोहें-जोदड़ोक पुं-स्त्री देवक [२१८] ध्यानपर दार्शनिक विचार कएलासँ प्राक्वैदिकहि युगसँ अद्वैत-भावना छल, किन्तु उपनिषत्केँ अधिक प्रामाणिक मानल जाइत अछि। उपनिषत्सभमे आपत्ति ई आबि गेल जे विचार अधिक अन्तःस्फूर्ति-परक [इण्ट्युटिव][२१९] भए गेल आ' तकर परिणाम ई भेल जे जनसाधारणपर ब्राह्मणधर्मक अधिकार घटल नहि, धर्मक सूक्ष्मपीठिका दिशि जनपदक ध्यान जाए नहि सकल। एहन परिस्थितिमे शङ्करक स्फूर्त्ति वेदान्तक हेतु, प्रत्युत समस्त दर्शनहिक हेतु, सञ्जीवनीक काज कएलक [२२०]।

१८३. सङ्ग-सङ्ग अलोच्यसाहित्य सर्जनहुमे प्रेरक भेल। कहल जाइत अछि जे शङ्कर सरहपादक समकालीन छलाह [२२१]। ब्राह्मणक आतिशय्यसँ जेना ई सिद्ध अकछाएल छलाह तहिना शङ्करो [२२२]। संभवतः एही पार्श्वभूमिमे, शङ्करक परिकल्पित मायाक आवरण-विक्षेपक [२२३] सूचिका अनिर्वचनीयता देखि, ब्राह्मणक वाह्यकर्मक प्रति पूर्णतया आदर-भाव नहि देखि, मीमांसकगण हुनका 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहि देल [२२४]। किन्तु जखन हुनक समस्त सिद्धान्तक,

---

२१५। I. G. I. ( Vol. II )—P. 254

२१६। J. B. O. R. S. —Vol. V Pt. II—P. 177

२१७। यजु० सं०—द्र० मन्त्रार्थसंग्रहः—पृ० ५२१

२१८। The Cultural Heritage of India ( Vol. IV )—P. 32,36

२१९। Do. —P. 33

२२०। भा० इ० स०—पृ० १०३ पर आधारित

२२१। दोहाकोश [ सरहपादकृत ]—भूमिका पृ० ५

२२२। ऐजन — ऐजन

२२३। हि० सा० वृ० इ० [ भाग १ ] —पृ० ५३२

२२४। भा० इ० स०—पृ० १०३

मान्यताक, आभास भेटत तखन ई निर्णीत भए जाएत जे शङ्कर ब्राह्मण-धर्मक पोषके छलाह, घातक नहि।

१८४. प्रस्थानत्रयीसँ[२२५] ई स्पष्टतया सूचित होइत अछि जे शङ्कर अपन पूर्वक शास्त्रक प्रति कतेक श्रद्धालु छलाह, तेँ तँ व्यास [ बादरायण ]क सूत्रक भाष्य लिखल, तेँ तँ गीता-पुरुषक महोच्चारकेँ पुनरुज्जीवित कए दार्शनिक धरातलपर लए गेलाह आ' तेँ तँ सुदूर अतीतक वन्य वायुमण्डलमे प्रसरित आप्त वाक्केँ विश्ववन्द्य बनाओल।

१८५. व्यवहारावस्थामे सकल सिद्धान्तक उपादेयता स्वीकार करैत छलाह, तकर सभसँ सकत प्रमाण अछि साधकक हितार्थ ब्रह्मक रूपकल्पनाक अङ्गीकार। परमगुरुचरण डा० गङ्गानाथ झाक निबन्धसँ ई विषय स्पष्ट भए जाएत[२२६]।

१८६. ततबे नहि शङ्कर अनुष्ठीयमान कर्मक प्रति कठोर नहि छलाह। हुनक तात्पर्य अनुष्ठीयमान कर्मकेँ एकान्ततः निरर्थक प्रमाणित करब नहि छल, केवल एतबे सूचित करब उद्देश्य छल जे मुक्तिक हेतु साक्षात् कारण तत्त्वज्ञाने मानब उचित। जँ एहि तत्त्वज्ञानमे अनुष्ठान सहायक हो, तँ अस्वीकार्य किएक? प्रत्युत जा'धरि ब्रह्मोऽस्मि-भावना मौलिक रूपमे जाग्रत नहि भेल रहए ता'धरि बाह्य कर्मक त्याग उचितो नहि[२२७]। एहि प्रसङ्गमे पण्डित मण्डन मिश्रक चर्चा उपयुक्त बूझि पड़ैत अछि, डा० झा शङ्करक पूर्ववर्त्ती धारणासभकेँ प्रतिनिधित करबामे हुनक 'ब्रह्मसिद्धि'केँ सहायक घोषित करैत छथि आ' ई सूचित करैत छथि जे ज्ञानकर्मसमुच्चयक प्रसङ्ग शाङ्कर मत मण्डन सन मीमांसकहुसँ अनुमोदिते भेल [ वा होइत ], कमसँ कम एहिमे सन्देह नहि जे हुनक विचारविरुद्ध नहि अछि[२२८]।

१८७. प्रस्तुत पुस्तकक भूमिकामे शून्यवादक चर्चा कए आएल छी। शङ्करकेँ जे 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहल जाइत अछि से ओही भ्रमसँ। मीमांसककेँ शङ्कर शून्यवादी सन नास्तिक प्रतीत भेलथिन्ह, तेँ एहन शब्द। ताहिमे उपनिषदक

---

२२५। हि० सा० बृ० इ० [ भाग १ ]—पृ० ५३०

२२६। Shānkara Vedānta—P. 38

२२७। Do.— P. 35-36

२२८। Do.— P. 20-22

'नेति नेति' सेहो साधक भेल।[२२९] किन्तु डा० झा एहि विषयकें स्पष्ट कए देने छथि जे 'नेति नेति'क अर्थानुसन्धान शङ्कर ब्रह्मक भावात्मक सत्तहिक दृष्टिएँ कएने छथि। 'नेति नेति' केवल ब्रह्मभिन्न तत्त्वक मिथ्यात्वक सूचनाक हेतु कहल गेल अछि।[२३०] किन्तु शून्यवादक दृष्टिकोण स्पष्टतः निषेधात्मक अछि। तेँ जे शङ्का बौद्धक प्रसङ्ग उठैत अछि [ योगाचारसँ पूर्वक बौद्धप्रसङ्ग ] से शङ्करक प्रसङ्ग उचित नहि।

१८८. आ' एहि दृष्टिएँ शङ्कर बौद्धक समर्थक नहि। किन्तु, जाहि समयक विचार आलोच्य साहित्यसँ सम्बन्ध रखैत अछि, ताहि समयमे बौद्धो शून्यवादी नहि रहि गेलाह,[२३१] जतेक दूर धरि शून्यक प्राचीन लक्षणक प्रश्न अछि। शून्यवादक स्थानमे विज्ञानवाद वा योगाचार आबि गेल। शून्यक भावात्मक व्याख्या तथा लक्षण आबि गेल। वज्रयानमे शून्य 'वज्र' कहबए लागल[२३२] आ' पुनः आगाँ जाए शून्यता कें प्रज्ञा,[२३३]मुद्रा आदि मानल जाए लागल। जतहु चतुर्विध शून्यक अभिधान भेल, ततहु शून्य-अतिशून्यकें प्रज्ञो-पाये मानल गेल।[२३४] फलतः समसामयिक बौद्ध प्रवृत्तिक दृष्टिएँ शङ्करकें शून्यवादी वा प्रच्छन्न बौद्ध वा नास्तिक किछु कहब उचित नहि। हमरा जनैत, शङ्करक नेतृत्वमे जे सूक्ष्म तात्त्विक बुद्धिप्रधान आस्तिक भाव जागल, तकर प्रभावक परिधिसँ बहिर्भूत तत्कालीन बौद्धो नहि, विशेषतः सिद्धगण तँ नहिए।

१८९. परम्परया शङ्करक अद्वैतवादसँ सिद्धक अद्वयवाद सम्पर्कित छल। कोन रूपमे घुमाए-फिराए शङ्करक प्रिय अद्वैतवाद वज्रयानी साधनामे घोँसिआएल छल तथा सम्भवतः कोन हिन्दू दर्शनक अत्यन्त निकट ओहि साधनाक दर्शन-पक्ष अछि, ताहिसभ प्रश्नक समाधान युगपदे भेटि जाएत जखन काश्मीरी शैव दर्शन तथा त्रिपुरा [ शाक्त ] सम्प्रदायक दार्शनिक भावना दिशि किञ्चितो ध्यान जाएत।

१९०. एहि दूनू हिन्दू दर्शनक, आलोच्य कृतिमे उपयुक्त तात्त्विक विचार-सभक, विस्तृत विचार प्रस्तुत भूमिकाक क्रममे आबिए गेल अछि, कारण, वस्तुतः

---

२२९। Idealistic Thought of India ( P. 94 )मे जेना प्रतीत।
२३०। Shānkara Vedānta—P.109
२३१। बौ० द० मी०—पृ० २३७-३८
२३२। पाछाँ भूमिका—अनु० ३३-३४
२३३। ऐजन अनु० ७०
२३४। सिद्धसाहित्य—प० १८१

सएह ताकब हमर काज छल। किन्तु, शङ्करक मतक सङ्ग ओहि दूनू दर्शनक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करबाक अवकाश ओतए नहि छल, तेँ एहिठाम उचित बुझैत छी।

१९१. ओहि विराट् शैवदर्शन तथा शाक्तदर्शनक सङ्ग शङ्कराचार्यक सम्बन्ध केहन छल, तकर प्रबल प्रमाणमे राखल जाए सकैत अछि हुनक 'आनन्दलहरी' तथा बहिरङ्ग प्रमाणमे राखल जाइत अछि शङ्कराचार्यक काश्मीरयात्रा [८२० ई०]-मे शक्तयद्वैतवादीक आकर्षण।[२३५] शैव-शाक्त दर्शनक प्रसङ्ग विचारसँ पूर्व शङ्करक 'आनन्दलहरी'क मतक सारांश उपस्थित करब समीचीन बुझना जाइत अछि।

१९२. आनन्दलहरीक प्रथमहि श्लोकसँ[२३६] शङ्कराचार्यक साधनापक्ष तथा शिवशक्तिक भावनाक परिचय भेटि जाइत अछि, ओहि श्लोकक आशय इएह अछि—

"शिव तहिखन सृष्टि कए सकैत छथि जखन ओ शक्तिक सङ्ग मीलि जाइत छथि, अन्यथा ओ देव किछु स्पन्दितो नहि भए सकैत छथि। तेँ अकृत-पुण्य व्यक्तिसभसँ अहाँक प्रणमन वा स्तुति सम्भव भए सकैत अछि, जखन हरिहरविरञ्चि आदि देवो सभ अहाँक स्तुति-प्रणमनमे लागल रहैत छथि ?"

१९३. आ' बिचारला उत्तर इएह शिवशक्तिरहस्य काश्मीर शैवमतक तँ कथे कोन, जे तान्त्रिक दर्शनक कुञ्जी थिक। शिवाद्वैत कहल जाए वा शक्तयद्वैत, से तँ निर्भर अछि साधनापर, साधनाक दृष्टिकोणपर, अछि धरि उक्त शैवमत अद्वैतवादिए, जे म० म० कविराजजी सेहो मानैत छथि[२३७]। शिवसूत्रसँ लए-केँ अभिनवगुप्तक ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी होइत शिवोपाध्यायक विज्ञान-

२३५। History of Philosophy—Eastern & Western—Kāshmira Shaivism—P. 381 (Vol. I)

२३६। शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि॥
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरञ्च्यादिभिरपि।
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति॥
--आ० ल०—श्लो० १

२३७। भा० सं० सा० [ भाग १ ]—काश्मीरीय शैव दर्शन—पृ० २

भैरवतन्त्रक टीका धरि एहि अद्वै तक एक परम्परा भेटैत अछि[२३८]। सामान्यतया ओहि शास्त्रकेँ तीनि वर्गमे बाँटल जाइत अछि—आगमशास्त्र, स्पन्दशास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र[२३९]। शिवसूत्रक उद्धर्त्ता वसुगुप्त [ ८२५ ई० ]सँ एक शृङ्खलाबद्ध इतिहास भेटैत अछि[२४०]। ताहि प्रसंग अनेक पुस्तकमे नीक जकाँ विचार कएल गेल अछि। वसुगुप्तक समय देखि ई कहि सकैत छी जे उक्त काश्मीरी दर्शन आलोच्य कृतिक समसामयिक छल। अस्तु, ताहि प्रसंग विस्तारमे नहि जाए सम्पर्कित बिषय, तत्त्व-विचार, प्रस्तुत कएल जाइत अछि।

१९४. काश्मीरी शैवदर्शन छत्तीसगोट तत्त्वमे समस्त सृष्टिकेँ बँटने अछि--शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या, माया, कला, विद्या, राग, काल, नियति आ' सांख्यक २५ तत्त्व—पुरुष, प्रकृति, बुद्धि, अहङ्कार, मन, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, ५ तन्मात्रा तथा ५ महाभूत[२४१]।

१९५. एहिमे प्रथम पाँच तत्त्वकेँ शुद्धाध्वन्, दोसर छः तत्त्व [ माया आ' आगाँक हुनक पञ्चकञ्चुकी] केँ मिश्र वा मध्य अध्वन् आ' ताहिसँ नीचाक समस्त तत्त्वकेँ अशुद्ध अध्वन् मानल गेल अछि[२४२]। काश्मीरी शैवदर्शन कतेक सूक्ष्म तथा विशद अछि से एहीसँ ज्ञात होइत अछि जे ओ पुरुषकेँ जीव मात्र मानि[२४३] तथा इतरसभकेँ स्थूलतर मानि समस्त पचीसहु तत्त्वकेँ अशुद्धहि अध्वन्मे रखैत अछि।

१९६. आब प्रश्न उठैत अछि जे ई तँ भेल सृष्टिप्रक्रिया। परमसत्य शैवदर्शन कनिका मानैत अछि ? जाहि हेतु, यद्यपि नाममे साम्प्रदायिकता भेटत, परमशिवक लक्षण द्रष्टव्य। उक्त छत्तीसहु तत्त्वसँ ऊपर, जे अनुत्तरपरमतत्त्व वस्तुतः वाच्य नहि छथि, शङ्करक ब्रह्मक समाने अवाङ्मनसगोचर, निर्विकल्पक, निरुपाधि तथा निर्विकार छथि, सएह कहबैत छथि परमशिव[२४४] [ उक्त ३६

---

२३८। Kashmir Shaivaism—P. 37–39 ( part I )

२३९। Do. —P. 7 ( Do. )

२४०। History of Philosophy : Eastern & Western – P. 382

२४१। पराप्रवेशिका—पृ० ६

२४२। Kashmir Shaivaism—P. 74-75 ( part I )

२४३। अनुत्तरप्रकाशपञ्चाशिका—श्लो० २२

२४४। Kashmir Shaivaism —P. 61 ( part I )

तत्त्वमे प्रथम तत्त्व केवल शिव'-पद-वाच्य छथि 'परमशिव' नहि, से ध्येय थिक ]।

१९७. आब दोसर शङ्का उठैत अछि—शिवशक्तिक मध्य केहन सम्बन्ध अछि ? से शिवतत्त्वहिक लक्षणसँ स्पष्ट भए जाएत तथा ताहिसँ परमशिवक अनुत्तरता सेहो स्पष्ट भए जाएत [२४५]—

"जखन ओ अनुत्तर मूर्त्ति अपन इच्छाशक्तिसँ अखिल जगतक सृष्टि करबाक हेतु स्पन्दित भेलाह [ किञ्चिच्चलनशील भेलाह ], तखन जे प्रथम स्पन्द आएल, सएह थिक शिवतत्त्व।"

१९८. एहि लक्षणवाक्यमे जे 'इच्छा' शब्द अछि तकर तात्पर्य अछि 'शक्ति', से एहिसँ स्पष्ट भए जाएत—"ओएह स्वच्छा इच्छा, [ परमशिवक ] सन्तत समवायिनी रहि तथा अपन अन्तर्लीन सचराचर निखिल जगतक बीज बनि 'शक्ति' कहबैत छथि" [२४६]।

१९९. काश्मीरी शैवदर्शन एकहि परमात्माक [परमशिवक] स्थिर [Static] अंशकेँ शिव तथा गतिशील [ Kinetic ] अंशकेँ शक्ति मानैत अछि, सएह बुझबाक थिक, जे शाक्तहु दर्शनक सिद्धान्त अछि [२४७]। केओ केओ विद्वान् बौद्धतान्त्रिक दर्शनमे विपरीत विषय पबैत छथि, किन्तु भूमिकामे हम विचार कए आएल छी, सिद्धसाहित्यक आधारपर, जे से विषय नहि अछि, नीक जकाँ शक्ति [ नैरात्मा रहितहुँ, परा रहितहुँ ] शिवरूप साधकक सङ्ग [ उपायक सङ्ग] सक्रिय [ Active ] रहैत छथि। अस्तु, ओएह शिव-शक्ति शैवदर्शनमे प्रकाश-विमर्श सेहो क्रमशः मानल जाइत छथि [२४८]।

२००. शक्ति विमर्श छथि, तात्पर्य जे अहन्ता-परामर्श छथि—शिवकाँ विश्वाकार [-ग्रहण] मे, विश्वप्रकाशमे, विश्वसंहरणमे 'अकृत्रिम हम' एहन जे विस्फुरण होइत छन्हि, सएह विमर्श [शक्ति] कहाओत [ शिव शक्तिसँ अविरहित छथि; बुझबाक हेतु कहल जाइत अछि जे परमेश्वर प्रकाशरूप छथि, विमर्श-

---

२४५। ष० त्रि० त० सं०—श्लो० १

२४६। ऐजन —श्लो० २

२४७। The Serpent Power—P. 36 ( Intro. )

२४८। इह खलु परमेश्वरः प्रकाशात्मा, प्रकाशश्च विमर्शस्वभावः ॥-पराप्रवेशिका—पृ० १

सँ विरहित छथि ] कारण, वस्तुतः जँ विरहित रहताह तँ ईश्वर नहि, जड़मात्र[२४९] बनि जेताह, अथवा तखन ओ स्फटिकादिजड़ोपम[२५०] मात्र रहि जेताह।

२०१. तेँ मानल जाइत अछि जे शिव-शक्ति [ शक्तिमान्-शक्ति ] एहि दूनूक तादात्म्य वह्नि-दाहकताक तादत्म्य जकाँ नित्य [ वस्तु ] थिक, शक्ति शक्तिमद्रूपसँ व्यतिरेक नहि चाहैत छथि[२५१]।

२०२. तँ अभिनवगुप्तक एहि सारांशसँ, दृष्टान्तस, समस्त कारमीरी शैव दर्शन तथा शैव-शाक्त साधनाक रहस्य प्रस्फुट भए जाइत अछि। आ' इएह तँ शङ्कराचार्यो कहने छथि 'शिवः शक्त्या युक्तो' शब्दमे। तेँ डा० राजूक एहन धारणा भेल——"एक ओ दर्शन, जे शङ्करक निकटतम आबि जाइत अछि, थिक शैवमतक अद्वैत जे बहुधा 'काश्मीरी शैवमत' कहल जाइत अछि"[२५२]।

२०३. डा० आर० सी० मजुमदार उक्त शैवदर्शनक अद्वैत परमशिवाद्वैत दिशि नहि ताकि आगमक सिद्धान्तकेँ द्वैतवादी कहि देने छथि, किन्तु ओहो-ठाम पुनः घुमाए-फिराए काश्मीरो शैवमतकेँ अद्वैतवादी कहैत छथि—"शङ्करक अद्वैत-दर्शन शैव मतकेँ एक नवीन मोड़ देलक। लगभग नवम शताब्दीक मध्यमे मुख्यतया शङ्करहिक प्रभावसँ एक स्वतन्त्र दर्शन काश्मीरमे विकसित भेल"[२५३]।

२०४. अस्तु, आब बौद्धक अद्वयवादक संग एहि अद्वैतवादक समानता देखल जाए।

२०५. भूमिकामे जेना कहि आएल छी, समग्र बौद्ध तान्त्रिक साधनाक लक्ष्य अछि शून्यता-करुणाक सामरस्य[२५४]। इहो कहि आएल छी जे शून्यता-

---

२४९। विमर्शो नाम विश्वाकारेण विश्वप्रकाशनेन विश्वसंहरणेन च अकृत्रिमाहम् इति विस्फुरणम्। यदि निर्विमर्शः स्यात् अनीश्वरो जड़श्च प्रसज्येत् ॥—पराप्रवेशिका —पृ० १-२

२५०। स्वभावमवभासस्य विमर्शं विदुरन्यथा।
प्रकाशोऽर्थोपरक्तोऽपि स्फटिकादिजड़ोपमः ॥—ई० प्र०-१ अ० ५ आ० ११ का०

२५१। शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद्व्यतिरेकं न वाञ्छति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव ॥—बोधपञ्चदशिका—श्लो० ३

२५२। The system that comes nearest to Shankara's is the Advaita of Shaivism, which is often identified with the Kashmir School of Shaivism.—I. T. I.—P. 135

२५३। The Cultural Heritage of India–P. 51 ( Vol. IV )

२५४। A, I. T. B.— P. 124-25

करुणाकेँ क्रमशः प्रज्ञा-उपाय[२५५] आ' तकरा पुनः क्रमशः शक्ति-शिव मानल गेल अछि, निर्णादतन्त्रक आधार पर[२५६]। तेँ एहि मे कोनो संदेह नहि जे अद्वयक, शून्यता-करुणाक सामरस्यरूप लक्षणक[२५७] अर्थें भेल शक्ति-शिवक सामरस्य आ' सएह तँ अछि काश्मीरी अद्वैतहुक तात्पर्य—३६ तत्त्वसँ ऊपर एकहि अनुत्तर परमतत्त्व परमशिवहिक प्रकाशांश शिवपदवाच्य आ' विमर्श [अहन्ताज्ञान]क अंश शक्तिपदवाच्य थिक, परमशिवक अवस्थामे दूनू अभिन्न बनि जाइत अछि।

२०६. तेँ जेना काश्मीरी शैव अभिनवगुप्त परम विभुकेँ देवीक संग नित्य-क्रीड़ारसोत्सुक देखैत छथि युगपत् विचित्र सृष्टि-संहार करैत देखैत छथि[२५८], तहिना बौद्ध सिद्ध शिवशक्तिसमायोगसँ लक्ष्यलक्षणनिर्मुक्त आओर वागुदाहार-वर्जित अद्भुत सुख जगैत[२५९] देखैत छथि। आ' एहिमे कोनो संदेह नहि जे हेरुक-प्रज्ञाक गाढालिङ्गन शिवशक्तिक सामरस्य मात्र थिक।

२०७. शाक्त सम्प्रदायक प्रसङ्ग एक शब्द। त्रिपुरासम्प्रदाय जे कामकलाक स्वरूपोपकथन करैत अछि तकर निष्कर्ष इएह प्रतीत होइत अछि जे चरमदशामे ओहो अद्वैतवादिए अछि। त्रिपुरासम्प्रदायक अनन्य अध्येता भास्करराय वरिवस्यारहस्यमे जे नैसर्गिकी स्फुरत्ताक अभिवन्दन करैत छथि,[२६०] अर्थमयी-शब्दमयी-चक्रमयी-देहमयी सृष्टिक वर्णन करैत छथि[२६१] तथा ताहि द्वारा ओहि स्फुरत्ताक विज्ञान देखबैत छथि अथवा पुण्यानन्दनाथ जे त्रिबिन्दु-तत्त्वस्वरूपा वर्णमयी[२६२] कामकलाक परिचय दैत छथि, सभक आशय एकमात्र प्रतीत होइत अछि परमतत्त्वक चित्, इच्छा, क्रिया, ज्ञान तथा आनन्दरूप स्वातन्त्र्यशक्तिक आविष्करण। आ' प्रत्यभिज्ञादर्शनहुक रहस्य इएह शक्तिक

---

२५५। A. I. T. B. — P. 90

२५६। Do. — P. 100

२५७। Do. — P. 115

२५८। बोधपञ्चदशिका—श्लो० ६

२५९। लक्ष्यंलक्षणनिर्मुक्तं वागुदाहारवर्जितम्। शिवशक्तिसमायोगाद् जायते चाद्भुतं सुखम्॥

— A. I. T. B. —P. 100 (f. n.)

२६०। व० र०—श्लो० ४, प्रथमांश [पृ० ६]

२६१। ऐजन —श्लो० ५ ऐजन [पृ० ७]

२६२। का० वि०—श्लो० २५ [पृ० ४६]

आविष्करण थिक।[२६३] भेद केवल एतबे जे शाक्त साधक ओहि परमतत्त्वकें अपन शक्तिरूपमे 'आद्याशक्ति' वा 'एका' वा 'परा' रूपमे देखैत छथि[२६४] आ' शैव अपन परमशिवरूपमे देखैत छथि।[२६५] दूनूक मूलमे शिव-शक्तिक मध्य अभेद-सम्बन्ध अछि तें दूनूमे केओ असङ्गत नहि। तें शाक्तो 'महान् प्रकाश'क वन्दना करैत छथि[२६६] आ' शैवो विमर्श बिनु प्रकाशकें 'स्फटिकादि-जड़ोपम' मात्र मानैत छथि।[२६७]

२०८. एहिसभ विषयपर पुस्तकक भूमिकामे प्रकाश देले गेल अछि, तें म० म० कविराजजीक मत रखैत विश्वास करैत छी—

"प्रत्यभिज्ञा-मतक सङ्ग त्रिपुरासिद्धान्तक अथवा श्रीविद्याक सम्बन्ध अति घनिष्ठ अछि।"[२६८]

२०९. कारण, परिणाममे दूनू अद्वैतवादी अछि जे प्रत्यभिज्ञासम्मत अद्वैतवादक विशद परिचयक क्रममे कविराजजीक "त्रिपुरासम्प्रदाय सेहो अत्यन्त कट्टर अद्वैतवादी अछि" वाक्यसँ निश्चित रूपमे परिपुष्ट भए जाइत अछि।[२६९]

## साहित्यिक

२१०. कोनहु युगक साहित्यिक परिस्थिति अपनामे ओहियुगक समस्त भावात्मक, काल्पनिक तथा भाषागत-शैलीगत समस्त विधाकें समेटि रखैत अछि। किन्तु ताहि दृष्टिएँ बढ़लासँ प्रस्तुत निबन्धमे अनावश्यक विस्तार आबि जाएत, तें केवल आलोच्य साहित्यक पीठिकाक रूपमे तत्सम्बन्धी मान्यता मात्र प्रस्तुत कए रहल छी।

---

२६३। ईश्वरप्रत्यभिज्ञानरूपं तदधिकरणसिद्धान्तनीत्या अनायाससिद्धम् – विमर्शिनी।
पुनः वृत्तिक पाद-टिप्पणी—"ईश्वरप्रत्यभिज्ञा च शक्त्याविष्करणद्वारेण"।
—ई० प्र०-१ अ० ६ आ० १० का० पर [पृ० २७१]

२६४। का० वि०—श्लो० २, २६ [पृ० ६, ४७]

२६५। Kashmir Shaivaism—P. 61 [Part I]

२६६। व० र०—श्लो० ३ प्रथमांश [पृ० ४]

२६७। ई० प्र०—१ अ० ५ आ० ११ का० [पृ० १६६]

२६८। भा० सं० सा०—काश्मीरी शैव दर्शन—पृ० १२ [खण्ड १]

२६९। ऐजन —ऐजन —पृ० २-३

२११. ओहि मान्यतासभमे चारि गोट मान्यता विशेषता रखैत अछि— [ १ ] अपभ्रंशक अङ्गीकार [ २ ] गीतक अनुराग [ ३ ] प्रतीक-योजना द्वारा गूढ़ विषयक रुचिरतर अभिव्यक्ति तथा [ ४ ] एहिसभ साधनसँ साध्यभूत रसक परिपाक वा दोसर शब्दमे भावपक्षक प्राबल्य ।

अपभ्रंशक अङ्गीकार

२१२. यद्यपि किछु आलोचक छठमहि शतीसँ अपभ्रंशक युग मानैत छथि,[२७०] किन्तु बिचारला उत्तर दण्डीक समय धरि परिनिष्ठित काव्यक माध्यम रूपमे अपभ्रंश अङ्गीकृत नहि भेल छल, जा'धरि अपभ्रंश गोआर, चाण्डाल आदि नीच जातिक भाषा कहि तिरस्कृते छल। दण्डीक 'आभीरादिगिरः' एही दिशि संकेत करैत अछि,[२७१] हुनकासँ पूर्वक भरत तँ आभीर-भाषाकेँ फराके कए देने छलाह[२७२] आ' अपभ्रंशकेँ 'विभ्रष्ट'[२७३] मात्र कहि निरसि देने छलाह ।

२१३. दण्डीक समय सातम शतीक अन्तिम भाग छल।[२७४] एमहर आगाँ जाए राजशेखर [ ८८४-९२५ ई० ] धरि[२७५] जाइत जाइत अपभ्रंश 'सुभव्योऽपभ्रंशः' कहल जाए लागल।[२७६] अपभ्रंश-कविकेँ राजाक सिंहासन लग पश्चिम भागमे बैसाओल जाइत छल[२७७] आ' संस्कृत-प्राकृत-पैशाचीक कविक समकक्ष मानल जाइत छल ।

२१४. अपभ्रंशक प्रतिष्ठा एतबे दिनमे एतेक कोना बढ़ि गेल ? ताहिमे प्रेरक भेल लोकमतक आदर। पूर्वक समयमे ब्राह्मण समस्त शास्त्रक सर्वाधिकार अपनहि हाथमे रखने छलाह, स्वतः संस्कृतकेँ उच्चतम स्थान दैत छलाह,[२७८] संभवतः डर छलन्हि ओकरा सङ्ग अपनो महत्त्व ने घटि जाए, तेँ अपभ्रंशक

२७० । हि० सा० बृ० इ०—पृ० ३२६ [भाग १]

२७१ । हि० काव्यादर्श—परि० १ श्लो० ३६ [पृ० ३२]

२७२ । ना० शा०—अ० १७ श्ला० ५६ [पृ० ३७७] [ Vol. II ]

२७३ । ऐजन —ऐजन श्ला० ३ [ पृ० ३६६ ] [ऐजन]

२७४ । हि० काव्यादर्श—प्रस्तावना पृ० १४-१५

२७५ । ऐजन —ऐजन पृ० ७

२७६ । का० मी० —भूमिका पृ० १६

२७७ । ऐजन — अध्याय १० [पृ० १३३]

२७८ । हि० सा० बृ० इ०—पृ० ३३० [भाग १]

तँ कथे कोन जे प्राकृतहुकेँ उत्तम-मध्यम पुरुषपात्रक भाषा नहि मानथि सेहो पुनः अभिनय सन लोकवृत्तानुकारी साहित्यिक अभिव्यक्तिमे।

२१५. आ' इएह संस्कृतक सर्वाधिकार, ब्राह्मणक सर्वाधिकार बाध्य कएलक गौतम बुद्धकेँ जे संस्कृत छोड़ि पाली [ प्राकृतक रूप ]केँ अपन प्रवचनक माध्यम मानल। एहन इतिहास छल। पश्चात् आबि जँ महायानी साहित्य संस्कृतकेँ प्रश्रयो देलक तँ लोकानुरोधेँ, सभकेँ बुझबाक योग्य होइक तेँ ओहिमे अपभ्रंशहुक शब्द फेँटए लागल आ' तेँ ओहि भाषाकेँ बौद्ध मिश्रसंस्कृत कहलो जाइत अछि।[२७९]

२१६. एहि प्रवृत्तिसँ ई स्पष्ट भए गेल होएत जे जेना राजशेखर साहित्यकेँ ताहि रूपमे देखल, जाहि रूपमे काव्यकेँ लोकमे देखल जाइत छल, [ हुनक समयमे] जेना स्थलस्थलपर कविगोष्ठी बैसैत छल, रसपूर्ण मुक्तक पाठक होइत छल वा रागलयतालानुसार कविताक गायन होइत छल आ' हुनक शब्दमे 'कण्ठे रक्तता'[२८०] सभसँ अधिक आकर्षक छल, ई नीक जकाँ मानि सकैत छी जे प्रमाताक सीमा राजा वा पण्डित मात्र धरि नहि, सकल समवेत जनपदकेँ काव्यप्रमाता मानल जाइत छल, अन्यथा एतेक आपाततः मधुर बनेबाक प्रयोजन नहि रहैत। काकुवक्रोक्तिकेँ जे राजशेखर ओतेक महत्त्व देल,[२८१] ताहूमे इएह आशु-आह्लादकारिकाक भावना निषक्त छल, देखल जाइत अछि जे व्यङ्ग्यार्थक प्रत्यायन सभसँ सुलभरीतिएँ काकुक द्वारा भए जाइत अछि, काकुसँ [ चेष्टहिसँ ] ककरो बुझबाक योग्य भए जाइत छैक जे वक्ताक प्रयोजन अछि अमुक अर्थ जनाएब।

२१७. एहि अपभ्रंशक उत्थानमे सिद्धसाहित्यक की योगदान भेल, तकर वास्तविक आ' सर्वाङ्गीण परिचय तँ आगाँक प्रकरणमे भेटत, किन्तु ओकर भूमिकारूपमे एतबा कहब आवश्यक जे बौद्ध सिद्धसँ पूर्व सम्भवतः कोनो कवि समग्र साहित्यिक चेतनाकेँ अपभ्रंशक माध्यमसँ व्यक्त नहि कएने छलाह।

२१८. सभ इतिहासकार संतोष धारण करैत छथि कालिदासक आपेक्षिक अनादृत विक्रमोर्वशीयक अपभ्रंश श्लोक देखि[२८२] आ' ओहि आधारपर

२७९। हि० सा० बृ० इ०— पृ० ३०१ [ भाग १ ]
२८०। का० मी० —अ० ७ [पृ० ८०]
२८१। ऐजन — ऐजन [पृ० ७५]
२८२। हि० सा० बृ० इ०—पृ० ३२९ [ भाग १ ]

अपभ्रंशकेँ तीनि सए-चारि सए वर्ष पूर्व घुसकाए लए जाइत छथि, साहित्यहुक दृष्टिएँ। कालिदास यथार्थवादी नाटककार छलाह आ' तेँ कलाकार छलाह आ' "जँ कलाकार यथार्थकेँ तेना बदलि देथि जे [ लोकक ] रितिआएल धारणा सभसँ संघर्ष उपस्थित भए जान्हि तँ संभवतः ई हुनक त्रुटि बुझल जाएत" [२८३]। पाश्चात्यतत्त्वदर्शी ब्राडले महाशयक कहि कसौटीपर कालिदास अवश्य शुद्ध सोन उतरितथि। आ' ओ कालिदास जँ अपभ्रंशकेँ यथार्थतया लोकक भाषा मानल तँ से युग-चेतनाक प्रतीक नहि, हुनक वैयक्तिक प्रतिभाक प्रतीक भेल। जँ ओ अपभ्रंशमे समग्र साहित्यकेँ विरचित करितथि तँ दण्डीकेँ 'आभीरादिगिरः' कहबाक साहस नहि होइत।

२१९. तेँ एकाध टुकड़ोपर लोकसाहित्यक निर्णय नहि हो। इतिहासकार-सभ सविधि तीनि भागमे अपभ्रंशकेँ बँटैत छथि—पूर्वी, दक्षिणी तथा पश्चिमी। तीनूक लक्ष्यग्रन्थसभक नामो दैत छथि[२८४]।

२२०. किन्तु, जखन देखए लगैत छी तँ इएह होइत अछि जे प्राकृतसँ आगाँ बढ़बाक साहस बौद्ध-जैनहुकेँ नहि होन्हि। हँ, एहिमे सन्देह नहि जे बौद्ध-जैन वा सनातनधर्मिओ प्रधानतया उपदेशक माध्यम अपभ्रंशकेँ मानए लगलाह तथा अन्य वर्गहुँ पूर्व ताहि दिशि प्रेरित भेलाह। कारण, राजशेखर सम्भवतः अपन आँखिसँ देखल जे'साधु सन्तउपदेशक आदि कविताक द्वारा उपदेश एवं प्रचार करैत छथि, 'हुनका लोकनिक रचना बालक, वृद्ध, स्त्री एवं हीन जातिक ग्रामीण पुरुष सभमे शीघ्रसँ शीघ्र मौलिक रूपमे प्रचारित भए जाइत अछि' [२८५]। समय काव्यमय छल आ' ताहि हेतु, जेना कहल गेल अछि, अपभ्रंशकेँ महत्त्व दिअए पड़ल माध्यमरूपमे।

२२१. अङ्गीरूप कोनहु अन्य-भाषाक साहित्यमे[२८६] कोनो दृष्टान्त वा सूचीमे स्थान, से तँ किछु पूर्वहु भेटैत अछि किन्तु परिनिष्ठित साहित्यक अभिव्यक्ति अपभ्रंशक माध्यमसँ सिद्धयुगसँ पूर्व नहि होइत छल, जाहिमे राजशेखर पड़लाह।

२८३। If an artist alters a reality so much that his topic clashes violently with our familiar ideas, he may be making a mistake.—Quoted in काव्यदर्पण--[भूमिका पृ० १४] from Bradley (Oxford Lectures on Poetry )

२८४। द्र० डा० टैगोरक मत—हि० सा० वृ० इ० —पृ०३१६ [भाग १]

२८५। का० मी०—अ० १० [प० १२६]

२८६। यथा कालिदासक विक्रमोर्वशीय—अङ्क ४;

२२२. भारतक समस्त क्षेत्रीय साहित्यक पर्यालोचनसँ इएह सत्य घटित होइत अछि। पश्चिमी अपभ्रंशमे गुजरातक गुजर अपभ्रंशक रचना हेमचन्द्रक पश्चाते भेल,[२८७] मराठी अपभ्रंश महाराष्ट्री प्राकृतक गाथासप्तसइक सातत्य-मे नहिए भेटैत अछि अर्थात् [ छठम शतीक ] पश्चाते आबि बिकसित भेल, कारण, भाषावैज्ञानिक उक्त ग्रन्थक विकसित [ वा अपभ्रष्ट ] रूप मराठी अपभ्रंशक नहि मानैत छथि[२८८]। तमिल-साहित्य-परिषद् इडेच्चङ्गमक जँ वृत्तान्तो भेटैत अछि तँ ताहि युगक साहित्य अनुपलब्धे अछि, किछु अन्य जँ भेटितहुँ अछि तँ समय संदिग्ध अछि, तोलकाप्पियम् लक्षणे ग्रन्थ अछि; शिलप्पदिकारम्,' मणिमेकले आदि चेरराजकुलक रचना अछि[२८९] जे चोलराजाक सामन्त-परिवार छल, जकर समय दशम शताब्दे मानल जाइत अछि[२९०]। कन्नड़क आदिकृति कविराजमार्ग लक्षणे ग्रन्थ अछि[२९१]। अधिकसँ अधिक मलयालम्-अपभ्रंशक उल्लेख कए सकैत छी, जकर विकासक आदिकाल [अज्ञात समय नम शताब्दी]मे लोकगीत तोट्टंपाट्टु लिखल गेल, किन्तु साहित्यिक मुक्तकक रचना 'माक्कं तोट्ट'' जे मानल जाइत अछि से वीररसाभि-व्यञ्जक अछि[२९२]।

२२३. पूर्वी अपभ्रंश तँ निर्विवादरूपसँ सिद्धसाहित्यहिसँ प्रारब्ध मानल जाइत अछि। हँ, संभव थिक असमिया लोकगीतक मूल[२९३] हर्षवर्धनक समकालीन शैव राजा भास्करवर्मनक समयमे भेटि जाए, किन्तु सेहो अनुसंधान-सापेक्ष अछि।

२२४. उत्तरी अपभ्रंशक तँ भेदे नहि भेटैत अछि। उचिते, नेपाल मिथिलहिसँ संबद्ध छल· संभवतः, आ' संभव थिक तँ राजशेखरक समयमे ओकरा पूर्वहिक देश मानल जाइत छल[२९४] जतए निर्णीत रूपसँ सिद्धसाहित्य

२८७। भा० सा० रू० रे०—पृ० २०६

२८८। ऐजन —पृ० २१६

२८९। ऐजन —पृ० २३३-५

२९०। O. H. I.—P. 215

२९१। भा० सा० रू० रे०—पृ० २५१

२९२। ऐजन —पृ० २६४

२९३। ऐजन —पृ० १७६

२९४। का० मी०—अ० १७ [ पृ० २२६ ]

आदि अपभ्रंश-साहित्य भेल[२९५]। उत्तरमे काश्मीरहिसँ तँ साहित्यिक स्फूर्त्तिक प्रश्न, ततए बौद्ध-जैनक प्रबलता ताहि समयमे छले नहि तखन निम्न-वर्गीय जनताक अभिरुचिक प्रश्ने कोन? सम्भवतः तेँ उत्तरी अपभ्रंश भेटो नहि[२९६]।

२२५. फलतः समस्त भारतक जे कोनो अपभ्रंश-साहित्य प्राप्त अछि, ताहिमे परिनिष्ठित काव्यरूपमे सिद्धसाहित्यकेँ आदिकाव्य मानल जाएत। परिनिष्ठित एहि हेतु कहल जे आसामक भक्तिसाहित्य वा मलयालमक लोकगीत अनुसंधानसापेक्ष अछि।

गीतक अनुराग

२२६. अपभ्रंश-साहित्यक प्रतिष्ठामे, हमरा जनैत, प्रबन्धसाहित्यसँ अधिक मुक्तकसाहित्य सहायक भेल। एहि विषयक सूचना हमरा ध्वन्यालोक-मे आनन्दवर्धनक प्रयुक्त 'अपभ्रंश' शब्द भेटैत अछि, मुक्तकक प्रकरण मे—"मुक्तकं संस्कृतप्राकृतापभ्रंशनिबद्धम्"[२९७]। प्रबन्धकाव्यमे जे ओ अपभ्रंशक चर्चा नहि कएल, तकर हेतु अछि अप्राधान्य वा अभाव। 'प्राधान्येन व्यपदेशाः भवन्ति'—प्रबन्धकाव्यमे अपभ्रंशक गप्प की कएल जाएत? संस्कृतक प्रचुर भण्डार अछि। किन्तु मुक्तकसे से नहि, अपभ्रंश-मुक्तक बड़ चमत्कार रखैत अछि। इएह अभिप्राय बूझि पड़ैत अछि।

२२७. आ' चमत्कारक सभसँ प्रबल युक्ति छल ओहि मुक्तकक गेयता जे ताहि दिनमे छन्दोबद्ध पाठसँ लक्षित भए जाइत छल। मुक्तकक गेयताक सूचना भेटैत अछि हमरा राजशेखरक अनेक पंक्तिसँ। राजशेखर प्रबन्ध आ' मुक्तक दुइए भेद मानैत छथि श्रव्यकाव्यक [ गीत कहि तेसर भेद नहि]। किन्तु, तथापि ओ 'कण्ठे कस्यापि रक्तता' [गले का सुरीलापन-हिन्दी], बालस्त्री-हीन[२९८] जाति सभक लेख्य स्वादु, कार्यावसरपर आशुकविक रचनाक चारूकात

२९५। हि० सा० वृ० इ०—पृ० ३१६ [ भाग १ ]

२९६। ऐजन — ऐजन

२९७। यतः काव्यस्य प्रभेदो मुक्तकं संस्कृतप्राकृतापभ्रंशनिबद्धम्॥
—ध्व० उ० ३ का० ७क वृत्ति [ पृ० ७५५ ] [ उत्तरार्द्ध ]

२९८। का० मी०—अ० १० [ पृ० १२६ ]

पसरब तथा सभसँ मुख्य विषय गीत-सूक्तिक प्रशंसा[२९९] कहि ई जनाए दैत छथि जे ताहि समयमे [ ९म शताब्दीक अन्त धरि[३००] ] गीत क प्रचार भए गेल छल। आधुनिक समीक्षककेँ शङ्का ऊठि सकैत छन्हि जे तखन एकरो एक काव्य-भेद किएक नहि कहल। समाधान सुलभ अछि—राजशेखर मुक्तक तथा प्रबन्धहिमे[३०१] गीतकेँ अन्तर्भूत देखैत छलाह आ' सुललित छन्दोबद्ध पाठक अर्थे बुझैत छलाह गायन।

२२८. मुक्तक-गीतक लक्षणमे बहुधा स्फीतता नहि भेटैत अछि—एहन सन क्रम बूझि पड़ैत अछि जे मुक्तक गीत वा गीत मुक्तक होएबे ने करए। तेँ दूनूक स्वरूपकेँ किछु स्पष्ट कएल जाए।

२२९. शास्त्रमर्मज्ञ अभिनवगुप्तहिक लक्षण दूनूपर अछि—

मुक्तक—"मुक्त अर्थात् अन्य [ कविता ]सँ अनालिङ्गित, स्वतन्त्र रूपक आ' परिसमाप्त-निराकांक्ष अर्थोवाला [ कविता ], प्रबन्धमध्यवर्ती रहला पर, 'मुक्तक' नहि कहल जाएत, मुक्तमे संज्ञामे कन् प्रत्यय जोड़ल अछि, तेँ मुक्तक"[३०२]।

तात्पर्य एतबे अछि जे प्रबन्धमध्यवर्ती [ वृत्तान्तानुसारी काव्यक अङ्ग ] नहि रहए, स्वतन्त्र रूपक रहए आ' अर्थसंगतिक हेतु कोनहु दोसर कविताक अर्थक प्रयोजन नहि हो, तेहन स्थितिमे ओ कविता मुक्तक कहल जाइत।

गीत—"गाओल जाए, तेँ गीत-काव्य भेल"[३०३]।

२३०. प्रायः उक्त लक्षणद्वयसँ स्पष्ट भए गेल होएत जे मुक्तक आओर गीत भेद दुइ दृष्टिकोणसँ अछि, एकहि दृष्टिकोणसँ नहि—मुक्तक भेद अछि

---

२९९। गीतसूक्तिरतिक्रान्ते स्तोता देशान्तरस्थिते।—का० मी०—अ० १० [ पृ० १२५ ]

३००। ऐजन — भूमिका पृ० ३

३०१। द्र० [ श्रव्य ] काव्यक दुइ भेद मात्र—'स पुनर्द्विधा, मुक्तकप्रबन्धविषयत्वेन।
ऐजन--अ० ६ [ पृ० ११४ ]

३०२। मुक्तमन्येनानालिङ्गितं संज्ञायां कन्। तेन स्वतन्त्रतया परिसमाप्त-निराकांक्षमर्थमपि प्रबन्धमध्यवर्ति न मुक्तकमित्युच्यते।
—ध्वन्यालोकक लोचन-टीका—उ० ३ का० ७ वृत्तिपर [पृ० ७५३] [उत्तरार्द्ध]

३०३। गीयत इति गीत काव्यम्।
—अभिनवभारती टीका--नाट्यशास्त्र अ०४, श्लो० २६८ पर [ पृ० ८० ]

[ प्रबन्धक विपरीत ] अन्यानपेक्षताक दृष्टिएँ, परिसमाप्त-निराकांक्ष अर्थक दृष्टिएँ आ' गीतभेद अछि पाठ-प्रणालीक दृष्टिएँ [ गाबिकेँ जँ पढ़ल जाएत तँ गीत, सोझे जँ पढ़ि देल जाएत, गाओल नहि जाए सकत, तँ गीत नहि ]। फलतः गेय रहलासँ मुक्तकहुकेँ गीत कहि सकैत छी आ' तहिना अन्यानपेक्ष स्वतन्त्र गीतहुकेँ मुक्तक कहि सकैत छी। गेय नहि तेहनो मुक्तक भेटत आ' मुक्तक नहि तेहनो गीत भेटत।

२३१. आब गीतक विचार प्रधानतया प्रस्तुत अछि तेँ किछु विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक लक्षण देखल जाए——

"धातुमातुसमायुक्त [ वस्तु ] गीत कहल जाइत अछि। धातु नादात्मक आओर मातु अक्षरसंचय [ शब्द ] थिक"[३०४]।

२३२. फलतः गीतक दुइ गोट पक्ष भेल—[क] नादपक्ष—जाहिमे ध्वनि [ Sound ] क समस्त अभिव्यक्ति-प्रणाली आओत आ' [ख] अक्षरसंचय-पक्ष अर्थात् शब्दपक्ष—स्वतः सार्थक शब्दक पक्ष अभिप्रेत अछि—आ' तेँ शब्दार्थक अभिव्यक्ति-प्रणाली एहि पक्षमे आबि जाएत, शब्दार्थशरीरक आत्म-तत्त्व रसतत्त्वक विचार वा उक्तिक समस्त वैचित्र्यक विचार आबि जाएत।

२३३. प्रथम पक्षक विचारमे राग-लय-तालक विचार स्वाभाविक, जे ध्वन्याश्रित शास्त्र संगीतक प्रमुखतम भित्ति थिक।

२३४. राग ककरा कही ?—ताहि प्रश्नक उत्तरक सङ्ग छन्दःपरम्पराहुक परिचय तथा राग-छन्दक तुलनात्मक विचार आबि जाएत, तेँ पहिने छन्दक विचार कएल जाए। तत्पश्चात् रागक विचार उपस्थित रहत।

२३५. राग-छन्दक मध्य पूर्वमे अन्तरक भावना नहि छल। ताहि प्रसङ्ग आचार्यप्रवर श्री रमानाथ बाबू नीक जकाँ विचार कएने छथि[३०५]। प० श्री गोविन्द बाबू सेहो एहि प्रकारक धारणा व्यक्त करैत छथि, किन्तु संग-संग किछु आक्षेप करैत छथि लोचनपर[३०६]। लोचन राग-छन्दकेँ एक मानल तेँ।

२३६. पण्डितजीक आक्षेपक मूलमे हुनक अपन लक्षण भनहि रहए,

३०४। धातुमातुसमायुक्तं गीतमित्युच्यते बुधैः।
तत्र नादात्मको धातुर्म्मातुरक्षरसंचयः॥
—रा०त० ३ तीय तरङ्गमे उद्धृत [पृ० ३६ ]

३०५। प्रबन्ध-संग्रह—'प्राचीन मैथिली-साहित्यक रूपरेखा निबन्ध—पृ० ३१

३०६। छन्दः शास्त्र—भूमिका पृ० ७-८

व्यापक शास्त्रीय लक्षण नहि अछि। हुनक लक्षण की छन्हि ताहिपर पश्चात् विचार करब। तत्काल व्यापक लक्षण प्रस्तुत करैत छी।

२३७. कौमुदीक उणादि-प्रकरणमे एक सूत्र आएल अछि, जकर टीकामे भेटैत अछि—"चद् धातुसँ 'छन्द' बनत। चद् धातुक अर्थ होएत अह्लादन, आह्लादित करब।" गायन-प्रकरणमे एहि व्युत्पत्तिक व्याप्ति हो, तेँ टीकाकार मेदिनीकोशक आधारपर पद्यप्रभेदहुक उल्लेख कए दैत छथि[३०७]।

२३८. पण्डितजी एहि लक्षणकेँ ततए मानैत छथि जतए ओ अपन पुस्तकक भूमिकामे कहैत छथि—'हमरा विचारे छन्द थिक रीतिविशेष'[३०८]।

२३९. अवश्य। व्युत्पत्त्यर्थक संग एहि लक्षणकेँ समन्वित कएलासँ छन्दक लक्षण होएत—कविताक गायन-रीति [ ढंग ] [ mode ] छन्द कहल जाइत अछि, कारण, श्रोता ओहि रीतिसँ आह्लादित होइत अछि।

२४०. आब रागक लक्षण देखल जाए। लोचन कहैत छथि, एक उद्धरण रखैत—"जे तीनू लोकवासीक मनकेँ अनुरञ्जित करए. सएह भरतादि मुनिसँ राग कहल जाइत अछि"[३०९]।

२४१. पुनः दोसर ठाम भेटैत अछि—"राग ध्वनिक [ वा स्वरक ] सङ्गीति-प्रणाली [ गायन-प्रणाली ] थिक"[३१०] [ अभिनवगुप्तक प्रवृत्तिक अनुसार कोष्ठमे 'गायन' शब्द देल ]।

२४२. अस्तु, उपर्युक्त छन्दक लक्षण आ' रागक लक्षणमे प्रायः कोनो मार्मिक अन्तर नहि भेटत। तेँ लोचनक अभिव्यक्तिमे रागक स्थानमे छन्दक अभिनिवेश सर्वथा असङ्गत नहि।

२४३. असङ्गतिक प्रश्न उठैत अछि जखन राग तथा छन्द दूनूक लक्षण किछु सीमित भए प्रस्तुत कएल जाइत अछि।

२४४. ताहि रूपक एक परिभाषा भेटैत अछि मैथिली-छन्दः शास्त्रमे—

---

३०७। चन्देरादेश्च छः ॥—
चदि आह्लादने अस्मादसुन् आदेशछकारश्च। छन्दः पद्यप्रभेदेऽपि स्वैराचाराभिलाषयोः इति मेदिनी। —सिद्धान्तकौमुदी-कृदन्ते उणादिप्रक्रियाप्रकरण-पाद ४ [ पृ० ६४० ] तत्त्वबोधिनी टीका।

३०८। छन्दः शास्त्र-भूमिका पृ० ५

३०९। यैस्तु चेतांसि रज्यन्ते जगत्त्रितयवर्त्तिनाम्।
ते रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भरतादिभिः ॥ —रा० त० तरङ्ग ३ [ पृ० ४० ]

३१०। A musical mode or order of sound.—आप्तेक सं० श० को० [ राग-शब्द द्र० ]

"छन्द से पदसमुदाय थिक, जाहिमे लय ओ तालक अनुकूल वर्ण-विन्यास हो "।[३११]

२४५. एहि लक्षणमे एक शब्द 'पदसमुदाय'क प्रयोग भ्रमाह अछि, वस्तुतः छन्द पदसमुदाय नहि, पद-पाठ-प्रणाली थिक, जकर संकेत लेखकहिक एक वाक्यसँ होइत अछि—"हमरा विचारेँ छन्द थिक रीति-विशेष "।[३१२] एहि वाक्यकेँ लेखक पोथीक भूमिकामे रखने छथि, परिभाषा-प्रकरणमे नहि, किन्तु अछि ई पूर्णतया सङ्गत। परिभाषाकेँ एहि दोसर लक्षण-वाक्यक आधारपर एहि प्रकारेँ संशोधित कए देब आवश्यक—"छन्द से पद-सङ्घटना थिक, जाहिमे लय ओ तालक अनुकूल वर्ण-विन्यास हो "।

२४६. 'पदसंघटना' रीतिक प्रतिशब्द मानि उक्त रूपक लक्षण-वाक्य देल, जे लेखकहिक बलपर प्रस्तुत भेल अछि।

२४७. आब लोचनकृत राग-लक्षण देखल जाए—"तालादि जाहिमे अप्रच्युत रहए तेहन स्वरसमूहत्व रागत्व भेल।"[३१३] तात्पर्य—रागमे स्वरसमूह तेना व्यक्त होइत अछि जे ताल-लय च्युत नहि होइत अछि, बैसल रहैत अछि।

२४८. लोचनप्रयुक्त 'आदि' शब्दसँ लयक ग्रहणमे भरतक दृष्टिकोण प्रेरक भेल अछि—"नारदादिक आ' गन्धर्वसभक द्वारा देवदानवसभ, सभामे, सम्यक् लय-तालसमन्वित निर्गीत सुनाओल गेलाह "।[३१४] एहिठाम तालक सङ्ग 'लय' शब्द ध्येय। स्वरसँ एहिठाम (लोचनक पंक्तिमे) नाद वा ध्वनि [ Sound ] अभिप्रेत अछि।

२४९. आब छन्दरागक लक्षणकेँ तुलना कएल जाए। ताल-लयक अनिवार्यता दूनूमे अछिए। अन्तर एकेठाम अछि, किन्तु से अन्तर महान् अन्तर अछि। रागमीमांसक लोचनक दृष्टि गीतक धातु [ नाद ] पक्ष दिशि झुकल अछि, तेँ स्वरसमूह [ Group of Sounds ]क चर्चा, साहित्यशास्त्री

---

३११। छन्दः शास्त्र—परिभाषा [ पृ० ११ ]

३१२। ऐजन — भूमिका पृ० ५

३१३। चित्तानुरञ्जकतालाद्यप्रच्युतस्वरसमूहत्वं रागत्वम्—रा० त०—तरङ्ग ३ [ पृ० ४० ]

३१४। नारादाद्यैस्तु गन्धर्वैः सभायां देवदानवाः।
निर्गीतं श्राविताः सम्यग्लयतालसमन्वितम्॥
—ना० शा०-अ० ५ श्लो० ३२ ( पृ० २२१ ) ( Vol. I )

छन्दोमीमांसक श्री गोविन्दजीक दृष्टि गीतक मातु [ अक्षरसंचय ] पक्ष दिशि झुकल अछि तेँ वर्ण-विन्यासक चर्चा।

२५०. वस्तुतः गीतक सम्यक् आलोचनाक हेतु सङ्गीत-विमुख बनने काज नहि चलत। ओकर चमत्कार भास [ तर्ज ] पर निर्भर अछि, स्वतः लय [ एक चालि ] आ' ताल [ चालिक मात्रा—चालिक प्रत्येक चक्रपर ठोकबाक प्रवृत्ति ] रहबे करत। आब एहि भासकेँ छन्द कहल जाए वा राग, दूनूमे, सामान्य विचारक दृष्टिएँ, कोनो आपत्तिकारक नहि।

२५१. कठिनता उपस्थित होएत जतए रागक नाम-निर्देश रहत। ताहिठाम रागक सङ्ग चलए पड़त, सङ्गीतशास्त्रकेँ सत्ता दिअए पड़त। आलोच्य साहित्य [ चर्यागीत ] ताही प्रकारक रचना थिक।

२५२. ओकर सम्यक् आलोचनाक हेतु जहिना गीतक शब्दार्थगत चमत्कारक [ जे मातुहि ( अक्षर-संचयहि ) वर्गमे आओत ] विचार प्रयोजनीय, तहिना ओकर स्वरगत [ Sound-सम्बन्धी ] चमत्कार [ वा नादानुसंधान ] प्रयोजनीय [ जे धातुवर्गमे आओत ]।

२५३. स्वरगत चमत्कारक पृष्ठभूमिमे लय-तालक विचार सर्वप्रथम होइत अछि जे संगीत-शास्त्रक प्रारम्भिकहु पुस्तकमे भेटि जाएत[३१५]। ताहि प्रसंग, जेना ऊपर कोष्ठमे जनाए देने छी एतबे कहब पर्याप्त जे भासकेँ लय नहि बुझल जाए।

२५४. भरतक नाट्यशास्त्रमे लय 'कलाकालकृत' मानल गेल अछि[३१६]। तात्पर्य अछि एक क्रमसे [ यथा घड़ीक टिकटिकक संग ] १ २ ३ ४ जा' धरि गनैत रहब [ कला-मात्रा गनैत रहब ] ता' धरि बुझू जे एक लय अछि, गति बदलि जाएत लय बदलि जाएत। इएह लय देखाढ भेला पर पारिभाषिक शब्देँ क्रमशः द्रुत, मध्यम आ विलम्बित मानल जाएत[३१७]— अधिक गतिएँ द्रुत, मध्यमपर मध्य आ' कम गतिएँ विलम्बित मानल जाइत अछि। संक्षेपमे, लयक अर्थ भेल गीत गएबाक एक चालि। कतेको गीतमे किछु काल एक चालि [ लय ] भेटत पुनः दोसर [ तीव्र वा मन्द ] चालि [लय] आबि जाएत तँ बुझू जे लय-संमिश्रण अछि।

२५५. अस्तु, लयक सङ्ग तालक सामञ्जस्य प्रयोजनीय अछि। ताल कला-

३१५। बालसंगीत-शिक्षा [ भाग १ ]-ताल और लय—पृ० ७

३१६। काव्यमाला—नाट्यशास्त्र—अ० ३१ श्लो० ३ ( पृ० ३३० )

३१७। ऐजन— ऐजन — ऐजन श्लो० ४ ( ऐजन )

कालप्रमाण कहल गेल अछि[३१८]। तालमे १, २, ३, ४ एहि प्रकारेँ कोनहुमे चारि-मात्रा, कोनहुमे छः मात्रा एना देखल जाइत अछि। गएबाक काल लयक एक चक्रपर अनायास ताली बाजि जाएत आ' तालक अनुभव होएत, तालमे जँ लय बैसल नहि रहल तँ ताल कटि जाएत।

२५६. सामान्यतया रागक संख्या २५० बुझल जाइत अछि[३१९]। ताहि-सभमे नहि पड़ि केवल प्रयोजनीय आलोच्य गीतक सहयोगी विचारसभकेँ पृष्ठभूमिमे राखि किछु समस्या जे उठैत अछि तकर समाधान मात्र करैत छी, कारण, गीतक प्रसंग अनेक, प्रकारक अनुसंधान प्रकट भइए गेल अछि। तँ किछु शङ्का–समाधान देखल जाए।

२५७. शास्त्रीय रागरागिणी आ' क्षेत्रीय गायन–शैलीक मध्य केहन संबन्ध अछि ? तकरा स्पष्ट करबाक हेतु लोचनक एक उद्धरण सशक्त सिद्ध होएत—

"मार्ग–देशी भेदसँ गीत द्विविध होइत अछि। एहिसँ, मार्ग मानल जाएत गन्धर्वादि गीत-गति सभ, ओही रागसभक आश्रित से से ताहि ताहि देशक गीत-गतिसभ अछि। एतए मार्ग–अभावेँ [ ओकर ] उदाहरण नहि देल जाइत अछि, आगाँ जाए किछु किछु उदाहरण देल जाएत"[३२०]।

२५८. एहिठाम 'गीतगीत' तथा 'आश्रित' शब्द ध्येय थिक। एहिसँ स्पष्ट भए जाइत अछि जे हमरा लोकनिक भास [तर्ज] सभ आश्रित अछि मार्गहि संगीतपर, मार्गहि रागसभपर, किन्तु गीतगतिमे, गायन–शैलीमे अन्तर आबि गेल अछि आ' से संगीतक चमत्कारे थिक। गायन-शैलीमे भिन्न-भिन्न क्षेत्रमे भिन्नता भेटबे करत[३२१]।

२५९. ई भिन्नता आइए नहि। नाट्यशास्त्रक ख्यातनामा व्याख्याता अभिनवगुप्त सेहो अनुभव कएल जे रागहुमे नागरिक [ शास्त्री ] तथा ग्राम [ग्राम्य] भेद अछि। तेँ तँ ओ कहैत छथि —

"मारीचवधक [निर्वाह] कंकुभग्राम रागहिसँ। तेँ रागकाव्य ई सभ मानल जाइत अछि"[३२२]।

---

३१८। काव्यमाला—नाट्यशास्त्र—अ० ३१—श्लो० ५ ( पृ० ३३० )

३१९। बालसंगीतशिक्षा (भाग २)—पृ० १७ ( पा० टि०)

३२०। रा० त०—तरङ्ग ३ [पृ० ३६-३७]

३२१। हि० सा० बृ० इ० ( भा० १)—पृ० ६५३-६५४ द्रष्टव्य।

३२२। अभिनवभारती (ना० शा० टी०]—अ० ४ श्लोक २६८ पर (पृ० १८२) ( Vol. I)

२६०. अभिनवगुप्तक निर्दिष्ट रागकाव्य गीतक मार्मिक अध्ययनमे पर्याप्त आलोक दैत अछि आ' संग संग मुख्यतया ई सूचित करैत अछि जे क्षेत्रीय-गीत-पद्धतिकेँ अशास्त्रीय वस्तु नहि बुझल जाए, मार्गसँ बहिर्भूत अछि केवल गनल-गूथल लक्षण-ध्यान-समन्वित जे प्राचीन शिवोक्त वा भरतोक्त रागविशेषसभ ताहिसँ किछु दोसर रङ्गक मात्र होएबाक कारणेँ। लोचनक 'आश्रित' शब्दसँ स्पष्ट अछि जे अनुसंधानक आधारपर एहि क्षेत्रीयहु गीत वा तकर भाससभकेँ मार्ग-गीत-पद्धतिसँ जोड़ल जाए सकैत अछि, जे काज लोचन बहुत दूर धरि कएल; हुनक 'गीत-गति' शब्द ओही गीत-पद्धति दिशि, गायनशैली दिशि संकेत करैत अछि, जकर चर्चा अनेकठाम भेटैत अछि संगीतक प्रसंग।

२६१. रागतरङ्गिणीसँ ई स्पष्ट नहि होइत अछि एहि हेतु जे मैथिली-गीत-सभक क्षेत्रीय भासक प्रचलित नामसभक निर्देश ओहीठाम नहि कए देने छथि। आइ जँ गीतक ऊपरमे बटगमनी, नचारी, महेशवाणी, एहन एहन भासक शब्दतः उल्लेख रहैत, जे राग-रागिणी-उल्लेख अछि ताहि सङ्ग-सङ्ग, अथवा जँ ओकर स्वरलिपि प्राप्त रहैत तँ ई स्पष्ट भए जाइत [ जे हमर धारणा अछि ] जे लोचन ई नीक जकाँ जनैत छलाह जे अमुक क्षेत्रीय भास अमुक रागपर अछि।

२६२. जखन ज्योतिरीश्वर झूमरितालक चर्चा कएल[३२३] आ' लोचनो झूंबतालादीनि कहनहि छथि[३२४], तँ, जेना आचार्यप्रवर श्री रमानाथ बाबूक धारणा छन्हि, लोक-भास अत्यन्त प्राचीन समयसँ आबि रहल अछि,[३२५] अभिनवगुप्तक [ दशम शताब्दी ] उल्लेख कइए आएल छी। तखन कोन कारण जे लोचन महेशवाणी सन सन शब्दक उल्लेख नहि कएल? एकर हेतु ओएह अछि जे अपनहि ओ कहि आएल छथि, जेना पूर्व कहल। एक दृष्टान्त लेल जाए।

२६३. रागतरङ्गिणीमे देव-कामोद एक रागिणी अछि, दीपकक भार्या। देव-कामोदक दृष्टान्तमे एक महादेवक गीत देने छथि,[३२६] साहित्य तँ अछिए शिवाश्रित जे भासो महेशवाणीक अछि—

सिङ्गी भरि पुरलैन्हि मधुरिम वानी,
भिषिओ न लेअ जोगी माङ्गइ भवानी॥
.... .... .... .... .... .... .... .... ....

---

३२३। वर्णरत्नाकर—कल्लोल ६ [ पृ० ४७ ]—झुमुला द्रष्टव्य
३२४। रा० त०—तरङ्ग ३ [ पृ० ३६ ]
३२५। प्रबन्ध-संग्रह-'प्राचीन मै० सा० क रूपरेखा'—पृ० ३१
३२६। रा० त० तरङ्ग ३—पृ० ६१-६२

२६४. इतिहासनुसार विद्यापतिक सुपुत्रक ई महेशवाणी देव-कामोदमे बैसल अछि।

२६५. ई संभव थिक जे देशी राग महेशवाणीकेँ मानैत छलाह, मार्ग-सङ्गीतक पद्धतिपर बैसाए ओकर प्रतिष्ठाकेँ बढ़ाएब उद्देश्य छल तेँ देवकामोद रागक नाम तथा लक्षण-घटना देखाएब। किन्तु इहो सम्भावना बाधित भए जाइत अछि जखन हुनक कृत 'देशी' वा 'देश' शब्दक निर्देश अनेकठाम भेटैत अछि यथा मालवक देशमालव भेद, सारंगी-रागिणीक देशी भेद[३२७] तथा एकहिठाम अनेक सङ्कीर्णासङ्कीर्ण मैथिलीरागक सूची भेटैत अछि, एतेक दूर धरि जे "तीरभुक्तिदेशीयाः सप्तनवतिसंख्यका रागा वेदितव्याः" पंक्ति पर्यन्त भेटैत अछि,[३२८] आ' ताहिमे कतहु 'महेशवाणी' शब्द नहि भेटैत अछि।

२६६. तखन की कएल जाए? सङ्गीतशास्त्रीक ध्यान हम एहि समस्या दिशि आकृष्ट करए चाहैत छिअन्हि आ' निवेदन ई अछि जे सम्भवतः महेश-वाणी आदि नामक पाछाँमे सङ्गीतसँ अधिक साहित्यक इतिहास अछि। अर्थक दृष्टिएँ ई लोक-नामसभ राखि देल गेल। ई अनुमान कएल जाए सकैत अछि जे मिथिलाक स्वतन्त्र गीतगतिक अनुसंधानसँ ई स्पष्ट भए जाएत जे महेशवाणी आदि जतेक लोक-गीत से सभ अमुक-अमुक राग-रागिणीसँ आएल अछि यथा ऊपर महेशवाणी देव-कामोदपर आधारित अछि। जँ सङ्गीतज्ञकेँ ताल-मात्रामे [ कोनहु पंक्तिमे ] किछु अन्तरो भेटन्हि, तँ ई स्मरणीय जे 'देशी' शब्द जोड़ि ओ राग मानल जाए सकैत अछि यथा लोचनकृत देशी-रामकरीमे द्रष्टव्य।

२६७. शुद्धा रामकरीमे २५, २६, २७ वा २८ मात्राक चरणार्धक संकेत अछि, एहिसँ ४ मात्रा कम कए, देशी रामकरी भए गेल। एवम्प्रकारेँ बुझबाक थिक[३२९]।

२६८. आइ जँ कोनो संगीत-विशारद मधुर गायक शुद्धा आ' देशी रामकरी सुनाए देथि तँ अन्तर स्पष्ट भए जाएत गायन-शैलीक अथवा लोचनक अनुसार गीत-गतिक।

---

३२७। रा० त० तरङ्ग ३ [ पृ० ६५ ], तरङ्ग ४ [ पृ० ८६ ]

३२८। ऐजन—[ पृ० ११६ ]

३२९। ऐजन—तरङ्ग ३ [ पृ० ५१-५२ ]

२६९. आइओ काल्हि समदाओन आदि किछु गीत द्रुत [ पुरुषक मुँहेँ ] तथा विलम्बित आ' सोभतानमे [ स्त्रीगणक मुहेँ ] गाओल जाइत अछि, से ध्येय।

२७०. एहिसँ वर्णरत्नाकरनिर्दिष्ट प्राचीन राग-रागिणी, सप्तस्वर, गमक, जाति, श्रुति, मूर्च्छना, गेयधर्म, गायनदोष, प्रबन्धगीत तथा गीतप्रपञ्चपर अनायास प्रकाश आबि जाएत।[330] ज्योतिरीश्वरक अध्ययन आ' अनुभवक-आधार मिथिलाक जनपदक संस्कृति छल [ 'ग्राम', 'भाषा' आ 'विभाषा' शब्द द्रष्टव्य ], तेँ उक्त रूपक गीतगति [ लय ] ओ अवश्य सुनने छल होएताह, आ' संभव थिक सभक मूलमे हुनका मूलभूत शास्त्रीय एकता दिशि ध्यान गेले होएत। तेँ ई बुझबाक थिक जे निर्दिष्ट रागसभकेँ देशी गायन-शैलीपर गाओल जाए सकैत अछि जाहिमे मूलस्वर वा भासक यद्यपि रहैत विशेष ढङ्गक क्षेत्रीय लोच, मीड़ आ' तानक आरोह-अवरोह व्यञ्जित होइत रहत। इएह गायन-गीत-गति देखि 'शब्दकल्पद्रुम'मे भिन्न भिन्न देशक निर्देश अछि रागक प्रसङ्ग।[331]

२७१. उक्त दृष्टान्तसभ जेना मिथिलापभ्रंशसँ लेल गेल तहिना अन्यान्यहु क्षेत्रीय भाषासँ लेल जाए सकैत अछि यथा लोचने नेपाली बराड़ीक उल्लेख कएने छथि[332] आ' फलतः गायन-शैलीक स्वातन्त्र्यसहित राग-रागिणीक आदर दिशि जाए पड़त, तहिखन विद्यापतिप्रभृति कविक गीतोपरिनिर्दिष्ट राग-नाम, वर्णरत्नाकरक रागसूची आदिक आदर होएत।

२७२. जेना कहि अएलहुँ, गीतक दू पक्ष अछि—धातु [ नादात्मक ] तथा मातु [ अक्षरसञ्चयात्मक ]। एहि दूनूमे धातुपक्षक विचार भए गेल। एहिमे केवल नाद आएल, शब्द नहि।

२७३. गीतक मातुपक्षमे अक्षरसञ्चय अबैत अछि अर्थात् शब्दगत समस्त तत्त्व आओत आ' शब्द जे गीतक चमत्कारकेँ जनाओत से तँ निरर्थक नहिए होएत। आ' शब्दार्थक चमत्कार अलङ्कारक छटा भेल, एहि अलङ्कारसभक बोध जाहि लाक्षणिक वैचित्र्यसँ होइत अछि वा प्रतीकसँ होइत अछि, तकर विचार अवश्य आओत आ' शब्दार्थशरीरक आत्मभूत तत्त्व रसस्वरूपक

---

३३०। वर्णरत्नाकर—कल्लोल ६ [ पृ० ४७-४८ ]—शालवादि द्रष्टव्य

३३१। श० क०—द्र० 'राग' शब्द [ पृ० ११४३ ]—अङ्गवङ्गादि द्रष्टव्य

३३२। रा० त०—तरङ्ग ३ [ पृ० ४८ ]

मीमांसा प्रयोजनीये। किन्तु, रस तँ भावहिक परिणत रूप थिक, तेँ मूलतः भावहुक विचार आबि जाएत। गीत केवल गेय पंक्ति मात्र नहि, गीत भावुक हृदयकेँ स्पर्श करबामे अपूर्व शाब्दी सृष्टि सेहो। तेँ एतेक प्रयोजन।

२७४. बहुधा एक शब्द भेटैत अछि 'प्रगीति', तकर प्रसङ्ग हमर इएह धारणा अछि जे ओकर तत्त्वसभक चर्चा अवश्य कएल जाए, किन्तु पारिभाषिक शब्दसभसँ साहित्यशास्त्रकेँ लादि किएक देल जाए? प्रगीतिमे रहैत अछि संक्षिप्तता, संवेगक तीव्रता, सङ्गीतक माधुर्य तथा भावनक अन्तर्मुखता।

२७५. संक्षिप्तताक तात्पर्य एतबे अछि जे प्रगीति ततबेटा हो जे व्यङ्ग्य भावक तन्तु टूटि नहि जाए।

२७६. संवेगक तीव्रताक [ Intensity of Emotionsक ] तात्पर्य ई अछि जे समग्र कवितामे आद्योपान्त प्रीति वा शोक वा कोनहु ने कोनहु भावक धारा भेटत, मौलिक प्रवाह भेटत। प्रगीतिक इएह तत्त्व हमरा भावपक्षक प्रबलता दिशि लए जाइत अछि, जाहिपर स्वतन्त्रे विचार आगाँ प्रस्तुत कएल जाएत।

२७७. सङ्गीतक माधुर्यमे रागलयतालाश्रयण आओत, लोच-मीड़ आदि आओत जकर यथासाध्य विचार प्रस्तुत कएल गेल अछि। अन्तिम तत्त्व अछि भावनाक अन्तर्मुखता [ Subjectivity of Ideation ]।

२७८. एहि शब्दक [ Termक ] विचार अङ्गरेजीमे जे भेटैत अछि से मैथिलीक सभ गीत वा बङ्गलाक सभ पदमे नीक जकाँ लागू नहि होइत अछि। अङ्गरेजीमे सामान्यतया प्रगीति [ Lyric ]क प्रसङ्ग कवि अपन भावनाकेँ व्यक्त करैत छथि, ताहि आशयक लक्षण भेटैत अछि।[333] एहिठाम ई ध्येय थिक, एहि लक्षणसँ जे प्रगीति अङ्गरेजीमे लक्ष्य होइत आएल अछि से संयोगसँ कविक वैयक्तिक कविता [ Personal Poem ] रहैत आएल अछि, तेँ एहन लक्षण निर्धारित भए गेल। किन्तु जँ सामान्यहि रूपमे एहन लक्षण प्रामाणिक मानि लेल जाए तँ पुनः 'अन्तर्मुख' आ' 'वैयक्तिक' दूनू शब्दक प्रयोजन कोन? दूनूक हेतु एकेटा पर्याप्त होएत।

२७९. फलतः लक्षण आपत्तिग्रस्त भए जाइत अछि आ' ई बुझब अनुचित जे सभ अन्तर्मुखी कविता वैयक्तिक रहबे करए। अन्तर्मुखताक तात्पर्य की? ई

३३३। Oxford Dictionary—vide 'Lyric'—P. 687

शब्द अङ्गरेजीक 'Subjectivity' शब्दक अनुवादमे राखल जाइत अछि जे शब्द पुनः 'Subject' सँ बनल अछि। मनोविज्ञानमे ई शब्द भेटत। जकरापर मनोवैज्ञनिक अपन विज्ञानक प्रयोग करैत छथि, जकर कल्पनासंवेगादि मानस प्रक्रियाक अध्ययन वा पर्यवेक्षण करैत छथि, ताहि अनुभव कएनिहार प्रयोज्यकेँ, आश्रयकेँ, 'Subject' कहल जाइत अछि, ओकरे आन्तरिक व्यापार अधीत होइत अछि।

२८०. तेँ हमरा जनैत, सएह वस्तु प्रगीतिअहुमे बुझल जाए। कवि जकर मानस अनुभवकेँ रखैत छथि से भेल आश्रय [ Subject ], कविताक अर्थ-योजना रहैत अछि आश्रयपरक [ Subjective ], यथा "सखि हे! मोर बड़ दैव विरोधी" विरहिणीक उक्ति तेहन अछि जे ई प्रतीत होइत अछि जे विरहिणीरूप आश्रय [ Subject ] एकरा अनुभव कए रहल अछि। हँ, ई वस्तु भिन्न थिक जे वर्ड्सवर्थक प्रगीति जकाँ कोनो गीत वैयक्तिको भेटि जाए, अन्तर्मुख तँ ओ रहबे करए, यथा—"माधव, हम परिणाम निराशा....." विद्यापतिक एहि भक्तिगीतमे दूनू वस्तु भेटत, अन्तर्मुखता [ Subjectivity ] तथा वैयक्तिकता [ Personal Element ]।

२८१. किन्तु ई ध्यानमे राखब आवश्यक जे जाहि अर्थमे 'प्रगीति' शब्द प्रयुक्त होइत अछि ताहि अर्थमे ई पारिभाषिक शब्द अङ्गरेजीसँ आएल अछि। Lyre शब्दसँ, जकर अर्थ होइत अछि वीणा, Lyric शब्द बनल। वर्ड्सवर्थ आदि अनेक प्रगीतिकार [ Lyricist ] भेलाह। हुनकालोकनिक प्रगीति देखि, उपर्युक्त संक्षिप्तादि गुण देखि, आधुनिक समीक्षकगण एहि शब्द [ 'प्रगीति' शब्द ]केँ प्रचलित कए देल।

२८२. एकठाम ध्वन्यालोकहुमे 'प्रगीत' शब्द भेटैत अछि, किन्तु जे जे लक्षण ऊपर राखल गेल अछि, ताहिसभक दृष्टिएँ प्रयोग नहि भेल अछि, केवल गेयता-चमत्कार लक्षित अछि।[३३४]

---

३३४। "स्वरश्रुत्यादिलक्षणमिव [अ]प्रगीतानां गान्धर्वलक्षणविदामगोचर एवासावर्थः॥"
—ध्वन्यालोक उ० १ का० ७ [ वृत्ति ] —पृ० १७३ [ पूर्वार्ध ] तकर लोचन-टीका द्रष्टव्य—
"प्रकृष्टं गीतं गानं येषां ते प्रगीताः——"—लोचन—ऐजन सन्दर्भ वा प्रगीत-अप्रगीत दूनू पाठ-भेद अछि, ताहिमे दीधितिकारक मतेँ प्रगीत उचित॥
—ऐजनक तारावती हिन्दी व्याख्या——पृ० १७५ [ पूर्वार्ध ]

२८३. हमरा जनैत, एहि विवादमे नहि जाए सर्वत्र 'गीति' शब्दहिक प्रयोग करब अधिक भारतीय, प्रयुक्ततागुणसमन्वित तथा निर्विवाद होएत आ' तेँ विद्वद्गण करितहुँ छथि। हँ, ई वस्तु भिन्न थिक जे उपर्युक्त चमत्कारत्मक निर्देश कए देल जाए।

## प्रतीक-शैली

२८४. प्रतीकक अर्थ अछि संकेत [ Symbol ]। वस्तुतः संकेतग्रहण नव वस्तु नहि। अभिधहि शक्तिक लक्षणमे एकर उपादान अछि। किन्तु प्रतीक-शैलीक प्रकरणमे प्रतीकक तात्पर्य लाक्षणिकसंकेतसूचक शब्द बुझल जाइत अछि। ताहूमे पुनः पुरान लाक्षणिक शब्द भेलासँ प्रतीककेँ चमत्कार नहि मानल जाएत, प्रतीकक चयन नवीन रहब आवश्यक ।

२८५. "एहि नगरीमे भवनक छातपर पंक्तिबद्ध चन्द्रमा विराजित छथि"[३३५]—एहिठाम वस्तुतः 'चन्द्रमा' प्रतीक अछि युवती-मुखमण्डलक। किन्तु प्रतीक-योजनाक चमत्कार एहिठाम मानल नहि जाएत। किएक ? एक मात्र हेतु ई अछि जे एतए प्रधानता अछि विषय-निगरण-रूपा रूपकातिशयोक्ति-छटाक, प्राधान्यसँ व्यपदेश हो। एही प्रकारेँ अधिकांश अन्योक्तिक दृष्टान्त भेटत।

२८६. तँ प्रतीक-शैलीक तात्पर्य होएत एक तेहन शैली, जाहिमे कवि प्रधान-भूत चमत्काररूपमे प्रतीक-प्रयोग देखबैत छथि—शीघ्र श्रोताकेँ ओहि प्रतीकरूप शब्द दिशि ध्यान चल जाइत अछि आ' से सामान्यतः नवीनहि प्रतीकक चयनमे होएत।

२८७. किन्तु ई चमत्कार पूर्वो प्रचलित छल, भनहि प्रतीकवाद[३३६] मानल जाए वा नहि। उदाहरणार्थ भल्लटकेँ राखल जाइत अछि जनिक मुक्तकमे हाथी, भमरा, चातक, मृग, सिंह आदिकेँ प्रतीक बनाए देल गेल अछि। आ' मुक्तक-कवि भल्लट सिद्धयुगसँ पूर्वे भेलाह [ ७५७ वि० सं० ][३३७]।

---

३३५। 'पुरेऽस्मिन् सौधशिखरे चन्द्रराजी विराजते'—र० ग० आनन २—पृ० १६०—लक्षणा-प्रकरण

३३६। प्रतीकवादक लक्षण द्रष्टव्य—साहित्यशास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोष-'प्रतीकवाद' शब्द—पृ० १५१

३३७। हि० सा० वृ० इ० [ भाग १ ]—मुक्तक काव्य—पृ० २२०

२८८. तँ जखन भल्लटक प्रतीक-शैलीक चर्चा प्रचलित अछि, तखन हमर सिद्धसभक प्रतीक शैलीक विचार किएक नहि प्रचलित हो ? प्रत्युत जेना आगाँ सूचित होएत सिद्धक गीतक अर्थे नहि लागि सकैत अछि जा'धरि प्रतीकक लक्ष्य अर्थकेँ फरिछाए नहि देल जाए। तेँ आगाँ गीति-समीक्षणक क्रममे प्रतीकक विचार प्रस्तुत करबाक प्रस्ताव अछि।

२८९. पुरानहु कविक प्रतीक-शैली चमत्कार रखैत अछि, ताहि प्रसङ्ग एक विद्वानक उक्ति रखैत विश्राम करैत छी—

"यदि प्रत्येक महान् कल्पनाशील कविक रचनामे सभ दिनसँ कोनहु ने कोनहु रूपमे प्रतीकक प्रयोग नहि होइत रहितए तँ आइ प्रतीकवादक किछु मूल्य नहि रहैत"[३३८]।

*भावपक्षक प्रबलता*

२९०. आलोच्य युगमे काव्य-मर्मज्ञक ध्यान कविताक बाह्य सुन्दरतासँ आन्तरिक आह्लाद दिशि झुकि गेल। ओ आह्लाद ज्ञात वा अज्ञातरूपसँ अनादि समयसँ काव्यमे आबि रहल अछि, किन्तु समीक्षकक ध्यान, अलङ्कारशास्त्रीक ध्यान, एहि दिशि नहि जाइत छल।

२९१. तँ भामह अतिशयोक्तिअहिमे समस्त काव्योपस्कारक तत्त्वकेँ अन्तर्भुक्त रूपमे देखल। तथापि ३८ [ वा ४० ] गोट अलङ्कारक लक्षण प्रस्तुत कएल, ई कहि जे जेना स्त्रीक मुखमण्डल सुन्दर रहितहुँ बिनु भूषण [ प्रसाधन ]क शोभित नहि अछि। इएह स्थिति दण्डिअहुक छल किन्तु हुनक ध्यान इष्टार्थ दिशि धरि गेल, अर्थक गहनासँ अर्थशरीर दिशि गेल। अग्निपुराणहुमे इएह बहिर्मुखी दृष्टि देखैत छी, अलङ्काररहिता काव्यसरस्वतीकेँ विधवा घोषित कएल गेल। वामन सौन्दर्य दिशि अधिक साकांक्ष भेलाह आ' अलङ्कारक लक्षणकेँ व्यापक बनाए सौन्दर्यमात्रकेँ अलङ्कारक संज्ञा देल, किन्तु सौन्दर्यक व्याख्या जखन करए लगलाह तखन गुणात्मक रीतिकेँ काव्यक आत्मे मानि लेल। रुद्रटादिहुक इएह स्थिति[३३९]।

---

३३८। सा० शा० पा० श० को०—'प्रतीकवाद' शब्द—पृ० ४५१

३३९। लेखककृत मैथिलीक 'काव्यमीमांसा' [भाग २]—पृ० ४१–४२

२९२ कोनहु आचार्यक ध्यान ध्वनिकारसँ पूर्व काव्यक भावभूमि दिशि, रसात्मक उद्रेक दिशि, ततबे दूर धरि गेल जे रसवत् अलङ्कारे मानि लेल गेल। सभसँ पूर्वक आचार्य भरत रसकें, भनहि दृश्यहि काव्यक भूमिकामे कहने होथु, महत्त्व धरि अत्यधिक देने छलाह। किन्तु कोनो आचार्य एतेक साहस नहि कएल जे रसकें काव्यात्मक स्वादक अर्थमे व्यापक रूपमे देखि श्रव्यहु काव्यमे ओकर प्रमुख सत्ता रहैत अछि वा नहि ताहिपर विचारो धरि करितथि। आ' रस तँ भावहिक परिणत रूप थिक, तें कहि सकैत छी जे ध्वनिकारसँ पूर्व भरत-सङ्केतित भावभूमिपर उचितरूपेण कोनहु आचार्यक ध्यान नहि गेल।

२९३. मीमांसक भट्टलोल्लट बौद्ध नैयायिक शङ्कुक आ' एक गोट सांख्य-मतानुयायी आचार्य एतबा धरि कएल जे भरतक महान् विस्तृत ग्रन्थ नाट्यशास्त्रक एक गोट सूत्र "विभावानुभावव्यभिचारसंयोगसँ रसनिष्पत्ति हो" दिशि सावधान भए ओकरा विचार-जगतमे लए आनल आ' अपन ऊहापोहसँ क्रमशः उत्पत्तिवादी तथा अनुमितिवादी व्याख्या प्रस्तुत कएल—दूनू आचार्य रसकें अनुकार्य-नटहिमे मानल, सामाजिकमे [ नाट्यद्रष्टा, वाचिक-अंश-श्रोतामे ] नहिए मानल। ओहि दूनू आचार्यक मतमे क्रमिक विकास कोना भेटैत अछि, कोना लोल्लट पूर्वमीमांसहि धरि सीमित छलाह, कोना शङ्कुक बौद्ध न्यायकें अङेजल आदि विषयपर विचार प्रयोजनीय नहि बूझि पड़ैत अछि। तकर दुइ गोट कारण अछि—[१] दूनूमे केओ श्रव्यकाव्यक विचार नहि कएल, जे प्रस्तुत आलोच्य- कृतिक स्वरूप अछि आ' [२] दूनूमे केओ काव्य- श्रोतृगत स्थायीभाव दिशि साकांक्ष नहि भेलाह वा नाट्यहुक प्रसंग सामाजिककें सत्ता नहि देल, सेहो जँ देने रहितथि तँ उपलक्षण बूझि काव्य- श्रोतृगत मानि लेल जाइत।

२९४. कहल जाइत अछि जे एक सांख्यवादी भेलाह, किन्तु हुनक विचार स्थायीभावनिरपेक्ष अछि, भावपर्यालोचनविरहित रसक सांख्यपरक व्याख्या मात्र अछि, काव्यात्मक व्याख्या नहि[३४०]।

---

३४०। 'रसगंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन'—[ पृ० १२१-१४४ ] पर आधारित।

ध्वनितत्त्वक आविष्कार

२९५. वस्तुतः भरतसंकेतित रसतत्त्व – भावतत्त्वक महत्त्व तखन आबि बढ़ल जखन ध्वनिकार काव्यक आत्मा[341] ध्वनिक स्वरूप स्पष्ट कएल अपिच ध्वनिक तीनिभेद वस्तुध्वनि, अलङ्कारध्वनि आ' रसध्वनिक निर्देश कएल।

२९६. किछु प्रबल प्रमाण भेटैत अछि, जाहि आधारपर ध्वनिकार [ध्वन्यालोकक कारिकानिर्माता]केँ आनन्दवर्द्धन [वृत्तिकार]सँ भिन्न व्यक्ति[342] आ' स्वतः पूर्ववर्त्ती व्यक्ति मानल जाइत अछि। आनन्दवर्द्धनक निम्नतम समय-सीमा ८५५ ई० मानल जाइत अछि[343]। ताहिसँ कमसँ कम ५५ वर्ष पूर्व जँ मूल लेखक ध्वनिकार भेल होएताह [जे सामान्यतया संगत होएत] तँ लगभग ८०० ई० वा पूर्व हुनक समय मानल जाएत।

२९७. एमहर पालयुगक आरम्भ ७६५ ई० मे मानल जाइत अछि, ताहूमे प्रथम राजा गोपालक साहित्यनिरपेक्षताक आधारपर वस्तुतः सांस्कृतिक स्फूर्त्ति-युग सरहपादक समकालीन राजा धर्मपाल [८१५ ई०] हिसँ मानब उचित[344]। ताहिसँ पूर्व ध्वनिकार अवश्य भेल होएताह। तँ काव्यक भावपक्षक प्रबलताक सूत्रपात सिद्धयुगसँ किछु पूर्व भेल वा आरम्भहिमे भेल से कहि सकैत छी।

२९८. एमहर अभिनवगुप्तक समयक निम्नतम सीमा ९७० ई० मानल जाइत अछि आ' उच्चतम सीमा १०५० ई०[345] आ' एही मध्यमे तँ अन्तिम गीतिकार सिद्ध शान्तिपाद [९७४-१०२६ ई०] भेलाह[346]।

२९९. तँ आलोच्य साहित्यपर संभावित काव्यशास्त्रीय दृष्टिएँ ध्वनिकार-आनन्दवर्द्धन, भट्टनायक [९३५ ई०] तथा अभिनवगुप्त [९७० ई०] मात्रक[347] विचार पर्याप्त होएत।

---

३४१। "काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः"—ध्वन्यालोक पूर्वार्ध उ० १ का० १ पृ० १३

३४२। ध्वन्यालोक [भाग २]—उ० ३ का० ५ क सातत्यमे लोचनटीका—पृ० ७३६ [उत्तरार्ध]

३४३। क। हि० काव्यादर्श –प्रस्तावना पृ० ७
ख। का० सो०—भूमिका पृ० ७

३४४। पाछाँ पाल-राजालोकनिक समय-सीमा (अनु० ११४)

३४५। हि० काव्यादर्श—प्रस्तावना पृ० ४

३४६। पाछाँ भूमिका (अनु०१५)

३४७। समयक हेतु—द० गा० शा० अ० [पृ० १०५] तथा हि० काव्यादर्श—प्रस्तावना [पृ० ७]

३००. अस्तु। ताहिमे पहिल आचार्य, ध्वनिकार, ध्वन्यालोकक कारिकासभ द्वारा काव्यक अन्तस्तत्त्वक भावभूमिक अनुसंधान कएल। रसध्वनिक तँ कथे कोन, जे वस्तु-अलङ्कारहु ध्वनिकेँ मस्तिष्कसँ अधिक हृदयग्राह्य मानल।

३०१. ध्वनिकार एहन अनुभव कएल जे मुख्य वस्तु थिक काव्यमे प्रधान-रूपसँ अनुभूत होइत व्यङ्ग्यार्थक प्रतीति। ओ प्रतीयमान अर्थ वस्तुतः शब्द द्वारा व्याख्येय नहि, जेना अङ्गनाक सौन्दर्य व्याख्येय नहि। कोनहु अङ्गनाक शरीरमे एक अपूर्व लावण्य भेटत जे मनकेँ अपना दिशि घीचि लेत। केओ पुछत—ओना किएक लागल? एकर उत्तर देब कठिन भए जाएत। कारण, आँखि सुन्दर, नाक सुन्दर, एहि स्वरूपक विशेषता नहिओ रहैत, ई देखल जाइत अछि जे कोनो अङ्गना अपन अपूर्व लोचसँ आकृष्ट कए लैत छथि।

३०२. तँ काव्यमे ध्वनितत्त्व एहने लोच थिक। एकर कतहु व्याख्या हो? ई ध्वनितत्त्व अनुभवक विषय थिक, मूकास्वादवत् हृदयमे गुदगुदीक अनुभव दैत रहैत अछि। इएह आशय अछि ध्वन्यालोकक श्लोकक—"प्रतीयमान पुनः दोसरे वस्तु थिक जे महाकविक वाणीमे रहैत अछि। ई ओ तत्त्व थिक जे काव्यमे तहिना चमकैत रहैत अछि जेना अङ्गनामे प्रसिद्ध अवयव [आँखि, कपोलादि]सँ अतिरिक्त एक अपूर्व लावण्य [कान्ति वा लोच] चमकैत रहैत अछि"।[३४८]

३०३. तँ बाह्य सौन्दर्यावलोकनसँ अनुभूति दिशि जाए रहल अछि उक्त ध्वनि-धारणा। यद्यपि ध्वनिकार अवस्थाविशेषमे वस्तु तथा अलङ्कारहुकेँ ध्वनिक सत्ता देल; किन्तु, वस्तुध्वनि, अलङ्कारध्वनि तथा रसध्वनिमे अन्तिमक प्रति पक्षपाती छलाह, रसध्वनिकेँ तीनूमे प्रधान मानैत छलाह से स्पष्ट अछि आदिकविक करुणाश्रित आदिश्लोकक चर्चासँ।

३०४. आनन्दवर्द्धन ई अनुभव कएल जे उक्त रूपक धारणासँ ध्वनिक अन्य भेदक महत्ता घटि जाइत अछि, वस्तुध्वनि-अलङ्कारध्वनिकेँ आदि सत्ता नहि देल जाए, तेहन सन धारणा व्यक्त होइत अछि।

३०५. ताहिपर ओ समाधान दैत छथि—"प्रतीयमान [ध्वनिक]क अन्यो भेद देखल जाइत अछि, किन्तु रसभावहिक द्वारा ओकर उपलक्षण कएल गेल

---

३४८। प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत् तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु ॥ ४ ॥
—ध्वन्यालोक उ० १ – पृ० ७६ ( पूर्वार्द्ध )

अछि, कारण प्रधानता ओकरे अछि [ तीनूमे प्रधान ओएह अछि ]"।[३४९] तात्पर्य अछि जे काव्यक अन्य तत्त्वसँ तीनू ध्वनि अधिक सत्तावान् अछि, किन्तु तीनू ध्वनिमे पुनः रसध्वनि प्रमुखतम अछि।

३०६. ध्वनिकारक रस-प्रतिष्ठापन, कविताक अन्तःपक्षक प्रबलता-ज्ञापन साहित्यशास्त्रमे एक महान् क्रान्ति उपस्थित कएलक आ' आब आचार्यगण कविताक आत्मभूत तत्त्व ध्वनिअहिकाँ मानए लगलाह।

३०७. ई घटना ताही युगक थिक जाहि युगमे एमहर सिद्धसाहित्यक सर्जना चलि रहल छल आ' ओमहर काश्मीरी शैव दर्शनक विकास भए रहल छल। कहल जाइत अछि जे—"शैव धर्मक सङ्ग ओहिठाम ताहि समयमे काश्मीरक भूमिमे अन्य वैदिक तथा बौद्धो धर्म पालित भए रहल छल"।[३५०] एहि उक्तिक प्रमाण तँ नहि भेटैत अछि, किन्तु अद्वयवज्रसंग्रहोक्त शिवशक्तिसामरस्यक शब्दतः उल्लेखसँ[३५१] एतबा धरि निश्चित जे सिद्धगण काश्मीरी शैवमतसँ परिचित छलाह, प्रत्युत जेना प्रस्तुत शोधसँ प्रमाणित भए गेल अछि, सिद्धसाधना शाक्त साधना मात्र आ' ओकर दर्शन शैवदर्शन मात्र, जे शाक्त दर्शनक अभिन्न मानल गेल अछि [ प्रमाण दए आएल छी ]।

३०८. तँ एहन अनुमान कए सकैत छी जे काश्मीरी आचार्य आनन्द-वर्द्धनक आदृत ध्वनिसिद्धान्तक आदर सिद्धसाहित्यहुक वर्गमे छले होएत। आनन्दवर्द्धन काश्मीरक अवन्तिवर्मा[ राजा ]क राजपण्डित[३५२] छलाह, अप्रसिद्ध नहि छलाह। बौद्धक संपर्क छल, सेहो भेटितहिँ अछि,[३५३] ताहि सभसँ उक्त रूपक अनुमान सिद्ध भए जाइत अछि।

---

३४९। प्रतीयमानस्य चान्यभेददर्शनेऽपि रसभावमुखेनैवोपलक्षणप्राधान्यात्॥
—ध्वन्यालोक उ०१ का०५ क वृत्ति [ पृ० ५५ ] [ पूर्वार्ध ]

आओर द्रष्टव्य ओकरे टीका—

तेन रस एव वस्तुत आत्मा। वस्त्वलङ्कारध्वनी तु सर्वथा रसं प्रति पर्यवस्येते इति।—लोचन-टीका-ऐजन-ऐजन—पृ० ५५

३५०। र० ग० शा० अ०—पृ० १६४

३५१। शिवशक्तिसमायोगात् जायते चाद्भुतं सुखम्॥—पाछाँ द्रष्टव्य पा० टि० २५६

३५२। का० मी०—भूमिका पृ० ४

३५३। र० ग० शा० अ०—पृ० १६४मे विशेष रूपसँ सूचित।

रससूत्रक व्याख्या

३०९. जेना कहि आएल छी आनन्दवर्द्धनक पश्चात् भट्टनायक तथा अभिनवगुप्तक विचारक आलोचना वा समीक्षा प्राप्त अछि।

३१०. भट्टनायक [ ९३५–९८५ ई० ]क प्रसङ्ग ई कहि सकैत छी जे आइ अभिनवगुप्त सन अभिव्यञ्जनावादी आचार्य जँ हुनक परवर्त्ती नहि होइतथि तँ हुनक मौलिक विचार अत्यधिक सम्मानित होइत। अभिनव हुनक भावकत्व-व्यापारक स्थानमे व्यञ्जनाकेँ पर्याप्त मानल, ततबा अंश तँ अवश्य सर्वमान्य अछि, किन्तु जतेक हेय दृष्टिएँ भट्टनायककेँ देखल गेल ततेक उचित नहि। कारण, अभिनवगुप्तकेँ आधार वा सहायक सामग्री रूपसे भट्टनायकक बहुतो विषय प्राप्त भेल, जकरा लए अभिनव अभिनवभारती तथा लोचन-टीकामे रस-स्वरूपक विशद निरूपण कएल।

३११. मम्मट तथा अभिनवगुप्तक उद्धृत भट्टनायकक मत केहन अछि, से ध्येय।

३१२. भट्टनायकक कहब अछि[३५४]—"ने ताटस्थ्यसँ आ' ने आत्मगतरूपमे रसक प्रतीति होइत अछि, ने उत्पत्ति होइत अछि आ' ने अभिव्यक्ति होइत अछि, अपितु काव्यमे, नाट्यहुमे, अभिधानसँ दोसरहि व्यापारसँ, विभावादि साधारणीकरणरूपबाला भावकत्वव्यापारसँ भाव्यमान स्थायी [ भाव ] स्वप्रकाशानन्दसंविद्विश्रान्ति-सतत्व-भोगसँ भुक्त होइत अछि।"

३१३. एहिठाम तीनि गोट व्यापारक उल्लेख अछि—अभिधा, भावकत्व आ' भोजकत्व [ भोग ]। एक आओर तत्त्वक उल्लेख अछि, साधारणीकरणक, किन्तु भट्टनायक ओकरा भावकत्वहिक रूप मानल। अभिधाशक्ति [ व्यापार ]सँ काव्य-शब्दक वाच्यार्थक बोध होइत अछि, ओहि साधारणीकरणक प्रसादात् निविड़निजमोहसङ्कटतानिवारण होएब समीचीने आ' तखन रजस्तमोऽनुवेध-वैचित्र्यबलसँ द्रुति-विस्तार-विकास-लक्षण बाला, सत्त्वोद्रेकप्रकाशानन्दमय निजसंविद्विश्रान्तिलक्षणबाला परब्रह्मास्वादसविध [समीप] भोग [ भोजकत्व

३५४। न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते नोत्पद्यते नाभिव्यज्यते, अपि तु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधारणीकरणात्मना भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानः स्थायी सत्त्वोद्रेकप्रकाशानन्दमयसंविद्विश्रान्तिसतत्त्वेन भोगेन भुज्यते-इति भट्टनायकः।—का० प्र० उ० ४ का० २८क वृत्ति [ पृ० ७२ ]

व्यापार ] द्वारा ओ अनुभवस्मृत्यादिविलक्षण रसतत्त्व भुक्त होइत अछि।[३५५] इएह तात्पर्य अछि अभिनवभारतीक आधारपर।

३१४. एहिठाम ध्यान देलासँ उक्त तीनू व्यापारक अतिरिक्त किछु विषय ज्ञात होइत अछि। सर्वप्रथम भट्टनायक काव्यगुणकेँ रसोत्कर्ष मानल, जकर सङ्केत द्रुतिविस्तारविकास शब्दसँ भेटैत अछि जे निश्चयात्मक रूपसँ ध्वनि-संप्रदायक अनुदान थिक।[३५६] दोसर विषय भेटैत अछि मोहसङ्कटता-निवारण तथा परब्रह्म, ई दुइ गोट वेदान्तक पारिभाषिक शब्द वा तत्त्व। तथा सभसँ उल्लेखनीय अछि 'संविद्‌विश्रान्ति' काश्मीरी पारिभाषिक शब्द जाहि स्थानमे लोचन-टीकामे अभिनवगुप्त भट्टनायकमतहिमे 'चित्स्वभावनिर्वृत्तिविश्रान्ति' शब्द रखने छथि।[३५७] किन्तु एक विषय ध्येय, भट्टनायक परब्रह्मास्वाद जकाँ नहि मानल रस-भोगकेँ, परब्रह्मास्वादसविध अर्थात् परब्रह्मास्वादक समीप मानल, आगाँ जाए अभिनवगुप्तक मतमे एहि अंशक विकास भेटत। 'रजस्तमः' शब्द भट्टनायक सांख्यसँ लेल आ' 'भावकत्व', कहल जाइत अछि जे, पूर्व मीमांसाक प्रिय शब्द अछि। तहिना 'व्यापार' न्यायक प्रिय शब्द अछि।[३५८]

३१५. तीनि वा चारिगोट शब्द काश्मीरी शैव दर्शनक प्रिय शब्द थिक, जेना कहल। से देखि एहन सन प्रतीत होइत अछि जे ओ शैव दार्शनिक छलाह।

३१६. काव्यक [ नाट्यक तँ पूर्वो विचार भेल छल ] अन्तस्तत्त्वक लोकोत्तरता, विलक्षणता, अव्याख्येयतापर भट्टनायकक ध्यान गेल। पूर्वक

---

३५५। तस्मात्काव्ये दोषाभावगुणालङ्कारमयत्वलक्षणेन नाट्ये चतुर्विधाभिनयरूपेण निबिडनिजमोहसङ्कटतानिवारणकारिणा विभावादिसाधारणीकरणात्मनाऽभिधातो-द्वितायेनांशेन भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानो रसोऽनुभवस्मृत्यादिविलक्षणेन रजस्तमोऽनुवेधवैचित्र्यबलाद् द्रुतिविस्तारविकासलक्षणेन सत्त्वोद्रेकप्रकाशा-नन्दमयनिजसंविद्‌विश्रान्तिलक्षणेन परब्रह्मास्वादसविधेन भोगेन परं भुज्यत इति॥
—अभिनवभारती [ ना० शा० टी० ] अ०६ [ पृ० २७७ ] (Vol. I)

३५६। द्रुतिविस्तारविकासक व्याख्याक हेतु द्रष्टव्य गुण-निरूपण—का०प्र० उ०८ का०६८-६९ [ पृ० २९१-९३ ]
तथा गुणविचार-द्र० ध्वन्यालोक उ०२ का०५ क वृत्ति [ पृ० ७१७-७३६ ] (उत्तरार्ध)

३५७। ध्वन्यालोक-लोचनटीका-उ० २ का० ४ पर [ पृ० ३८७ ] ( पूर्वार्ध )

३५८। र० ग० शा० अ० [ पृ० १४८-१७० ] पर आधारित।

रससूत्रव्याख्यातासँ अधिक अनुभूतिपरक दृष्टिकोण भट्टनायक व्यक्त कएल। आगाँ अभिनवक मत देखलासँ तान्त्रिक दर्शन आ' रस-निरूपण दूनूक समानुपाती विकास स्पष्ट भए जाएत, तेँ संक्षेपमे हुनकहु मतकेँ राखि रहल छी।

३१७. अभिनवगुप्त [ ९७०-१०५० ई० ] भट्टनायकक बड़ पैघ आलोचक भेलाह, रस-निरूपण बड़ वृहत् रीतिएँ कएल, किन्तु वस्तुतः दुइएटा नव गप्प कहल—[ १ ] भावकत्व-भोजकत्व व्यापारक स्थानमे अभिव्यञ्जनाक सत्ता आ' [२] पराब्रह्मास्वादसविधसँ 'सविध' शब्दक निराकरण आ 'सन' जोड़ब। अन्यथा भावोन्मुखता-प्रवृत्ति, रसक अनुभूतिपरक व्याख्याक प्रवृत्ति, रसकेँ नाट्यहि-मे नहि, समस्त काव्यमे, सभसँ अधिक प्रतिष्ठा देबाक प्रवृत्ति जहिना ध्वनि-कारमे छल, तहिना भट्टनायकमे आ' पुनः तहिना अभिनवगुप्तमे छल से हुनक रसस्वरूप-विश्लेषणसँ स्पष्ट भए जाएत[३५९]—"लोकमे प्रमदा आदिक द्वारा स्थायी [ भाव ]क अनुमान करबामे निपुण सहृदयक, काव्य तथा नाटकमे, कारणत्व आदिकेँ छोड़ि विभावनादि व्यापारसँ युक्त भेलासँ अलौकिक विभावादिशब्दसँ व्यवहार्य ओहीसभ [ कारणादि ] वस्तुसँ, ई हमरे, ई शत्रुहिक, ई तटस्थहिक वा ई ने हमरे, ई ने शत्रुहिक, ई ने तटस्थहिक—एहि प्रकारक सम्बन्धविशेषक स्वीकार-परिहार-नियमक अनध्यवसाय [ अनिश्चय ]सँ सधारणरूपमे प्रतीत होइत ओहीसभ [ कारणादि ]क द्वारा अभिव्यक्त सामाजिकगणक वासनारूपमे स्थित रत्यादिक स्थायीभाव रस थिक। ई रत्यादि स्थायीभाव नियतप्रमातामे स्थित रहितहुँ, साधारण उपायक बलसँ ओहीकालमे परिमितप्रमातृभावक नष्ट भए गेलासँ वेद्यान्तरसंपर्कशून्य आ ओर अपरिमितप्रमातृभाव रखैत सामाजिकगणक द्वारा, समस्त सहृदयवृन्दक हेतु सामान्य रूपसँ आत्मसमान अभिन्न बुझल जइतहुँ आस्वादक विषय बनि, पुनः आस्वादरूप विभावादिजीवितावधि [ विभावादिअहि धरि जीवित रहनिहार ], पानक रसन्यायसँ चर्व्यमाण, आगाँमे परिस्फुरित होइत सन, हृदयमे पैसैत सन, सर्वाङ्गक आलिङ्गन करैत सन, अन्य सभ [ भावना ]केँ तिरोहित करैत सन, ब्रह्मास्वाद सन अनुभव जगबैत, अलौकिक चमत्कारकारी शृङ्गारादिक [ नामक ] रस बनि जाइत अछि।"

३१८. अभिनव भट्टनायकक 'परब्रह्मास्वादसविध'मे सँ 'सविध' हटाए

३५९। काव्यप्रकाश उ०४मे उद्धृत [ पृ०७४-७७ ]

इव [सन] जोड़ि देल—'ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन्', ततबे अन्तर आएल। 'सविध' कहि भट्टनायक ब्रह्मक निकट पहुँचलाह, अभिनव 'इव' कहि समकक्ष बनि गेलाह। एतबे अन्तर, से ध्येय।

३१९. जेना तेना, उक्त विवेचनसँ स्पष्ट भए गेल होएत जे ध्वनिकारक सङ्केतित भावपक्षक विकास कोना आलोच्ययुगमे होइत गेल आ' आगाँ ई प्रमाणित भए जाएत जे किछु गीतिकार सिद्ध अतिशय भावुक छलाह आ' भावुकताकेँ व्यञ्जनाक माध्यमसँ व्यक्त कएने छथि आ' सएह तँ भेल रसध्वनि[360] वा भावध्वनि। आ' जेहो काव्यक आत्मा ध्वनि कहल सेहो पुनः ध्वनिमे रसध्वनिकेँ मुख्यता देल,[361] फलतः आलोच्य भावुक गीतसभकेँ उत्तम काव्य मानि सकैत छी।

## रस-स्वातन्त्र्य

३२०. एक प्रश्न— रसस्वातन्त्र्य कतेक दूर धरि ग्राह्य ? ई प्रश्न काव्यशास्त्रक बड़ पैघ समस्या अछि जकर दृष्टान्त अछि भक्तिरसक प्रसङ्ग शङ्का-समाधान, शान्तिरसक प्रसङ्ग वाद-विवाद, वात्सल्यरसक प्रसङ्ग ऊहापोह आ' रसनिष्पत्तिक कारणभूत आलम्बनक प्रसङ्ग मतभेद।

३२१. समस्त विषयक विचार अतिशय बृहत्, अप्राकरणिक तथा निष्प्रयोजनो भए जाएत। किन्तु आलोच्य गीत-साहित्यक दृष्टिएँ एक विषय धरि विचारणीय बूझि पड़ैत अछि। ओ थिक देवताक संभोगक चित्रण।

३२२. जाहि ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्द्धनक बलपर आगाँक समस्त चिन्तकसमुदाय रसकेँ तर्कसँ अधिक अनुभूति दिशि झुकल मानल, जेना कहल गेल अछि, तनिक स्वारस्य देखल जाए।

३२३. भावौचित्यकेँ आनन्दवर्द्धन प्रकृत्यौचित्यहिसँ नपैत छथि। हुनक मापदण्ड एकेटा अछि—"भावक औचित्य प्रकृतिक औचित्यसँ [होइत अछि]। प्रकृति निस्सन्देह उत्तम, मध्यम आ' अधम भावसँ तथा दिव्य, मानुष इत्यादि भावसँ विभेदवाली [भए जाइत अछि]। ओकरा ठीक रूपमे अनुसरण करैत उपनिबद्ध कएल असङ्कीर्ण स्थायीभाव औचित्यवाला भए जाइत अछि। नहि तँ

---

३६०। ध्वन्यालोकः लोचन-टीका—उ०१ [पृ० १२६]—रसश्च व्यंग्य एव।

३६१। पाछाँ द्रष्टव्य पा० टि० ३४६।

केवल मानवक आश्रयसँ दिव्यक आ' केवल दिव्यक आश्रयसँ मनुष्यक उत्साह आदिक उपनिबन्धन अनुचित थिक।"[३६२]

३२४. इएह् तँ मूल विचार अछि जकर आधारपर आचार्यगण देवताक संभोगवर्णनकेँ अनुचित कहैत छथि। हमरा जनैत, एकर अभिप्राय एतबे अछि जे वर्णनसँ सहृदयकेँ असङ्गत विषयक अनुसंधान नहि होन्हि, जे आगाँ जाए अभिनव तथा पण्डितराजक समस्त रसानुभूतिक कसौटी बनि गेल। मानवक आश्रयसँ दिव्यक भाव नहि देखाओल जाए, किन्तु जँ ओ मानव दिव्य भए गेल रहथि तँ क्षति कोन? मुख्यतया रसनिष्पत्ति निर्भर रहत काव्यक प्रकरणप्राप्त औचित्यपर, किन्तु औचित्यक मापदण्ड रहत काव्यश्रोताकेँ अनन्वित वा अन्वित लागब।

३२५. एहि विषयक स्वारस्य ताहू स्थलसँ भेटैत अछि जतए एक कारिकाक प्रसङ्गमे आनन्दवर्द्धन "ग्राम्यत्वसँ प्रतिभासित नहि होइत अछि"[३६३] एहन वाक्य कहने छथि कालिदासक कुमारसंभवक देवीसंभोगवर्णक प्रसङ्ग। आ' जेहो किछु अस्पष्टता आनन्दवर्द्धनक वृत्तिमे अछि तकरा अभिनवगुप्त निराकृत कए देल—"शक्ति प्रतिभान थिक, वर्णनीयवस्तुविषयनूतनोल्लेखशालित्व थिक। व्युत्पत्ति तकर उपयोगी समस्त वस्तुक पौर्वापर्य-परामर्श-कौशल थिक। अनौचित्य की? आस्वादयिताक जे चमत्कार[ -बोध ]क अविघात सएह रससर्वस्व थिक, कारण ओ आस्वादक आधीन रहैत अछि। उत्तम देवता-संभोगक परामर्शहुमे की लज्जा-आतङ्क सहित पितृसंभोगक चमत्कारक

---

३६२ भावौचित्यं तु प्रकृत्यौचित्यात्। प्रकृतिह्युत्तममध्यमाधमभावेन दिव्यमानुषादि-भावेन च विभेदिनी। तां यथायथमनुसृत्यासङ्कीर्णः स्थायीभाव उपनिबध्यमान औचित्यभाग्भवति। अन्यथा तु केवलमानुषाश्रयेण दिव्यस्य केवलदिव्याश्रयेण वा केवलमानुषस्योत्साहादय उपनिबध्यमाना अनुचिता भवन्ति।

—ध्वन्यालोक उ० ३ [ पृ० ७७७ ] ( उत्तरार्ध )

३६३। "तथा हि महाकवीनामप्युत्तमदेवताविषयकप्रसिद्धसंभोगश्रृङ्गारनिबन्धनाद्यनौचित्यं शक्तितिरस्कृतत्वात् ग्राम्यत्वेन न भासते।"—वृत्ति ध्वनिकारक "स झटित्यव-भासते" कारिकांशक परिकरश्लोकपर—ऐजन ( परिकरक वृत्ति ) उ० ३ [ पृ० ७३८ ] [ उत्तरार्ध ]

अवकाश"?[364] अर्थात् जेना अनौचित्य पितृसंभोगवर्णनमे वा श्रवणमे तेना अनौचित्यक प्रश्न देवतासंभोग वा वर्णनमे नहि, कारण, ओहिमे [ पितृसंभोग-वर्णन ]मे लज्जा–आतङ्क रहैत अछि, एहिमे कवि प्रतिभा-व्युत्पत्तिक बलेँ ओकरा दूर कए दैत छथि, ओकर प्रश्ने नहि रहैत अछि, शुद्ध काव्यात्मक आनन्द [ Poetic delight ] उपस्थित रहैत अछि।

३२६. तेँ आगाँ जाए हमरा उक्त कसौटीपर, सिद्धक दिव्यभावक आधार-पर [ तान्त्रिक पशुभावक आधारपर नहि वा प्रकरणप्राप्त स्थलमे तँ बाह्यवीर-साधनो नहि भेटत, ओकर उदात्तीकरण भए गेल रहत अन्तःसाधनाश्रित भए, तेँ दिव्य-भावक आधारपर ] कसए पड़त आ' सभसँ प्रमुख कसौटी राखए पड़त ताहि मर्मज्ञ सहृदयक निर्णयकेँ जे तत्समान "काव्यक अनुशीलनक अभ्यास–बलसँ विशदीभूत मनोमुकुरमे वर्णनीय वस्तुक सङ्ग तन्मय भए जेबाक योग्यता रखैत छथि",[365] उपस्थित साहित्यकेँ अश्लील, निरर्थकादि कहि उस्सठ सन, अज्ञानी सन भाव नहि देखबैत छथि, काव्यात्मक सहानुभूति [ Poetic Sympaihy ] रखैत छथि, ई नहि जे घृणासँ बाजि देथि—'ई की ? ई सभ व्यर्थ वस्तु थिक।' प्रस्तुत संदर्भमे अभिनवक आशय सएह बुझबाक थिक।

३२७. एहि पीठिकामे अलङ्कारादि किछु काव्यशास्त्रीय विचारकेँ नहि राखल गेल अछि, ओ चमत्कारसभ परम्परागते छल, कोनो आलोच्ययुगवैशिष्ट्य नहि। प्रसङ्ग अएलासँ आगाँ गीतहिक समीक्षामे कहि देल जाएत।

३२८. चर्यागीतक पीठिकारूपमे हमरा ई स्मरण रखबाक अछि जे ओ

---

३६४। शक्तिः प्रतिभानं वर्णनीयवस्तुविषयनूतनोल्लेखशालित्वम्। व्युत्पत्तिस्तदुपयोगि-समस्तवस्तुपौर्वापर्यपरामर्शकौशलम्। तस्येति कवेः। अनौचित्यमिति। आस्वादयितृणां यः चमत्काराविघातस्तदेव रससर्वस्वम् आस्वादायत्तत्वात्। उत्तमदेवतासंभोगपरामर्शे च पितृसंयोग इव लज्जातङ्कादिना कश्चमत्कारावकाशः?

—ध्वन्यालोक-लोचन उ० ३ पृ० ( ७३८ )

३६५। तुलनीय—येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशात् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीय-तन्मयीभवनयोग्यता ते स्वहृदयसंवादभाजः सहृदयाः। —ऐजन-लोचन उ० १ [ पृ० ६२ ]

साहित्य अपभ्रंश-गीतसाहित्य थिक। एक बेरि ओकरा स्वर-माधुर्य-[ melody ef sound ]क हेतुएँ सुनल जाए आ' दोसर बेरि अर्थ [ Sense ]क दृष्टिएँ ओकर मार्मिक अध्ययन हो,[३६६] जाहिमे प्रगीत-तत्त्व, ध्वनितत्त्व, भावाभिव्यञ्जन, स्वतः रस-निष्पत्ति, रसोत्कर्षरूप काव्यगुण आ' सभ मिलाए अभिव्यक्तिक प्रणाली [ रीतिक ] विचार अनायास प्राप्त भए जाएत। तेँ आगाँ यथासाध्य उक्त युग-प्रवृत्तिभूत सामाजिक चेतना, दार्शनिक तत्त्वज्ञान तथा साहित्यक पक्षद्वयक, कलापक्ष-भावपक्षक, पीठिकामे चर्यागीतकेँ देखबाक प्रयास कएल जाएत।

## निष्कर्ष

३२९. पूर्व पृष्ठसभमे जे किछु ऐतिहासिक तथा सैद्धान्तिक विषयसभ कहल गेल अछि, तकर दुइ गोट उद्देश्य छल—[ १ ] मुख्य शोधकार्यकेँ किछु तान्त्रिकेतरहु सूचनासँ पुष्ट करब तथा [ २ ] आगाँ जोड़ल चर्यागीतक समीक्षाक हेतु किछु आधार-सामग्रीकेँ एकठाम क्रमबद्धरूपमे ओरिआए राखब।

३३०. [ १ ] मुख्य शोधकार्य छल चर्यागीतिमे शैवशाक्त तन्त्रक सिद्धान्त ताकब, जे कथा हम भूमिकहुमे कहि आएल छी। भूमिकामे एहि कार्य दिशि एकमना भए बोधिचित्त, सामरस्य, चित्तशोधन, महामुद्रासाधन तथा अन्तः-शक्तिसाधनाकेँ शैवशाक्त दृष्टिकोणसँ देखबाक प्रयास कएल। जखन ई निर्णीत भए गेल जे चर्यागीति शैव-शाक्त तन्त्रसँ नीक जकाँ प्रभावित अछि तखन ओहि गीतिसभक व्याख्या करबामे लागि गेलहुँ। व्याख्यामे आद्योपान्त ई सतर्कता रखबाक प्रयास कएल जे सिद्धक अभिप्रेत अर्थक सङ्गति नहि टूटि जाए आ' जे अर्थ कएल जाए से बौद्धतन्त्र-शैवशाक्ततन्त्र दूनूसँ अनुमोदित हो, केवल शैव-शाक्तहि तन्त्रसँ नहि।

---

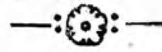
३६६। "Repeat me these verses again... ..., for I always love to hear poetry twice, the first time for sound and latter for sense."
—The Rudiment of Poetry—का० द०—का० शा० भू० पृ० ३८ (उद्धृत)
कारण, एक समीक्षकक शब्दमे—
"Poetry is music in words and music ( is ) Poetry in Souud"
—ऐजन—ऐजन० पृ० ३१ ( उद्धृत )

३३१. तँ वस्तुतः एतबे उद्देश्य छल शोधकार्यक। किन्तु पश्चात् ई अनुभव भेल जे किछु तन्त्रशास्त्रीयेतरो विषय सूचित कए देल जाए जे उक्त रूपक उद्देश्यमे साधक भए सकए। उदाहरणार्थ, प्रतिमा–लिखन–सामग्रीक सूचना तथा सिद्धक निर्मित वा अनुसृत बौद्धग्रन्थक सूचना, एहिसभ सूचनासँ हमरा एहि धारणामे बल भेटल जे हिन्दू तन्त्रसँ निरपेक्ष नहि छलाह सिद्धगण, ज्ञात वा अज्ञातरूपमे हिन्दू तन्त्रक प्रति श्रद्धे व्यक्त भेल अछि।

३३२. पुनः एहन अनुभव भेल जे जिज्ञासु व्यक्तिकेँ एहि सूचनासभक पार्श्ववर्त्तिनी सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिति लए मन लागल रहि सकैत छन्हि, तेँ ओहूसभपर किछु विचार प्रस्तुत कएल जाए। फलतः सिद्धयुगक परिस्थितिक परिचय प्रस्तुत कएल गेल। ओहि परिचयसँ ई स्पष्ट भए गेल होएत जे सिद्धक आदरमे बौद्ध-हिन्दू मध्य सामञ्जस्ये सहायक भेल। हिन्दूसँ जँ ब्राह्मण अभिप्रेत हो तखन तँ नहि, किन्तु हिन्दूसँ जँ अद्वैतवाद, शैवशाक्त तन्त्र तथा आपामर जनताक मूल प्रवृत्ति लक्षित भए सकैत अछि, तँ एहिमे कोनो संदेह नहि जे बौद्धकेँ ताहि युगमे हिन्दूक सहानुभूति भेटि सकल आ' तेँ पालराज्य धरि एकर विकासक अवधि रहल [ तान्त्रिकहु रूपमे ], अन्यथा बौद्धधर्म थम्हि नहि सकैत। आ' एहि प्रकारक धारणा जखन बाह्य ऐतिहासिक साक्ष्यसँ पुष्ट भए गेल तखन एहिमे कोनो संदेह नहि जे हमर तान्त्रिक अनुसंधान सत्यसँ दूर नहि अछि। एही दृष्टिएँ कहल जे पूर्वपृष्ठसभमे प्रतिपादित विषयसभसँ हमर शोधकार्यकेँ पुष्टि [ बल ] भेटैत अछि। आ' इएह एक उद्देश्य छल।

३३३. [ २ ] आगाँ चर्यागीतिक समीक्षा प्रस्तुत कएल जाएत, गीतिक सामाजिक भावना, दार्शनिक चिन्तन-शैली तथा साहित्यिक चमत्कारक विश्लेषण कएल जाएत। ताहि क्रममे अनेकठाम ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि तथा शास्त्रीय तथ्यक उल्लेख प्रयोजनीय भए जाएत। किन्तु ओहि स्थलमे विस्तारमे गेलासँ रचना बहबाणि भए जाएत। तेँ एहिठाम किछु सामग्रीकेँ ओरिआए राखि देल गेल अछि, गीति–समीक्षामे जतए कतहु ओकर सन्दर्भ आबि जाएत ततए साङ्केतिक रूपमे पाद-टिप्पणीक द्वारा ओकर उल्लेख कए देल जाएत। समीक्षाक आधार रहत गीतिए, गीतिक पंक्तिगत शब्दार्थे, ओही सङ्ग बहैत समीक्षा कएल जाएत।

२३४. उक्त दूनू उद्देश्यसँ पूर्वपृष्ठसभमे विषयसभ प्रतिपादित भेल अछि। पाछाँ पालयुग[ सिद्धयुग ]क विशेषतामे राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक तथा सांस्कृतिक [ दार्शनिक-साहित्यिक ] सङ्गठनक सूचना देल गेल अछि। ताहि पीठिकाभूत सामग्रीसभक आधारपर क्रमशः गीति-समीक्षा प्रस्तुत कएल जाइत अछि।



# चर्यागीति-समीक्षा

## सामाजिक

३३५. पूर्वपीठिकामे चर्यागीतिक राजनीतिक-आर्थिक तथा सामाजिक पार्श्वभूमि देखाओल गेल अछि।[३६७] तत्कालीन परिस्थितिक विशद-परिचयमे राजनीतिक-आर्थिक गठनक ज्ञान सहायक होइत अछि, तेँ देल गेल, किन्तु वस्तुतः 'सामाजिक' शब्देँ सभ अभिप्रेत भइए जाइत अछि; दोसर, गीतिमे राजनीतिक-आर्थिक भावना बड़ स्वल्प अछि। तेँ ऊपर केवल 'सामाजिक' शब्दकेँ शीर्षकमे राखल।

३३६. गीति-समीक्षासँ पूर्व एक शब्द कहब आवश्यक। ई निर्णीत विषय अछि जे चर्यागीति धार्मिक-दार्शनिक साहित्य थिक, मुख्य उद्देश्य अछि एकर सिद्धक रहस्यमयी साधनाकेँ अभिव्यक्त करब। किन्तु अर्थ-योजनामे सिद्धक सामाजिक भावना कोनहु ने कोनहु रूपमे प्रकट भइए गेल अछि—प्रतीक रूपमे आएल रहए वा सामान्यतः चित्ररूपमे आएल रहए वा आनुषङ्गिक विचार रूपमे आएल रहए। जेना-तेना, सामाजिक तत्त्वक उल्लेख जतए भेटल ततए सिद्धक भावनामे सामाजिकता मानि लेल गेल अछि। कारण, बिनु तेहन भावनाक ओहन अर्थ उपात्त भइए नहि सकैत अछि।

३३७. अस्तु, समाजक गठनमे सर्वप्रथम परिवार अबैत अछि। जेना पीठिकामे कहि आएल छी, ताहि समयमे खेती-गृहस्थीक ततेक सत्ता छल जे कृषककेँ एक जातिए बुझल जाइत छल।[३६८] आ' खेती-गृहस्थीक सङ्ग परिवार-भावना सभ दिनसँ आबि रहल अछि। ई स्वाभाविक जे ताहि समाज-व्यवस्थाक प्रभाव सिद्धपर पड़ल आ' भुसुकुपाद परिवारक सङ्ग आनन्दक

३६७। अनु० १४१ सँ अनु० १७१ धरि। ३६८। अनु० १५५

अनुभव कएल—'निअ परिवारे महासुहे थाकिउ'[३६९]—भुसुकु आइ अपन परिवारमे महासुखमे अवस्थित छथि।

३३८. ततबे नहि, परिवारक निर्माण विवाहहिसँ होइत अछि आ' विवाहक चर्चा शब्दतः भेटैत अछि कान्हपादक एक गीतमे—'कान्ह डोम्बी विवाहे चलिआ'।[३७०] आ' जउतुकमे कान्ह अनुत्तारधाम पबैत छथि—'जउतुके किअ अणुतु धाम'।[३७१] विवाह कए लोक गृहिणीक सङ्ग बसैत अछि। स्वतः कान्हक 'अहणिसि सुरअपसङ्गे जाअ'[३७२]—दिनराति सुरत-प्रसङ्गे जाइत छन्हि आ' भुसुकु तँ चण्डालीकेँ घरनीए बनाए लेल—'निअ घरिणी चण्डाली लेली' [३७३]।

३३९. शबरपादक घरनी सामान्य कोटिक नहि, अद्वितीय सुन्दरी छथिन्ह—'निअ घरिणी नामे सहजसुन्दारी'।[३७४]

३४०. ओ गृहिणी स्वाधीनभर्तृका छथि, किन्तु निरासक्ति छथि—'हाँउ निरासी खमण भतारि'।[३७५] भर्ता छथिन्ह शून्य मन, अन्यसँ स्वतन्त्र; किन्तु शून्यमयी गृहिणीमे ओझराएल। ई स्थिति अछि कुक्कुरीपादक गृहिणीक।

३४१. जेना पूर्व कहि आएल छी, जातक-युगमे सासुक दुर्दशा होइत छल[३७६] स्वतः ननदिओ नहि बँचैत छलीह। तखन तँ उचिते एहन गप्प जे 'मारिअ सासु नणन्द घरे शाली'[३७७]। जातक-युगक प्रभाव बौद्धसिद्धपर ततेक दूर धरि पड़ल जे गुण्डरीपादक सहधर्मिणी 'सासु घरे घालि कोँचा ताल'[३७८]। ससुरो कोना छुटितथि ? कुक्कुरीपादक बहुड़ी ससुरकेँ निद्रित देखि अभिसारमे जेबाक हेतु जागि जाइत छथि—'सुसुरा निद गेल बहुड़ी जागअ'[३७९]। किएक नहि ? 'दिवसइ बहुड़ी काड़इ डरे भाअ'[३८०]–दिनमे काड़कौआक डरेँ भगैत छथि आ' 'राति भइले कामरु जाअ'[३८१]। सभ चित्र संगते लागत, किन्तु माता-पिताक प्रति व्यवहारमे अनौचित्य भासित होएत—'माअ मारिआ कान्ह भइल कपाली'[३८२]—मायकेँ मारि कान्हपाद कापालिक बनि गेलाह आ' कुक्कुरीपाद तँ बापहिक संहार कए लेल–'मूल निखणि बाप संहारा'[३८३]। समाधान भेटैत अछि शबरपादक उक्तिसँ। माय–बापक प्रति ओहन व्यवहार उचिते जखन—

---

३६९। भु० ८ ३७०। का० ८ ३७१। ऐजन ३७२। ऐजन ३७३। भु० ८,
३७४। श० १ ३७५। कु० २ ३७६। अनु० १६६ ३७७। का० ४ ३७८। गु० १,
३७९। कु० १ ३८०। ऐजन ३८१। ऐजन ३८२। का०४ ३८३। कु० २

'महासुहे विलसन्ति शबरो लइआ सुणमेहेली'[३८४] —शून्य-महिलाकेँ लए शबर महासुख-विलास करैत छथि।

३४२. ई तँ भेल स्त्रऽर-संबन्धीक प्रति व्यवहार। पारिवारिक-उपकरणहुसँ सिद्ध अपरिचित नहि। काह्न घरनीक संग जीवन बितबैत, 'अवरना चाँगेड़ा'-केँ[३८५] कतहु चिन्हथि नहि, विशेषतः जखन डोम्बी हुनक घरनी।

३४३. चङ्गेरे नहि, कुड़हड़ि-टेङ्गारीसँ सेहो सिद्ध परिचित छथि, तेँ काह्न गुरुक हाथमे कुड़हड़ि रखैत छथि विषय-बासनाक गाछ कटबाक हेतु—

'वरगुरु वअण कुठारे छिजअ।
काह्न भणइ तरु पुण न उइजअ॥'[३८६]

आ' चाटिल्लपाद अद्वयकेँ कोड़ि निकालैत छथि-'अदअ दिढ़ टांगी निवाणे कोहि [ ड़ि ]अ'।[३८७]

३४४. ई नहि बुझल जाए जे सिद्ध सभ निःस्व छथि, तेँ सोन-रूप लए लक्ष रहैत छथि। सोन-रूपकेँ सिद्ध नगण्य बुझैत छथि, भुसुकु तँ स्पष्ट शब्दमे कहैत छथि—

सोण रुअ मोर किम्पि ण थाकिउ।
निअ परिवारे महासुहे थाकिउ॥'[३८८]

ततबे नहि, कुक्कुरीपादक 'कानेट चोरे निल'[३८९]—कानक गहना चोर लए गेल। तखन ई किएक नहि अनुमान कएल जाए जे कुक्कुरी कर्णकुण्डलक संपर्क मे आएल छलाह? आ' कुण्डलक आवेश काह्नपाद तथा शबरपाद दूनू सिद्ध देखबैत छथि, तेँ काह्नक शब्दमे – 'रवि शशी कुण्डल किउ आभरणे'[३९०]।

आ' शबरक अन्तरङ्गा 'एकेली सबरी ए वन हिण्डइ कर्णकुण्डलवज्र-धारी'।[३९१]—शबरी एकसरे [ वासनादिसँ मुक्ता ] एहि वनमे भुलैत छथि, कर्णकुण्डल आ' वज्र धारण कएने।

३४५. समयो तेहने समृद्धिशील छल, जखन सोन-चाँदीक [ सोनारक उपयुक्त ] व्यापार चलितहिँ छल[३९२]। तेँ सिद्धकेँ गहनाक प्रतीक किएक नहि फुरतन्हि?

३४६. समय छल जे लोक नावसँ यातायात करैत छल,[३९३] खेबा लए

---

३८४। शा० २ | ३८५। का० ३ | ३८६। का० १३ | ३८७। चा० १
३८८। भु० ८ | ३८९। कु० १ | ३९०। का० ४ | ३९१। शा० १
३९२। अनु० १५०, १६६—द्र० सोनार | ३९३। अनु० १४८

बटुआ–पौती [ करण्ड ] भरल संग रखैत छल तेँ ताड़कपाद शिष्यकेँ उपदेश दैत छथि – 'वाण्ड कुरुण्ड सन्तारे जाणी ।'[३९४]

आ' तेँ डोम्बीपाद मातङ्गी पोइआ [ नीच जातिक स्त्री ]केँ पार करए कहैत छथि जे 'कवड़ी न लेइ बोड़ी न लेइ सुच्छड़े पार करइ'।[३९५] आ' पारवाहीक तँ उदाहरण भरल पड़ल अछि, नावक प्रतीक-चयन ध्येय ।

३४७. ताहि समयमे काठक उपकरण बनओनिहार कमारक व्यवसाय चलैत छल,[३९६] जेना सोनारक चलैत छल। तँ कमारक एक काज छल खाट बनाएब । खाटक प्रचार छल, तेँ ने शबर त्रिधातुमे खाटक आरोप करैत छथि— 'तिअ धाउ खाट पाड़िला सबरो महासुहे सेज छाइली'[३९७]—त्रिधातु-खाटपर पड़ल शबर महासुखेँ सेज ओछाओल ।

३४८. गृहोपकरणमे पान–गूआ गृहस्थक हेतु प्रसिद्ध मुखशुद्धि अछि। तँ जेना पुराणमे 'कर्पूरादिसुवासितं' आ' 'ताम्बूलञ्च वरं रम्यं' केर चर्चा भेटैत अछि, तहिना शबरपाद 'हिअ ताँबोला महासुहे कापुर खाइ' [३९८] ।

३४९. लोकक जीवन सुखमय छल, कहि आएल छी । तखन तँ क्रीड़ाक साधन रहब उचिते आ' इहो उचिते जे शबरक शबरी वन्य वातावरणमे मचकीपर हिण्डइ[३९९] अर्थात् झुलैत छथि आ' काह्नपादकेँ सतरंजक चालि कण्ठस्थे छन्हि-

'पहिले तोड़िआ बड़िआ मारिउ
गअवरेँ तोड़िआ पाँच जना घालिउ ।[४००]

—पहिने आठो प्यादा काटल, फील ढुकाए अन्य पाँच पात्रकेँ काटल ।

३५०. ई कहि आएल छी जे ताहि समयमे पशुपालनक सुव्यवस्था छल। ।[४०१] तखन तँ ई स्वाभाविके जे ढेण्ढणपादक मानसपटलपर गाय-बड़दक चित्र नाचि उठल आ' आश्चर्य लगैत छन्हि जे—'बलद बिआएल गबिआ बाँझे'।[४०२]

३५१. आ' सरहपाद जनैत छथि जे बलद [ बलदाता इन्द्रिय वा' बड़द ] मोचण्ड होइत अछि, तेँ तँ—'सरह भणन्ति वर सुण गोहाली कि मो दुठ बलन्दें'।[४०३] ई ध्येय थिक जे सरह गोहाली[ गोशाला]क चर्चा पर्यन्त करैत छथि ।

---

३९४ । ता० १    ३९५ । डो० १    ३९६ । अनु० १९९    ३९७ । श० १
३९८ । ऐजन    ३९९ । ऐजन    ४०० । का० ५    ४०१ । अनु० १९८,१९९
४०२ । ढे० १    ४०३ । स० ४

३५२. समाजमे दूध–दही–मक्खन सुन्दर भोजन बुझल जाइत छल, जकर पुष्टि गोआरक सूचनासँ होइत अछि[४०४] आ' तेँ काह्नपाद दूध–मक्खनक उल्लेख करैत कहैत छथि बालयोगीकेँ—'दूध माझे लड़ [मक्खन, नेनु] अच्छन्ते न देखइ'[४०५]। आ' ढेण्ढणपादकेँ आश्चर्य लगैत छन्हि—'दुहिल दुधु कि बेण्टे समाअ'[४०६]।

३५३. अन्यहु पशुसभसँ सिद्धगण अनवगत नहि, उदासीन नहि, जकर सूचना मूस, हरिण, हरिणी, हाथी, हथिनी आदिक प्रतीकसँ आगाँ स्पष्ट भए जाएत। किन्तु, सामाजिक पशुसभमे गाय-बड़दसँ अधिक लोकप्रिय कोन पशु होएत ?

३५४. समाज-व्यवस्थामे जातिभेद कोन प्रकारक छल तकर सूचनाक प्रसङ्गमे चोर–लम्पटक संकेत भेटल होएत [४०७] आ' तेँ ई स्वाभाविके जे कुक्कुरी–पाद आ' ढेण्ढणपाद चोरक चर्चा करैत छथि [४०८] आ' काह्नपाद छिनारिक उल्लेख[४०९] करैत छथि प्रतीकक रूपमे।

३५५. अस्तु, आब जाति-व्यवस्थाक आदर देखल जाए। ताहि समयमे नीच जातिक लोककेँ आदर करबाक हेतु क्रान्ति कोना उठल छल, तकर सूचना भेटि गेल होएत [४१०] आ' ताहिमे सिद्धक हाथ कतेक दूर धरि छल से आगाँ स्पष्ट भए जाएत, किछु प्रकाश तँ पहिनहु देल गेल अछि।

३५६. अस्तु, एहि क्रान्तिक परिणाममे डोम्बीपाद, भुसुकुपाद, काह्नपाद आ' धामपाद डोम्बी तथा चण्डालीसँ स्नेह कोना बढ़ाओल से हुनका लोकनिक गीतसभसँ स्पष्ट भए जाएत, जतए अत्यन्त उच्च पदवीक हेतु एहि शब्दसभक प्रयोग भेल अछि। [४११] काह्नपादक डोम्बी प्रतिरूप छथि ओहि महती शक्तिक; तेँ ने 'तान्ति बिकणअ डोम्बि अवरना चाँगेड़ा'[४१२] आ 'अवरना' मायाक आवरण-शक्ति मात्र। आ' एहिना अन्यहु चारू कविक गीतमे भेटत। जोलहा जाति ताहि समयमे छल। सिद्ध तन्त्रीपाद स्वयं जोलहा छलाह आओर तकर प्रतिबिम्बन हुनक गीतहुमे भेल अछि, [४१३] जाहिमे 'अहमेव तन्त्री' द्वारा

---

४०४। अनु० १६१ ४०५। का० १२ ४०६। ढे० २

४०७। अनु० १७० ४०८। कु० १, ढे० १ ४०९। का० ७

४१०। अनु० १६०, ४११। डो० १, भु० ८, का० ३, ७, ८, धा० १

४१२। का० ३ ४१३। अनु० १३५, अनु० १६१ आओर गीत त० १ द्रष्टव्य

जे प्रतिज्ञा-वाक्य बाजल तकर निर्वाहो कएल सिद्ध. जनिकासँ 'द्वे स्थिती छित्त्वा सूत्राणि व्यावृत्य दृढ़ं प्रसारितानि'। किएक ने, ओ तँ 'वयनरसस्तन्त्री' छथि।

३५७. तँ एहिं प्रकारेँ हम देखल जे पूर्वकथित उपजातिमे डोम, जोलहाक तथा कमारक आदर कोना प्रकट भेल अछि सिद्धसाहित्यमे।

३५८. अन्तमे एक-दू जातिक आओर चर्चा करए पड़ैत अछि। पहिने कहि आएल छी जे व्याधा एक जाति छल[४१४]। तकर प्रतीक भेटैत अछि भुसुकुपादक पहिलहि गीतमे, जतए ओ चित्त-हरिणकेँ खिहाड़ैत छथि—'खनह न छाड़अ भुसुकु अहेरि'[४१५]।

३५९. एक पूर्वोक्त जाति छल पाशी,[४१६] जकर तात्पर्य अछि मद्य-विक्रेताक जाति। ताहि जातिक स्त्री कहबैत अछि [संस्कृतमे] शौण्डिनी[४१७] आ' विरुवापादो तँ अपन गीतमे कहनहि छथि—'एक से शुण्डिनि दुइ घरे सान्धअ'[४१८]—एक ओ शुण्डिनि [शुड़िनी वा शौण्डिनी] दुइ घरकेँ मिलबैत अछि।

३६०. अन्तमे, पूर्वकथित जादूगर[४१९] जातिक प्रसङ्ग एतबे कहब जे ओकर शब्दतः चर्चा भनहि नहि भेटए, शान्तिपादक 'एथ अटमहासिद्धि सिझइ उजूबाट जाअन्ते'[४२०]सँ ई संकेतित अवश्य होइत अछि जे जादू-टोना प्रचलित छल।

३६१. जातिक भेदक सङ्ग एक भावना भेटल होएत सिद्धक गीतमे जे ओ अस्पृश्य जातिकेँ आदरसँ देखैत छलाह आ' एहि क्रान्तिमे सभसँ अधिक हाथ रहल सिद्धसरहपादक, जकर सङ्केत चर्यागीतिमे भेटए वा नहि हुनक दोहाकोशमे नीक जकाँ भेटैत अछि—'ब्राह्मणेंहि म जानन्तहि भेउ। एवइ पढ़िअइ ए चउवेउ'[४२१]—ब्राह्मण जनैत छथि कोनो रहस्य नहि, ओहिना केवल चारू वेद पढ़ि लेने छथि आ' ततबे नहि, सरह स्पष्ट शब्देँ कहैत छथि—'जइ चण्डाल-घरें भुञ्जइ, तअवि ण लग्गइ लेउ'[४२२]—यदि चांडालक घरमे खाएब, तैओ लेप नहि लागत। सरह कतेक उदार प्रकृतिक छलाह से घोषित करैत छथि—

४१४। अनु० १६१ ४१५। भु० १ ४१६। अनु० १६१

४१७। सं० श० को०'शौंडिन्' शब्द [आप्ते] ४१८। वि० १

४१९। अनु० १६१ ४२०। शा० १

४२१। [सिद्ध सरहपादकृत] दोहाकोश— गीति [मूल]—पृ० २

४२२। ऐजन ऐजन [ऐजन]—पृ० ३६

'पर ऊआर ण किअऊ, अत्थि ण दीअउ' दाण।
एहु संसारे कवण फलु, वरु छड्डहु अप्पाण ॥' ४२३

तेँ नीच जातिक प्रति सहानुभूति समाधेय। आ' तेँ डोम्बीकेँ सरहपादो तँ गरहि लगबैत छथि—

'गले बद्ध डोंबी कुमारी'४२४

३६२. सरहपाद ब्राह्मणकेँ निष्करुण व्यापारलीन बुझैत छथि आ' कहैत छथि जे से उचित नहि—

'ब्राह्मण वेद पढते समय दूसरा काम छोड़ै
निष्करुण मथानी ना घुमावै'।४२५

३६३. एकर कारण ई छल जे ब्राह्मण वेदक सर्वाधिकार सुरक्षित कए अपनहि मनेँ यज्ञ—जपादि बढ़बैत गेलाह आ' सरह एहिपर व्यङ्ग्य करैत छथि—'ब्राह्मण-माणवक से अन्यत्र नहीं वेद'।४२६

३६४. संभवतः ब्राह्मण-धर्महिक प्रतिक्रियासे एहन क्रान्ति हुनक मनमे उठल, जे ओ निस्संकोच बाजि उठलाह—

"हम ब्राह्मण छी, किन्तु निम्न वर्णक कन्याक [ शरकन्या ]क सङ्ग रहैत छी, जाति वा अजाति, पुण्य वा पाप हमरा हेतु सभ समाने अछि।"४२७

३६५. एहिसँ दुइ विषय ज्ञात होइत अछि, एक तँ ओहि क्रान्तिक, दोसर व्याधाक उपजाति जे कहल से अधिक प्रामाणिक सिद्ध होइत अछि [ सिद्ध-साहित्यहुसँ ]।

३६६. आ' ई कहि सकैत छी जे एहने एहन संत-महात्माकेँ सङ्केत कए एक लेखक कहने छथि—

"समाजमे स्वतन्त्रतावादी परम्परा आओर रूढ़िक विरोधी एवं सुधारवादी एहन संप्रदाय आ' संत-महात्मा छलाह जे शारीरिक शौचपर अत्यधिक बल नहि दए मनुष्यक परिस्थितिकेँ ध्यानमे राखि ओकरापर दयाभाव रखैत छलाह आ' मानवोचित अधिकारसँ ओकरा वञ्चित नहि रखैत छलाह।"४२८

---

४२३। [ सिद्धसरहपाद कृत ] दोहाकोश— गीति [मूल] पृ० ८१
—गीति हिन्दी—पृ० १२६
४२४। ऐजन
बज्रगुह्य गीति—हिन्दी—पृ० ३३६
४२५। ऐजन
ऐजन —हिन्दी—पृ० ३३५
४२६। ऐजन
४२७। अनु० ३३७ मे उद्धृत, पाछाँ द्र०।
४२८। अनु० १६४ मे उद्धृत, पाछाँ द्र०।

३६७. आ' ई कहि सकैत छी जे सिद्धसाहित्य एहि दृष्टिएँ आधुनिक सामाजिक क्रान्तिक पथ-प्रदर्शक थिक। चर्यागीति तँ मुख्यतया योग-तन्त्र साहित्य थिक, जे दोहाकोशक आधारपर एहि दिशामे अनुसंधान कएल जाए सकैत अछि। आओर संभव थिक दारिकपादक एक चर्यागीतिअहुमे सिद्धक इएह क्रान्तिभावना राजाकेँ तुच्छ बनाए देलक, सिद्धक नजरिमे राजा कोनो बड़-पैघ व्यक्ति नहि—'राआ राआ राआ रे! अवर राआ मोहे रे बाधा'[४२९] —राजा, राजा, राजा, राजा की? 'राजा-राजा' करैत रहैत छी आ' राजा तँ मोहसँ बद्ध छथि।

३६८. एहिसँ ई संकेत भेटैत अछि जे राजा उदारचेता सामन्यतया नहि होइत छथि। किन्तु, सरहपादक पंक्तिसँ ई भासित होइत अछि जे सभ प्रकारक राजा होइत छलाह, हीनाचरणरत तथा सदाचरणरत। सदाचारणरत राजा पूज्य होइत छथि आ' 'राजा हीनाचारी किसकी आँख में पहले सुन्दर'[४३०]? सरहपादक भोटभाषा-निबद्ध महामुद्रोपदेशवज्रगुह्यगीतिक उक्त हिन्दी-छायासँ ताहि समयक वास्तविक राजनीतिक परिचय भेटैत अछि।

३६९. एवम्प्रकारेँ समाज-विज्ञानसंबन्धी साहित्य नहिओ रहैत सिद्ध-साहित्य तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक आवेष्ठनमे समाजक गतिविधिक सत्य प्रतिनिधि अछि।

## दार्शनिक

३७०. चर्यागीतिमे प्रयुक्त मुख्य सिद्धान्तक तथा ताहि सिद्धान्तपर अवलम्बित सिद्धक साधनाक परिचय तँ भूमिकहु भागमे प्रस्तुत कएले गेल अछि। ताहिसँ ई स्पष्ट भए गेल होएत जे अनुत्तरतत्त्व, बोधिचित्त, शून्यता-करुणा, सामरस्य, महासुख तथा सहजतत्त्वक स्वरूप केहन अछि तथा ताहि तत्त्वक उपलब्धिक हेतु कोन स्वरूपक साधना उपयुक्त अछि। एहि साधनासभमे विकल्पत्रय मुख्यभूत साधना मानल जाइत अछि, किन्तु से साधना सरल नहि। सरल बनेबाक हेतु शक्तिक अङ्गीकारक प्रश्न उपस्थित भेल आ' सिद्धगण एहि शक्तिकेँ दुइ रूपमे देखल—बाह्य मुद्रा [ मानवी शक्ति, नारीक ] रूपमे तथा अन्तःशक्ति चण्डाली[ कुण्डलिनी ]क रूपमे। आओर मुद्रा-साधन तथा

४२९। दा० १

४३०। [ सिद्धसरहपादकृत ] दोहाकोश-हिन्दी—पृ० ३२५

चण्डाली-जागरणसँ [ नाड़ी-शुद्धिक पश्चात् ] आणयमलक निराकरण भए गेलासँ अनायास अन्तःकरणक शुद्धता आबि गेल। ताहि शुद्ध अन्तःकरणमे जे किछु अलौकिक पारमार्थिक अनुभूति भेल, तकरहि सिद्धगण अपन गीतिमे अभिव्यक्त कएल ।

३७१. फलतः गीतिसभक दार्शनिक रहस्यकेँ शब्द द्वारा व्यक्त करब, विशेषतः समीक्षोपयुक्त भाषामे प्रतिनिधित करब बड़ कठिन समस्या अछि। पूर्वोक्त तत्त्व-लक्षणसभसँ तथा साधनाक ग्रन्थस्थ स्वरूपक विश्लेषणसँ आभास भनहि भेटि जाए, साक्षात्कार होएब संभव नहि। अनुभूतिक साक्षात्कार कतहु शब्द द्वारा हो ? ओ तँ अनुभूतिअहिसँ संभव। किन्तु कएल की जाए ? जखन हमरा गीतिक मर्मकेँ जनपदमे प्रसारित करबाक अछि तखन पूर्वोक्त सत्यक बलपर कोनहु ने कोनहु रूपमे समीक्षा प्रस्तुत करबाक प्रयास कएले जाएत ।

३७२. समीक्षासँ पूर्व एक शब्द कहब आवश्यक जे भूमिकामे वा एहिसँ पूर्वक पीठिकामे उद्देश्य छल सैद्धान्तिक विचार मात्र, गीतिक संग बढ़ैत ओहि विचारक प्रतिफलनक दृष्टान्त प्रस्तुत करब नहि। बौद्धतन्त्रक विभिन्न सिद्धान्त-केँ हिन्दूतन्त्रक दृष्टिएँ देखब छल शोध-कार्य। हँ एतबा अनुसंधान अवश्य छल जे ताही सिद्धान्तसभक विचार हो जे कोनहु ने कोनहु गीतिमे, एक वा अनेकमे, आएल अछि अवश्य ।

३७३. जेना तेना, गीतिक समीक्षाशैलीमे, एहिसँ पूर्व, दार्शनिक तत्त्वक विवरण नहि भेल अछि। तेँ एहि निबन्धांशमे किछु समीक्षा प्रस्तुत कएल जाए रहल अछि। प्रत्येक पंक्तिमे दार्शनिक विचार अछि सिद्धसाहित्यमे, तेँ चर्यागीतिक समस्त अर्थक समीक्षा बड़ बृहत् कार्य भए जाएत, दोसर, गीतिसभक दार्शनिक-तान्त्रिक व्याख्या तँ प्रस्तुत कएले गेल अछि। तेँ किछु गनल-गूथल पंक्तिमात्रकेँ दृष्टान्तमे रखैत मुख्य मुख्य दार्शनिक भावनाक समीक्षा प्रस्तुत कएल जाइत अछि।

३७४. कोन कोन दार्शनिक भावना वा तत्त्वक अभिव्यक्ति गीतमे भेल अछि ?—ताहि प्रसंग पुनः भूमिकासँ सहायता लिअए पड़ैत अछि।

३७५. भूमिकाभागमे पारिभाषिक तत्त्वसभक लक्ष्य तथा साधनाक्रमक निर्देश कएल गेल अछि। अनुत्तर तत्त्व, बोधिचित्त [ शून्यता–करुणाक अभिन्न चित्त ], सामरस्य तथा महासुख तत्त्वक स्वरूप देखाए पुनः चित्तशोधन वा

३८५. मायामोहक प्राकार बढ़लासँ जीव राग-द्वेषसँ ग्रस्त भए जाइत अछि। तेँ एकरा भस्मसात् करू--'रागद्वेष मोह लाइअ छार'[४४४] आ' ततबे नहि, आर्यदेवपाद अष्टपाशमे भय-घृणाकेँ प्रबल पाश मानैत छथि--'छाड़िअ भय घिण लोकाचार'[४४५]। ई बुझब उचित नहि जे दुःखभोग वा सुखभोग-निर्दुष्ट वस्तु थिक, सुख-दुःख दूनू एके रङ्ग विकल्प अछि, तेँ तँ लुइ कहैत छथि--'सुख दुखे तेँ निचित मरिअइ'[४४६]। तँ जीअब की भेल ? जीअब थिक आत्माक अक्षयत्व, अमृतत्व, जकरा सरह तथा विरुवा 'अजरामर' शब्देँ[४४७] लक्षित कएने छथि। एकर पश्चात् आत्माक 'अवणागमणा'[४४८]क प्रश्ने नहि रहैत अछि अथवा 'भवनिर्वाणा'[४४९] वा 'जाम मरण'[४५०]क शङ्का हटि जाइत अछि।

३८६. अस्तु, एहि विकल्पसभक नाश हो कोना ? शक्तिक अवलम्बन प्रयोजनीय अछि एहि विकल्पक्षयक हेतु। कारण, शक्तिए तँ विमर्श छथि अहन्ता-परामर्श छथि आ' ताहि शक्तिक सङ्ग अन्तरङ्गतासँ आत्म-परिचय स्वतः सिद्ध।

### शक्तिक अन्तरङ्गता

३८७. महामुद्रा-साधन तथा चण्डाली-जागरण [ नाड़ी-शुद्धिक पश्चात् ], एहि दूनू साधनाकेँ क्रमशः बाह्य तथा अन्तःशक्ति-साधना मानल गेल अछि। दूनू मिलाए ई कहि सकैत छी जे विकल्पक्षयक हेतु सिद्धगण शक्तिसाधना मात्रकेँ उपाय मानल। एहि साधनाक व्यावहारिक अंशसँ ई निबन्धांश सम्बद्ध नहि अछि, सम्बद्ध अछि सैद्धान्तिक वर्णनक अंशसँ।

३८८. दार्शनिक अंशमे शून्यता वा प्रज्ञाशक्तिक विचार सर्वप्रथम होइत आएल अछि। शून्यक तँ शब्दतहो उपादान भेटैत अछि सरहपाद, शबर-पाद, लुइपाद, आर्यदेवपाद, कान्हपाद, कम्बलाम्बरपाद तथा शान्तिपादक गीतमे। तदतिरिक्त 'गगन' शब्दक प्रयोग सेहो एहि शक्तिक अर्थमे भेल अछि जेना सरहपाद तथा तन्त्रीपाद कएने छथि। भुसुकुपाद शक्तिस्वभावकेँ 'खसम-सभाव'क रूपमे देखैत छथि।

४४४। का० ४ ४४५। आ० १
४४६। लु० १ ४४७। स० १, वि० १ ४४८। ज० १
४४९। स० १ आओर द्र० 'भवनिर्वाणे'—का० ८ ४५०। भु० ७

३८९. सरहपाद शून्यशक्तिक हाथसँ दोष-विदारण करओताह–'सुइणें हत्थअ विदारअ रे निअ मन तोहोरेँ दोसें।'[४५१] शबरपाद शून्य-महिलाक सङ्ग रमण करैत छथि—'महासुहे विलसन्ति शबरो लइआ {सुणमेहेली'[४५२]। एहिठाम इहो ध्येय जे एक पंक्तिमे पुनः हुनके नैरामणि [ नैरात्मा ] मानल गेल अछि—'कण्ठे नैरामणि बालि जागन्ते उपाड़ी'[४५३]

३९०. अस्तु, नैरात्मा आ' शून्यमे अन्तर नहि। एही नैरात्मा वा शून्यक पक्ष लए, शून्यशक्तिक अवलम्बन कए, लुइपाद तत्त्वज्ञानी बनए चाहैत छथि—'सुनुपाख भिति लेहु रे पास' [४५४]।—शून्यपक्षक भित्ति समीप आनू आ' ताहिसँ अनायास परमध्यान सुदृढ़ होएत।

३९१. आर्यदेवपाद तँ ओही शून्यमे विचरण करैत रहैत छथि—'चाहन्ते चाहन्ते सुण विआर'[४५५]।

३९२. किन्तु, कोनो-कोनो सिद्ध शून्यक आकार मायामे विश्वास कए शून्यकेँ स्थूल रूपमे देखैत छथि, यथा कान्हपाद शून्यवृक्षकेँ काटए चाहैत छथि, एहिठाम एक विषय ध्येय जे सिद्ध परमतत्त्वकेँ पुनः 'गगन' शब्देँ लक्षित करैत छथि—

'सुण तरुवर गअण कुठार
छेवह सो तरु मूल न डार।'[४५६]

३९३ कम्बलाम्बरपाद शून्यशक्तिसँ करुणा-नौकाकेँ परिपूर्ण देखैत छथि, —'सोने भरिती करुणा नावी'[४५७] आ' प्रायः कहबाक प्रयोजन नहि, करुणा उपायरूप साधकक संवृतिबोधिचित्त मात्र थिक आ' शून्यशक्तिक तात्पर्य एहिठाम विमर्श [ अहन्ता-परामर्श ] छोड़ि आओर की? भुसुकुपाद एही शक्ति-स्वभावकेँ खसमस्वभाव कहैत छथि—'खसमसभावे रे वाणत मुका कोए' [४५८]। एहिठाम वाण [ वान ]क प्रयोग वानप्रस्थताकेँ संकेतित करैत अछि।

३९४. शाक्त दर्शनक सभसँ अधिक धार्मिक अंश अछि प्रतिबिम्ब-वाद, जकर सूचना पूर्व दए आएल छी। शक्ति 'शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्श'

४५१। स० ४ [ पा० टि० ]   ४५२। श० २   ४५३। ऐजन
४५४। लु० १   ४५५। आ० १   ४५६। का० १३
४५७। कम्ब० १   ४५८। भु० ७

छथि,[४५९] शक्ति द्वारा शिव अपनाकेँ चिन्हैत छथि आ' शक्ति पुनः अपनामे समस्त जगतकेँ निहित कएने छथि आ' तेँ 'भाविचराचरबीज'[४६०] छथि। तस्मात् समस्त चराचर जगत् द्वारा शिव अपनाकेँ चिन्हैत छथि आ' तेँ ओहि समस्त सृष्टिकेँ शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्श कहि सकैत छी।

३९५. सम्भवतः एही अर्थमे लुइपाद 'उदकचान्द'क[४६१], सरहपाद 'जल-विम्बाकारैँ'क[४६२] आ' जयनन्दीपाद 'छाआ' शब्दक[४६३] प्रयोग कएने छथि आ' भुसुकुपाद तँ शब्दतहे राखि देल—'दापण पतिबिम्बु जइसा'[४६४] आ'

"अइस सभावेँ जइ जग बुझसि,
तुटइ वासना तोरा"[४६५]।

३९६. एहिठाम 'स्वभाव' शब्द ध्येय। शैवशाक्त दर्शन परमशिवकेँ 'शक्तिस्वभाव' घोषित करैत अछि।

३९७. दोसर शब्दमे, जेना कहि आएल छी परमशिव विमर्शस्वभाव छथि आ' तहिना छथि [परमार्थ] बोधि प्रज्ञास्वभावबाला शून्यतादृष्टिबाला। आ' विमर्शक, पूर्णाहन्ता-परामर्श शक्तिक, लाक्षणिक रूप थिक चराचर बिश्व। ई स्पष्ट भए जाइत अछि उक्त शाक्तदर्शनसूचक प्रतिविम्बवादी पंक्तिसभसँ।

३९८. चराचर विश्वक 'स्फुरत्ता' वा 'महासत्ता'क, 'प्रज्ञा' वा विमर्शशक्तिक, संग अन्तरङ्गता स्थापित कए चरमदशामे जाहि प्रकारक अनुभूतिक साक्षात्कार करैत छथि तत्त्वज्ञानी शैव वा शाक्त साधक, तकरा शब्दक द्वारा व्याख्या करब कठिन।

## परमार्थ वा परमसत्य

३९९. किन्तु सिद्धगण कोनहु ने कोनहु शब्दमे एहि अचिन्त [अचिन्त्य] धामक स्वरूप जनाए देल। जहिना सरहपाद एहि 'अचिन्त सो धाम'क प्रयोग कएल तहिना कान्हपाद आ' ताड़कपाद 'वाक्पथातीत'क प्रयोग कएने छथि।[४६६]

४००. सएह परमधाम दोसर शब्दमे 'अनुत्तर' कहबैत छथि, जे शब्द

४५९। का० वि० श्लो० २, 'प्रतिबिम्ब'—भूमिका अनु० २२१
४६०। ऐजन-ऐजन ४६१। लु० २ ४६२। स० ४
४६३। ज० १—'छाआ माआ काअ समाना' ४६४। भु० ६
४६५। भु० ६
४६६। स० १, का० ११, ता० १

चाटिल्लपाद आ कङ्कणपादकेँ बड़ प्रिय लगैत छन्हि ।[४६७] चाटिल्लपादक शब्दमे 'पुच्छतु चाटिल अनुत्तरसामी'[४६८]—चाटिल्ल आइ ब्रह्मस्वरूप भए गेल छथि, जगतक विभु [ स्वामी ] बनल छथि ।

४०१. आ' सएह दशा थिक मुक्ति वा परमनिर्वाणक दशा । तकर सूचना भेटैत अछि दारिकपादक गीतसँ, जाहिमे कवि 'परम निवाण' तथा सअला-नुत्तर'[४६९] दूनू शब्दक प्रयोग एकहि सातत्यमे कएने छथि—'अपइठान महासुख-लीलेँ दुलक्ख परमनिवाणेँ' ।[४७०] परम निर्वाण दुर्लक्ष्य अछि, ताहि दशामे एक मात्र अनुभूति होइत अछि अनुत्तरताक--'स्वपरापर न चेवइ दारिक सअलानुत्तर माणी' ।[४७१] ओहि अनुभूतिमे शिव-शक्ति-अभेदक माधुर्य मात्र रहैत अछि शिव-शक्तितत्त्वक पृथक् पृथक् अस्तित्वो समाप्त भए जाइत अछि । सिद्ध काह्न एकाकार भए जाइत छथि--'देहनअरी विहरइ एकाकारे'[४७२] आ' स्वतः 'परम मोख लबए मुत्तिहार ।[४७३] आ' काह्न पुनः ओहि 'एकाकार' क व्याख्या करैत छथि—'निअ देह करुणाशूणमे हेरी '[४७४], जे उपर्युक्त पहिल पंक्तिक, 'देह-नअरी विहरइ एकाकारे'क प्रतिबिम्ब मात्र थिक ।

४०२. आ' जेना कहि आएल छी, करुणा-शून्य शिवशक्तिक पर्याय मात्र आ' दूनूक सामरस्ये अद्वय थिक । आ' पूर्वक पीठिकामे पुनः शङ्करक अद्वैतक संग एहि अद्वयक तुलना कएल गेल अछि ।[४७५] तँ ई कहि सकैत छी जे ओही अद्वैतक दृष्टिएँ भुसुकुपाद—'अदअ-बंगाले क्लेश लुड़िउ'[४७६] आ' चाटिल्लपाद 'अदअ दिढ़ टांगी निवाणे कोहि [ ड़ि ] अ'[४७७] ।

४०३ अद्वैतक शब्दतः उल्लेख भेटए वा नहि, बहुत दूर धरि ओकर निकट जाइत अछि दोहाकोश-समुद्धृत सरहक पंक्ति-"तह वेवि रहिअ णिउणो, अणुत्तर बोहि विण्णाणा"[४७८]—तहँ द्वैतरहित निपुण, अनुत्तर बोधि-विज्ञान ।

---

४६७ । चा० १, क० १
४६८ । चा० १
४६९ । दा० १
४७० । ऐजन
४७१ । ऐजन
४७२ । का० ४
४७३ । ऐजन
४७४ । का० ६
४७५ । अनु० १८६ सँ २०६
४७६ । भु० ८
४७७ । चा० १
४७८ । [ सिद्धसरहपादकृत ] दोहाकोश—पृ० ३०

४०४. आ' प्रायः पुनः कहबाक प्रयोजन नहि, एहि अद्वैतक तादात्म्य सामरस्य थिक आ' तज्जनित विलक्षण आनन्दानुभूतिए महासुख थिक, जकर चर्चा सरहपाद [ दोहाकोशमे ], शबरपाद, लुइपाद, दारिकपाद, कुक्कुरीपाद, भुसुकुपाद, काह्नपाद आओर कम्बलाम्बरपाद, ई आठो कविसिद्धगण कएने छथि।[४७९] महासुख वा सहज अद्वैतभावनाक भावात्मक पर्याय मात्र थिक, तेँ पुनः एहिपर विशेष प्रकाश देबाक प्रयोजन नहि ।

४०५. एही सुखक प्राप्तिक हेतु चित्तशोधन [ विकल्पक्षय ], महामुद्रासाधन [नारी-साधनक रूपमे शक्तिसाधना] तथा नाड़ीशुद्धिक पश्चात् चण्डाली-जागरण वा कुण्डलिनी-समुत्थापन, एहि तीनि प्रकारक साधनाक सङ्केत भेटैत अछि आ' ई स्मरण राखब आवश्यक जे समस्त गीतमे उक्त दर्शनक पीठिकामे एही तीनू वस्तुपर जोर देल गेल अछि। महामुद्रा-साधन [ नारी-साधन ] कोना करैत छलाह सिद्धगण ? एहि जिज्ञासाक पूर्त्ति, हमरा जनैत, गीति द्वारा होएब संभव नहि, कारण, गीतिमे तान्त्रिक पद्धतिकेँ झाँपि वज्र-पद्म आदिक सङ्केतसँ केवल सूचित मात्र कएल गेल अछि आओर ओकरा अन्तःसाधनाक रङ्गमे रङ्गि देल गेल अछि। एहिमे संदेह नहि जे नारीसाधना द्वारा सिद्ध मानस धरातलकेँ ऊपर उठाए सकलाह, फलतः एहूमे संदेह नहि जे जखन ओ धरातल ऊपर ऊठि गेल तखन संपर्कित गीतविशेष लिखल गेल ।

४०६. ओहि उदात्तीकृत [ Sublimated ] अनुभूतिमे सिद्धलोकनि जाहि दृष्टिएँ सत्यकेँ देखैत छलाह, तकर विचारक जे पक्ष [ व्यावहारिक पक्ष ] से दार्शनिकसँ अधिक वैज्ञानिक मानल जाएत, तेँ एहि सातत्यमे प्रतिपादित नहि भेल; दोसर, भूमिकामे ओकर साङ्गोपाङ्ग विचार भइए आएल अछि। तेँ चर्यागीतिक दार्शनिक पक्षक विचार एतहि समाप्त करैत छी ।

## साहित्यिक

४०७. पूर्व पीठिकामे सिद्धयुगक किछु मान्यतापर विचार कएल गेल अछि, जाहिसँ ई स्पष्ट भए गेल होएत जे सिद्धगण जाहि गीतक पद्धतिकेँ अपनाए

४७९। [ सिद्धसरहपादकृत ] दोहाकोश—पृ० १० तथा लु० १, श० १-२, दा० १, कु० १, भु० [ ४. ८ ], का० ६—७. कम्ब० १

चर्यापदक रचना कएल, ताहिमे धातु आओर मातु दूनू तत्त्वकेँ समानरूपसँ आदर कएल जाइत अछि।

४०८. स्वतः चर्यागीतिक साहित्यिक समीक्षाक अर्थ भेल ओकर ध्वनि वा नादतत्त्वक समीक्षा आ' अक्षरसञ्चय वा शब्दशरीरक समीक्षा। नादतत्त्वक समीक्षा अधिक व्यवस्थित तथा सूचनात्मक होइत, आइ जँ सिद्धक गायनस्वरलिपि प्राप्त रहैत। नाद वा ध्वनि वस्तु थिक श्रव्य, तखन बिनु सुनने कोना कहल जाए जे गीत कोना गाओल जाइत छल? तथापि यत्किञ्चित् सूचना भेटि सकल तकरा आगाँ प्रस्तुत करबाक प्रयास करब। गीतक शब्दशरीरक, स्वतः अर्थशरीरहुक, समीक्षामे आओत प्रतीकक विन्यास, लाक्षणिक वैचित्र्य, व्यञ्जनाक किछु स्थल, अलङ्कारविधान आओर शब्दार्थशरीरक प्राणभूततत्त्व भाव, जे निष्पन्न भए रसत्वकेँ प्राप्त करैत अछि।

४०९. एहिसभ विषयकेँ जँ कलापक्ष आओर भावपक्ष दुइ वर्गमे बाँटल जाए तँ गायनकला आ' शब्दार्थशरीरक चमत्कार प्रतीक, लक्षणा, व्यञ्जना [भाव-रसक व्यञ्जनासँ अतिरिक्त व्यञ्जनाक स्थल] आओर अलङ्कार-विधान, ई सभ विषय वा तत्त्व कलापक्षमे आओत आओर भाव [ अनिष्पन्न भाव ] तथा रस [ निष्पन्न भाव ] ई दूनू तत्त्व भावपक्षमे आओत। काव्य-गुण-दोष-रीतिकेँ कोन वर्गमे राखल जाए? ताहि प्रश्नक समाधानमे काव्यशास्त्रक मान्यताकेँ प्रश्रय देल जाएत। रीति तँ गुणात्मके थिक, गुण रसोत्कर्ष थिक आ' तहिना दोष रसापकर्ष; तेँ ई तीनू तत्त्व भावपक्षहिमे अन्तर्भूत होएत आ' स्वतः ताही प्रकरणमे प्रतिपादित होएत।

४१०. अस्तु, एहि रूपरेखाक अनुसरण करैत संप्रति सिद्धक गीतक कलापक्षपर किछु प्रकाश देल जाइत अछि। ताहिसँ पूर्व निवेदनीय ई जे समीक्षा वस्तु बड़ व्यापक अछि। शोध-लक्ष्यक दृष्टिएँ एहिपर अधिक वृहत् विचार प्रयोजनीय नहि, सङ्ग सङ्ग भविष्यत् अनुसंधानसभकेँ अनुप्राणित वा समुत्साहित करबाक हेतु किछु विचार-बिन्दु प्रस्तुत करब प्रयोजनीय। फलतः एक मात्र समाधान समुचित बुझना जाइत अछि। ओ ई जे उक्त सभ तत्त्वकेँ स्पर्श कएल जाए अवश्य, दृष्टान्त समस्त आलोच्य कृतिसँ नहि दए किछु गनल-गूथल स्थल मात्रसँ दए देल जाए। जे दृष्टान्त अधिक आकर्षक प्रतीत होएत से छुटए नहि तकर प्रयास अवश्य कएल जाएत। सएह विषय भावपक्षहुक प्रसङ्ग बुझबाक थिक।

**कलापक्ष**

## सङ्गीत

४११. जेना कहल, वस्तुतः सिद्धक गायन-शैलीक सुस्पष्ट परिचय भेटि सकैत तखन, जँ आइ ओकर स्वरलिपि वा ध्वनिलिपि [ Record ] प्राप्त रहैत, किन्तु से प्राप्त नहि अछि। अधिकसँ अधिक एतबा सूचना भेटैत अछि जे अमुक गीत अमुक रागिणीमे बान्हल अछि। ताहूमे रागिणीसभक जे नाम देल अछि ताहिमे कालक्रमेँ परिवर्त्तन आएल गेल; उदाहरणार्थ, रामक्री संभवतः लोचनक समयमे रामकरी बनि गेल[४८०] आ' आइ काल्हि सङ्गीतज्ञ ओकरा 'रामकली' कहैत छथि।[४८१] अस्तु, चर्यागीतक संस्करणसभमे निम्नाङ्कित गीत-सभकेँ निम्नाङ्कित रागिणीमे बद्ध कहल गेल अछि—

१। पटमञ्जरी—लु० १, लु० २, आ० १, कु० २, भु० १, का० १, का० २, का० ४, का० १०, वी० १, ढे० १

२। मल्लारी—भु० ५, भु० ८, का० १३, भा० १, क० १

३। भैरवी—स० ३, का० ५, का० ८, म० १

४। कामोद—भु० ४, का० ६, का० १२, ता० १

५। बराड़ी—भु० २, भु० ३, दा० १

६। बलाड्डि—श० १

७। गवड़ा—कु० १, वि० १

८। गउड़ा—का० ७

९। मालसी गवुड़ा—का० ११ [ उत्तरखण्डप्राधान्यसँ एकरा 'मालसी' नहि, गवुड़ा मानल ]

१०। देशाख—स० २, का० ३

११। रामक्री—श० २, शा० १

१२। देवक्री—कम्ब० १

१३। धनसी—डो० १

१४। शीवरी [ शावरी ]—शा० २

१५। मालशी—स० ४

---

४८०। रागतरङ्गिणी—तरङ्ग-२ [ पृ० २० ]

४८१। निकटस्थ एक सङ्गीतज्ञसँ ज्ञात।

१६ । गुजरी—चा० १
१७ । गुञ्जरी [ गुर्जरी ]—स० १, धा० १
१८ । कह्नु गुञ्जरी—भु० ६
१९ । बङ्गाल—भु० ७
२० । शबरी—ज० १
२१ । अरु—गु० १
२२ । इन्द्रताल—का० ६
२३ । पटह्—कु० ३
२४ । गीति—त० १

४१२. एहिमे अन्तिम अछि गीतिमात्र, जकर रागिणी अज्ञात अछि। इन्द्रजाल आ' पटह् संभवतः तालक सङ्केत अछि, कारण एकमे ताल जोड़ल अछि. दोसराक उल्लेख ताल-वाद्यरूपमे कान्हक एक गीतमे भेटैत अछि।[४८२] बलाड्डि, बराड़ी एके रागिणी थिक। संभवतः बलाड्डिक उच्चारण बराड़ी जकाँ होइत छल, बराड़ीक चर्चा रागतरङ्गिणीमे भेटैत अछि,[४८३] वर्णरत्नाकरमे वराली भेटैत अछि[४८४] [ ड-लयोः साम्यम्'सँ बराड़ी भेल ]। गवड़ा, गउड़ा आ' गवुड़ा गौड़ाक अपभ्रंश अछि, गौड़ा तँ नहि किन्तु गौड़ीक नाम एकठाम भेटैत अछि।[४८५] रामक्री-देवक्री रामकरी-देवकरी मात्र थिक,[४८६] लोचन देवकरीकेँ देवकारी कहैत छथि।[४८७] धनसी संभवतः धनास्रीक[४८८] नामान्तर थिक वा धनास्रीक एक भेद धनछी थिक।[४८९] मालशी मालस्रीक[४९०] अपभ्रंश रूप

---

४८२ । का० ८—'पड़ह' शब्द

४८३ । रा० त०—तरङ्ग २ [ पृ० ८ ]। बलाडि्ड बराड़ी एके, ताहि हेतु द्रष्टव्य च० गी० को० पृ० ९२ ।

४८४ । वर्णरत्नाकर—कल्लोल ६ [ पृ० ४८ ]

४८५ । रा० त०—तरङ्ग ५ [ पृ० १२६ ]

४८६ । वर्णरत्नाकर—कल्लोल ६ [ पृ० ४८ ]

४८७ । रा० त०—तरङ्ग ५ [ पृ० १३० ]

४८८ । ऐजन—तरङ्ग २ [ पृ० २७ ] आ' [ पृ० ३० ]

४८९ । ऐजन—तरङ्ग ४ [ पृ० १०१ ] आ' वर्णरत्नाकर [ पृ० ४८ ]सँ पुष्ट

४९० । ऐजन—तरङ्ग २ [पृ०२६]। मालशी = मालस्री वा मालश्री -द्र०च०गी०को० पृ०१२७

अछि। गुजरी गुञ्जरी दूनू एके थिक, आइ-कालिह 'गुजरी' कहल जाइत अछि।[४११] मल्लारीकेँ मलारी सेहो कहल जाइत अछि[४१२]।

४१३. फलतः चर्यागीतिमे जे रागिणीसभ प्रयुक्त भेल अछि तकर प्रचलित शास्त्रीय नाम पटमञ्जरी, मल्लारी वा मलारी, भैरवी, कामोद, बराड़ी, गौड़ा [ एक सङ्गीतज्ञसँ ज्ञात ] वा गौड़ी [जेना ऊपर प्रमाणित ], देशाख, रामकरी [ली], देवकरी [ली] वा देवकारी, धनास्री वा धनछी [ओकर प्रभेद ], शीवरी, मालस्री, गुजरी, कह्नु गुजरी, बङ्गाल [ वर्णरत्नाकरकथित ] वा बङ्गाली [ राग-तरङ्गिणी कथित], शबरी ( शाबरी ) वा सबरी [ वर्णरत्नाकरकथित ] आओर अरु अछि।

४१४. ऊपर बङ्गाली तथा गुजरी [गुजरातसँ 'गुर्जरी' विशेषण ] जे नाम अछि से क्षेत्रीय सङ्गीतक सङ्केत करैत अछि आ', जेना पीठिकामे कहि आएल छी, कोनो आश्चर्य नहि जे ताहि समयमे उक्त गीतिसभ सिद्धक क्षेत्र मिथिला-मगध-बङ्गालक गायन-शैलीक अनुसार गाओल जाइत छल। एहि तीनू प्रान्तक, विशेषतः मिथिलाक संस्कृतिक जे सिद्धगण आदर कएल [ चङेरा आदि वस्तुक चर्चा ध्येय ] ताहिसँ भास वा कमसँ कम लयहुक [गीत-गतिक, चालिक] प्रसङ्ग एहन अनुमान कएल जाए सकैत अछि। आशा कएल जाए सकैत अछि जे संगीतशास्त्री विद्वद्गणक प्रयाससँ जे किछु कुहेलिका रहि गेल अछि से दूर भए जाएत। संक्षेपमे, एतबा निश्चित जे चर्यागीतिक धातु [ नाद ]-पक्ष आह्लादक आओर भावाभिव्यञ्जक अछि, अभिप्रेत अर्थ वा भावक अभि-व्यञ्जनमे सशक्त सिद्ध अछि।

४१५. किन्तु जखन चर्यागीतपर गंभीर रीतिएँ विचार करए लगैत छी तँ स्पष्ट भए जाइत अछि जे सिद्धसभ केवल गुनगुन नहि करैत छलाह, गबैत छलाह स्वरचित कविता जाहिमे मातुओ पक्ष दुर्बल नहि आ' मातु तँ अक्षरसंचये अर्थात् शब्दे भेल। संगीतक अर्थ-निरपेक्षता-पक्ष धातुपदेँ लक्षित अछिए [ ध्वनिक अर्थमे ]। तेँ मातुपक्षक तात्पर्य अछि सार्थक शब्द। फलतः एहि पक्षक विचारमे अनायास गीतिक शब्दार्थगत चमत्कार आओत। अर्थगत चमत्कारहिमे, हमरा जनैत रस आओत, रस अर्थक क्षेत्रसँ [आ' तेँ सार्थक

४११। स्थानीय सङ्गीतज्ञसँ ज्ञात। धा० १ गीत—च० गी० को० पृ० १५४ सँ पृष्ट।

४१२। रा० त०—तरङ्ग २ [ पृ० ३१ ]

शब्दहुक क्षेत्रसँ ] बहिर्भूत वस्तु नहि, जकर संकेत रसमर्मज्ञ पण्डितराज काव्यक लक्षणक प्रसंगमे कएने छथि—"रमणीय अर्थक प्रतिपादक शब्द काव्य थिक आ' रमणीयता थिक लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता"।

४१६. अस्तु रस-मीमांसा तँ भावपक्षक वस्तु थिक, दोसर, प्राधान्यसँ, स्वतन्त्रे विचारल जाए से उचित। तेँ कलापक्षक क्रममे केवल ताहि माध्यमभूत विधानकेँ प्रश्रय देल जाइत अछि जे निष्पन्न भाव [ रस ] वा अनिष्पन्न भावकेँ प्रमाता [अर्थग्राहक] वर्गक हृदय धरि पहुँचएबामे नीक जकाँ सफल होइत अछि।

४१७. एहि प्रसंग ई कहब आवश्यक जे पूर्वप्रतिपादित सङ्गीत-विषयो कम सत्ता नहि रखैत अछि। उक्त रूपक कलात्मक विधानमे, भावाभिव्यञ्जक रागलयतालाश्रयणमे, गीतिक आत्मा कम प्रकट नहि होइत अछि, किन्तु थिक तँ ओ नादसापेक्षमात्र, शब्दनिरपेक्षे, तेँ पूर्वहि प्रतिपादित भेल। तकर एक हेतु इहो जे सङ्गीत-कला प्रसिद्ध अछि।

४१८. फलतः सम्प्रति मातुपक्षक, शब्दार्थपक्षक कलात्मक विधान प्रतीक-चयन, लाक्षणिक वैचित्र्य आ' अलङ्कारछटाक विचार प्राप्त अछि। गुण रसोत्कर्ष थिक, रीति गुणात्मा थिक, अर्थात् रीति-गुणक विचार भावपक्षहिक अङ्गभूत थिक, तेँ एहि प्रकरणमे छोड़ि देल जाइत अछि।

## प्रतीक-चयन

४१९. पूर्व पीठिकामे कहि आएल छी जे जतए प्रतीकात्मक शब्द सुनैत देरी प्रतीकक चमत्कार-बोध हो, अन्य चमत्कार ओहि चमत्कारसँ निगीर्ण बूझि पड़ए, ततहि प्राधान्येन ओकर [ प्रतीकक ] व्यपदेश हो, जे काव्यशास्त्रक रहस्य थिक[४९३]।

४२०. तेँ यद्यपि आद्यन्त सिद्धक गीतमे अर्थ-चित्र भेटत, अप्रस्तुत विधानक छटा भेटत आ' तत्सूचक शब्दसभ भेटत, तथापि निर्दिष्ट कएल जाइत अछि केवल तेहने स्थलसभ जतए विषयी वा उपमान अभिनव प्रतीत होएत, सुनैत देरी एहन अनुभव प्रतीत होएत-'वाह, कतेक सुन्दर सङ्केत [प्रतीक]-वाला शब्द राखि देने छथि, ई पहिने कनिको फुरलन्हि नहि'।

---

४९३. अलङ्कारसर्वस्वक अध्ययनपर आश्रित

४२१. यथा, ढेण्ढणपादक पाँती देखल जाए – 'हाड़ीत भात नाहि निति आवेशी'[४१४] — अढ़ियामे भात नहि, नित्य आवेश राखए पड़ैत अछि।

४२२. एहिठाम हाड़ीसँ शरीर आ' भातसँ परिपक्व चित्त [ बोधिचित्त ] लक्ष्य अछि। फलतः वाक्यार्थ अछि—'शरीरमे चित्त विकसित नहि, तेँ नित्य हुनक आवेश राखए पड़ैत अछि। व्यङ्ग्यार्थ ई अछि जे 'आइ जँ तत्वज्ञान प्राप्त भए गेल रहैत तँ चितितादात्म्यक प्रयोजन की ?'

४२३. एहिठाम भात आओर हाड़ीकेँ अभिनव आ' तेँ रमणीय प्रतीकक रूपमे देखैत देरी आनन्दक अनुभव होइत अछि, मन ओही चमत्कार दिशि चल जाइत अछि तेँ निश्चित रूपमे कहि सकैत छी जे एतए प्रतीक–चयनक चमत्कार अछि। उक्त पंक्तिक एक आओर अर्थ बैसैत अछि – 'शरीरमे चित्त विकसित नहि आ' रखैत छी नित्य चितिक आवेश। एहू अर्थक उल्लेख व्याख्याभागमे कए आएल छी।

४२४. आब एक आओर प्रतीक देखल जाए। प्रतीक अछि तेतरिक— 'रूखेर तेन्तलि कुम्भीरे खाअ'[४१५] —गाछक तेतरि कुम्भीर [ सामुद्रिक माछ वा कुम्भक समाधि ] खा जाइत अछि। तात्पर्य अछि—तेतरि सदृश वक्र आ' अम्मत कुचित्तकेँ कुम्भक प्राणायामसँ विनष्ट कए देल जाइत अछि, समाप्त कए देल जाइत अछि। एक विषय आओर ध्येय, तन्त्र-शास्त्रमे चिञ्चाक बड़ निन्दा अछि, तेँ ओकर प्रतीक।

४२५. अस्तु, गीतसभमे बड़द,[४१६] हरिण–हरिणी,[४१७] मूस,[४१८] बेङ[४१९], साप,[५००] हाथी–हथिनी[५०१], आदि जन्तुसभक आओर चाङ्गेड़ा,[५०२] बड़िआ [ सतरञ्जक प्यादा गोटी ][५०३], गजवर [ फील गोटी ],[५०४] रत्न[५०५] आदि पारिवारिक उपकरणक प्रतीक वा चित्र [ सङ्केतमय चित्र ] क्रमशः मोचण्ड चित्त, साधकक चित्त-नैरात्मा, चञ्चल चित्त, कायवाक् चित्त, चित्त-शून्यशक्ति आदिक अर्थमे आओर आवरण, अष्टपाश, चित्त, ज्ञान आदिक अर्थमे आएल अछि।

४२६. किछु अन्य प्रतीक अछि नौका, वीणा, ताँति आदिक प्रतीक जकरा रूपकमे आगाँ अन्तर्भूत मानल जाएत।

---

४१४। ढे० १ ४१५। कु० १ ४१६। स० ४; ढे० १
४१७। भु० १ ४१८। भु० २ ४१९। ढे० १ ५००। ऐजन
५०१। का० २. ५; वी० ५०२। का० ३ ५०३। का० ५
५०४। ऐजन ५०५। भु० ४

लाक्षणिक वैचित्र्य

४२७. प्रतीकहि सभपर विचार कएलासँ ई सूचित भए जाएत जे अभिप्रेत अर्थक प्रत्यायन लक्षणाशक्तिसँ होइत अछि आ' तेँ कहि सकैत छी जे सामान्यतया प्रतीक-शब्दसभ लाक्षणिक अछि आ' ओकर वैचित्र्य [ चमत्कार ] लाक्षणिक वैचित्र्य कहल जाएत।

४२८. उदाहरणार्थ ढेण्ढणपादक एक पंक्ति अछि जे पूर्वो भेटल होएत—'हाड़ीत भात नाहि निति आवेशी।'[५०६] 'हाड़ीत भात नाहि'—अभिधाशक्तिसँ एकर अर्थ भेल 'अढ़ियामे भात नहि, भात रखबाक बासनमे भात [ सिझल चाउर ] नहि अछि' ततबे।

४२९. किन्तु अभिप्रेत अर्थ ई नहि अछि। सङ्गति बैसैत अछि एहि अर्थसँ—'शरीरमे परिपक्व चित्त नहि, तेँ नित्य चिति-शक्तिक आवेश राखए पड़ैत अछि' अथवा 'शरीरमे परिपक्व चित्त नहि, आ' राखल ताकी नित्य चिति-शक्तिक आवेश''।

४३०. ई अर्थ कोना लागल? —लक्षणा-शक्तिसँ। वाच्यार्थक जखन बाधा भए गेल [ अभिधासँ सङ्गति नहि बैसल ], तखन ताहिसँ सम्बद्ध अन्य अर्थ बैसल। सादृश्यसम्बन्धसँ एहन लक्ष्यार्थ बोधगम्य भेल आ' प्रयोजन उपस्थित भेलापर एहन एहन अर्थ लगबए पड़ल। सभ परिस्थिति उपस्थित अछि, तेँ लक्षणा मानल गेल।[५०७]

४३१. लक्षणाक भेदसभपर ध्यान देलासँ स्पष्ट भए जाएत जे सादृश्य-सम्बन्धसँ लक्ष्यार्थक बोध होएबाक कारणेँ गौणी लक्षणा अछि, रूढ़िसँ नहि, प्रयोजनवशात् बोध होएबाक कारणेँ प्रयोजनवती लक्षणा अछि, वाक्यार्थक एकान्ततः परित्यागक [ अढ़िया, भातक सङ्गति नहिए बैसबाक ] कारणेँ जहत्-स्वार्था [ लक्षणा ] आ' विषयरूप शरीर आ' परिपक्व चित्तक शब्दतः उल्लेख नहि रहबाक कारणेँ साध्यवसाना लक्षणा कहल जाएत उक्त शब्द-शक्तिकेँ।

४३२. प्रयोजनांशपर विचार कएलासँ इहो स्पष्ट भए जाएत जे व्यञ्जना सेहो अछि।[५०८] 'अन्नाद् भवन्ति भूतानि'—तेँ कवि भातक उल्लेख कएल,

---

५०६। ढे० १

५०७। लक्षणाक लक्षणक हेतु द्रष्टव्य लेखकहिक 'काव्यमीमांसा' [ १ ]—पृ० ८७-८८

५०८। व्यंजनाक लक्षणक हेतु द्रष्टव्य लेखकहिक काव्यमीमांसा [ १ ]—पृ० १०७

अढ़ियामे ओ परसल जाएत तखन ने आवेशक प्रश्न। तेँ "शरीरमे परिपक्व चित्त नहि आ' राखल ताकी चित्तक विकसित रूप चितिक आवेश" एहनो अर्थ लगैत अछि, व्यञ्जनहि शक्तिसँ।

४३३. ई व्यङ्ग्यार्थ किछु गूढ़ अछि, शास्त्रमर्मज्ञ व्यक्तिमात्रकेँ लागि संकेत छन्हि, सङ्ग सङ्ग लक्षणाक प्रयोजनभूत अछि, तेँ गूढ़व्यङ्ग्या लक्षणा।

४३४. लक्षणाक प्रश्न अछि अढ़िया आ' भात पदमे, तेँ पदगत लक्षणा आ' से पद धर्मी अछि तेँ धर्मिगत लक्षणा।

४३५. एहि प्रकारेँ चर्यागीतिमे अनेक स्थलमे लाक्षणिक शब्द भेटत। तेतरिसँ कुचित्तक[५०९], हरिणसँ साधक-चित्तक,[५१०] हरिणीसँ नैरात्माक,[५११] मूससँ चञ्चल चित्तक,[५१२] दुखोल[ सेचनी ]सँ वासनोच्छेदक शक्ति तत्त्वक,[५१३] करिणा-करिणीसँ चित्त-शून्यशक्तिक[५१४], बेङसँ काय-वाकक,[५१५] सापसँ चित्तक,[५१६] बाण्ड-कुरुण्ड [ बटुआ-पौती ]सँ पाथेय तत्त्वज्ञानक[५१७] एवम्प्रकारेँ जतेक अर्थक बोध होइत अछि से लक्षणाहिसँ आ' वाच्यार्थसम्बद्ध लक्ष्यार्थक पश्चातो कतहु कतहु एहन सन प्रतीत होएत जे एक तेसरहि प्रकारक अर्थ लागि रहल अछि, इहो संभव जे बिनु लक्षणासँ लाभ उठओनहु ई तेसर प्रकारक अर्थ लागि जाएत, तँ तेहन स्थलमे व्यञ्जना मानल जाएत।

४३६. व्यञ्जनाक दृष्टान्त तँ समस्त भावपक्षकेँ मानल जाएत, किन्तु तदतिरिक्तो स्थलसभ भेटैत अछि, जकरा एही प्रकरणमे राखब अधिक समीचीन।

४३७. यथा, ढेण्ढणपादक एक एक गीतक पंक्ति अछि—'बेंग स साप बड़हिल जाअ'[५१८]—बेङसँ साप काटल जाइत अछि।

४३८. एहिठाम लक्षणासँ अतिरिक्तो कोनो शक्ति काज करैत अछि तेँ शब्द अप्रस्तुत विषयक बोध करएबामे समर्थ भए सकल। ओ शक्ति थिक व्यञ्जना। व्यङ्ग्यार्थहिसँ पुनः एहि असंगत घटनाक समाधानो होइत अछि— 'काय-वाकसँ चित्ते गीड़ि लेल जाइत अछि कारण, ओ दुर्बल अछि'।

४३९. व्यञ्जनाक सभसँ उत्कृष्ट स्थल अछि कुक्कुरीपादक एक गीतमे। हुनक पंक्ति अछि—

---

५०९ । कु० १ — ५१० । भु० १ — ५११ । ऐजन — ५१२ । भु० २

५१३ । डो० १ — ५१४ । का० २ — ५१५ । ढे० १ — ५१६ । ऐजन

५१७ । ता० १ — ५१८ । ढे० १

'दिवसइ बहुड़ी काड़इ डरे भाअ ।
राति भइले कामरु आज ॥'[५१९]

--दिनमे बहुरिया काड़ कौआक डरेँ भगैत अथि आ' राति भेलापर ओएह कामकौतुकमे संनद्ध भए जाइत छथि ।

४४०. एहिठाम एक शङ्का ऊठि सकैत अछि जे रसध्वनि अछि, तेँ भाव-पक्षमे राखब अधिक उपयुक्त छल। किन्तु आगाँ अलङ्कारक प्रसङ्ग जे अपन अनुभव देखाओल जाएत, ताहिसँ स्पष्ट भए जाएत जे एहिठाम प्रधानता अछि अलङ्कारहिक, अधिक ध्यान अर्थयोजने दिशि जाइत अछि, मार्मिक भाव दिशि नहि। तेँ व्यञ्जना अछि किन्तु रस-व्यञ्जना गौण अछि, अलङ्कार-व्यञ्जना मुख्य अछि। आ' तेँ एकरा कलापक्षहिमे राखल।

४४१. अस्तु, जेना ऊपर किछु स्थल देखाओल तेना अन्यो स्थल भेटत यथा बलद बिआएल[५२०], अन्ते कुलिन जन,[५२१] कान्दइ [ कानए ] सगुण शिआली[५२२] आदि व्यञ्जक पद तथा चित्तराज,[५२३] हिअतांबोला[५२४] प्रभृति लाक्षणिक पद।

अर्थालङ्कार

४४२. एकावली--एहि अलङ्कारक दृष्टान्तमे राखि सकैत छी सरहपादक एक पद--

'जामे काम कि कामे जाम ।
सरह भणन्ति अचिन्त सो धाम ॥'[५२५]

--जन्मसँ कर्म अथवा कर्मसँ जन्म, एहि दूनूमे जे सत्य रहए, एहिमे सन्देह नहि जे अनुत्तर परम तत्व अचिन्त्य थिक ।

४४३. एहिठाम प्रथम पंक्तिमे एकावली अलङ्कार स्पष्ट अछि। एकावली अलङ्कार ततए मानल जाइत अछि "जतए पूर्व-पूर्व अर्थ उत्तरोत्तर अर्थक विशेष्य रहए वा जतए पूर्व-पूर्व अर्थ उत्तरोत्तर अर्थक विशेषण रहए" [५२६]।

४४४. प्रथम पंक्ति अछि 'जामे काम कि कामे जाम'--एहिठाम 'जामे काम' मे पूर्व अर्थ जन्मे उत्तर अर्थ कर्मक विशेषण अछि, पुनः आगाँ 'कामे जाम'-

५१९। कु० १ ५२०। ढे० १ ५२१। का० ७ ५२२। श० २
५२३। स० २, का० ६, भा० १ ५२४। श० १ ५२५। स० १
५२६। लेखककृत काव्यमीमांसा [२]--पृ० १६२-१६३

मे जे कर्म पहिने विशेष्यरूपमे आएल छल अपन आगाँक अर्थ जन्मक विशेषण बनि जाइत अछि। तेँ कहल जे एकावली अलङ्कार अछि।

४४५. ई छटा आओर देखाइ रहैत जँ पदार्थक [ पदक अर्थक ] शृङ्खला-मे दू सँ अधिक पदार्थ रहैत। अस्तु, एकावलीक लक्षण घटित अछि।

४४६. आब एक दोसर अलङ्कार देखल जाए, विभावना, जे भुसुकुपादक एक पंक्तिमे भेटत।

४४७. विभावना भुसुकुपादक एक पंक्ति अछि—'अधराति भर कमल विकसउ'[५२७]—एहिठाम कमलक विकासक प्रसिद्ध कारण दिनक विरोधी तत्त्व राति प्राप्त अछि, तथापि ओकर विकास भेल, एहन अर्थ अछि, तेँ विभावना अलङ्कार। विभावना-अलङ्कारक सामान्य लक्षण तँ अछि--विना हेतुक कार्यो-त्पत्तिक चमत्कारक अभिव्यक्ति[५२८]। चमत्कारक अभिव्यक्तिक तात्पर्य अछि जे जतेक विभावनाक दृष्टान्त भेटत, सभमे आपाततः विरोधमूलक कार्य-कारणसंबन्ध मात्र रहैत अछि। वस्तुतः विरोध कतहु रहए? तखन चमत्कारे की?

४४८. अस्तु, विभावनाक भेदमे एहिठाम प्रसिद्ध कारण [दिन]क विरोधी तत्त्व [ राति ] सँ कार्योत्पत्ति [ कमल-विकास ] बाला भेद' अछि।[५२९]

४४९. अतिशयोक्ति—आब भुसुकुपादक एक गीतमे अतिशयोक्तिक छटा देखल जाए। एक पंक्ति अछि—'वान्धिसुआ जिम केलि करए, खेलइ बहुविह खेला'[५३०]—जेना वन्ध्याक पुत्री क्रीड़ा करए, बहुविधि खेड़ि खेलाए।

४५०. एहिठाम असम्बन्धहुमे सम्बन्धक कल्पना अछि, वन्ध्याक पुत्री एहन सम्बन्ध सम्भव नहि अछि, तथापि कवि ई सम्बन्ध कल्पित कएने छथि, तेँ अतिशयोक्ति अछि, एहि भेदक अतिशयोक्तिक नाम अछि सम्बन्धाति-शयोक्ति।[५३१]

४५१. भ्रान्तिमान्—भुसुकुपादक ओही गीतमे दोसर पंक्ति अछि—'राज

---

५२७। भु० ४

५२८। लेखककृत काव्यमीमांसा [२]--पृ० १४५

५२९। ऐजन —ऐजन —पृ० १४८

५३०। भु० ६

५३१। लेखककृत काव्यमीमांसा [ २ ] पृ० १०७-१०८

साप देखि जो चमकिइ साँचे कि ताक बोड़ो खाए'[532]—रज्जु सर्प देखि जे चमकि उठए तकरा की वस्तुतः बोड़ो [साप] खाइत अछि ?

४५२. एहिठाम एक भ्रान्त व्यक्तिक अनाहार्य [स्वकल्पित नहि, वास्तविक] भ्रम देखाओल गेल अछि, सादृश्य-सम्बन्धपर आधारित, आ' ओ भ्रम चमत्कारक रूपमे व्यक्त भेल अछि, तेँ भ्रान्तिमान् ।

४५३. रूपक—चर्यागीतिमे सभसँ अधिक भेटैत अछि रूपक-अलङ्कारक छटा ।

४५४. ओना तँ काय-नौका,[533] चित्तराज,[534] हिअतांबोला,[535] सुणमेहेली [शून्यमहिला],[536] धमण चमण वेणी पिण्डी,[537] दशबलरअण,[538] अविद्या-करि[539] आदि अनेक पदसँ विषय-विषयीक तद्रूपत्व-अभेदक छटा बहराइत अछि, किन्तु तीनि गोट स्थल बड़ उत्कृष्ट अछि ।

४५५. सभसँ पहिने काह्नपादक एक गीतिमे पहिल चारि पंक्ति देखल जाए—

'मण तरु पाँच इन्दि(य) तसु साहा ।
आसा बहल पात फलवाहा ॥
वरगुरुवअण – कुठारेँ छिजअ ।
काह्न भणइ तरु पुण न उइजअ ॥'[540]

—मन तरु, पाँच इन्द्रिय ओकर डारि, आशा फलवाहक पात । वर-गुरुवचन - कुठारसँ छिन्न करह, जाहिसँ, काह्न कहैत छथि, ओ गाछ पुनः उपजए नहि ।

४५६. एहिठाम अङ्गीमनोविषयमे अङ्गीतरु-विषयीक आरोप अछि अर्थात् विषयक शब्दतः उल्लेख रहैत विषय-विषयीक मध्य निश्चयात्मक अभेदक कल्पना अछि आ' तहिना मनक अङ्गभूत विषय इन्द्रिय, आशा आओर गुरुवचनमे क्रमशः विषयी तरुक अङ्गभूत डारि, पात आ' कुठारक आरोप अछि । तेँ साङ्गरूपक ।

४५७. एही प्रकारेँ साङ्गरूपक वीणापादक वीणा-चित्रबाला आ' तन्त्री-

५३२ । भु० ६
५३३ । द्र० 'काअणावड़ि—स० ३
५३४ । स० २. का० ६. भा० १
५३५ । श० १
५३६ । श० २
५३७ । लु० १
५३८ । का० २
५३९ । ऐजन
५४० । का० १३

पादक तन्त्रवयनचित्रबाला गीतमे भेटत, जतए क्रमशः नाड़ीजालकेँ वीणाक अभिन्न आ' वित्तशोधनकेँ पट्टवयनक अभिन्न निश्चित रूपमे कल्पित कएल गेल अछि, विषयक उल्लेख रहैत।[५४१]

४५८. उपमा—उपमाक छटा एकठाम देखल जाए—'उदकचान्द जिम साच न मिच्छा।[५४२] लुइपादक कहब अछि जे ई जगत् जलमे प्रतिविम्बित चन्द्रमा जकाँ ने सत्य अछि आ' ने मिथ्या। एहिठाम उपमेय लुप्त अछि, किन्तु 'जिम' वाचक, उदकचान्द' उपमान आ' 'साच न मिच्छा' रूप साधारण धर्म उपात्त अछि।

४५९. कान्हपादक द्व पंक्ति अछि—

'यथा उदिते सूर्ये रात्रिर्व्यपयाति
[तथा] भवसमुद्रमोहरजो दूरी भवति।'[५४३]

'यथा', 'तथा' सँ उपमा स्पष्ट भए जाइत अछि।

४६०. अन्योक्ति—अप्रस्तुतप्रशंसाक एक चमत्कारक भेद अछि अन्योक्ति।

४६१. अप्रस्तुतप्रशंसामे अप्रस्तुत वृत्तान्तक अभिधानसँ प्रस्तुत वृत्तान्तक आक्षेप होइत अछि। आ' ई आक्षेप जँ सादृश्यमात्रक कारणेँ होइत अछि तँ अन्योक्ति।[५४४]

४६२. वस्तुतः ई अलङ्कार चर्यागीतिमे भरल अछि। एक दृष्टान्त देखल जाए भुसुकुपादक गीतमे—

'अपणा मांसेँ हरिणा वैरी।
खनह न छाड़अ भुसुकु अहेरि॥
तिन न च्छुपइ हरिणा पिबइ न पानी॥
हरिणा हरिणीर निलअ न जानी॥
हरिणी बोलअ सुण हरिणा तो।
ए वण च्छाड़ी होहु भान्तो॥'[५४५]

४६३. वस्तुतः प्राप्त अछि साधकक चित्त आओर नैरात्माक वृत्तान्त। किन्तु से नहि देखाए कवि एक अप्राकरणिक वृत्तान्त देखबैत छथि हरिण-हरिणीक। वर्णन चमत्कारक अछि आ' बड़ छटासँ ओ अप्रस्तुत वर्णन [प्रशंसा] प्रस्तुत अर्थक, नैरात्मा द्वारा चित्ताकेँ उपदेशप्रदानरूप अर्थक, आक्षेप अनायास कए दैत अछि। से आक्षेप सादृश्यहिक कारणेँ भए सकल अछि, चित्त-नैरात्माक

---

५४१। वी० १. त० १  ५४२। ल० २  ५४३। का० ६
५४४। लेखककृत काव्यमीमांसा [२] पृ० १३  ५४५। भु० १

पति-पत्नीभाव चित्तक विषय-वासना [-रूपमांस]मे आसक्ति आदि सादृश्य-हिक कारणेँ भए सकल अछि, तेँ अन्योक्ति।

४६४. एवम्प्रकारेँ डोम्बीपादक "गङ्गा जउना माझे रे बहइ नाइ,"[५४६] गुण्डरीपादक "सासु घरे घालि कोञ्चा ताल"[५४७] आदि अनेक पंक्तिमे ई अन्योक्तिक छटा भेटत।

४६५. लोकोक्ति—जकरा दोसर शब्दमे लोकप्रयुक्त 'कहबी' कहल जाइत अछि, चर्यागीतमे कोना भेटैत अछि, तकर दृष्टान्त देखल जाए—"हाथे रे! काङ्कण मा लेउ दापण"[५४८]—हाथहिमे कङ्गना, नहि लएह दर्पण।

४६६. यद्यपि आइ कालिह किछु दोसर प्रकारेँ ई लोकोक्ति व्यवहृत होइत अछि तथापि वाग्धारापर ध्यान देलासँ एतबा अनुमान कए सकैत छी जे ताहि समयमे एहन प्रयोग प्रचलित छल।

४६७. तहिना कुक्कुरीपादक पद अछि—

"दिवसइ बहुड़ी काड़इ डरे भाअ।
राति भइले कामरु जाअ॥"[५४९]

—किछु मैथिलानीसँ गप्प भेलापर सूचित भेल जे ओसभ एहि लोकोक्तिसँ परिचित छथि, तकर अर्थ जे सिद्ध एकरा लोकोक्तिरूपमे प्रयुक्त कएल। सेहो पुनः ओही अर्थमे मैथिलानी एकरा घटबैत छथि।

४६८. सम्भवतः एहिपर संस्कृत श्लोकक प्रभाव अछि—

'दिवा काकरवाद् भीता।
रात्रौ तरति नर्मदाम्॥

## शब्दालङ्कार

४६९. अनुप्रास—अनुप्रासक छटाक हेतु ध्येय थिक सर्वप्रथम कुक्कुरीपादक एक पंक्ति—'जाण जौवन मोर भइलेसि पूरा।'[५५०]—एहिठाम ज् व्यञ्जनक आवृत्तिगत चमत्कारक कारणेँ जहिना वृत्त्यनुप्रास अछि तहिना पदान्तमे 'ण'क आवृत्तिक कारणेँ अन्त्यानुप्रास अछि। ई स्पष्ट भए जाएत 'जाण' तथा 'जौवण' पदद्वयक उच्चारणसँ।

---

५४६। डो० १ ५४७। गु० १ ५४८। स० २ ५४९। कु० १
५५०। कु० २

४७०. आ' पुनः एहने छटा भेटैत अछि हुनक दोसर गीतिक एक पंक्तिमे—'दुलि दुहि पिटा धरण न जाअ'"[५१] । 'दु' अक्षरक आवृत्ति ध्येय। ताहि कारणेँ वृत्त्यनुप्रास देखाड़ अछि, व्यञ्जनक तँ कथे कोन, स्वरसहित आवृत्ति भेल अछि एक अक्षरक।

४७१. यमक—यमक-लक्षणपर ध्यान देलासँ स्पष्ट भए जाइत अछि जे यमकक एक परिस्थिति एहनो रहैत अछि, जाहिमे निरर्थक शब्दक आवृत्ति भेल रहैत अछि। निरर्थक शब्दक आवृत्तिक दृष्टान्तसभमे ओहू स्थलसभकेँ अलङ्कारशास्त्री निर्दिष्ट करैत छथि जतए सार्थक शब्दक खण्डक आवृत्ति भेल रहैत अछि। वस्तुतः अपूर्ण रहबाक कारणेँ सार्थकशब्दखण्डकेँ निरर्थक मानब उचित। प्रस्तुत लेखकहिक ग्रन्थमे एक दृष्टान्त अछि—'जे हम मान बहुत कए मानल,' एहिठाम 'मान' दू बेरि आएल अछि, दोसर बेरि निरर्थक अछि आ' ताहू परिस्थितिमे यमके मानल गेल अछि [ लेखककृत का० मी० २-पृ० ५७ ]।

४७२. एहि आधारपर विचार कएलासँ 'जिम जिम करिणा करिणिरँ रिसअ'[५५२] पंक्तिमे यमक प्राप्त अछि। कोना ?

४७३. 'करिणा', 'करिणिरँ' दू सार्थक शब्द अछि, दूनूमे एक खण्ड अछि 'करि', ई खण्ड सार्थकशब्दक खण्ड अछि, तेँ निरर्थक एहिठाम मानल जाएत [ भनहि एक सार्थक खण्ड रहए ]। फलतः ई कहि सकैत छी जे निरर्थक 'करि' शब्दक आवृत्ति भेल अछि आ' तेँ यमक अलङ्कार प्राप्त अछि। ढेण्ढणपादक 'बलद' शब्दमे एक अन्यो शब्दालङ्कार भेटत 'शब्दश्लेष' ( ढे० १ )।

४७४. प्रस्तुत शोध-लक्ष्यक दृष्टिएँ एतबे अतिरिक्त विचार पर्याप्त बुझना जाइत अछि। अलङ्कारक अनेक स्थल भेटैत अछि, किन्तु विस्तृतिभयात किछु गनल-गूथल स्थल मात्र निर्दिष्ट कएल गेल अछि।

## भावपक्ष

४७५. पूर्वसूचित चर्यागीतिक साहित्यिक पीठकामे ध्वनिक सत्ता देखाओल गेल अछि आ' रसध्वनि-भावध्वनिक प्राधान्य सेहो सङ्केतित कएल गेल अछि। वस्तुतः भावे तँ कविताक प्राण थिक, भनहि ओकरा निष्पन्न दशामे रस कहल

५५१। कु० १ ५५२। का० २

जाए आ' ताहि रसकेँ कविताक प्राण मानल जाए। फलतः कविताक भावपक्ष थिक ओकर आत्म-पक्ष।

४७६. अस्तु, भेटैत अछि अन्यो भाव, किन्तु प्रधानरूपमे चौदह गोट गीतमे रतिक आभास अवश्य भेटैत अछि। प्रायः ओही आभासक आधारपर डा॰ भारती सेहो मोटामोटी चौदह संख्याक निर्देश कए देने छथि।[५५३] किन्तु ओ चौदह गीत कोन कोन अछि, से कतहु स्पष्ट नहि कएल गेल अछि।

४७७. गीतसभपर ध्यान देलासँ शुद्ध वा सङ्कीर्ण रूपमे रतिभाव जाहि गीतमे भेटैत अछि से थिक शबरपादक दू गीत,[५५४] कुक्कुरीपादक तीनू गीत,[५५५] भुसुकुपादक दू गीत,[५५६] काह्नपादक दू गीत[५५७] तथा गुण्डरीपाद, डोम्बीपाद, विरुवापाद, धामपाद आ' ताड़कपादक एक-एक गीत।[५५८]

४७८. भुसुकुपादक हरिण-हरिणीक प्रेमालापमे स्पष्टतः चित्त-नैरात्माक भावुकता प्रकट अछि।[५५९] काह्नपादक सुतेलि, छिनारि, विवाहे आ' सुरअ-पसङ्गे शब्द,[५६०] कुक्कुरीपादक बहुरी आ' खमण भतारि शब्द[५६१] आओर ताड़कपादक महासुदेरी[५६२] शब्दसँ रतिभाव जँ प्रकट नहि होइत अछि तँ कोन भाव? एहन एहन पद असन्दिग्ध अछि। शबरपादक नैरात्मा[५६३] हुनकासँ कोना आलिङ्गित छथि से आगाँ स्पष्ट भए जाएत। आ' एहूमे संदेह नहि जे ओ देवी नित्यक्रीड़ा-रसोत्सुका छथि, जे कथा हम पूर्वहुँ कहि आएल छी।[५६४] भूमिकामे हिन्दूतन्त्रक विचार सेहो राखि आएल छी।[५६५] ताहिसभ आधार-पर ई शङ्का प्रयोजनीय नहि जे रतिभाव शुद्ध शुद्ध नहि अछि। अनेक कवितामे आलम्बन रहैत आएल अछि काल्पनिक, तेँ ओहो शङ्का व्यर्थ। अस्तु, एहि प्रकारेँ आठ गीतमे असन्दिग्ध रतिभाव अछि। स्फुटतया ओकर अभिव्यक्ति भेल अछि।

४७९. एहि आठ गीतक अतिरिक्त जे छओ गोट गीत बँचि जाइत अछि ताहिमे रतिभावक आक्षेप करए पड़ैत अछि। गुण्डरीपादक गीतमे तियड्डाक

---

५५३। सिद्धसाहित्य—पृ० २४७ ५५४। श० १-२ ५५५। कु० १, २, ३
५५६। भु० १, ८ ५५७। का० ७-८
५५८। गु० १, डो० १, वि० १, धा० १, ता० १ ५५९। भु० १
५६०। का० ७, ८ क्रमशः ५६१। कु० १, २ क्रमशः ५६२। ता० १
५६३। श० १, २ ५६४। अनु० ५८-६३
५६५। भूमिका—अनु० २०३-२०८

उल्लेख, डोम्बीपादक गीतमे मातङ्गीपोइश्राक लीलावर्णन, कुक्कुरीपाद, भुसुकुपाद आ' धामपादक गीतमे वज्र-पद्म वा कुलिशकमलक चर्चा तथा विरुवापादक गीतमे शुण्डिनीक [ मधुबालाक ] मधुघट-वर्णन[५६६] उक्त रूपक आक्षेपमे सहायक होइत अछि आ' तेँ एहू छओ गोट गीतकेँ रतिभावात्मक मानल जाएत।

४८०. एहि प्रकारेँ चौदह गीतक भाव-पक्षक सामान्य निर्देशक पश्चात् आब ई देखल जाए जे भाव निष्पन्न भए रसत्वकेँ प्राप्त कएने अछि वा नहि। ताहि प्रसङ्गेँ प्रमुखतया शबरपादक रचित गीतकेँ[५६७] दृष्टान्तरूपमे राखि सकैत छी। संक्षिप्तताक दृष्टिएँ केवल पाँच-सात पंक्ति राखि रहल छी, यद्यपि अछि समग्र गीत शृङ्गारिक।

.... .... .... .... .... .... .... .... .... ....

एकेली सबरी ए वण हिण्डइ कर्णकुण्डलवज्रधारी॥
तिअ धाउ खाट पाड़िला सबरो महासुहे सेजि छाइली।
सबरो भुजङ्ग नैरामणि दारी पेह्म राति पोहाइली॥
हिअ तांबोला महासुहे कापुर खाइ।
सुन नैरामणि कण्ठे लइआ महासुहे राति पोहाइ॥
गुरुवाक् पुंछआ विन्ध णिअमण वाणेँ।
एके शरसन्धाने विन्धह विन्धह परमणिवाणेँ॥
उमत सबरो गरुआ रोषे।

... .... .... .... .... .... .... .... .... ....

४८१. एहिठाम शबरपादक रतिभाव अभिव्यक्त अछि, तेँ ओ आश्रय छथि। रति स्थायी भाव अछिए। आश्रयक भावालम्बन छथि नैरात्मा [ नैरामणि ], उद्दीपनक काज करैत अछि हुनक मचकीपर झुलब, बगएबानि आदि [ आश्रयक ], अनुभाव मानल जाएत कण्ठ लगाएब, आनन्दसँ राति बिताएब आदि आ' व्यभिचारी भावमे 'गरुआ रोषे'केँ प्रमाण मानि सकैत छी। फलतः रति-स्थायीभाव निष्पन्न भए शृङ्गाररसत्वकेँ प्राप्त करैत अछि।

४८२. जेना एतए शृङ्गाररस, तेना काह्नपादक गीतमे वीभत्स तथा करुण भेटैत अछि—हाड़क माला आ' मातृहत्याक चित्रपर ध्यान देलासँ।[५६८]

---

५६६। गु० १, डो० १, कु० ३, भु० ८, धा० १, वि० १   ५६७। श० १
५६८। का० ३, ४ क्रमशः

४८३. ई कहि आएल छी जे रसक सत्ताक निर्णायक सहृदयहिकेँ मानए पड़त, से जे छथि से उक्त दृष्टान्तकेँ मान्यता अवश्य देताह। नायक-नायिकादि-विषयसभपर विचार अन्यत्रो[५६९] उपात्त अछि, तँ छोड़ि रहल छी। नीक होइत जे स्वतन्त्रे विचार प्रकाशित होइत।

## काव्य-दोष

४८४. चर्यागीतिमे दोष नहि भेटत से नहि। किछु स्थलकेँ राखि सकैत छी। कुक्कुरीपाद 'बिआए' शब्दक प्रयोग कएल, काह्नपाद 'छिणाली' शब्दक प्रयोग कएल आ' गुण्डरीपाद 'तियड्डा' शब्द[५७०] रखने छथि। एहिसभ शब्दमे अश्लीलते नहि ग्रामत्व दोष सेहो अछि।

४८५. एही प्रकारेँ शबरपादक गीतिमे 'तइला बाड़ी,' 'चञ्चाली' पद अप्रयुक्त बुझना जाइत अछि।[५७१]

४८६. आपाततः तँ क्लिष्टतादि किछु आओर दोष बूझि पड़ैत होएत, किन्तु पूर्वकृत व्याख्या-समीक्षासँ बहुत दूर धरि समाधान भए गेल होएत।

४८७. एक दोष एहन अवश्य अछि जे सिद्धक, सिद्धसाहित्यक, प्रचारमे वाधक मानल जाए सकैत अछि। ओ ई थिक जे प्रयुक्त कएल ओसभ स्वनिर्मित प्रतीक वा चित्र, कहल किछु तेहन विषय जे सुदीर्घ परम्परापर आधारित छल आ' अतिशय पारिभाषिक छल, किन्तु तकरा स्पष्ट करबाक हेतु किछु टीका-टिप्पणी नहि जोड़ल। हमरा जनैत, कठिन विषयकेँ सरल ढङ्गसँ व्यक्त करब आवश्यक आ' दून जँ कठिन भए जाएत, विषय कठिन आ' भाषा कठिन, तँ लोकप्रियताक आशा करब व्यर्थ। भाषा कठिनसँ तात्पर्य अछि कहबाक ढङ्ग, अपन कथ्य अर्थकेँ बड़ झाँपि कए व्यक्त कएने छथि। ई मानल जे गोपनीय विषयसभ अछि, किन्तु तकर समाधान ई छल जे ओहि विषय-सभकेँ लिपिबद्ध नहि कएल जाइत, अनुभूतिक तेहने अंशकेँ खोलितथि जाहिमे मर्यादाभङ्गक डर नहि।

## काव्य-गुण

४८८. एहिमे सन्देह नहि जे चर्यागीति प्रसादगुणसँ वञ्चित अछि। ओजोगुणक प्रश्ने नहि उठैत अछि।

---

५६९। सिद्धसाहित्य—पृ० २४५-२५२

५७०। कु० २, का० ७, गु० १ क्रमशः

५७१। श० ३

४८९. रहल माधुर्यगुण। से नीक जकाँ भेटैत अछि विशेषतः जाहि गीतमे शृङ्गारिक भाव-विन्यास अछि। एक दृष्टान्त लेल जाए—'सबरो भुजङ्ग नैरामणि दारी पेह्म राति पोहाइली'[५७२]। एहिठाम माधुर्यक व्यञ्जक वर्णसभ आएल अछि। र, ण तथा ल तँ प्रसिद्धे अछि जे भुजङ्गमे अङ्ग उच्चारण सभसँ अधिक उल्लेखनीय अछि, काव्यशास्त्रो एहन एहन दृष्टान्तकेँ मान्यता दैत अछि।[५७३] प्रायः एहन केओ नहि होएताह जे ई पंक्ति देखि गोविन्ददासक पंक्ति नहि मन पाड़ि लेताह—'सजनी कान्ह से वरजु भुजङ्ग'।

४९०. जेना ऊपर शबरपादक गीतमे द्रुतिकारक, आह्लादरूप माधुर्यगुण भेटल तेना अन्यत्रो भेटत।

## काव्य-रीति

४९१. रीति तँ गुणाश्रिते मानल जाइत अछि। लक्षणानुसार तँ वैदर्भी रीति मानल जाएत माधुर्यक कारणेँ।[५७४] किन्तु हमरा जनैत, विचारमे एतेक दूर धरि गतानुगतिकता उचित नहि। हमरा रीतिकेँ व्यापक रूपमे देखबाक अछि, पूर्वी भारतक अपन विशेषताक दृष्टिएँ, कोमल धरतीक, कोमल प्रकृतिक, कोमल भाषाक, कोमलकान्तपदावलीक दृष्टिएँ देखबाक अछि।

४९२. प्रायः दक्षिणभारतक अलङ्कार-शास्त्री वैदर्भी कहि अपन प्रान्तक प्रति पक्षपात देखाओल।

४९३. वस्तुतः चर्यागीति ओहि काव्य-रीतिकेँ चलएबामे अग्रसर भेल जे गीतिकेँ सद्यः प्रीतिकरो रागसँ बान्हल देखए चाहैत अछि, जाहिमे मानवहृदयक कोमलतम आ' मौलिकतम अनुभूति सङ्गीतक अपन लोचक सङ्ग तेना प्रकट होइत अछि जे श्रोताकेँ अपन मर्म जनाए दैत अछि। आगाँ जाए वृद्ध-अभिनव-जयदेव जाहि परम्पराक नेतृत्व कएल से राग-लय-तालसमन्वित, भक्ति-भाव-संवाहक पदसंघटनक रीति सिद्धहि द्वारा अङ्कुरित भेल छल। आ' इतिहासक विकास दिशि ध्यान देलापर ई सत्य स्फुट भए जाएत जे समन्वयात्मक रीतिएँ जाहि भावकेँ सिद्ध प्रकट कएल सएह भाव पाछाँ जाए मैथिली-ब्रजबूलीक शृङ्गारिक आ' भक्तिपरक पद द्वारा व्याख्यात भए अभिव्यक्त भेल। ई ध्यान देबाक योग्य विषय थिक जे ततेक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अनुभूतिकेँ सिद्धगण व्यक्त कएल जे उक्त माधुर्य-व्यञ्जक अपभ्रंश-गीतिप्रणाली [ रीति ] छोड़ि कोनहु

५७२। शा० १ ५७३। लेखककृत काव्यमीमांसा २ पृ० ३३ ५७४। ऐजन—पृ० ३७-३८

अन्य प्रणालीसँ ओ अनुभूति जनपदकेँ आह्लाद नहि दए सकैत। अस्पष्टता, से तँ कबीरहुक साहित्यमे कम नहि।

४९४. आइ जँ शक्तिसाधनाकेँ लक्ष्य मानि क्षेत्रीयभाषासाहित्यसभ निर्मित होइत रहैत तँ सिद्धक काव्यभावनाक सङ्ग अभिव्यक्तिरीतिओ अधिक मर्मस्पर्शी रूपमे जीवित रहि सकैत। सिद्धक चिन्तन-धाराक स्थग्नताक हेतु सिद्ध उत्तरदायी नहि, उत्तरदायी भेल अन्य ऐतिहासिक परिस्थिति जकर सङ्केत हम कए आएल छी। वा जँ किछु दोषो छलन्हि तँ साहित्यिक क्षेत्रक हेतु घातक नहि साहित्यस्रष्टाक रूपमे सिद्ध अपन वस्तु, भाव तथा रीतिसँ समस्त भारतकेँ उपकारे कएल।

## उपसंहार

४९५. प्राक्‌विद्यापतियुगीन साहित्यक रूपमे, अपभ्रंश-गीतिक रूपमे तथा भारतीय तान्त्रिक वाङ्मयक धरोहरक रूपमे चर्यागीति वा बौद्धगान कतेक दूर धरि मौलिकता रखैत अछि से प्रायः पुनः कहबाक प्रयोजन नहि।

४९६. प्रस्तुत पुस्तकक भूमिका-भागमे एहि साहित्यक चिन्तनाधाररूप बौद्ध-तान्त्रिक सिद्धान्तपर जे प्रकाश देल गेल अछि, ताहिसँ ई निर्णीत भए गेल जे वस्तुतः केवल बगए-बानिमे अन्तर अछि. जएह तत्त्व बौद्धतन्त्रक रहस्य अछि सएह हिन्दू तन्त्रक। पूर्व जे समीक्षाक्रममे बौद्धतन्त्रक प्रमाणरूप ग्रन्थ तथा प्रतिमा-विधानक चर्चा भेल, ताहिसँ ई आओर स्पष्ट भए गेल होएत जे डा० भट्टाचार्य सन सन विद्वानक उदासीन धारणा सत्य नहि अछि, एहन कल्पने व्यर्थ जे बौद्ध-हिन्दू तन्त्र परस्पर विरुद्ध अछि वा बौद्धतन्त्र हिन्दूतन्त्रकेँ अनादरक दृष्टिएँ देखैत छल।

४९७. एहिठाम प्रश्न छल आत्मरक्षाक। एहिमे कोनो सन्देह नहि जे महायानक प्रचारक अन्तिम कालांशमे भारतीय तन्त्रक अनेक ग्रन्थ प्रचलित भए सकल छल, जाहिमे कुब्जिकातन्त्र तथा सर्वज्ञानोत्तरतन्त्र उल्लेखनीय अछि। एहन एहन तान्त्रिक ग्रन्थक अध्ययन कए सिद्धगण अपन दृष्टिकोणक अनुसार एक नवीन चिन्तनधारा चलाओल, जकर नाम 'वज्रयान' राखल गेल, परिस्थितिए सएह छल। न्याय-मीमांसाक जे बिरड़ो बहैत छल, ताहिसँ प्रबलतम आघात महायानहिकेँ वा बौद्धहि धर्मकेँ पड़ैत। कटुता बढ़ैत बढ़ैत

तेहन दुष्ट स्वरूप धारण कए लैत जे बुद्धक मानवतावादी विचारधाराक बीजो बाँचि सकैत वा नहि ताहिमे संदेह।

४९८. ज्ञात वा अज्ञात रूपमे, व्यक्त वा प्रच्छन्न रूपमे शङ्कराचार्य सन अनन्य अद्वैतवादीक सहयोग सिद्धक संघर्षमे महास्त्र बनि गेल आओर अद्वैतवादक सर्वव्यापी दर्शनक सङ्ग भक्तिक मधुर सामञ्जस्यक परिणाम-स्वरूप जेसभ दर्शन विकसित भेल, ताहिमे उल्लेखनीय अछि शैव दर्शन तथा तकर सहगामी शाक्त दर्शन। तँ एही शैव-शाक्त दर्शनकेँ सिद्ध प्रज्ञोपायदर्शन-रूपमे प्रतिरूपित कएल। जँ किछु पारिभाषिक विशेषता नहि देखबितथि तँ सिद्धक धार्मिक अस्तित्वे समाप्त भए जाइत। सिद्धगणक आगाँमे सर्वप्रथम उपस्थित छल बौद्ध परम्परा, ओकरा छोड़ल नहि ताकथि। अक्षरशः ओकरा मानलासँ व्यावहारिक कठिनताक डर छल तथा सामाजिक अवहेलना आशङ्कित छल। तखन कोना बौद्ध परम्परा जीवित रहि सकत?—एहि समस्यामे पड़ि सिद्धगण कौलक 'भोगो योगायते' सिद्धान्तसँ प्रेरणा ग्रहण कएल आ' जेना कहि आएल छी, सम्भव थिक कुब्जिकातन्त्र सन प्राचीन हिन्दूतन्त्रक साहय्यसँ लोकप्रिय सहजयानकेँ ठाढ़ कएल।

४९९. ई विषय बड़ जटिल अछि जे कोन तान्त्रिक ग्रन्थ कतेक पुरान अछि। हिन्दू-बौद्ध तन्त्र प्राचीने बनि गेल अछि। दूनूक अग्रपश्चाद्भावक पक्षविपक्षमे पर्याप्त प्रमाण अछि, जकरा साङ्गोपाङ्ग रूपमे स्वतन्त्रहि ग्रन्थमे उपस्थित करब समुचित होएत। तथापि जे अनुसन्धान अद्यावधि प्राप्त भेल, ताहि आधारपर उक्त रूपक प्रौढ़ धारणा व्यक्त करबाक साहस कएल।

५००. ई तँ भेल सिद्धक तान्त्रिक प्रेरणाक प्रसङ्ग। साहित्यिक प्रेरणा भेटल सिद्धकेँ संस्कृतक मुक्तक-साहित्यसँ तथा ध्वनिकारक मान्यतासँ। मुक्तक-परम्परासँ उक्ति-स्वातन्त्र्य ग्रहण कए, हमरा जनैत सिद्धगण एक अपूर्व स्वच्छ-न्दतावादी साहित्यक सर्जना कएल जे गेय भए चर्यागीति कहबए लागल। चर्यागीति जहिना कविक जीवनदर्शनक पक्ष दिशि साकांक्ष अछि तहिना हुनक भावुकतापक्ष दिशि, आवेगपक्ष दिशि, जकर स्वरूप केहन, से कहब कठिन। तथापि, जेना सूरदास वात्सल्यक माध्यमसँ ईश्वरक शीलसौन्दर्यमहिमाक चिन्तन कएल तहिना सिद्ध रति वा प्रीतिक माध्यमसँ ईश्वरीकसङ्ग, विमर्शशक्तिक सङ्ग, अन्तरङ्गता स्थापित कएल, से कहि सकैत छी।

५०१. तँ हमरा सिद्धसाहित्यकेँ, विशेषतः चर्यागीतिकेँ एही स्वच्छन्दतावादी भावजीवी साहित्यक रूपमे देखबाक अछि। चरमदशामे अद्वयक सामरस्यकेँ लक्ष्य मानैत सिद्धगण शक्तिसाधनाकेँ, प्रत्यभिज्ञाहेतुरूप शक्त्याविष्करणकेँ, प्रश्रए देल। शक्तिक सङ्ग भावमे बहैत, किछु लोकोत्तर सहजानुभूति प्राप्त कएल, जाहि अनुभूतिकेँ जनपद धरि पहुँचएबाक प्रयास कएल। अन्तरशः ओहि अनुभूतिकेँ प्रकट कएल कोना जाए? दोसर, तन्त्र पशुसमाजक प्रति वाक्संयम रखैत अछि, रहस्यक गप्पे नहि करए चाहैत अछि।

५०२. एहि अकुलाहटिमे, द्विविधामे, पड़ि सिद्ध जतबे दूर धरि प्रयास कएल से स्तुत्य अछि। साङ्केतिक भाषाक प्रयोग छोड़ि दोसर समन्वयात्मक उपाये कोन छल? प्रतीकसभक द्वारा ओहि रहस्यसभकेँ व्यक्त कएल। जे व्यक्ति ओहि प्रतीकसँ रितिआएल रहताह, प्रतीकलक्षित वा तद्व्यञ्जित अर्थक सङ्ग रितिआएल रहताह, तनिका एहि साहित्यमे मन लगतन्हि। आशा कएल जाए सकैत अछि जे साहित्यप्रेमी समाजक ध्यान एहि गीतिसाहित्य दिशि अवश्य आओत जाहिसँ दू लक्ष्य पूर्ण होएत—भारतीय तन्त्रक सुदीर्घ परम्परामे स्फूर्त्ति आबि जाएत आओर अपभ्रंशसाहित्यक भण्डार श्रीसम्पन्न भए जाएत। स्वतः जनपदकेँ ई मानए पड़त जे विद्यापतिअहिसँ नहि, ज्योतिरीश्वरहुसँ पूर्व पूर्वी भारतक अञ्चलमे जनभाषामे प्रौढ साहित्यक निर्माण भए गेल छल आ' विचारला उत्तर ई स्पष्ट भए जाएत जे ताहि परम्पराक विकासे होइत गेल, ह्रास नहि। आ' इहो स्पष्ट भए जाएत जे एक समयमे जे भारत, तिब्बत, नेपाल आ' चीनमे सिद्धसाहित्यकेँ लोकसम्मान प्राप्त भेल से उचिते आ' ओहि सम्मानक पात्र ओ शक्ति-साहित्य सर्वथा अछि।

स्वीयां शक्तिं समाश्रित्य विद्या या गीयते च चित्।
अविद्यारोधकानन्दं श्रियै तस्यै नमोऽनिशम्॥

—श्रीस्तुतिमाला-मङ्गलश्लोक

—:★:—

# सहायक-ग्रन्थ-सूची

# सहायक-ग्रन्थ-सूची

[ अक्षरानुक्रमेण ]

## संस्कृत

अनुत्तरप्रकाशपञ्चाशिका—श्री आद्यानाथः—रिसर्च-विभाग, जम्मू-काश्मीर राज्य, श्रीनगर [ १९१८ ]।

अलङ्कारसर्वस्वम् – रुय्यकः जयरथकृताटीकासहितम् – निर्णयसागरप्रेस, बम्बई [ १९३९ ]।

ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा—उत्पलदेवः –अभिनवगुप्तकृता - विमर्शिनीसहिता – रिसर्च-कार्यालय, जम्मू-काश्मीर राज्य, श्रीनगर [ १९१८ ]।

कामकलाविलासः –पुण्यानन्दनाथः—सर जान उडरफकृत आंग्ल-अनुवाद-सहितः–गणेश ऐण्ड कम्पनी, मद्रास १७ [ १९६१ ]।

काली [ कालिका ]-कुलसर्वस्वसहस्रनामस्तोत्रम्—प्रकाशकः श्री जगन्नाथ मिश्रः, चनौर [ दरभङ्गा ]।

काव्यप्रकाशः –मम्मटः—सविमर्शशशिकलाहिन्दीव्याख्यासहितः-डा० सत्यव्रत सिंह–चौखम्बा-विद्याभवन, बनारस–१ [ १९५५ ]।

काव्यमीमांसा—राजशेखरः — हिन्दी-अनुवादसहितः — चौखम्बा-विद्याभवन, वाराणसी–१ [ १९५८ ]।

काव्यादर्शः—दण्डी—हिन्दी–अनुवादसहितः-चौखम्बाविद्याभवन, वाराणसी-१ [ १९५८ ]।

कुब्जिकातन्त्रम्—श्री रसिकमोहन चट्टोपाध्यायः—बङ्गला-संस्करणम्- ५,शिमला स्ट्रीट, कलकत्ता ।

कुलार्णवतन्त्रम्—आर्थर ऐवेलन – कृता – आंग्लभूमिकासहितम् — गणेश ऐण्ड कम्पनी [ प्राइवेट ] लिमिटेड, मद्रास-१७ [ १९६५ ] ।

तारिणीपारिजातः - विद्वदुपाध्यायः—संपादकः श्री रमानाथ झा-प्रकाशन-विभागः, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयः, वाराणसी-२ [ १९६१ ] ।

ध्वन्यालोकः— ध्वनिकार-आनन्दवर्द्धन – लोचनटीकासहितः– मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी [ १९६३ ] ।

नाट्यशास्त्रम्—भरतः -— अभिनवभारतीसहितम् [ १-३ ] — ओरिएण्टल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा [ १९५६ ] ।

नित्याषोड़शिकार्णवः—सेतुबन्धटीकासहितः—आनन्दाश्रम प्रेस, पूना [ १९०८ ]।

पराप्रवेशिका—क्षेमराजः—रिसर्च-विभाग, जम्मू काश्मीर राज्य, श्रीनगर [१९१८]।

पुरश्चरणरसोल्लासः—रसिकमोहन चट्टोपाध्यायः – ५,शिमलास्ट्रीट, कलकत्ता [ १३१२ बं० ] ।

पुरश्चर्यार्णवः—पण्डित मुरलीधर झा – प्रभाकरी ऐण्ड कम्पनी, बनारस कैण्ट [ १९०१ ] ।

प्रत्यभिज्ञाहृदयम्—क्षेमराजः—आंग्ल – अनुवादसहितम्—मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी [ १९६३ ]।

प्राणतोषिणी—श्रीरामतोषण भट्टाचार्यः—श्री जीवानन्द-विद्यासागर-संस्करणम् [ तृतीय ] , कलकत्ता ।

बोधपञ्चदशिका—अभिनवगुप्तः—रिसर्च-विभाग, जम्मू काश्मीर राज्य, श्रीनगर [ १९१८ ]।

भावोपहारः—श्री मच्चक्रनाथः—विवरणसहितः-रिसर्च-विभाग, जम्मू काश्मीर-राज्य, श्रीनगर [ १९१८ ]।

मन्त्रार्थसंग्रहः—प० जगद्धर शर्मा—मैथिलयन्त्रालय, मधुबनी [ १९२५ ] ।

महानिर्वाणतन्त्रम्—हिन्दी-अनुवादसहितम् – प्राचीनसंस्करणम् – लेखकाधीनम्, मधुबनी ।

महार्थमञ्जरी—गोरक्षापरपर्याय महेश्वरानन्दः -रिसर्च-विभाग, जम्मू काश्मीर-राज्य, श्रीनगर [ १९१८ ]।

मायातन्त्रम्—श्री रसिकमोहन चट्टोपाध्यायः—५,शिमला स्ट्रीट, कलकत्ता [ १३११ बं० ] ।

मुण्डमालातन्त्रम् — ऐजन — ऐजन [ १३०६ बं० ] ।

मेरुतन्त्रम्—रघुनाथशास्त्रीसंस्करणम्—श्री बेङ्कटेश्वर प्रेस,बम्बई [१९६५ वि० सं०] ।

रसगङ्गाधरः—जगन्नाथः—रसचन्द्रिकाटीकासहितः—चौखम्बा-विद्याभवन, वाराणसी-१ [ १९५५ ] ।

ललितासहस्रनाम — सौभाग्यभास्करभाष्योपेतम् — निर्णयसागरप्रेस, बम्बई [ १९३५ ] ।

वरिवस्यारहस्यम्—भास्कररायः—आंग्ल-अनुवादसहितम-अड्यार पुस्तकालय, मद्रास [ १९४८ ] ।

विश्वसारतन्त्रम्—श्री रसिकमोहन चट्टोपाध्यायः—५,शिमला स्ट्रीट, कलकत्ता [ १३१३ बं० ] ।

शक्तिसङ्गमतन्त्रम् [ भाग २ ]—आंग्ल-भूमिका-सहितम्—ओरिएण्टल इन्स्टि-ट्यूट, बड़ौदा [ १९४१ ] ।

शब्दकल्पद्रुमः—राजाराधाकान्तदेव—बङ्गला-संस्करणम्—हितवादी मेशिन, कलकत्ता [ १८३६ शाके ] ।

शाक्तप्रमोदः—शिवहर-राज्य-संस्करणम्—श्री बेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई ४ [ १९५१ ] ।

शारदातिलकम्—लक्ष्मणदेशिकेन्द्रः—राघवभट्ट-टीकासहितम्-म० म० बख्शी-संस्करणम्-चौखम्बा संस्कृत सीरिज कार्यालय, बनारस सीटी [ १९३४ ] ।

शिवसूत्राणि—वार्तिकवृत्तिसहितानि—रिसर्च-विभाग, जम्मू काश्मीर राज्य, श्रीनगर ।

श्रीगुह्यसमाजतन्त्रम्—डा० बागची-संस्करणम्—मिथिला-विद्यापीठ, दरभङ्गा [ १९६५ ] ।

श्री शिवस्तुतिमाला—प० क्षेमधारी सिंहः—हस्तलिपिः लेखकाधीना, मधुबनी ।

श्री स्तुतिमाला—ऐजन—प्रकाशकः श्री बुद्धिधारी सिंह, मधुबनी [ १९४१ ] ।

षट्चक्रनिरूपणम्—पूर्णानन्द स्वामी—आंग्लअनुवादसहितम् [ दी सरपेण्ट-पावर]-गणेश ऐण्ड कम्पनी, मद्रास-१७ [ १९६४ ] ।

षट्चक्रविवृतिः—विवृतिकारः विश्वनाथः—'दी सरपेण्ट पावर' में संगृहीत-ऐजन-ऐजन [ ऐजन ] ।

षट्त्रिंशत्तत्त्वसंदोहः—क्षेमराजः—विवरणसहितः-रिसर्च-विभाग, जम्मू काश्मीर-राज्य, श्रीनगर [ १६१८ ]।

सिद्धान्तकौमुदी — तत्त्वबोधिनीटीकासहिता — श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई [ १६३१ शाके ]।

सौन्दर्यलहरी [ Saundarya Lahari ] — आनन्दलहरीसमेता—लक्ष्मीधरा वृत्तिः, आंग्ल अनुवादश्च – गणेश ऐण्ड कम्पनी मद्रास-१७ [ १९५७ ]।

संस्कृतशब्दकोशः [ The Student's Sanskrit-English Dictionary ] —वी० एस० आप्ते मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी [ १६६५ ]।

स्पन्दकारिकाः—कल्लटः—विवृतिसहिताः—रिसर्च-विभाग, जम्मू काश्मीर राज्य, श्रीनगर [ १९१३ ]।

## अङ्ग्रेजी

A History of Indian Philosophy Vol. I — Dr. Jadunath Sinha — Sinha Publishing House, 39, S. R. Das Road, Calcutta-26, 1956.

A History of Maithili Literature Vol. I — Dr. Jayakant Mishra — Tirbhukti Publications, 1, Sir P. C. Bannerjee Road, Allahabad, 1949.

An Introduction to Buddhist Esoterism—Dr. Benoytosh Bhattāchārya—Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi-1, 1964.

An Introduction to Tāntric Buddhism—Dr. S. B. Dasgupta—University of Calcutta, 1958.

History of Mithilā—Dr. Upendra Thakur-Mithila Institute, Darbhanga, 1956.

History of Philosophy : Eastern & Western Vol. I—Sponsored by the Ministry of Education, Govt. of India, 1957.

Idealistic Thought of India—Dr. P. T. Raju—George Allen & Unwin Ltd., London, 1953.

Kashmir Shaivaism Part I—Jagdish Chandra Chatterjee, B. A. (Cantab) Research Deptt., Jammu & Kashmir, Srinagar, 1914.

Lokāyat ( A Study in Ancient Indian Materialism )—Debi Prasad Chattopadhyaya—People's Publishing House ( Private ) Ltd Rani Jhansi Road, New Delhi, 1959.

Obscure Religious Cults ; as Background of Bengali Literature Dr. Shashibhushan Dasgupta, University of Calcutta, 1946.

On Yoga I—Sri Aurobindo—Shri Aurobindo Ashram, Pondicherry, 1957.

Principles of Tantra ( Tantra-Tattva )—Ed. by Sir John Woodroffe, Ganesh & Co. ( Private ), Madras-17, 1960.

Shakti & Shakta—Sir John Woodroffe—Luzac & Co. London, 1918.

Shankara Vedanta — Dr. Ganganath Jha—University of Allahabad, Allahabad, 1939.

Tantra of the Great Liberation ( Mahā Nirvāna-Tantra )—Arthur Avelon—Luzac & Co., London, 1913.

The Concise Oxford Dictionary of Current English—H. W. Fowler & F. G. Fowler—Clarendon Press, Oxford, 1934.

The Cultural Heritage of India Vol. IV — Ed. by Haridas Bhattacharya—Ramkrishna Mission Institute of Culture, Calcutta, 1956.

The Garland of Letters (Varnamāla)—Sir John Woodroffe—Ganesh & Co., Madras-17, 1963.

The Imperial Gazetteer of India Vol. II—Ed. by Henry Frowde, University of Oxford, 1909.

The Indian Buddhist Iconography — Dr. Benoytosh Bhattacharya—Published by K. L. Mukhopadhyaya, 6/1A Banchhram Akrur Lane, Calcutta-12, 1958.

The Journal of the Bihar & Orissa Research Society ( Patna ) Vol. V Pt. II—June, 1919.

Do. Do. Vol. V. Pt. IV—December, 1919.

Do. Do. Vol. XI. Pt. I—March, 1925.

The Mysterious Kundalini—Vasant G. Rele—D. B. Taraporevala Sons & Co.—210, Dr. D. Naoroji Road, Fort, Bombay-1—1960.

The Oxford History of India—Dr. Vincent A. Smith—Clarendon Press, Oxford, 1920.

The Serpent Power–Sir John Woodroffe-Ganesh & Co.,Madras-17,1964.
The Tantras : Studies on their Religion & Literature—Chintaharan Chakravarti, M. A , F. A. S.—Punthi Pustak,Calcutta-4, 1963.
2500 years of Buddhism—Ed. by Prof. P. V. Bapat—The Publications Division, Ministry of Information & Broadcasting, Govt. of India, 1959.

## हिन्दी

कल्याण—शक्ति-अङ्क—गीता-प्रेस, गोरखपुर—नवम वर्षाङ्क [ १६३४ ]।
काव्यदर्पण—पं० रामदहिन मिश्र—ग्रन्थमाला-कार्यालय, पटना ४ [ १६६० ]।
तान्त्रिक बौद्धसाधना और साहित्य—श्री नागेन्द्रनाथ उपाध्याय—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी [ वाराणसी ][ २०१५ वि० सं० ]।
तान्त्रिक वाङ्मयमे शाक्त दृष्टि—म० म० डा० गोपीनाथ कविराज—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना [१९६३ ]
नाथ-सम्प्रदाय—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तरप्रदेश. इलाहाबाद [ १६५० ]।
बालसङ्गीतशिक्षा [ भाग १-२ ]—विश्वम्भरनाथ भट्ट, एम० ए०-सङ्गीत कार्यालय हाथरस [ १९५८ ]।
बौद्धदर्शनमीमांसा — प० बलदेव उपाध्याय, एम० ए०—चौखम्बा-विद्याभवन, बनारस-१ [ १६५४ ]।
बङ्गला और उसका साहित्य—श्री हंसकुमार तिवारी—सरस्वती सहकार दिल्ली की ओर से-राजकमल प्रकाशन [ प्रथम सं० ]।
भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण—के० एम० पणिक्कर [ मूल लेखक ]—अनुवादक-हनुमान प्रसाद वाजपेयी—एशिया पब्लिशिङ्ग हाउस, बम्बई-१।
भारतीय साहित्य की रूपरेखा—डा० भोलाशङ्कर व्यास—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१ [ १९६३ ]।
भारतीय संस्कृति और साधना [ १-२ ]—म० म० गोपीनाथ कविराज—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना [ १६६३ ]।

मन्त्र और मातृकाओंका रहस्य –डा० शिवशङ्कर अवस्थी—चौखम्बा-विद्याभवन, वाराणसी-१ [ १९६६ ] ।

रसगङ्गाधर का शास्त्रीय अध्ययन—डा० प्रेमस्वरूप गुप्त-भारत प्रकाशन-मन्दिर, अलीगढ़ [ १९६२ ]।

साहित्यशास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोष—राजेन्द्र द्विवेदी आत्माराम ऐण्ड सन्स, काश्मीर-गेट, दिल्ली-६ [ १९५५ ] ।

सिद्धसाहित्य—डा० धर्मवीर भारती किताबमहल, इलाहाबाद [ १९५५ ]।

हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास [ भाग १ ] --सं० डा० राजबली पाण्डेय, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी [ प्रथम संस्करण ]।

## अपभ्रंश

चर्यागीतिकोष [ Charya-Geeti-Kosha ]—डा० प्रबोधचन्द्रबागची-शान्ति-भिक्षुशास्त्री-विश्वभारती-प्रकाशन-विभाग, ६/३ द्वारकानाथ टैगोर लेन, कलकत्ता-७ [ १९५६ ]।

चर्यागीतिपदावली ( चर्याचर्यटीकासमेत ) — डा० श्री सुकुमार सेन—Eastern Publishers, 8-c Ramanath Majumdar Street Calcutta-9 [ 1966 ].

डाकार्णव [Dakarnava]—Ed. by Dr. Nagendranarayan Chaudhary Metropolitan Printing & Publishing House Ltd., 56, Dharam Tala Street, Calcutta [ 1935 ] ।

दोहाकोश [ सिद्धसरहपादकृत ]—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन—बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना [ १९५७ ]।

बौद्धगान ओ दोहा [ चर्याचर्यविनिश्चय, सरोजवज्रेर दोहाकोष, काह्नपादेर दोहाकोष ओ डाकार्णव ]—संपादक म० म० हरप्रसाद शास्त्री—बङ्गीय साहित्य-परिषद्, २४३/१ अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता-६ [ १३५८ बं० ]।

## मैथिली

काव्यमीमांसा-भाग १—श्री जयधारी सिंह, मधुबनी—दरभंगा प्रेस कंपनी [ प्रा० ] लि० दरभंगा [ १९६२ ]।

ऐजन-भाग २-ऐजन—प्रकाशक श्रीबुद्धिधारीसिंह 'रमाकर'—रामकृष्ण महाविद्यालय, मधुबनी [ १९६४ ]।

छन्दःशास्त्र—श्री गोविन्द झा—दरभंगा प्रेस कं० लि० [ प्रा० ], दरभंगा [ १९६० ]।

प्रबन्ध-संग्रह—श्री रमानाथ झा, अध्यक्ष-मैथिली-विभाग, बिहार-विश्वविद्यालय - दरभंगा प्रेस कं० [ प्रा० ] लि०, दरभंगा [ १९६३ ]।

मिथिलाभाषाकोष -प० दीनबन्धु झा — पो० सरिसब-पाही, दरभंगा [प्रथम-संस्करण ]।

मैथिलीक सिद्ध-साहित्य [ आकाशवाणी-वार्त्ता ] -वार्त्ताकार -डा० श्री जयधारी सिंह, मधुबनी, प्रसारण-केन्द्र पटना [ १३-४-१९६६ ]।

रागतरङ्गिणी—लोचन—सम्पादक प० श्री बलदेव मिश्र — राजप्रेस, दरभंगा [ १९९१ वि० सं० ]।

वर्णरत्नाकर—ज्योतिरीश्वर—सम्पादक डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, प० बबुआजी मिश्र—बङ्गाल रोयाल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता [ १९४० ]।

संस्कृति -ज्योतिषाचार्य श्रीबलदेव मिश्र—सरस्वती-भवन, गवर्नमेण्ट-संस्कृत-कालेज, बनारस [ २००६ वि० सं० ]।

—:०:—